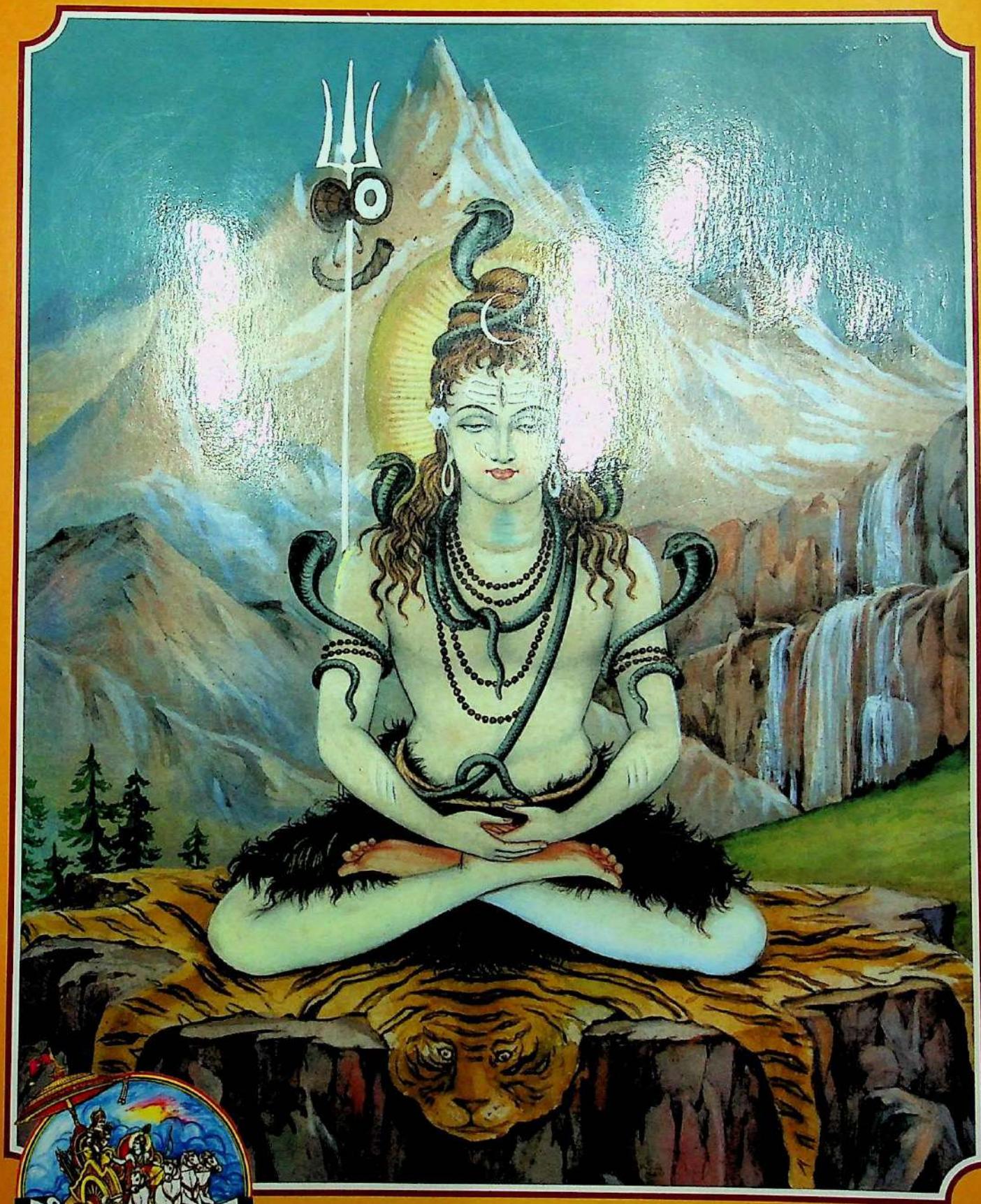


श्रीशिवमहापुराण

[द्वितीय-खण्ड—उत्तरार्ध]

(सचित्र, मूल संस्कृत श्लोक — हिन्दी-व्याख्यासहित)



गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

गीताप्रेस, गोरखपुर



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server

**गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित
पुराण, उपनिषद् आदि**

- 1930 } श्रीमद्भागवत-सुधासागर—भाषानुवाद, सचित्र
 1945 } „ „ „ „ (विशिष्ट संस्करण)
 25 श्रीशुक्लसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें
 1951 } श्रीमद्भागवतमहापुराण—
 1952 } „ „ सटीक पत्राकारकी तरह, बेड़िआ
 दो खण्डोंमें सेट
 26 } „ „ —(हिन्दी-अनुवादसहित)
 27 } „ „ दो खण्डोंमें सेट (गुजराती भी)
 564,565 श्रीमद्भागवत-महापुराण—अंग्रेजी सेट
 29 „ „ मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी)
 124 श्रीमद्भागवत-महापुराण—मूल मञ्जला
 1092 भागवतस्तुति-संग्रह
 2009 भागवत-नवनीत
 30 श्रीप्रेम-सुधासागर
 31 श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध
 728 महाभारत—हिन्दी टीका-सहित
 सचित्र [छ: खण्डोंमें] सेट
 38 महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक
 1589 „ „ „ „ —केवल भाषा
 39 } संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा,
 511 } „ „ सचित्र (दो खण्डोंमें) सेट
 44 संक्षिप्त पद्मपुराण
 1468 सं० शिवपुराण (विशिष्ट संस्करण)
 789 सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी]
 1133 सं० देवीभागवत—मोटा टाइप [गुजराती भी]
 48 श्रीविष्णुपुराण—(हिन्दी-अनुवादसहित)
 1364 श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी)
 1183 सं० नारदपुराण
 279 सं० स्कन्दपुराण
 539 सं० मार्कण्डेयपुराण
 1897 } श्रीमहेवीभागवत महापुराण—(हिन्दी-
 1898 } „ „ अनुवादसहित) दो खण्डोंमें सेट
 1793 } „ „ (केवल हिन्दी)
 1842 } „ „ दो खण्डोंमें सेट



॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

2224

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीशिवमहापुराण

[द्वितीय-खण्ड—उत्तरार्थ]

(शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, उमासंहिता, कैलाससंहिता, वायवीयसंहिता)

[सचित्र, मूल संस्कृत श्लोक—हिन्दी व्याख्यासहित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रेस

गीता प्रकाशन के द्वारा प्राप्ति ग्रन्थ है।

संस्कृत-हिन्दी

गीता अध्यात्मिक

[अध्यात्म—हिन्दी—इंग्रजी]

(गीता अध्यात्म, गीता अध्यात्म, गीता अध्यात्म, गीता अध्यात्म, गीता अध्यात्म)

[नवीनीकरण लिंगी—लालू चक्रवर्ती लालू लालू]

सं० २०७६ प्रथम संस्करण ७,०००

मूल्य—₹ ३०० (तीन सौ रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)

फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०, २३३१२५१

web : gitapress.org e-mail : booksales@gitapress.org

गीताप्रेस प्रकाशन gitapressbookshop.in से online खरीदें।

श्रीशिवमहापुराण

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
शतरुद्रसंहिता					
१.	सूतजीसे शौनकादि मुनियोंका शिवावतार-विषयक प्रश्न	११	२०.	शिवजीका हनुमान्‌के रूपमें अवतार तथा उनके चरितिका वर्णन	९३
२.	भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंका वर्णन	१५	२१.	शिवजीके महेश्वरावतार-वर्णनक्रममें अम्बिकाके शापसे भैरवका वेतालरूपमें पृथ्वीपर अवतरित होना	९७
३.	भगवान् शिवका अर्धनारीश्वर-अवतार एवं सतीका प्रादुर्भाव	१७	२२.	शिवके वृषेश्वरावतार-वर्णनके प्रसंगमें समुद्र-मन्थनकी कथा	९८
४.	वाराहकल्पके प्रथमसे नवम द्वापरतक हुए व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन	२०	२३.	विष्णुद्वारा भगवान् शिवके वृषभेश्वरावतारका स्तवन	१०३
५.	वाराहकल्पके दसवेंसे अद्वाईसवें द्वापरतक होनेवाले व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन	२३	२४.	भगवान् शिवके पिप्पलादावतारका वर्णन ..	१०६
६.	नन्दीश्वरावतारवर्णन	२८	२५.	राजा अनरण्यकी पुत्री पद्माके साथ पिप्पलादका विवाह एवं उनके वैवाहिक जीवनका वर्णन	११२
७.	नन्दिकेश्वरका गणेश्वराधिपति पदपर अभिषेक एवं विवाह	३३	२६.	शिवके वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन ..	११४
८.	भैरवावतारवर्णन	३८	२७.	भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारका वर्णन ..	११९
९.	भैरवावतारलीलावर्णन	४३	२८.	नल एवं दमयन्तीके पूर्वजन्मकी कथा तथा शिवावतार यतीश्वरका हंसरूप धारण करना ..	१२५
१०.	नृसिंहचरित्रवर्णन	४९	२९.	भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा	१२९
११.	भगवान् नृसिंह और वीरभद्रका संवाद	५३	३०.	भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारका वर्णन ..	१३४
१२.	भगवान् शिवका शरभावतार-धारण	५८	३१.	शिवजीके भिक्षुवर्यावतारका वर्णन	१३८
१३.	भगवान् शंकरके गृहपति-अवतारकी कथा	६२	३२.	उपमन्युपर अनुग्रह करनेके लिये शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन	१४४
१४.	विश्वानरके पुत्ररूपमें गृहपति नामसे शिवका प्रादुर्भाव	६८	३३.	पार्वतीके मनोभावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन	१५१
१५.	भगवान् शिवके गृहपति नामक अग्नीश्वर-लिंगका माहात्म्य	७२	३४.	भगवान् शिवके सुनर्तक नटावतारका वर्णन ..	१५६
१६.	यज्ञेश्वरावतारका वर्णन	७८	३५.	परमात्मा शिवके द्विजावतारका वर्णन	१६०
१७.	भगवान् शिवके महाकाल आदि प्रमुख दस अवतारोंका वर्णन	८२			
१८.	शिवजीके एकादश रुद्रावतारोंका वर्णन	८४			
१९.	शिवजीके दुर्वासावतारकी कथा	८७			

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
३६.	अश्वत्थामाके रूपमें शिवके अवतारका वर्णन.....	१६३	३९.	मूक नामक दैत्यके वधका वर्णन	१७८
३७.	व्यासजीका पाण्डवोंको सान्त्वना देकर अर्जुनको इन्द्रकील पर्वतपर तपस्या करने भेजना... १६७		४०.	भीलस्वरूप गणेश्वर एवं तपस्वी अर्जुनका संवाद.....	१८२
३८.	इन्द्रका अर्जुनको वरदान देकर शिवपूजनका उपदेश देना	१७२	४१.	भगवान् शिवके किरातेश्वरावतारका वर्णन	१८६

कोटिरुद्रसंहिता

१.	द्वादश ज्योतिर्लिंगों एवं उनके उपलिंगोंके माहात्म्यका वर्णन.....	१९७
२.	काशीस्थित तथा पूर्व दिशामें प्रकटित विशेष एवं सामान्य लिंगोंका वर्णन	२०१
३.	अत्रीश्वरलिंगके प्राकट्यके प्रसंगमें अनसूया तथा अत्रिकी तपस्याका वर्णन	२०३
४.	अनसूयाके पातिव्रतके प्रभावसे गंगाका प्राकट्य तथा अत्रीश्वरमाहात्म्यका वर्णन..	२०८
५.	रेवानदीके तटपर स्थित विविध शिवलिंग-माहात्म्य-वर्णनके क्रममें द्विजदम्पतीका वृत्तान्त	२१३
६.	नर्मदा एवं नन्दिकेश्वरके माहात्म्य-कथनके प्रसंगमें ब्राह्मणीकी स्वर्गप्राप्तिका वर्णन....	२१६
७.	नन्दिकेश्वरलिंगका माहात्म्य-वर्णन	२२२
८.	पश्चिम दिशाके शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें महाबलेश्वरलिंगका माहात्म्य-कथन.....	२२५
९.	संयोगवश हुए शिवपूजनसे चाण्डालीकी सद्गतिका वर्णन	२२७
१०.	महाबलेश्वर शिवलिंगके माहात्म्य-वर्णन-प्रसंगमें राजा मित्रसहकी कथा	२३०
११.	उत्तरदिशामें विद्यमान शिवलिंगोंके वर्णन-क्रममें चन्द्रभाल एवं पशुपतिनाथलिंगका माहात्म्य-वर्णन.	२३५
१२.	हाटकेश्वरलिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन.....	२३६
१३.	अन्धकेश्वरलिंगकी महिमा एवं बटुककी	

३९.	उत्पत्तिका वर्णन	२४१
४०.	सोमनाथ ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्तिका वृत्तान्त	२४७
४१.	मलिलकार्जुन ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति-कथा	२५२
४२.	महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्राकट्यका वर्णन	२५४
४३.	महाकाल ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-वर्णनके क्रममें राजा चन्द्रसेन तथा श्रीकर गोपका वृत्तान्त	२५८
४४.	ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन.....	२६४
४५.	केदारेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्राकट्य एवं माहात्म्यका वर्णन.....	२६६
४६.	भीमशंकर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-वर्णन-प्रसंगमें भीमासुरके उपद्रवका वर्णन.....	२६९
४७.	भीमशंकर ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति तथा उसके माहात्म्यका वर्णन	२७४
४८.	परब्रह्म परमात्माका शिव-शक्तिरूपमें प्राकट्य, पंचक्रोशात्मिका काशीका अवतरण, शिवद्वारा अविमुक्त लिंगकी स्थापना, काशीकी महिमा तथा काशीमें रुद्रके आगमनका वर्णन.....	२७९
४९.	काशीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यके प्रसंगमें काशीमें मुक्तिक्रमका वर्णन	२८२
५०.	त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्य-प्रसंगमें गौतमऋषिकी परोपकारी प्रवृत्तिका वर्णन .	२८७
५१.	मुनियोंका महर्षि गौतमके प्रति कपटपूर्ण व्यवहार	२८९

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
२६.	त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग तथा गौतमी गंगाके प्रादुर्भाविका आख्यान	२९४		विष्णुके सुदर्शनचक्र प्राप्त करनेकी कथा	३२९
२७.	गौतमी गंगा एवं त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंगका माहात्म्यवर्णन	२९९	३५.	विष्णुप्रोत्क शिवसहस्रनामस्तोत्र	३३२
२८.	वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन.....	३०३	३६.	शिवसहस्रनामस्तोत्रकी फल-श्रुति	३६१
२९.	दारुकावनमें राक्षसोंके उपद्रव एवं सुप्रिय वैश्यकी शिवभक्तिका वर्णन	३०९	३७.	शिवकी पूजा करनेवाले विविध देवताओं, ऋषियों एवं राजाओंका वर्णन	३६५
३०.	नागेश्वर ज्योतिर्लिंगकी उत्पत्ति एवं उसके माहात्म्यका वर्णन.....	३१३	३८.	भगवान् शिवके विविध ब्रतोंमें शिवरात्रिव्रतका वैशिष्ट्य	३६९
३१.	रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगके प्रादुर्भाव एवं माहात्म्यका वर्णन.....	३१७	३९.	शिवरात्रिव्रतकी उद्यापन-विधिका वर्णन ...	३७६
३२.	घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंगके माहात्म्यमें सुदेहा ब्राह्मणी एवं सुधर्मा ब्राह्मणका चरित-वर्णन	३२०	४०.	शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यके प्रसंगमें व्याध एवं मृगपरिवारकी कथा तथा व्याधेश्वरलिंगका माहात्म्य	३७८
३३.	घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग एवं शिवालयके नामकरणका आख्यान	३२५	४१.	ब्रह्म एवं मोक्षका निरूपण	३८६
३४.	हरीश्वरलिंगका माहात्म्य और भगवान्		४२.	भगवान् शिवके सगुण और निर्गुण स्वरूपका वर्णन.....	३८८
			४३.	ज्ञानका निरूपण तथा शिवपुराणकी कोटिरुद्रसंहिताके श्रवणादिका माहात्म्य....	३९१

उपासंहिता

१.	पुत्रप्राप्तिके लिये कैलासपर गये हुए श्रीकृष्णका उपमन्युसे संवाद.....	३९७		तथा अन्नदानका विशेष माहात्म्यवर्णन	४३९
२.	श्रीकृष्णके प्रति उपमन्युका शिवभक्तिका उपदेश.....	४०३	१२.	जलदान, सत्यभाषण और तपकी महिमा	४४४
३.	श्रीकृष्णकी तपस्या तथा शिव-पार्वतीसे वरदानकी प्राप्ति, अन्य शिवभक्तोंका वर्णन	४०७	१३.	पुराणमाहात्म्यनिरूपण	४४८
४.	शिवकी मायाका प्रभाव	४१३	१४.	दानमाहात्म्य तथा दानके भेदका वर्णन....	४५१
५.	महापातकोंका वर्णन	४१६	१५.	ब्रह्माण्डदानकी महिमाके प्रसंगमें पाताललोकका निरूपण	४५४
६.	पापभेदनिरूपण	४१९	१६.	विभिन्न पापकर्मोंसे प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन और शिव-नाम-स्मरणकी महिमा ...	४५७
७.	यमलोकका मार्ग एवं यमदूतोंके स्वरूपका वर्णन.....	४२३	१७.	ब्रह्माण्डके वर्णन-प्रसंगमें जम्बूद्वीपका निरूपण	४६१
८.	नरक-भेद-निरूपण	४२८	१८.	भारतवर्ष तथा प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन.....	४६४
९.	नरककी यातनाओंका वर्णन	४३१	१९.	सूर्यादि ग्रहोंकी स्थितिका निरूपण करके जन आदि लोकोंका वर्णन	४७०
१०.	नरकविशेषमें दुःखवर्णन.....	४३५	२०.	तपस्यासे शिवलोककी प्राप्ति, सात्त्विक आदि	
११.	दानके प्रभावसे यमपुरके दुःखका अभाव				

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
तपस्याके भेद, मानवजन्मकी प्रशस्तिका कथन	पूर्वक वैवस्वतवंशमें उत्पन्न राजाओंका वर्णन.....	४७३	४०.	पितृश्राद्धका प्रभाव-वर्णन	५४९
२१. कर्मानुसार जन्मका वर्णनकर क्षत्रियके लिये संग्रामके फलका निरूपण	४७७	४१.	पितरोंकी महिमाके वर्णनक्रममें सप्त व्याधोंके आख्यानका प्रारम्भ	५५२	
२२. देहकी उत्पत्तिका वर्णन	४८१	४२.	'सप्त व्याध' सम्बन्धी श्लोक सुनकर राजा ब्रह्मदत्त और उनके मन्त्रियोंको पूर्वजन्मका स्मरण होना और योगका आश्रय लेकर उनका मुक्त होना.....	५५७	
२३. शरीरकी अपवित्रता तथा उसके बालादि अवस्थाओंमें प्राप्त होनेवाले दुःखोंका वर्णन	४८४	४३.	आचार्यपूजन एवं पुराणश्रवणके अनन्तर कर्तव्य-कथन	५६१	
२४. नारदके प्रति पंचचूडा अप्सराके द्वारा स्त्रीके स्वभावका वर्णन	४९०	४४.	व्यासजीकी उत्पत्तिकी कथा, उनके द्वारा तीर्थाटनके प्रसंगमें काशीमें व्यासेश्वरलिंगकी स्थापना तथा मध्यमेश्वरके अनुग्रहसे पुराणनिर्माण	५६४	
२५. मृत्युकाल निकट आनेके लक्षण	४९३	४५.	भगवती जगदम्बाके चरितवर्णनक्रममें सुरथराज एवं समाधि वैश्यका वृत्तान्त तथा मधु-कैटभके वधका वर्णन	५७५	
२६. योगियोंद्वारा कालकी गतिको टालनेका वर्णन.....	४९९	४६.	महिषासुरके अत्याचारसे पीड़ित ब्रह्मादि देवोंकी प्रार्थनासे प्रादुर्भूत महालक्ष्मीद्वारा महिषासुरका वध	५८२	
२७. अमरत्व प्राप्त करनेकी चार यौगिक साधनाएँ	५०४	४७.	शुम्भ-निशुम्भसे पीड़ित देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड आदि असुरोंका वध	५८६	
२८. छायापुरुषके दर्शनका वर्णन	५०८	४८.	सरस्वतीदेवीके द्वारा सेनासहित शुम्भ-निशुम्भका वध	५९१	
२९. ब्रह्माकी आदिसृष्टिका वर्णन.....	५११	४९.	भगवती उमाके प्रादुर्भाविका वर्णन	५९७	
३०. ब्रह्माद्वारा स्वायम्भुव मनु आदिकी सृष्टिका वर्णन.....	५१३	५०.	दस महाविद्याओंकी उत्पत्ति तथा देवीके दुर्गा, शताक्षी, शाकम्भरी और भ्रामरी आदि नामोंके पड़नेका कारण	६००	
३१. दैत्य, गन्धर्व, सर्प एवं राक्षसोंकी सृष्टिका वर्णन तथा दक्षद्वारा नारदके शाप-वृत्तान्तका कथन	५१७	५१.	भगवतीके मन्दिरनिर्माण, प्रतिमास्थापन तथा पूजनका माहात्म्य और उमासंहिताके श्रवण एवं पाठकी महिमा	६०५	
३२. कश्यपकी पलियोंकी सन्तानोंके नामका वर्णन.....	५२०				
३३. मरुतोंकी उत्पत्ति, भूतसर्गका कथन तथा उनके राजाओंका निर्धारण	५२४				
३४. चतुर्दश मन्वन्तरोंका वर्णन	५२६				
३५. विवस्वान् एवं संज्ञाका वृत्तान्तवर्णनपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्तिका वर्णन	५३२				
३६. वैवस्वतमनुके नौ पुत्रोंके वंशका वर्णन ...	५३५				
३७. इक्षवाकु आदि मनुवंशीय राजाओंका वर्णन.....	५४०				
३८. सत्यव्रत-त्रिशंकु-सगर आदिके जन्मके निरूपणपूर्वक उनके चरित्रका वर्णन	५४५				
३९. सगरकी दोनों पलियोंके वंशविस्तारवर्णन-					

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
कैलाससंहिता					
१. व्यासजीसे शौनकादि ऋषियोंका संवाद....	६१३		आदिका वर्णन		६७४
२. भगवान् शिवसे पार्वतीजीकी प्रणवविषयक जिज्ञासा	६१६		१६. शैवदर्शनके अनुसार शिवतत्त्व, जगत्-प्रपञ्च और जीवतत्त्वके विषयमें विशद् विवेचन तथा शिवसे जीव और जगत्की अभिन्नताका प्रतिपादन		६७८
३. प्रणवमीमांसा तथा संन्यासविधिवर्णन	६१९		१७. अद्वैत शैववाद एवं सृष्टिप्रक्रियाका प्रतिपादन		६८६
४. संन्यासदीक्षासे पूर्वकी आहिनकविधि.....	६२४		१८. संन्यासपद्धतिमें शिष्य बनानेकी विधि.....		६९०
५. संन्यासदीक्षाहेतु मण्डलनिर्माणकी विधि ...	६२७		१९. महावाक्योंके तात्पर्य तथा योगपट्टविधिका वर्णन		६९४
६. पूजाके अंगभूत न्यासादि कर्म	६२९		२०. यतियोंके क्षौर-स्नानादिकी विधि तथा अन्य आचारोंका वर्णन		७००
७. शिवजीके विविध ध्यानों तथा पूजा-विधिका वर्णन.....	६३५		२१. यतिके अन्त्येष्टिकर्मकी दशाहपर्यन्त विधिका वर्णन		७०३
८. आवरणपूजा-विधि-वर्णन	६४१		२२. यतिके लिये एकादशाह-कृत्यका वर्णन ...		७०९
९. प्रणवोपासनाकी विधि	६४३		२३. यतिके द्वादशाह-कृत्यका वर्णन, स्कन्द और वामदेवका कैलासपर्वतपर जाना तथा सूतजीके द्वारा इस संहिताका उपसंहार		७१३
१०. सूतजीका काशीमें आगमन	६४८				
११. भगवान् कार्तिकेयसे वामदेवमुनिकी प्रणव- जिज्ञासा	६५१				
१२. प्रणवरूप शिवतत्त्वका वर्णन तथा संन्यासांगभूत नान्दीश्राद्ध-विधि	६५५				
१३. संन्यासकी विधि	६६३				
१४. शिवस्वरूप प्रणवका वर्णन	६७१				
१५. तिरोभावादि चक्रों तथा उनके अधिदेवताओं					
वायवीयसंहिता—पूर्वखण्ड					
१. ऋषियोंद्वारा सम्मानित सूतजीके द्वारा कथाका आरम्भ, विद्यास्थानों एवं पुराणोंका परिचय तथा वायुसंहिताका प्रारम्भ	७१९		५. ऋषियोंके पूछनेपर वायुदेवद्वारा पशु, पाश एवं पशुपतिका तात्त्विक विवेचन		७३५
२. ऋषियोंका ब्रह्माजीके पास जाकर उनकी स्तुति करके उनसे परमपुरुषके विषयमें प्रश्न करना और ब्रह्माजीका आनन्दमग्न हो 'रुद्र' कहकर उत्तर देना	७२४		६. महेश्वरकी महत्ताका प्रतिपादन		७४१
३. ब्रह्माजीके द्वारा परमतत्त्वके रूपमें भगवान् शिवकी महत्ताका प्रतिपादन तथा उनकी आज्ञासे सब मुनियोंका नैमिषारण्यमें आना	७२७		७. कालकी महिमाका वर्णन		७४८
४. नैमिषारण्यमें दीर्घसत्रके अन्तमें मुनियोंके पास वायुदेवताका आगमन	७३३		८. कालका परिमाण एवं त्रिदेवोंके आयुमानका वर्णन		७५१
			९. सृष्टिके पालन एवं प्रलयकर्तृत्वका वर्णन		७५४
			१०. ब्रह्माण्डकी स्थिति, स्वरूप आदिका वर्णन		७५६
			११. अवान्तर सर्ग और प्रतिसर्गका वर्णन		७६०
			१२. ब्रह्माजीकी मानसी सृष्टि, ब्रह्माजीकी मूर्च्छा, उनके मुखसे रुद्रदेवका प्राकट्य, सप्राण हुए ब्रह्माजीके द्वारा आठ नामोंसे महेश्वरकी		

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
स्तुति तथा रुद्रकी आज्ञासे ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचना.....		७६३	द्वारा काली त्वचाका त्याग और उससे उत्पन्न कौशिकीके द्वारा शुम्भ-निशुम्भका वध		८२२
१३. कल्पभेदसे त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र)-के एक-दूसरेसे प्रादुर्भाविका वर्णन	७७०	२६. ब्रह्माजीद्वारा दुष्कर्मी बतानेपर भी गौरीदेवीका शरणागत व्याघ्रको त्यागनेसे इनकार करना और माता-पितासे मिलकर मन्दराचलको जाना		८२६	
१४. प्रत्येक कल्पमें ब्रह्मासे रुद्रकी उत्पत्तिका वर्णन.....	७७३	२७. मन्दराचलपर गौरीदेवीका स्वागत, महादेवजीके द्वारा उनके और अपने उत्कृष्ट स्वरूप एवं अविच्छेद्य सम्बन्धका प्रकाशन तथा देवीके साथ आये हुए व्याघ्रको उनका गणाध्यक्ष बनाकर अन्तःपुरके द्वारपर सोमनन्दी नामसे प्रतिष्ठित करना		८२९	
१५. अर्धनारीश्वररूपमें प्रकट शिवकी ब्रह्माजीद्वारा स्तुति	७७५	२८. अग्नि और सोमके स्वरूपका विवेचन तथा जगत्की अग्नीषोमात्मकताका प्रतिपादन ..		८३३	
१६. महादेवजीके शरीरसे देवीका प्राकठ्य और देवीके भ्रूमध्यभागसे शक्तिका प्रादुर्भाव ...	७७९	२९. जगत् 'वाणी और अर्थरूप' है—इसका प्रतिपादन		८३५	
१७. ब्रह्माके आधे शरीरसे शतरूपाकी उत्पत्ति तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंकी उत्पत्तिका वर्णन.....	७८१	३०. ऋषियोंका शिवतत्त्वविषयक प्रश्न		८३८	
१८. दक्षके शिवसे द्वेषका कारण	७८६	३१. शिवजीकी सर्वेश्वरता, सर्वनियामकता तथा मोक्षप्रदताका निरूपण		८४४	
१९. दक्षयज्ञका उपक्रम, दधीचिका दक्षको शाप देना, वीरभद्र और भद्रकालीका प्रादुर्भाव तथा उनका यज्ञध्वंसके लिये प्रस्थान.....	७९१	३२. परम धर्मका प्रतिपादन, शैवागमके अनुसार पाशुपत ज्ञान तथा उसके साधनोंका वर्णन		८५५	
२०. गणोंके साथ वीरभद्रका दक्षकी यज्ञभूमिमें आगमन तथा उनके द्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस	७९७	३३. पाशुपत-व्रतकी विधि और महिमा तथा भस्मधारणकी महत्ता		८६०	
२१. वीरभद्रका दक्षके यज्ञमें आये देवताओंको दण्ड देना तथा दक्षका सिर काटना	८०१	३४. उपमन्युका गोदुग्धके लिये हठ तथा माताकी आज्ञासे शिवोपासनामें संलग्न होना		८६९	
२२. वीरभद्रके पराक्रमका वर्णन	८०५	३५. भगवान् शंकरका इन्द्ररूप धारण करके उपमन्युके भक्तिभावकी परीक्षा लेना, उन्हें क्षीरसागर आदि देकर बहुत-से वर देना और अपना पुत्र मानकर पार्वतीके हाथमें सौंपना, कृतार्थ हुए उपमन्युका अपनी माताके स्थानपर लौटना		८७५	
२३. पराजित देवोंके द्वारा की गयी स्तुतिसे प्रसन्न शिवका यज्ञकी सम्पूर्ति करना तथा देवताओंको सान्त्वना देकर अन्तर्धान होना	८११				
२४. शिवका तपस्याके लिये मन्दराचलपर गमन, मन्दराचलका वर्णन, शुम्भ-निशुम्भ दैत्यकी उत्पत्ति, ब्रह्माकी प्रार्थनासे उनके वधके लिये शिव और शिवाके विचित्र लीला-प्रपञ्चका वर्णन	८१६				
२५. पार्वतीकी तपस्या, व्याघ्रपर उनकी कृपा, ब्रह्माजीका देवीके साथ वार्तालाप, देवीके					

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
वायवीयसंहिता—उत्तरखण्ड					
१.	ऋषियोंके पूछनेपर वायुदेवका श्रीकृष्ण और उपमन्युके मिलनका प्रसंग सुनाना, श्रीकृष्णको उपमन्युसे ज्ञानका और भगवान् शंकरसे पुत्रका लाभ	८८१		चित्तसे भजनकी महिमा.....	९१४
२.	उपमन्युद्वारा श्रीकृष्णको पाशुपत ज्ञानका उपदेश.....	८८३		११. वर्णश्रिम-धर्म तथा नारी-धर्मका वर्णन; शिवके भजन, चिन्तन एवं ज्ञानकी महत्त्वाका प्रतिपादन	९२०
३.	भगवान् शिवकी ब्रह्मा आदि पंचमूर्तियों, ईशानादि ब्रह्ममूर्तियों तथा पृथ्वी एवं शर्व आदि अष्टमूर्तियोंका परिचय और उनकी सर्वव्यापकताका वर्णन	८८८		१२. पंचाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन	९२५
४.	शिव और शिवाकी विभूतियोंका वर्णन ...	८९१		१३. पंचाक्षर-मन्त्रकी महिमा, उसमें समस्त वाढ़मयकी स्थिति, उसकी उपदेशपरम्परा, देवीरूपा पंचाक्षरीविद्याका ध्यान, उसके समस्त और व्यस्त अक्षरोंके ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा अंगन्यास आदिका विचार	९२८
५.	परमेश्वर शिवके यथार्थ स्वरूपका विवेचन तथा उनकी शरणमें जानेसे जीवके कल्याणका कथन	८९८		१४. गुरुसे मन्त्र लेने तथा उसके जप करनेकी विधि, पाँच प्रकारके जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणनाके लिये विभिन्न प्रकारकी मालाओंका महत्त्व तथा अंगुलियोंके उपयोगका वर्णन, जपके लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जपमें वर्जनीय बातें, सदाचारका महत्त्व, आस्तिकताकी प्रशंसा तथा पंचाक्षर-मन्त्रकी विशेषताका वर्णन... ..	९३४
६.	शिवके शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सर्वमय, सर्वव्यापक एवं सर्वातीत स्वरूपका तथा उनकी प्रणवरूपताका प्रतिपादन	९०१		१५. त्रिविध दीक्षाका निरूपण, शक्तिपातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरुका महत्त्व, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा ..	९४१
७.	परमेश्वरकी शक्तिका ऋषियोंद्वारा साक्षात्कार, शिवके प्रसादसे प्राणियोंकी मुक्ति, शिवकी सेवा-भक्ति तथा पाँच प्रकारके शिवधर्मका वर्णन.....	९०४		१६. समय-संस्कार या समयाचारकी दीक्षाकी विधि.....	९४७
८.	शिव-ज्ञान, शिवकी उपासनासे देवताओंको उनका दर्शन, सूर्यदेवमें शिवकी पूजा करके अर्घ्यदानकी विधि तथा व्यासावतारोंका वर्णन.....	९०८		१७. षड्ध्वशोधनका निरूपण	९५४
९.	शिवके अवतार योगाचार्यों तथा उनके शिष्योंकी नामावली	९१२		१८. षड्ध्वशोधनकी विधि	९५८
१०.	भगवान् शिवके प्रति श्रद्धा-भक्तिकी आवश्यकताका प्रतिपादन, शिवधर्मके चार पादोंका वर्णन एवं ज्ञानयोगके साधनों तथा शिवधर्मके अधिकारियोंका निरूपण, शिवपूजनके अनेक प्रकार एवं अनन्य-			१९. साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन	९६३
				२०. योग्य शिष्यके आचार्यपदपर अभिषेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निर्देश	९६६
				२१. शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मका	

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या	अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
वर्णन.....		१६८	३६. शिवलिंग एवं शिवमूर्तिकी प्रतिष्ठाविधिका वर्णन.....		१०५०
२२. शिवशास्त्रोक्त न्यास आदि कर्मोंका वर्णन		१७२	३७. योगके अनेक भेद, उसके आठ और छः अंगोंका विवेचन—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, दशविध प्राणोंको जीतनेकी महिमा, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधिका निरूपण		१०५५
२३. अन्तर्याग अथवा मानसिक पूजाविधिका वर्णन.....		१७६	३८. योगमार्गके विघ्न, सिद्धि-सूचक उपसर्ग तथा पृथ्वीसे लेकर बुद्धितत्त्वपर्यन्त ऐश्वर्यगुणोंका वर्णन, शिव-शिवाके ध्यानकी महिमा		१०६१
२४. शिवपूजनकी विधि		१७९	३९. ध्यान और उसकी महिमा, योगधर्म तथा शिवयोगीका महत्त्व, शिवभक्त या शिवके लिये प्राण देने अथवा शिवक्षेत्रमें मरणसे तत्काल मोक्ष-लाभका कथन		१०६९
२५. शिवपूजाकी विशेष विधि तथा शिव-भक्तिकी महिमा		१८५	४०. वायुदेवका अन्तर्धान होना, ऋषियोंका सरस्वतीमें अवभृथ-स्नान और काशीमें दिव्य तेजका दर्शन करके ब्रह्माजीके पास जाना, ब्रह्माजीका उन्हें सिद्धिप्राप्तिकी सूचना देकर मेरुके कुमारशिखरपर भेजना		१०७४
२६. साङ्घोपाङ्घ-पूजाविधानका वर्णन		१९०	४१. मेरुगिरिके स्कन्द-सरोवरके तटपर मुनियोंका सनत्कुमारजीसे मिलना, भगवान् नन्दीका वहाँ आना और दृष्टिपातमात्रसे पाशछेदन एवं ज्ञानयोगका उपदेश करके चला जाना, शिवपुराणकी महिमा तथा ग्रन्थका उपसंहार		१०७९
२७. शिवपूजनमें अग्निकर्मका वर्णन		१९४	४२. सदाशिवके विभिन्न स्वरूपोंका ध्यान		१०८४
२८. शिवाश्रमसेवियोंके लिये नित्य-नैमित्तिक कर्मकी विधिका वर्णन.....		१००१	४३. दारिद्र्यदहनशिवस्तोत्रम्		१०८७
२९. काम्यकर्मका वर्णन.....		१००३			
३०. आवरणपूजाकी विस्तृत विधि तथा उक्त विधिसे पूजनकी महिमाका वर्णन		१००७			
३१. शिवके पाँच आवरणोंमें स्थित सभी देवताओंकी स्तुति तथा उनसे अभीष्टपूर्ति एवं मंगलकी कामना		१०१५			
३२. ऐहिक फल देनेवाले कर्मों और उनकी विधिका वर्णन, शिव-पूजनकी विधि, शान्तिपुष्टि आदि विविध काम्य कर्मोंमें विभिन्न हवनीय पदार्थोंके उपयोगका विधान.....		१०३०			
३३. पारलौकिक फल देनेवाले कर्म—शिवलिंग-महाब्रतकी विधि और महिमाका वर्णन... १०३८					
३४. मोहवश ब्रह्मा तथा विष्णुके द्वारा लिंगके आदि और अन्तको जाननेके लिये किये गये प्रयत्नका वर्णन..... १०३९					
३५. लिंगमें शिवका प्राकट्य तथा उनके द्वारा ब्रह्मा-विष्णुको दिये गये ज्ञानोपदेशका वर्णन १०४३					

॥ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

(द्वितीय-खण्ड — उत्तरार्थ)

तृतीया शतरुद्रसंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

सूतजीसे शौनकादि मुनियोंका शिवावतारविषयक प्रश्न

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम् ।
गौरीप्रियं कार्तिकविघराजसमुद्धवं शङ्खरमादिदेवम् ॥

शौनक उवाच

व्यासशिष्यं महाभागं सूतं ज्ञानदयानिधे ।
वद शम्भवतारांश्च यैरकार्णीत्सतां शिवम् ॥ १

सूत उवाच

मुने शौनक सद्भक्त्या दत्तचित्तो जितेन्द्रियः ।
अवताराज्ञिवस्याहं वच्चिम ते मुनये शृणु ॥ २

एतत्पृष्ठः पुरा नन्दी शिवमूर्तिस्सतां गतिः ।
सनत्कुमारेण मुने तमुवाच शिवं स्मरन् ॥ ३

नन्दीश्वर उवाच

असङ्ख्याता हि कल्पेषु विभोः सर्वेश्वरस्य वै ।
अवतारास्तथापीह वच्यहं तान्यथामति ॥ ४

एकोनविंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः ।
सद्योजातावतारस्तु प्रथमः परिकीर्तिः ॥ ५

तस्मिस्तत्परमं ब्रह्म ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा ।
उत्पन्नस्तु शिखायुक्तः कुमारः श्वेतलोहितः ॥ ६

मैं परम आनन्दस्वरूप, अनन्त लीलाओंसे युक्त,
सर्वत्र व्यापक, महान्, गौरीप्रिय, कार्तिकेय और
गजाननको उत्पन्न करनेवाले आदिदेव महेश्वर शंकरको
नमस्कार करता हूँ ।

शौनकजी बोले—हे व्यासशिष्य ! हे महाभाग !
हे ज्ञान और दयाके सागर सूतजी ! आप शिवजीके
उन अवतारोंका वर्णन कीजिये, जिनके द्वारा [उन्होंने]
सज्जन व्यक्तियोंका कल्याण किया है ॥ १ ॥

सूतजी बोले—हे मुने ! हे शौनक ! मैं
[शिवजीमें] मन लगाकर और इन्द्रियोंको वशमें
करके भक्तिपूर्वक शिवजीके अवतारोंका वर्णन आप
महर्षिसे कर रहा हूँ, आप सुनिये ॥ २ ॥

हे मुने ! पूर्वकालमें इसी बातको सनत्कुमारने
शिवस्वरूप तथा सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेमें समर्थ
नन्दीश्वरसे पूछा था, तब शिवजीका स्मरण करते हुए
नन्दीश्वरने उनसे कहा था ॥ ३ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] सर्वव्यापक
तथा सर्वेश्वर शंकरके विविध कल्पोंमें यद्यपि असंख्य
अवतार हुए हैं, फिर भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार
यहाँपर उनका वर्णन कर रहा हूँ ॥ ४ ॥

उन्नीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नामवाला जानना
चाहिये, इसमें प्रथम सद्योजात अवतार कहा गया
है ॥ ५ ॥

उस कल्पमें जब ब्रह्माजी परम ब्रह्मके ध्यानमें
अवस्थित थे, उसी समय उनसे शिखासे युक्त श्वेत
और लोहित वर्णवाला एक कुमार उत्पन्न हुआ ॥ ६ ॥

तं दृष्ट्वा पुरुषं ब्रह्मा ब्रह्मस्वरूपिणमीश्वरम् ।
ज्ञात्वा ध्यात्वा स हृदये वकन्दे प्रयताञ्जलिः ॥ ७

सद्योजातं शिवं बुद्ध्वा जहर्ष भुवनेश्वरः ।
मुहुर्मुहुश्च सद्बुद्ध्या परं तं समचिन्तयत् ॥ ८

ततोऽस्य ध्यायतः श्वेताः प्रादुर्भूता यशस्विनः ।
कुमाराः परविज्ञानपरब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ९

सुनन्दो नन्दनश्चैव विश्वनन्दोपनन्दनौ ।
शिष्यास्तस्य महात्मानो यैस्तद्ब्रह्म समावृतम् ॥ १०

सद्योजातश्च वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे ।
सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ ११

ततो विंशतिमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्तिः ।
ब्रह्मा यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत् ॥ १२

ध्यायतः पुत्रकामस्य प्रादुर्भूतो विधेः सुतः ।
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्ताक्षो रक्तभूषणः ॥ १३

स तं दृष्ट्वा महात्मानं कुमारं ध्यानमाश्रितः ।
वामदेवं शिवं ज्ञात्वा प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥ १४

ततस्तस्य सुता ह्यासंश्वत्वारो रक्तवाससः ।
विरजाश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः ॥ १५

वामदेवः स वै शम्भुर्ददौ ज्ञानं च वेधसे ।
सर्गशक्तिमपि प्रीत्या प्रसन्नः परमेश्वरः ॥ १६

एकविंशतिमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ।
ब्रह्मा यत्र महाभागः पीतवासा बभूव ह ॥ १७

ध्यायतः पुत्रकामस्य विधेर्जातः कुमारकः ।
पीतवस्त्रादिकप्राणीढो महातेजा महाभुजः ॥ १८

ब्रह्माजीने उस पुरुषको देखते ही उन्हें ब्रह्मस्वरूप ईश्वर जानकर उनका हृदयमें ध्यान करके हाथ जोड़कर प्रणाम किया ॥ ७ ॥

उनको सद्योजात शिव समझकर वे भुवनेश्वर अत्यन्त हर्षित हुए और बार-बार सद्बुद्धिपूर्वक परमतत्त्वरूप उन पुरुषका चिन्तन करने लगे ॥ ८ ॥

उसके बाद ब्रह्माके पुनः ध्यान करनेपर श्वेतवर्ण, यशस्वी, परम ज्ञानी एवं परब्रह्मस्वरूपवाले अनेक कुमार उत्पन्न हुए। उनके नाम सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द और उपनन्दन थे। ये सभी महात्मा उनके शिष्य हुए, उनके द्वारा यह सम्पूर्ण ब्रह्मलोक समावृत है ॥ ९-१० ॥

उन्हीं सद्योजात नामक परमेश्वर शिवजीने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया एवं सृष्टि उत्पन्न करनेका सामर्थ्य भी प्रदान किया ॥ ११ ॥

इसके बाद बीसवाँ रक्त नामक कल्प कहा गया है, जिसमें महातेजस्वी ब्रह्माजीने रक्तवर्ण धारण किया ॥ १२ ॥

जब पुत्रप्राप्तिकी कामनासे ब्रह्माजी ध्यानमें लीन थे, उसी समय उनसे रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्रोंको धारण किये हुए रक्तनेत्रवाला तथा रक्त आभूषणोंसे अलंकृत एक कुमार प्रादुर्भूत हुआ ॥ १३ ॥

ध्यानमें निमग्न ब्रह्माजीने उन महात्मा कुमारको देखते ही उन्हें वामदेव शिव जानकर हाथ जोड़ करके प्रणाम किया ॥ १४ ॥

तदुपरान्त उनसे लाल वस्त्र धारण किये हुए विरजा, विवाह, विशोक और विश्वभावन नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

उन्हीं वामदेव नामक शिवने प्रसन्न होकर प्रेमपूर्वक ब्रह्माजीको ज्ञान प्रदान किया और सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति भी प्रदान की ॥ १६ ॥

इक्कीसवाँ कल्प पीतवासा—इस नामसे कहा गया है। इस कल्पमें महाभाग्यशाली ब्रह्मा पीतवस्त्र धारण किये हुए थे। [इस कल्पमें] जब ब्रह्माजी पुत्रकी अभिलाषासे ध्यान कर रहे थे, उसी समय उनसे पीताम्बरधारी, महातेजस्वी तथा महाबाहु एक कुमार अवतरित हुआ ॥ १७-१८ ॥

तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ज्ञात्वा तत्पुरुषं शिवम् ।
प्रणाम ततो बुद्ध्या गायत्रीं शाङ्करीं विधिः ॥ १९

जपित्वा तु महादेवीं सर्वलोकनमस्कृताम् ।
प्रसन्नस्तु महादेवो ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥ २०

ततोऽस्य पाश्वर्तो दिव्याः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ।
पीतवस्त्रा हि सकला योगमार्गप्रवर्तकाः ॥ २१

ततस्तस्मिन्नाते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुवः ।
पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु कल्पो नाम्ना शिवस्तु सः ॥ २२

एकार्णवे संव्यतीते दिव्यवर्षसहस्रके ।
स्नष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ २३

ततोऽपश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् ।
कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ २४
धृतकृष्णाम्बरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ।
कृष्णोन मौलिना युक्तं कृष्णस्नानानुलेपनम् ॥ २५

स तं दृष्ट्वा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम् ।
ववन्दे देवदेवेशमद्भुतं कृष्णपिङ्गलम् ॥ २६

अघोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिन्तयत् ।
तुष्टाव वाग्भरिष्टाभिर्भक्तवत्सलमव्ययम् ॥ २७

अथास्य पाश्वर्तः कृष्णाः कृष्णस्नानानुलेपनाः ।
चत्वारस्तु महात्मानः सम्बभूवुः कुमारकाः ॥ २८
कृष्णः कृष्णशिखश्लैव कृष्णास्यः कृष्णकण्ठधृक् ।
इति तेऽव्यक्तनामानः शिवरूपाः सुतेजसः ॥ २९

एवंभूता महात्मानो ब्रह्मणः सृष्टिहेतवे ।
योगं प्रवर्तयामासुर्दोराख्यं महदद्भुतम् ॥ ३०

उस कुमारको देखते ही ध्यानयुक्त ब्रह्माने उन्हें तत्पुरुष शिव जानकर प्रणाम किया और शुद्धबुद्धिसे वे शिवगायत्री (तत्पुरुषाय विद्यहे महादेवाय धीमहि)-का जप करने लगे । सम्पूर्ण लोकोंसे नमस्कृत महादेवी गायत्रीका ध्यानमग्न मनसे जप करते हुए देखकर महादेवजी ब्रह्मापर बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ १९-२० ॥

उसके बाद ब्रह्माजीके पाश्वर्भागसे पीतवस्त्रधारी अनेक दिव्य कुमार उत्पन्न हुए; वे सभी कुमार योगमार्गके प्रवर्तकके रूपमें प्रसिद्ध हुए ॥ २१ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीके पीतवासा नामक कल्पके व्यतीत हो जानेके पश्चात् शिव नामक एक अन्य कल्प प्रारम्भ हुआ ॥ २२ ॥

उस कल्पके हजार दिव्य वर्ष बीतनेपर जब सारा जगत् जलमय था, उस समय ब्रह्माजी प्रजाओंकी सृष्टि करनेके विचारसे [समस्त जगत्को जलमय देखकर] दुखी होकर सोचने लगे ॥ २३ ॥

उसी समय महातेजस्वी ब्रह्माने कृष्णवर्णवाले, महापराक्रमी तथा अपने तेजसे दीप्त एक कुमारको उत्पन्न हुआ देखा, जो काला वस्त्र, काली पगड़ी, काले रंगका यज्ञोपवीत, कृष्णवर्णका मुकुट तथा कृष्णवर्णके सुगन्धित चन्दनका अनुलेप धारण किये हुए था ॥ २४-२५ ॥

ब्रह्माजीने उन महात्मा, घोर पराक्रमी, कृष्णपिंगल वर्णयुक्त, अद्भुत तथा अघोर रूपधारी देवाधिदेव शंकरको देखकर प्रणाम किया । इसके बाद ब्रह्माजी अघोरस्वरूप परब्रह्मका ध्यान करने लगे और उन भक्तवत्सल तथा अविनाशी अघोरकी प्रिय वचनोंसे स्तुति करने लगे ॥ २६-२७ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीके पाश्वर्भागसे कृष्ण सुगन्धानुलेपनसे लिप्त कृष्णवर्णके चार महात्मा कुमार उत्पन्न हुए । कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य, कृष्णकण्ठधृक् — इस प्रकारके अव्यक्त नामवाले वे परमतेजसे सम्पन्न तथा शिवस्वरूप थे ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकारके उन महात्माओंने ब्रह्माजीको सृष्टि करनेके लिये घोर [अघोर] नामक अत्यन्त अद्भुत योगमार्गका उपदेश किया ॥ ३० ॥

अथान्यो ब्रह्मणः कल्पः प्रावर्तत मुनीश्वराः ।
विश्वरूप इति ख्यातो नामतः परमाद्भूतः ॥ ३१

ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतो मनसा शिवम् ।
प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥ ३२
तथाविधः स भगवानीशानः परमेश्वरः ।
शुद्धस्फटिकसङ्काशः सर्वाभरणभूषितः ॥ ३३
तं दृष्ट्वा प्रणनामासौ ब्रह्मेशानमजं विभुम् ।
सर्वगं सर्वदं सर्वं सुरूपं रूपवर्जितम् ॥ ३४

ईशानोऽपि तथादिश्य सन्मार्गं ब्रह्मणे विभुः ।
सशक्तिः कल्पयाञ्चके स बालांश्चतुरः शुभान् ॥ ३५

जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्धमुण्डश्च जङ्गिरे ।
योगेनादिश्य सद्धर्मं कृत्वा योगगतिं गताः ॥ ३६
एवं संक्षेपतः प्रोक्तः सद्यादीनां समुद्भवः ।
सन्तकुमार सर्वज्ञं लोकानां हितकाम्यया ॥ ३७

अथ तेषां महाप्राज्ञं व्यवहारं यथायथम् ।
त्रिलोकहितकारं हि सर्वं ब्रह्माण्डसंस्थितम् ॥ ३८

ईशानः पुरुषोऽघोरो वामसंज्ञस्तथैव च ।
ब्रह्मसंज्ञा महेशस्य मूर्तयः पञ्च विश्रुताः ॥ ३९

ईशानः शिवरूपश्च गरीयान्प्रथमः स्मृतः ।
भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात्क्षेत्रज्ञमधितिष्ठति ॥ ४०

शैवस्तत्पुरुषाख्यश्च स्वरूपो हि द्वितीयकः ।
गुणाश्रयात्मकं भोगं सर्वज्ञमधितिष्ठति ॥ ४१

धर्माय स्वाङ्गसंयुक्तं बुद्धितत्त्वं पिनाकिनः ।
अघोराख्यस्वरूपो यस्तिष्ठत्यन्तस्तृतीयकः ॥ ४२

[श्रीसूतजीने कहा—] हे मुनीश्वरो ! इसके बाद ब्रह्माजीका विश्वरूप इस नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त अद्भुत कल्प प्रारम्भ हुआ ॥ ३१ ॥

उस कल्पमें पुत्रकामनावाले ब्रह्माजीने शिवजीका मनसे ध्यान किया, तब महानादस्वरूपवाली विश्वरूपा सरस्वती उत्पन्न हुई और उसी तरह शुद्ध स्फटिकके समान कान्तिवाले तथा सभी आभूषणोंसे अलंकृत परमेश्वर भगवान् शिव ईशानके रूपमें प्रकट हुए ॥ ३२-३३ ॥

ब्रह्माने अजन्मा, विभु, सर्वगामी, सब कुछ देनेवाले, सर्वस्वरूप, रूपवान् एवं रूपरहित उन ईशानको देखकर प्रणाम किया ॥ ३४ ॥

इसके बाद सर्वव्यापक उन ईशानने भी ब्रह्माको सन्मार्गका उपदेश करके अपनी शक्तिसे युक्त हो चार सुन्दर बालकोंको उत्पन्न किया ॥ ३५ ॥

वे जटी, मुण्डी, शिखण्डी तथा अर्धमुण्ड नामवाले उत्पन्न हुए । वे योगके द्वारा उपदेश देकर सद्धर्म करके योग-गतिको प्राप्त हो गये ॥ ३६ ॥

[नन्दीश्वर बोले—] हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! इस प्रकार मैंने लोकके कल्याणके निमित्त शिवके सद्योजात आदि अवतारोंका संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ३७ ॥

हे महाप्राज्ञ ! तीनों लोकोंके लिये हितकर उनका सम्पूर्ण यथोचित व्यवहार इस ब्रह्माण्डमें फैला हुआ है ॥ ३८ ॥

महेश्वरकी ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा [सद्योजात] नामक पाँच मूर्तियाँ ब्रह्म संज्ञासे [इस जगत्‌में] प्रख्यात हैं ॥ ३९ ॥

उनमें ईशान प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ शिवरूप कहा गया है, जो साक्षात् प्रकृतिका भोग करनेवाले क्षेत्रज्ञको अधिकृत करके स्थित है ॥ ४० ॥

शिवजीका द्वितीय रूप तत्पुरुषसंज्ञक है, जो गुणोंके आश्रयवाले तथा भोगनेयोग्य सर्वज्ञपर अधिकार करके स्थित है ॥ ४१ ॥

शिवजीका जो तीसरा अघोर नामक रूप है, वह धर्मके व्यवहारके लिये अपने अंगोंसे संयुक्त बुद्धितत्त्वका विस्तार करके अन्तःकरणमें अवस्थित है ॥ ४२ ॥

वामदेवाहयो रूपश्चतुर्थः शङ्करस्य हि।
अहङ्करधिष्ठानो बहुकार्यकरः सदा ॥ ४३
ईशानाहस्वरूपो हि शङ्करस्येश्वरः सदा।
श्रोत्रस्य वचसश्चापि विभोव्योम्नस्तथैव च ॥ ४४
त्वक्पाणिस्पर्शवायूनामीश्वरं रूपमैश्वरम्।
पुरुषाख्यं विचारज्ञा मतिमन्तः प्रचक्षते ॥ ४५
वपुषश्च रसस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च।
अधोराख्यमधिष्ठानं रूपं प्राहुर्मनीषिणः ॥ ४६
रशनायाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च।
ईश्वरं वामदेवाख्यं स्वरूपं शांकरं स्मृतम् ॥ ४७
घ्राणस्य चैवोपस्थस्य गंधस्य च भुवस्तथा।
सद्योजाताहृष्यं रूपमीश्वरं शांकरं विदुः ॥ ४८
इमे स्वरूपाः शंभोर्हि वन्दनीयाः प्रयत्नतः।
श्रेयोऽर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥ ४९

यः पठेच्छृणुयाद्वापि सद्यादीनां समुद्दवम्।
स भुक्त्वा सकलान्कामान्प्रयाति परमां गतिम् ॥ ५०

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवस्य पञ्चब्रह्मावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवका पञ्चब्रह्मावतारवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात महेशस्यावतारान्प्रमान्प्रभो।
सर्वकार्यकराँल्लोके सर्वस्य सुखदां मुने ॥ १

तस्य शंभोः परेशस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत्।
तस्मिन्व्याप्य स्थितं विश्वं सूत्रे मणिगणा इव ॥ २

शिवजीका चौथा रूप वामदेवके नामसे विख्यात है, जो समस्त अहंकारका अधिष्ठान होकर अनेक प्रकारके कार्योंको सर्वदा सम्पादित करनेवाला है ॥ ४३ ॥

सर्वव्यापी शिवजीका ईशान नामक रूप श्रोत्रेन्द्रिय, वागिन्द्रिय तथा आकाशका ईश्वर है ॥ ४४ ॥

बुद्धिमान् विचारक शिवजीके तत्पुरुष नामक रूपको त्वचा, पाणि, स्पर्श और वायुका ईश्वर मानते हैं ॥ ४५ ॥

मनीषीगण शिवजीके अघोर नामसे विख्यात रूपको शरीर, रस, रूप एवं अग्निका अधिष्ठान मानते हैं ॥ ४६ ॥

शिवजीका वामदेव नामक रूप जिह्वा, पायु, रस तथा जलका स्वामी माना गया है। शिवजीके सद्योजात नामक रूपको नासिका, उपस्थेन्द्रिय, गन्ध एवं भूमिका अधिष्ठातृदेवता कहा गया है ॥ ४७-४८ ॥

अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको शिवजीके इन रूपोंकी प्रयत्नपूर्वक नित्य वन्दना करनी चाहिये; क्योंकि [ये रूप] सभी प्रकारके कल्याणके एकमात्र कारण हैं ॥ ४९ ॥

जो व्यक्ति सद्योजात आदिकी उत्पत्तिको सुनता अथवा पढ़ता है, वह सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर परमगति प्राप्त कर लेता है ॥ ५० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे प्रभो! हे तात! हे मुने! अब महेश्वरके समस्त प्राणियोंको सुख प्रदान करनेवाले तथा लोकके सम्पूर्ण कार्योंको सम्पादित करनेवाले अन्य श्रेष्ठतम अवतारोंको सुनें ॥ १ ॥

यह सारा संसार पेरेश शिवकी उन आठ मूर्तियोंका स्वरूप ही है, उस मूर्तिसमूहमें व्याप्त होकर विश्व उसी प्रकार स्थित है, जैसे सूत्रमें [पिरोयी हुई] मणियाँ ॥ २ ॥

शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः ।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः ॥ ३ ॥
भूम्यंभोऽग्निमरुद्व्योमक्षेत्रज्ञार्कनिशाकराः ।
अधिष्ठिताश्च शर्वादैष्टरूपैः शिवस्य हि ॥ ४ ॥
धत्ते चराचरं विश्वं रूपं विश्वंभरात्मकम् ।
शङ्करस्य महेशस्य शास्त्रस्यैवेति निश्चयः ॥ ५ ॥
संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम् ।
भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः ॥ ६ ॥
बहिरंतर्जगद्विश्वं बिभर्ति स्पन्दते स्वयम् ।
उग्र इत्युच्यते सद्गी रूपमुग्रस्य सत्प्रभोः ॥ ७ ॥

सर्वावकाशदं सर्वव्यापकं गगनात्मकम् ।
रूपं भीमस्य भीमाख्यं भूतवृन्दस्य भेदकम् ॥ ८ ॥

सर्वात्मनामधिष्ठानं सर्वक्षेत्रनिवासकम् ।
रूपं पशुपतेज्जयं पशुपाशनिकृन्तनम् ॥ ९ ॥

सन्दीपयज्जगत्सर्वं दिवाकरसमाहृयम् ।
ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पति ॥ १० ॥

आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः ।
महादेवस्य तद्वूपं महादेवस्य चाहृयम् ॥ ११ ॥

आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः ।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम् ॥ १२ ॥

शाखाः पुष्टिं वृक्षस्य वृक्षमूलस्य सेचनात् ।
तद्वदस्य वपुर्विश्वं पुष्टते च शिवार्चनात् ॥ १३ ॥

यथेह पुत्रपौत्रादेः प्रीत्या प्रीतो भवेत्पिता ।
तथा विश्वस्य सम्प्रीत्या प्रीतो भवति शङ्करः ॥ १४ ॥

शर्वं, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और
महादेव—ये [शंकरकी] आठ मूर्तियाँ विख्यात हैं ॥ ३ ॥
भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य
एवं चन्द्रमा—ये निश्चय ही शिवके शर्व आदि आठों
रूपोंसे अधिष्ठित हैं । महेश्वर शंकरका विश्वम्भरात्मक
[शर्व] रूप चराचर विश्वको धारण करता है—ऐसा
ही शास्त्रका निश्चय है ॥ ४-५ ॥

समस्त संसारको जीवन देनेवाला जल परमात्मा
शिवका भव नामक रूप कहा जाता है ॥ ६ ॥

जो प्राणियोंके भीतर तथा बाहर गतिशील
रहकर विश्वका भरण-पोषण करता है और स्वयं भी
स्पन्दित होता रहता है, सज्जनोंद्वारा उसे उग्रस्वरूप
परमात्मा शिवका उग्र रूप कहा जाता है ॥ ७ ॥

भीमस्वरूप शिवका सबको अवकाश देनेवाला,
सर्वव्यापक तथा आकाशात्मक भीम नामक रूप कहा
गया है, वह महाभूतोंका भेदन करनेवाला है ॥ ८ ॥

जो सभी आत्माओंका अधिष्ठान, समस्त क्षेत्रोंका
निवासस्थान तथा पशुपाशको काटनेवाला है, उसे
पशुपतिका [पशुपति नामक] रूप जानना चाहिये ॥ ९ ॥

सूर्यनामसे जो विख्यात होकर सम्पूर्ण जगत्को
प्रकाशित करता है और आकाशमें भ्रमण करता है,
वह महेशका ईशान नामक रूप है ॥ १० ॥

जो अमृतके समान किरणोंसे युक्त होकर चन्द्ररूपसे
सारे संसारको आप्यायित करता है, महादेव शिवजीका
वह रूप महादेव नामसे विख्यात है ॥ ११ ॥

उन परमात्मा शिवका आठवाँ रूप आत्मा है,
जो अन्य सभी मूर्तियोंकी अपेक्षा सर्वव्यापक है ।
इसलिये यह समस्त चराचर जगत् शिवका ही स्वरूप
है ॥ १२ ॥

जिस प्रकार वृक्षकी जड़ (मूल)-को सींचनेसे
उसकी शाखाएँ पुष्ट होती हैं, उसी प्रकार शिवका
शरीरभूत संसार शिवार्चनसे पुष्ट होता है ॥ १३ ॥

जिस प्रकार इस लोकमें पुत्र, पौत्रादिके प्रसन्न
होनेपर पिता प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार
संसारके प्रसन्न होनेसे शिवजी प्रसन्न रहते हैं ॥ १४ ॥

क्रियते यस्य कस्यापि देहिनो यदि निग्रहः ।
अष्टमूर्त्तरनिष्टं तत्कृतमेव न संशयः ॥ १५

अष्टमूर्त्यात्मना विश्वमधिष्ठायास्थितं शिवम् ।
भजस्व सर्वभावेन रुद्रं परमकारणम् ॥ १६

इति प्रोक्ताः स्वरूपास्ते विधिपुत्राष्टविश्रुताः ।
सर्वोपकारनिरताः सेव्याः श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ॥ १७

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवाष्टमूर्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवाष्टमूर्तिवर्णन
नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

भगवान् शिवका अर्धनारीश्वर-अवतार एवं सतीका प्रादुर्भाव

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात महाप्राज्ञ विधिकामप्रपूरकम् ।
अर्द्धनारीनराख्यं हि शिवरूपमनुत्तमम् ॥ १

यदा सृष्टाः प्रजाः सर्वाः न व्यवर्द्धन्त वेधसा ।
तदा चिंताकुलोऽभूत्स तेन दुःखेन दुखितः ॥ २

नभोवाणी तदाभूद्वै सृष्टिं मिथुनजां कुरु ।
तच्छ्रुत्वा मैथुनीं सृष्टिं ब्रह्मा कर्तुममन्यत ॥ ३
नारीणां कुलमीशानात्रिगतं न पुरा यतः ।
ततो मैथुनजां सृष्टिं कर्तुं शेके न पद्मभूः ॥ ४

प्रभावेण विना शंभोर्न जायेरन्निमाः प्रजाः ।
एवं संचिन्तयन्नब्रह्मा तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ५

शिवया परया शक्त्या संयुक्तं परमेश्वरम् ।
संचिन्त्य हृदये प्रीत्या तेषे स परमं तपः ॥ ६

तीक्रेण तपसा तस्य संयुक्तस्य स्वयंभुवः ।
अचिरेणैव कालेन तुतोष स शिवो द्रुतम् ॥ ७

यदि किसीके द्वारा जिस किसी भी शरीरधारीको कष्ट दिया जाता है, तो मानो अष्टमूर्ति शिवका ही वह अनिष्ट किया गया है, इसमें संशय नहीं है ॥ १५ ॥

अतः अष्टमूर्तिरूपसे सारे विश्वको व्याप्त करके सर्वतोभावेन स्थित परमकारण रुद्र शिवका सर्वभावसे भजन कीजिये । [हे सनत्कुमार!] हे विधिपुत्र! इस प्रकार मैंने आपसे शिवके प्रसिद्ध आठ स्वरूपोंका वर्णन किया, अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको सभीके उपकारमें निरत इन रूपोंकी उपासना करनी चाहिये ॥ १६-१७ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! अब मैं ब्रह्माजीकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाले शिवके उत्तम अर्धनारीश्वर नामक रूपका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनें। ब्रह्माके द्वारा विरचित समस्त प्रजाओंका जब विस्तार नहीं हुआ, तब उस दुःखसे व्याकुल हो वे चिन्तित रहने लगे ॥ १-२ ॥

तब आकाशवाणी हुई कि आप मैथुनी सृष्टि करें। यह सुनकर ब्रह्माने मैथुनी सृष्टि करनेका निश्चय किया। उस समय शिवजीसे स्त्रियाँ उत्पन्न नहीं हुई थीं, अतः ब्रह्माजी मैथुनी सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं हो सके ॥ ३-४ ॥

शिवके प्रभावके बिना इन प्रजाओंकी वृद्धि नहीं होगी—ऐसा विचार करते हुए ब्रह्माजी तप करनेको उद्यत हुए। पार्वतीरूप परम शक्तिसे संयुक्त परमेश्वर शिवका हृदयमें ध्यानकर वे अत्यन्त प्रीतिसे महान् तपस्या करने लगे। इस प्रकारकी उग्र तपस्यासे संयुक्त हुए उन स्वयम्भू ब्रह्मापर थोड़े समयमें शिवजी शीघ्र ही प्रसन्न हो गये ॥ ५-७ ॥

ततः पूर्णचिदीशस्य मूर्तिमाविश्य कामदाम् ।
अर्थनारीनरो भूत्वा गतो ब्रह्मान्तिकं हरः ॥ ८
तं दृष्ट्वा शङ्करं देवं शक्त्या परमयान्वितम् ।
प्रणम्य दण्डवद्ब्रह्मा स तुष्टाव कृताञ्जलिः ॥ ९
अथ देवो महादेवो वाचा मेघगभीरया ।
संभवाय सुसंग्रीतो विश्वकर्ता महेश्वरः ॥ १०

ईश्वर उवाच

वत्स वत्स महाभाग मम पुत्र पितामह ।
ज्ञातवानस्मि सर्वं तत्तत्त्वतस्ते मनोरथम् ॥ ११
प्रजानामेव वृद्ध्यर्थं तपस्तप्तं त्वयाधुना ।
तपसा तेन तुष्टोऽस्मि ददामि च तवेष्मितम् ॥ १२
इत्युक्त्वा परमोदारं स्वभावमधुरं वचः ।
पृथक्चकार वपुषो भागादेवीं शिवां शिवः ॥ १३

तां दृष्ट्वा परमां शक्तिं पृथग्भूतां शिवागताम् ।
प्रणिपत्य विनीतात्मा प्रार्थयामास तां विधिः ॥ १४

ब्रह्मोवाच

देवदेवेन सृष्टोऽहमादौ त्वत्पतिना शिवे ।
प्रजाः सर्वा नियुक्ताश्च शंभुना परमात्मना ॥ १५

मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया ।
न वृद्धिमुपगच्छन्ति सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥ १६
मिथुनप्रभवामेव कृत्वा सृष्टिमतः परम् ।
संवर्द्धयितुमिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ॥ १७

न निर्गतं पुरा त्वत्तो नारीणां कुलमव्ययम् ।
तेन नारीकुलं स्वष्टुं मम शक्तिर्न विद्यते ॥ १८
सर्वासामेव शक्तीनां त्वत्तः खलु समुद्द्रवः ।
तस्मात्त्वां परमां शक्तिं प्रार्थयाम्यखिलेश्वरीम् ॥ १९

शिवे नारीकुलं स्वष्टुं शक्तिं देहि नमोऽस्तु ते ।
चराचरजगद्वृद्धिहेतोर्मातः शिवप्रिये ॥ २०

उसके पश्चात् भगवान् हर अपनी पूर्ण चैतन्यमयी, ऐश्वर्यशालिनी तथा सर्वकामप्रदायिनी मूर्तिमें प्रविष्ट होकर अर्थनारीनरका रूप धारणकर ब्रह्माके पास गये ॥ ८ ॥

वे ब्रह्माजी परम शक्तिसे सम्पन्न उन परमेश्वरको देखकर दण्डवत् प्रणामकर हाथ जोड़े हुए उनकी स्तुति करने लगे। इसके बाद देवाधिदेव विश्वकर्ता महेश्वरने अत्यन्त प्रसन्न हो मेघके समान गम्भीर वाणीमें सृष्टिके लिये ब्रह्माजीसे कहा— ॥ ९-१० ॥

ईश्वर बोले—वत्स! हे महाभाग! हे मेरे पुत्र पितामह! मैं तुम्हारे समस्त मनोरथको यथार्थ रूपमें जान गया हूँ। प्रजाओंकी वृद्धिके लिये ही तुमने इस समय तपस्या से मैं सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें इच्छित वरदान दे रहा हूँ॥ ११-१२ ॥

परम उदार एवं स्वभावसे मधुर यह वचन कहकर भगवान् शिवने अपने शरीरके [वाम] भागसे देवी पार्वतीको अलग किया ॥ १३ ॥

शिवसे अलग हुई और पृथक् रूपमें स्थित उन परम शक्तिको देखकर विनीत भावसे प्रणाम करके ब्रह्माजी उनसे प्रार्थना करने लगे— ॥ १४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे शिवे! आपके पति देवाधिदेव शिवजीने सृष्टिके आदिमें मुझे उत्पन्न किया और उन्हीं परमात्मा शिवने सभी प्रजाओंको नियुक्त किया है ॥ १५ ॥

हे शिवे! [उनकी आज्ञासे] मैंने अपने मनसे सभी देवताओं आदिकी सृष्टि की, किंतु बार-बार सृष्टि करनेपर भी प्रजाओंकी वृद्धि नहीं हो रही है। इसलिये अब मैथुनसे होनेवाली सृष्टि करके ही मैं अपनी समस्त प्रजाओंकी वृद्धि करना चाहता हूँ॥ १६-१७ ॥

आपसे पहले शिवजीके शरीरसे स्त्रियोंका अविनाशी समुदाय उत्पन्न नहीं हुआ, इसलिये मैं उस नारीकुलकी सृष्टि करनेमें असमर्थ रहा। सभी शक्तियाँ आपसे ही उत्पन्न होती हैं, इसलिये मैं परम शक्तिस्वरूपा आप अखिलेश्वरीसे प्रार्थना कर रहा हूँ॥ १८-१९ ॥

हे शिवे! हे मातः! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये नारीकुलकी रचनाका सामर्थ्य प्रदान कीजिये। हे शिवप्रिये! आपको नमस्कार है ॥ २० ॥

अन्यं त्वत्तः प्रार्थयामि वरं च वरदेश्वरि।
देहि मे तं कृपां कृत्वा जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥ २१

चराचरविवृद्ध्यर्थमीशोनैकेन सर्वगे।
दक्षस्य मम पुत्रस्य पुत्री भव भवाम्बिके ॥ २२

एवं संयाचिता देवी ब्रह्मणा परमेश्वरी।
तथास्त्विति वचः प्रोच्य तच्छक्तिं विधये ददौ ॥ २३

तस्माद्विद्वा शिवा देवी शिवशक्तिर्जगन्मयी।
शक्तिमेकां भूत्वोर्मध्यात्सर्जात्मसमप्रभाम् ॥ २४

तामाह प्रहसन्नेक्ष्य शक्तिं देववरो हरः।
कृपासिन्धुर्महेशानो लीलाकारी भवाम्बिकाम् ॥ २५

शिव उवाच

तपसाराधिता देवि ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
प्रसन्ना भव सुप्रीत्या कुरु तस्याखिलेप्सितम् ॥ २६

तामाज्ञां परमेशस्य शिरसा प्रतिगृह्य सा।
ब्रह्मणो वचनादेवी दक्षस्य दुहिताऽभवत् ॥ २७

दत्त्वैवमतुलां शक्तिं ब्रह्मणे सा शिवा मुने।
विवेश देहं शंभोर्हि शंभुश्चान्तर्दधे प्रभुः ॥ २८

तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन्निया भागः प्रकल्पितः।
आनन्दं प्राप स विधिः सृष्टिर्जाता च मैथुनी ॥ २९

एतत्ते कथितं तात शिवरूपं महोत्तमम्।
अर्द्धनारीनरार्द्धं हि महामंगलदं सताम् ॥ ३०

एतदाख्यानमनयं यः पठेच्छृणुयादपि।
स भुक्त्वा सकलान्धोगान्ध्याति परमां गतिम् ॥ ३१

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवस्यार्द्धनारीश्वरावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवके अर्धनारीश्वर-
अवतारका वर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

हे वरदेश्वरि! मैं आपसे एक अन्य वरकी प्रार्थना करता हूँ, मुझपर कृपाकर उसे प्रदान करें। हे जगन्मातः! आपको नमस्कार है ॥ २१ ॥

हे सर्वगे! हे अम्बिके! इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये आप अपने एक सर्वसमर्थरूपसे मेरे पुत्र दक्षकी कन्याके रूपमें अवतरित हों ॥ २२ ॥

ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार याचना करनेपर ‘ऐसा ही होगा’—यह वचन कहकर देवी परमेश्वरीने ब्रह्माको वह शक्ति प्रदान की। इस प्रकार [यह स्पष्ट ही है कि] भगवान् शिवकी परमशक्ति वे शिवादेवी विश्वात्मिका (स्त्रीपुरुषात्मिका) हैं। उन्होंने अपनी भौंहोंके मध्यसे अपने ही समान कान्तिवाली एक दूसरी शक्तिका सृजन किया ॥ २३-२४ ॥

उस शक्तिको देखकर देवताओंमें श्रेष्ठ, कृपासिन्धु, लीलाकारी महेश्वर हर हँसते हुए उन जगन्मातासे कहने लगे— ॥ २५ ॥

शिवजी बोले—हे देवि! परमेष्ठी ब्रह्माने तपस्याके द्वारा आपकी आराधना की है, अतः आप प्रसन्न हो जाइये और प्रेमपूर्वक उनके सारे मनोरथोंको पूर्ण कीजिये। तब उन देवीने परमेश्वर शिवजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके ब्रह्माजीके प्रार्थनानुसार दक्षपुत्री होना स्वीकार कर लिया ॥ २६-२७ ॥

हे मुने! इस प्रकार ब्रह्माको अपार शक्ति प्रदानकर वे शिवा शिवजीके शरीरमें प्रविष्ट हो गयीं और प्रभु शिव भी अन्तर्धान हो गये ॥ २८ ॥

उसी समयसे इस लोकमें सृष्टि-कर्ममें स्त्रियोंको भाग प्राप्त हुआ। तब वे ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए और मैथुनी सृष्टि होने लगी। हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे शिवजीके अत्यन्त उत्तम तथा सज्जनोंको परम मंगल प्रदान करनेवाले इस अर्धनारी और अर्धनर रूपका वर्णन कर दिया ॥ २९-३० ॥

जो इस निष्पाप कथाको पढ़ता अथवा सुनता है, वह [इस लोकमें] सभी सुखोंको भोगकर परम गति प्राप्त कर लेता है ॥ ३१ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

वाराहकल्पके प्रथमसे नवम द्वापरतक हुए व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ चरितं शांकरं मुदा।
रुद्रेण कथितं प्रीत्या ब्रह्मणे सुखदं सदा॥ १

शिव उवाच

सप्तमे चैव वाराहे कल्पे मन्वन्तराभिधे।
कल्पेश्वरोऽथ भगवान्सर्वलोकप्रकाशनः॥ २
मनोवैवस्वतस्यैव ते प्रपुत्रो भविष्यति।
तदा चतुर्युगाश्वैव तस्मिन्मन्वन्तरे विधे॥ ३
अनुग्रहार्थं लोकानां ब्राह्मणानां हिताय च।
उत्पत्त्यामि विधे ब्रह्मद्वापराख्ययुगान्तिके॥ ४

युगप्रवृत्त्या च तदा तस्मिंश्च प्रथमे युगे।
द्वापरे प्रथमे ब्रह्मन्यदा व्यासः स्वयंप्रभुः॥ ५
तदाहं ब्राह्मणार्थाय कलौ तस्मिन्युगान्तिके।
भविष्यामि शिवायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः॥ ६

हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्वतोत्तमे।
तदा शिष्याः शिखायुक्ता भविष्यन्ति विधे मम॥ ७
श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः।
चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम॥ ८

ततो भक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम्।
जन्ममृत्युजराहीनाः परब्रह्मसमाधयः॥ ९

द्रष्टुं शक्यो नरैर्नहिमृते ध्यानात्पितामह।
दानधर्मादिभिर्वर्त्स साधनैः कर्महेतुभिः॥ १०

द्वितीये द्वापरे व्यासः सत्यो नाम प्रजापतिः।
यदा तदा भविष्यामि सुतारो नामतः कलौ॥ ११

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब शंकरजीके जिस सुखदायक चरित्रको हर्षित होकर रुद्रने ब्रह्माजीसे प्रेमपूर्वक कहा था, [उस चरित्रको सुनें] ॥ १ ॥

शिवजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] वाराहकल्पके सातवें मन्वन्तरमें सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करनेवाले भगवान् कल्पेश्वर, जो तुम्हारे प्रपौत्र हैं, वैवस्वत मनुके पुत्र होंगे ॥ २-३ ॥

हे विधे! हे ब्रह्मन्! उस समय लोकोंके कल्प्याणके निमित्त तथा ब्राह्मणोंके हितके लिये मैं [प्रत्येक] द्वापर युगके अन्तमें अवतार ग्रहण करूँगा ॥ ४ ॥

इस प्रकार क्रमशः युगोंके प्रवृत्त होनेपर प्रथम युगमें (चतुर्युगीके) प्रथम द्वापरयुगमें जब स्वयंप्रभु नामक व्यास होंगे, तब मैं ब्राह्मणोंके हितके लिये उस कलिके अन्तमें पार्वतीसहित श्वेत नामक महामुनिके रूपमें अवतार लूँगा ॥ ५-६ ॥

हे विधे! उस समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ, रमणीय हिमालयके छागल नामक शिखरपर शिखासे युक्त श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व और श्वेतलोहित नामक मेरे चार शिष्य होंगे। वे चारों ध्यानयोगके प्रभावसे मेरे लोकको जायेंगे ॥ ७-८ ॥

तब [वहाँ] मुझ अविनाशीको तत्त्वपूर्वक जानकर वे मेरे भक्त होंगे और जन्म-मृत्यु-जरासे रहित तथा परम ब्रह्ममें समाधि लगानेवाले होंगे ॥ ९ ॥

हे पितामह! हे वत्स! ध्यानके बिना मनुष्य मुझे दान-धर्मादि कर्मके हेतुभूत साधनोंसे देखनेमें असमर्थ हैं ॥ १० ॥

दूसरे द्वापरमें जब सत्य नामक प्रजापति व्यास होंगे, तब मैं कलियुगमें सुतार नामसे अवतार ग्रहण करूँगा ॥ ११ ॥

तत्रापि मे भविष्यन्ति शिष्या वेदविदो द्विजाः ।
 दुन्दुभिः शतरूपश्च हृषीकः केतुमांस्तथा ॥ १२
 चत्वारो ध्यानयोगात्ते गमिष्यन्ति पुरं मम ।
 ततो मुक्ता भविष्यन्ति ज्ञात्वा मां तत्त्वतोऽव्ययम् ॥ १३
 तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ।
 तदाप्यहं भविष्यामि दमनस्तु युगान्तिके ॥ १४
 तत्रापि च भविष्यन्ति चत्वारो मम पुत्रकाः ।
 विशोकश्च विशेषश्च विपापः पापनाशनः ॥ १५
 शिष्यैः सहायं व्यासस्य करिष्ये चतुरानन ।
 निवृत्तिमार्गं सुदृढं वर्तयिष्ये कलाविह ॥ १६
 चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिरा स्मृतः ।
 तदाप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः ॥ १७
 तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ।
 भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानि ब्रुवे विधे ॥ १८
 सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः ।
 शिष्यैः सहायं व्यासस्य करिष्येऽहं तदा विधे ॥ १९
 पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता स्मृतः ।
 तदा योगी भविष्यामि कंको नाम महातपाः ॥ २०
 तत्रापि मम ते पुत्राश्चत्वारो योगसाधकाः ।
 भविष्यन्ति महात्मानस्तन्नामानि शृणुष्व मे ॥ २१
 सनकः सनातनश्चैव प्रभुर्यश्च सनन्दनः ।
 विभुः सनत्कुमारश्च निर्मलो निरहंकृतिः ॥ २२
 तत्रापि कंकनामाहं साहाय्यं सवितुर्विधे ।
 व्यासस्य हि करिष्यामि निवृत्तिपथवर्द्धकः ॥ २३
 परिवर्त्ते पुनः षष्ठे द्वापरे लोककारकः ।
 कर्ता वेदविभागस्य मृत्युव्यासो भविष्यति ॥ २४
 तदाऽप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः ।
 व्यासस्य सुसहायार्थं निवृत्तिपथवर्द्धनः ॥ २५
 तत्रापि शिष्याश्चत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ।
 सुधामा विरजाश्चैव संजयो विजयस्तथा ॥ २६

उस युगमें भी दुन्दुभि, शतरूप, हृषीक तथा केतुमान् नामक वेदज्ञ ब्राह्मण मेरे शिष्य होंगे ॥ १२ ॥

वे चारों ध्यानयोगके प्रभावसे मेरे लोकको प्राप्त करेंगे और मुझ अव्ययको यथार्थरूपसे जानकर मुक्त हो जायेंगे ॥ १३ ॥

तीसरे द्वापर युगके अन्तमें जब भार्गव [नामक] व्यास होंगे, तब मैं दमन नामसे अवतार ग्रहण करूँगा ॥ १४ ॥

उस समय भी विशोक, विशेष, विपाप और पापनाशन नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे ॥ १५ ॥

हे चतुरानन ! उस कलियुगमें मैं अपने शिष्योंके द्वारा व्यासकी सहायता करूँगा तथा निवृत्तिमार्गको दृढ़ करूँगा ॥ १६ ॥

चौथे द्वापरमें जब अंगिरा व्यासरूपमें प्रसिद्ध होंगे, तब मैं सुहोत्र नामसे अवतार ग्रहण करूँगा । उस समय भी महात्मा योगसाधक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे । हे ब्रह्मन् ! मैं उनके नाम बता रहा हूँ । सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम । हे विधे ! उस समय मैं अपने शिष्योंके द्वारा व्यासकी सहायता करूँगा ॥ १७—१९ ॥

पाँचवें द्वापरमें सविता नामक व्यास कहे गये हैं, उस समय मैं महातपस्वी कंक नामक योगीके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा । उस समय भी मेरे चार योगसाधक तथा महात्मा पुत्र (शिष्य) होंगे, उनके नाम मुझसे सुनिये—सनक, सनातन, प्रभु सनन्दन और सर्वव्यापी निर्मल अहंकाररहित सनत्कुमार । हे ब्रह्मन् ! उस समय भी कंक नामक मैं सविता व्यासकी सहायता करूँगा और निवृत्तिमार्गका संवर्धन करूँगा ॥ २०—२३ ॥

इसके बाद छठे द्वापरके आनेपर लोककी रचना करनेवाले तथा वेदोंका विभाग करनेवाले मृत्यु नामक व्यास होंगे । उस समय भी मैं लोकाक्षि नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और व्यासकी सहायताके लिये निवृत्तिमार्गका वर्धन करूँगा । उस समय भी सुधामा, विरजा, संजय एवं विजय नामक मेरे चार दृढ़व्रती शिष्य होंगे ॥ २४—२६ ॥

सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः ।
तदाप्यहं भविष्यामि जैगीषव्यो विभुर्विधे ॥ २७
योगं संद्रढयिष्यामि महायोगविचक्षणः ।
काश्यां गुहान्तरे संस्थो दिव्यदेशे कुशास्तरिः ॥ २८
साहाय्यं च करिष्यामि व्यासस्य हि शतक्रतोः ।
उद्धरिष्यामि भक्तांश्च संसारभयतो विधे ॥ २९
तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता युगे ।
सारस्वतश्च योगीशो मेघवाहः सुवाहनः ॥ ३०

अष्टमे परिवर्त्ते हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
कर्ता वेदविभागस्य वेदव्यासो भविष्यति ॥ ३१
तत्राप्यहं भविष्यामि नामतो दधिवाहनः ।
व्यासस्य हि करिष्यामि साहाय्यं योगविज्ञम् ॥ ३२
कपिलश्चासुरिः पञ्चशिखः शाल्वलपूर्वकः ।
चत्वारो योगिनः पुत्रा भविष्यन्ति समा मम ॥ ३३

नवमे परिवर्त्ते तु तस्मिन्नेव युगे विधे ।
भविष्यति मुनिश्रेष्ठो व्यासः सारस्वताद्वयः ॥ ३४
व्यासस्य ध्यायतस्तस्य निवृत्तिपथवृद्धये ।
तदाप्यहं भविष्यामि ऋषभो नामतः स्मृतः ॥ ३५
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवो गिरिशस्तथा ।
चत्वारस्त्र शिष्या मे भविष्यन्ति सुयोगिनः ॥ ३६
तैः साकं द्रढयिष्यामि योगमार्गं प्रजापते ।
करिष्यामि सहायं वै वेदव्यासस्य सन्मुने ॥ ३७

तेन रूपेण भक्तानां बहूनां दुःखिनां विधे ।
उद्धारं भवतोऽहं वै करिष्यामि दयाकरः ॥ ३८
सोऽवतारो विधे मे हि ऋषभाख्यः सुयोगकृत् ।
सारस्वतव्यासमनःकर्ता नानोतिकारकः ॥ ३९

अवतारेण मे येन भद्रायुर्नृपबालकः ।
जीवितो हि मृतः क्षेडदोषतो जनकोऽन्तिः ॥ ४०

प्राप्तेऽथ षोडशे वर्षे तस्य राजशिशोः पुनः ।
यथौ तद्वेशम् सहसा ऋषभः स मदात्मकः ॥ ४१

हे विधे ! सातवें द्वापरके आनेपर जब शतक्रतु [नामक] व्यास होंगे, उस समय भी मैं विभु जैगीषव्य नामसे अवतारित होऊँगा और महायोगविचक्षण होकर काशीकी गुफामें दिव्य स्थानमें कुशाके आसनपर बैठकर योगमार्गको दृढ़ करूँगा तथा शतक्रतु व्यासकी सहायता करूँगा एवं हे विधे ! संसारके भयसे भक्तोंका उद्धार करूँगा । उस युगमें भी सारस्वत, योगीश, मेघवाह और सुवाहन नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे ॥ २७—३० ॥

आठवें द्वापरयुगके आनेपर वेदोंका विभाग करनेवाले मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ वेदव्यास होंगे । हे योग जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! उस समय मैं दधिवाहन नामसे अवतार ग्रहण करूँगा और व्यासकी सहायता करूँगा । उस समय कपिल, आसुरि, पंचशिख और शाल्वल नामक मेरे चार पुत्र (शिष्य) होंगे, जो मेरे ही समान योगी होंगे ॥ ३१—३३ ॥

हे विधे ! नौवें द्वापरयुगके आनेपर उसमें सारस्वत नामक मुनिश्रेष्ठ व्यास होंगे । उस समय वे व्यासजी निवृत्तिमार्गको बढ़ानेका विचार करेंगे, तब मैं ऋषभ नामसे विष्यात होकर अवतार लूँगा । उस समय पराशर, गर्ग, भार्गव एवं गिरिश नामक मेरे परम योगी शिष्य होंगे । हे प्रजापते ! मैं उनके साथ योगमार्गको दृढ़ करूँगा और हे सन्मुने ! मैं वेदव्यासकी सहायता करूँगा ॥ ३४—३७ ॥

उस समय हे विधे ! दयालु मैं अपने उस रूपसे बहुत-से दुःखित भक्तोंका और स्वयं आपका भी उद्धार करूँगा । हे विधे ! मेरा वह ऋषभ नामक अवतार योगमार्गका प्रवर्तक, सारस्वत व्यासके मनको सन्तुष्ट करनेवाला तथा अनेक प्रकारकी लीला करनेवाला होगा ॥ ३८-३९ ॥

मेरे उस अवतारने भद्रायु नामक राजकुमारको, जो विषके दोषसे मर गया था एवं जिसके पिताने त्याग दिया था, पुनः जीवित कर दिया था ॥ ४० ॥

उस राजकुमारके सोलह वर्षका होनेपर मेरे अंशसे उत्पन्न ऋषभ पुनः सहसा उसके घर गये ॥ ४१ ॥

पूजितस्तेन स मुनिः सद्गृपश्च कृपानिधिः ।
उपादिदेश तद्वर्मान् राजयोगान्प्रजापते ॥ ४२

ततः स कवचं दिव्यं शंखं खड्गं च भास्वरम् ।
ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा सर्वशत्रुविनाशनम् ॥ ४३

तदङ्गं भस्मनामृश्य कृपया दीनवत्सलः ।
स द्वादशसहस्रस्य गजानां च बलं ददौ ॥ ४४

इति भद्रायुषं सम्यग्नुश्वास्य समातृकम् ।
ययौ स्वैरगतिस्ताभ्यां पूजितस्त्वृष्टभः प्रभुः ॥ ४५

भद्रायुरपि राजर्षिर्जित्वा रिपुगणान्विधे ।
राज्यं चकार धर्मेण विवाह्य कीर्तिमालिनीम् ॥ ४६

इत्थंप्रभाव ऋषभोऽवतारः शङ्करस्य मे ।
सतां गतिर्दीनबन्धुर्नवमः कथितस्तव ॥ ४७

ऋषभस्य चरित्रं हि परमं पावनं महत् ।
स्वर्गं यशस्यमायुष्यं श्रोतव्यं च प्रयत्नः ॥ ४८

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामृषभचरित्रवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें ऋषभचरित्रवर्णन
नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

वाराहकल्पके दसवेंसे अद्वाईसवें द्वापरतक होनेवाले व्यासों एवं शिवावतारोंका वर्णन
शिव उवाच

दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नामतो मुनिः ।
हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुंगे नगोत्तमे ॥ १

तत्रापि मम पुत्राश्च भृगवाद्याः श्रुतिसंमिताः ।
बलबन्धुर्नरामित्रः केतुशृंगस्तपोधनः ॥ २

हे प्रजापते ! उस राजकुमारने कृपानिधि तथा अति सुन्दर उन ऋषभजीका [आदरपूर्वक] पूजन किया और ऋषभजीने उसे उस समय राजयोगसे युक्त धर्मोपदेश दिया । तदनन्तर उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर दिव्य कवच, शंख तथा प्रकाशमान खड्ग प्रदान किया, जो शत्रुओंके विनाशमें समर्थ था ॥ ४२-४३ ॥

तदनन्तर दीनवत्सल उन [महात्मा] ऋषभजीने उसके अंगोंमें भस्म लगाकर कृपापूर्वक बारह हजार हाथियोंका बल भी उसे प्रदान किया ॥ ४४ ॥

इस प्रकार मातासहित भद्रायुको भलीभाँति आश्वस्त करके तथा उन दोनोंसे पूजित होकर स्वेच्छागामी प्रभु ऋषभ चले गये ॥ ४५ ॥

हे विधे ! राजर्षि भद्रायु भी अपने शत्रुओंको जीतकर कीर्तिमालिनीसे विवाहकर धर्मानुसार राज्य करने लगे ॥ ४६ ॥

मैंने इस प्रकारके प्रभाववाले, सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले तथा दीन-दुःखियोंके बन्धुरूप मुझ शंकरके नौवें ऋषभ-अवतारका वर्णन आपसे किया ॥ ४७ ॥

ऋषभका चरित्र परम पवित्र, महान् स्वर्ग देनेवाला यश तथा कीर्ति देनेवाला और आयुको बढ़ानेवाला है, इसे यत्पूर्वक सुनना चाहिये ॥ ४८ ॥

शिवजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] दसवें द्वापरयुगमें जब त्रिधामा नामक मुनि व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालय पर्वतके मनोहर भृगुतुंग नामक ऊँचे शिखरपर अवतार ग्रहण करूँगा । उस समय भी मेरे श्रुतिसम्मित तथा तपस्वी भृगु, बलबन्धु, नरामित्र तथा केतुशृंग नामक पुत्र होंगे ॥ १-२ ॥

एकादशे द्वापरे तु व्यासश्च त्रिवृतो यदा ।
गंगाद्वारे कलौ नामा तपोऽहं भविता तदा ॥ ३
लम्बोदरश्च लम्बाक्षः केशलम्बः प्रलम्बकः ।
तत्रापि पुत्राशत्वारो भविष्यन्ति दृढव्रताः ॥ ४
द्वादशे परिवर्त्ते तु शततेजाश्च वेदकृत् ।
तत्राप्यहं भविष्यामि द्वापरान्ते कलाविह ॥ ५
हेमकंचुकमासाद्य नामा हृत्रिः परिप्लुतः ।
व्यासस्यैव सहायतार्थं निवृत्तिपथरोपणः ॥ ६

सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः शर्वः सुयोगिनः ।
तत्रेति पुत्राशत्वारो भविष्यन्ति महामुने ॥ ७
त्रयोदशे युगे तस्मिन्थर्मो नारायणः सदा ।
व्यासस्तदाहं भविता बलिनामि महामुनिः ॥ ८
वालखिल्याश्रमे गंधमादने पर्वतोत्तमे ।
सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजाः शुभाः ॥ ९

यदा व्यासस्तु रक्षाख्यः पर्याये तु चतुर्दशे ।
वंश आङ्गिरसे तत्र भविताहं च गौतमः ॥ १०
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तदा ।
अत्रिश्च वशदश्चैव श्रवणोऽथ श्रविष्टकः ॥ ११

व्यासः पञ्चदशे त्रव्यारुणिवै द्वापरे यदा ।
तदाऽहं भविता वेदशिरा वेदशिरस्तथा ॥ १२
महावीर्यं तदस्त्रं च वेदशीर्षश्च पर्वतः ।
हिमवत्पृष्ठमासाद्य सरस्वत्यास्तथोत्तरे ॥ १३

तत्रापि मम चत्वारो भविष्यन्ति सुता दृढाः ।
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥ १४
व्यासो युगे षोडशे तु यदा देवो भविष्यति ।
तदा योगप्रदानाय गोकर्णो भविता ह्यहम् ॥ १५

तत्रैव च सुपुण्यं च गोकर्णं नाम तद्वनम् ।
तत्रापि योगिनः पुत्रा भविष्यन्त्यम्बुसंमिताः ॥ १६

ग्यारहवें द्वापरयुगमें जब त्रिवृत नामक व्यास होंगे, उस समय मैं कलियुगमें गंगाद्वारपर तप नामसे अवतरित होऊँगा। उस समय भी लम्बोदर, लम्बाक्ष, केशलम्ब एवं प्रलम्बक नामक चार दृढव्रती मेरे शिष्य होंगे ॥ ३-४ ॥

बारहवें द्वापरयुगके आनेपर वेदोंके विभाग करनेवाले शततेजा नामक व्यास होंगे, तब मैं द्वापरके अन्त होनेपर कलियुगमें यहाँ पृथिवीपर अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय हेमकंचुक नामक स्थानपर आविर्भूत हुआ। मैं अत्रिके नामसे प्रसिद्ध होकर व्यासजीके सहायतार्थ निवृत्तिमार्गको दृढ़ करूँगा ॥ ५-६ ॥

हे महामुने! उस समय सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य एवं शर्व नामक मेरे परम योगी चार पुत्र होंगे ॥ ७ ॥

तेरहवें द्वापरयुगमें धर्मस्वरूप नारायण नामक व्यास होंगे, उस समय मैं वालखिल्यके आश्रममें उत्तम गन्धमादन पर्वतपर बलि नामक महामुनिके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँपर सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा नामक मेरे चार श्रेष्ठ पुत्र होंगे ॥ ८-९ ॥

चौदहवें द्वापरयुगके आनेपर जब रक्ष नामक व्यास होंगे, तब मैं आंगिरस वंशमें गौतम नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। उस समय भी कलियुगमें अत्रि, वशद, श्रवण और श्रविष्टक नामक मेरे चार पुत्र होंगे ॥ १०-११ ॥

पन्द्रहवें द्वापरयुगमें जब त्रय्यारुणि नामक व्यास होंगे, उस समय मैं वेदशिरा नामसे अवतरित होऊँगा। वेदशिरा नामक महावीर्यवान् मेरा अस्त्र होगा और सरस्वतीके उत्तर तथा हिमालयके पृष्ठभागमें मैं वेदशीर्ष पर्वतपर निवास करूँगा। उस समय भी कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्र नामक मेरे चार शक्तिशाली पुत्र होंगे ॥ १२-१४ ॥

सोलहवें द्वापरयुगमें जब देव नामक व्यास होंगे, उस समय मैं योगमार्गका उपदेश देनेके लिये गोकर्ण नामसे उत्पन्न होऊँगा। वहाँपर परम पुण्यप्रद गोकर्ण नामक वन है। वहाँपर भी जलके समान निर्मल अन्तःकरणवाले काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति नामक मेरे चार योगपरायण पुत्र होंगे और वे पुत्र भी योगमार्गसे शिवपदको प्राप्त करेंगे ॥ १५-१६ ॥

काश्यपोऽप्युशनाशैव व्यवनोऽथ बृहस्पतिः ।
 तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति शिवालयम् ॥ १७
 परिवर्त्ते सप्तदशे व्यासो देवकृतंजयः ।
 गुहावासीति नाम्नाहं हिमवच्छिखरे शुभे ॥ १८
 महालये महोत्तुंगे शिवक्षेत्रं हिमालयम् ।
 उतथ्यो वामदेवश्च महायोगो महाबलः ॥ १९
 परिवर्त्तेऽष्टादशे तु यदा व्यास ऋतंजयः ।
 शिखण्डीनामतोऽहं तद्विमवच्छिखरे शुभे ॥ २०
 सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये शिखण्डी नाम पर्वतः ।
 शिखण्डिनो वनं वापि वत्र सिद्धनिषेवितम् ॥ २१
 वाचःश्रवा रुचीकश्च श्यावास्यश्च यतीश्वरः ।
 एते पुत्रा भविष्यन्ति तत्रापि च तपोधनाः ॥ २२
 एकोनविंशे व्यासस्तु भरद्वाजो महामुनिः ।
 तदाप्यहं भविष्यामि जटी माली च नामतः ॥ २३
 हिमवच्छिखरे तत्र पुत्रा मेऽन्बुधिसंहिताः ।
 हिरण्यनामा कौशल्यो लोकाक्षी प्रधिमिस्तथा ॥ २४
 परिवर्त्ते विंशतिमे भविता व्यास गौतमः ।
 तत्राद्वृहासनामाहमद्वृहासप्रिया नराः ॥ २५
 तत्रैव हिमवत्पृष्ठे अद्वृहासो महागिरिः ।
 देवमानुषयक्षेन्द्रसिद्धचारणसेवितः ॥ २६
 तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुयोगिनः ।
 सुमन्तुर्बर्बरिर्विद्वान् कबन्धः कुशिकन्धरः ॥ २७
 एकविंशे युगे तस्मिन् व्यासो वाचःश्रवा यदा ।
 तदाहं दारुको नाम तस्माद्वारुवनं शुभम् ॥ २८
 तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुयोगिनः ।
 प्लक्षो दार्भायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा ॥ २९
 द्वाविंशे परिवर्त्ते तु व्यासः शुष्मायणो यदा ।
 तदाप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ॥ ३०
 नाम्ना वै लांगली भीमो यत्र देवाः सवासवाः ।
 द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्भवं चैव हलायुधम् ॥ ३१
 तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्मिकाः ।
 भल्लवी मधुपिंगश्च श्वेतकेतुस्तथैव च ॥ ३२

सत्रहवें द्वापरयुगके आगमनपर देवकृतंजय नामक व्यास होंगे, उस समय मैं हिमालयके उत्तम तथा ऊँचे शिखरपर, हिमसे व्याप्त जो महालय नामका शिवक्षेत्र है, वहाँ गुहावासी नामसे अवतार धारण करूँगा और वहाँ भी उतथ्य, वामदेव, महायोग एवं महाबल नामक मेरे चार पुत्र होंगे ॥ १७—१९ ॥

अठारहवें द्वापरयुगके आनेपर जब ऋतंजय नामक व्यास होंगे, तब मैं उस हिमालयके मनोहर शिखरपर शिखण्डी नामसे प्रकट होऊँगा। उस महापुण्यप्रद सिद्धक्षेत्रमें शिखण्डी नामक पर्वत है और उसी नामवाला वन भी है, जहाँ सिद्ध निवास करते हैं, वहाँ भी वाचःश्रवा, रुचीक, श्यावास्य एवं यतीश्वर—ये मेरे चार महातपस्वी पुत्र होंगे ॥ २०—२२ ॥

उन्नीसवें द्वापरयुगमें जब भरद्वाज मुनि व्यास होंगे, तब हिमालयके शिखरपर जटाएँ धारण किया हुआ मैं माली नामसे अवतार ग्रहण करूँगा। वहाँ समुद्रके समान गम्भीर हिरण्यनामा, कौशल्य, लोकाक्षी तथा प्रधिमि नामक मेरे चार पुत्र होंगे ॥ २३-२४ ॥

बीसवें द्वापरमें गौतम नामक व्यास होंगे, तब मैं हिमालयपर्वतपर अद्वृहास नामसे अवतीर्ण होऊँगा। वहाँ हिमालयके पृष्ठभागपर अद्वृहास नामक महापर्वत है, जहाँ अद्वृहासप्रिय मनुष्य निवास करते हैं और जो देव, मनुष्य, यक्षराज, सिद्ध और चारणोंसे सेवित है। वहाँ भी सुमन्तु, विद्वान् बर्बरि, कबन्ध तथा कुशिकन्धर नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे ॥ २५—२७ ॥

इक्कीसवें द्वापरमें जब वाचःश्रवा नामक व्यास होंगे, तब मैं दारुक नामसे अवतरित होऊँगा। इसलिये उस उत्तम वनका नाम भी दारुवन होगा। वहाँपर भी प्लक्ष, दार्भायणी, केतुमान् और गौतम नामक मेरे चार महायोगी पुत्र होंगे ॥ २८-२९ ॥

बाईसवें द्वापरयुगके आनेपर जब शुष्मायण नामक व्यास होंगे, तब मैं लांगली भीम नामक महामुनिके रूपमें वाराणसीमें अवतरित होऊँगा, जहाँ कलियुगमें इन्द्रसंहित समस्त देवगण मुझ्ञ हलायुध शिवका दर्शन करेंगे। वहाँ भी भल्लवी, मधु, पिंग तथा श्वेतकेतु नामक मेरे चार परम धार्मिक पुत्र होंगे ॥ ३०—३२ ॥

परिवर्त्ते त्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः ।
श्वेतो नाम तदाऽहं वै गिरो कालंजरे शुभे ॥ ३३
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः ।
उशिको बृहदश्वश्च देवलः कविरेव च ॥ ३४
परिवर्त्ते चतुर्विंशे व्यासो यक्षो यदा विभुः ।
शूली नाम महायोगी तद्युगे नैमिषे तदा ॥ ३५
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ।
शालिहोत्रोऽग्निवेशश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ॥ ३६

पञ्चविंशे यदा व्यासः शक्तिर्नामा भविष्यति ।
तदाप्यहं महायोगी दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः ॥ ३७
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ।
छगलः कुण्डकर्णश्च कुम्भाण्डश्च प्रवाहकः ॥ ३८

व्यासः पराशरो यर्हि षड्विंशे भविताप्यहम् ।
पुरं भद्रवटं प्राप्य सहिष्णुनाम नामतः ॥ ३९
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ।
उलूको विद्युतश्चैव शम्बूको ह्याश्वलायनः ॥ ४०

सप्तविंशे यदा व्यासो जातूकण्यो भविष्यति ।
प्रभासतीर्थमाश्रित्य सोमशर्मा तदाप्यहम् ॥ ४१
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ।
अक्षपादः कुमारश्चोलूको वत्सस्तथैव च ॥ ४२
अष्टाविंशे द्वापरे तु पराशरसुतो हरिः ।
यदा भविष्यति व्यासो नामा द्वैपायनः प्रभुः ॥ ४३
तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसन्तमः ।
वसुदेवसुतः श्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ॥ ४४
तदाप्यहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया ।
लोकविस्मापनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः ॥ ४५
श्मशाने मृतमुत्सृज्य दृष्ट्वा कायमनामयम् ।
ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया ॥ ४६
दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्धं च विष्णुना ।
भविष्यामि तदा ब्रह्मन् लंकुली नाम नामतः ॥ ४७
कायावतार इत्येवं सिद्धक्षेत्रं परं तदा ।
भविष्यति सुविष्यातं यावद् भूमिर्धरिष्यति ॥ ४८

तेईसवें द्वापरयुगके आनेपर जब मुनि तृणबिन्दु व्यास होंगे, तब मैं उत्तम कालंजरपर्वतपर श्वेत नामसे अवतार लूँगा । उस समय उशिक, बृहदश्व, देवल एवं कवि नामक मेरे चार तपस्वी पुत्र होंगे ॥ ३३-३४ ॥

चौबीसवें द्वापरयुगके प्राप्त होनेपर जब यक्ष नामक व्यास होंगे, उस समय मैं नैमिषक्षेत्रमें शूली नामक महायोगीके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा । वहाँपर भी शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व एवं शरद्वसु नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ३५-३६ ॥

पच्चीसवें द्वापरयुगमें जब शक्ति नामक व्यास होंगे, तब मैं दण्डधारी महायोगी मुण्डीश्वर प्रभुके रूपमें अवतार ग्रहण करूँगा । उस समय भी छगल, कुण्डकर्ण, कुम्भाण्ड एवं प्रवाहक नामक चार तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ३७-३८ ॥

छब्बीसवें द्वापरयुगमें जब पराशर नामक व्यास होंगे, उस समय मैं भद्रवटपुरमें आकर सहिष्णु नामसे अवतरित होऊँगा । वहाँपर भी उलूक, विद्युत, शम्बूक और आश्वलायन नामवाले मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ३९-४० ॥

सत्ताईसवें द्वापरयुगमें जब जातूकर्ण व्यास होंगे, उस समय मैं प्रभासतीर्थमें आकर सोमशर्मा नामसे प्रकट होऊँगा । वहाँपर भी अक्षपाद, कुमार, उलूक एवं वत्स नामक मेरे चार तपस्वी शिष्य होंगे ॥ ४१-४२ ॥

अट्टाईसवें द्वापरयुगमें जब महाविष्णु पराशरके पुत्ररूपमें जन्म लेकर द्वैपायन नामक व्यास होंगे, तब छठे अंशसे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भी वासुदेवके नामसे प्रसिद्ध और वसुदेवके पुत्ररूपमें अवतरित होंगे । उस समय मैं भी योगमायासे संसारको विस्मित करनेके लिये योगात्मा नामक ब्रह्मचारीका रूप धारण करूँगा और शरीरको अनामय समझकर इसे मृतकी भाँति श्मशानमें छोड़कर ब्राह्मणोंके हितके लिये योगमायासे आप ब्रह्मा एवं विष्णुके साथ दिव्य तथा पवित्र मेरुगुहामें प्रवेश करूँगा । हे ब्रह्मन् ! उस समय मैं लंकुली नामसे अवतार ग्रहण करूँगा । मेरे उत्पन्न होनेसे यह कायावतार तीर्थ सिद्धक्षेत्रके नामसे उस समयतक विख्यात रहेगा,

तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपस्विनः ।
कुशिकश्चैव गर्गश्च मित्रः कौरुष्य एव च ॥ ४९
योगिनो ब्राह्मणा वेदपारगा ऊर्ध्वरेतसः ।
प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति शिवं पुरम् ॥ ५०

वैवस्वतेऽन्तरे सम्यक् प्रोक्ता हि परमात्मना ।
योगेश्वरावताराश्च सर्वावर्तेषु सुव्रताः ॥ ५१

व्यासाश्चैवाष्टविंशत्का द्वापरे द्वापरे विभो ।
योगेश्वरावताराश्च प्रारम्भे च कलौ कलौ ॥ ५२

योगेश्वरावताराणां योगमार्गप्रवर्द्धकाः ।
महाशैवाश्च चत्वारः शिष्याः प्रत्येकमव्ययाः ॥ ५३

एते पाशुपताः शिष्या भस्मोद्भूलितविग्रहाः ।
रुद्राक्षमालाभरणास्त्रिपुण्ड्रांकितमस्तकाः ॥ ५४
शिष्या धर्मरताः सर्वे वेदवेदांगपारगाः ।
लिंगार्चनरता नित्यं बाह्याभ्यन्तरतः स्थिताः ॥ ५५
भक्त्या मयि च योगेन ध्याननिष्ठा जितेन्द्रियाः ।
संख्या द्वादशाधिक्यशतं च गणिता बुधैः ॥ ५६

इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम् ।
मन्वादिकृष्णपर्यन्तमष्टाविंशत्युग्रक्रमात् ॥ ५७
तत्र श्रुतिसमूहानां विधानं ब्रह्मलक्षणम् ।
भविष्यति तदा कल्पे कृष्णद्वैपायनो यदा ॥ ५८

इत्येवमुक्त्वा ब्रह्माणमनुगृह्य महेश्वरः ।
पुनः संप्रेक्ष्य देवेशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५९

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवावतारोपाख्याने

एकोनविंशतिशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके शिवावतारोपाख्यानमें शिवके उन्नीस अवतारोंका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

जबतक यह पृथ्वी रहेगी । उस समय भी कुशिक, गर्ग, मित्र एवं कौरुष्य नामक मेरे तपस्वी शिष्य होंगे । ये सभी योगी, ब्रह्मनिष्ठ, वेदके पारगामी विद्वान् तथा ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी होकर माहेश्वर योगको प्राप्तकर शिवलोकको जायेंगे ॥ ४३—५० ॥

[सूतजी बोले—] हे उत्तम व्रतवाले मुनियो ! इस प्रकार परमात्मा शिवने वैवस्वत मन्वन्तरके प्रत्येक कलियुगमें होनेवाले अपने योगावतारोंका सम्यक् वर्णन किया ॥ ५१ ॥

हे विभो ! इसी प्रकार प्रत्येक द्वापरयुगमें अट्टाईस व्यास तथा प्रत्येक कलियुगके प्रारम्भमें योगेश्वरके अवतार होते रहते हैं ॥ ५२ ॥

प्रत्येक महायोगेश्वरके अवतारोंमें उनके चार महाशैव शिष्य भी होते रहते हैं, जो योगमार्गकी वृद्धि करनेवाले तथा अविनाशी होते हैं ॥ ५३ ॥

ये सभी शिष्य पाशुपतव्रतका आचरण करनेवाले, शरीरमें भस्मलेपन करनेवाले, रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले तथा त्रिपुण्ड्रसे सुशोभित मस्तकवाले होते हैं । सभी शिष्य धर्मपरायण, वेद-वेदांगके ज्ञाता, लिंगार्चनमें सदा तत्पर, बाहर तथा भीतरसे मुझमें भक्ति रखनेवाले योगध्यानपरायण तथा जितेन्द्रिय होते हैं । विद्वानोंद्वारा इनकी संख्या एक सौ बारह कही गयी है ॥ ५४—५६ ॥

इस प्रकार मैंने अट्टाईस युगोंके क्रमसे मनुसे लेकर श्रीकृष्णावतारपर्यन्त [शिवजीके] अवतारोंका लक्षण कह दिया । इस कल्पमें जब कृष्णद्वैपायन व्यास होंगे, तब श्रुतिसमूहोंका ब्रह्मलक्षणसम्पन्न विधान अर्थात् वेदान्तके रूपमें प्रयोग होगा ॥ ५७-५८ ॥

[हे सनत्कुमार !] देवेश्वर शिव ब्रह्मासे इतना कहकर उनपर कृपा करके उनकी ओर पुनः देखकर वहाँपर अन्तर्हित हो गये ॥ ५९ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

नन्दीश्वरावतारवर्णन

सनत्कुमार उवाच

भवान्कथमनुप्राप्तो महादेवांशजः शिवम्।
श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं वक्तुमर्हसि मे प्रभो॥ १

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ सावधानतया शृणु।
यथाऽहं च शिवं प्राप्तो महादेवांशजो मुने॥ २

प्रजाकामः शिलादोऽभूदुक्तः पितृभिरादरात्।
तदुद्धर्तुमना भक्त्या समुद्धारमभीप्सुभिः॥ ३

अधोदृष्टिः सुधर्मात्मा शिलादो नाम वीर्यवान्।
तस्यासीन्मुनिकैर्वृत्तिः शिवलोके च सोऽगमत्॥ ४
शक्रमुद्दिश्य स मुनिस्तपस्तेषे सुदुःसहम्।
निश्चलात्मा शिलादाख्यो बहुकालं दृढव्रतः॥ ५

तपतस्तस्य तपसा संतुष्टोऽभूच्छतक्रतुः।
जगाम च वरं दातुं सर्वदेवप्रभुस्तदा॥ ६
शिलादमाह सुप्रीत्या शक्रस्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ।
तेन त्वं मुनिशार्दूल वरयस्व वरानिति॥ ७
ततः प्रणम्य देवेशं स्तुत्वा स्तुतिभिरादरात्।
शिलादो मुनिशार्दूलस्तमाह सुकृताञ्जलिः॥ ८

शिलाद उवाच

शतक्रतो सुरेशान सन्तुष्टो यदि मे प्रभो।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रमिच्छामि सुव्रतम्॥ ९

शक्र उवाच

पुत्रं दास्यामि पुत्रार्थिन्योनिजं मृत्युसंयुतम्।
अन्यथा ते न दास्यामि मृत्युहीना न सन्ति वै॥ १०

न दास्यामि सुतं तेऽहं मृत्युहीनमयोनिजम्।
हरिर्विधिश्च भगवान्कमुतान्ये महामुने॥ ११

सनत्कुमार बोले—[हे नन्दीश्वर!] आप महादेवके अंशसे किस प्रकार उत्पन्न हुए और किस प्रकार शिवत्वको प्राप्त हुए? हे प्रभो! मैं वह सब सुनना चाहता हूँ, अतः आप मुझे बतानेकी कृपा करें॥ १॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे मुने! जिस प्रकार शिवजीके अंशसे उत्पन्न होकर मैंने शिवत्वको प्राप्त किया है, उसको आप सावधानीपूर्वक सुनिये॥ २॥

किसी समय उद्धारकी अभिलाषावाले पितरोंने [महर्षि] शिलादसे आदरपूर्वक कहा कि सन्तान उत्पन्न करनेका प्रयत्न करें, तब शिलादने भक्तिपूर्वक उनका उद्धार करनेकी इच्छासे पुत्रोत्पत्ति करनेका विचार किया॥ ३॥

परम धर्मात्मा तथा तेजस्वी उन शिलादमुनिने अधोदृष्टि एवं मुनिवृत्ति धारण कर ली और वे शिवलोकको गये। उन शिलादमुनिने स्थिर मन तथा दृढ़ व्रतवाला होकर इन्द्रको उद्देश्य करके बहुत समयतक अति कठोर तप किया॥ ४-५॥

तब तपोनिरत उनके तपसे सर्वदेवप्रभु इन्द्र सन्तुष्ट हो गये और वर देनेहेतु गये तथा अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिलादसे बोले—हे अनघ! मैं आपपर प्रसन्न हूँ। अतः हे मुनिशार्दूल! आप वर माँगें॥ ६-७॥

तब शिलादमुनि देवेश इन्द्रको प्रणामकर स्तोत्रोंके द्वारा आदरपूर्वक स्तुति करके हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—॥ ८॥

शिलाद बोले—हे इन्द्र! हे सुरेशान! हे प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मैं आपसे अयोनिज, अमर तथा उत्तम व्रतवाले पुत्रकी कामना करता हूँ॥ ९॥

शक्र बोले—हे पुत्रार्थिन्! मैं आपको योनिसे उत्पन्न तथा मृत्युको प्राप्त होनेवाला पुत्र दे सकता हूँ। इसके विपरीत नहीं; क्योंकि मृत्युहीन तो कोई नहीं है। मैं आपको अयोनिज तथा मृत्युरहित पुत्र नहीं दे सकता, हे महामुने! [अयोनिज एवं अमर पुत्र तो] भगवान् विष्णु ब्रह्मा तथा कोई अन्य भी नहीं दे सकते हैं॥ १०-११॥

तावपि त्रिपुरार्यङ्गसम्भवौ मरणान्वितौ।
तयोरप्यायुषां मानं कथितं निगमे पृथक् ॥ १२

तस्मादयोनिजे पुत्रे मृत्युहीने प्रयत्नतः।
परित्यजाशां विप्रेन्द्र गृहाणात्मक्षमं सुतम् ॥ १३

किन्तु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति महेश्वरः।
सुदुर्लभो मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः ॥ १४

अहं च विष्णुर्भगवान् द्रुहिणश्च महामुने।
अयोनिजं मृत्युहीनं पुत्रं दातुं न शक्नुमः ॥ १५

आराधय महादेवं तत्पुत्रविनिकाम्यया।
सर्वेश्वरो महाशक्तः स ते पुत्रं प्रदास्यति ॥ १६

नन्दीश्वर उवाच

एवं व्याहृत्य विप्रेन्द्रमनुगृह्य च तं घृणी।
देवैर्वृतः सुरेशानः स्वलोकं समगान्मुने ॥ १७

गते तस्मिंश्च वरदे सहस्राक्षे शिलाशनः।
आराधयन्महादेवं तपसाऽतोषयद्भवम् ॥ १८

अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य द्विजस्य वै।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं क्षणमिवाद्भुतम् ॥ १९

वल्मीकेन वृताङ्गश्च लक्षकीटगणौर्मुनिः।
वज्रसूचीमुखैश्चान्यै रक्तभुग्भश्च सर्वतः ॥ २०

निर्मासिरुधिरत्वग्वै बिले तस्मिन्नवस्थितः।
अस्थिशेषोऽभवत्पश्चाच्छिलादो मुनिसत्तमः ॥ २१

तुष्टः प्रभुस्तदा तस्मै दर्शयामास स्वां तनुम्।
दिव्यां दिव्यगुणौर्युक्तामलभ्यां वामबुद्धिभिः ॥ २२

दिव्यवर्षसहस्रेण तप्यमानाय शूलधृक्।
सर्वदेवाधिपस्तस्मै वरदोऽस्मीत्यभाषत ॥ २३

महासमाधिसंलीनः स शिलादो महामुनिः।
नाशृणोत्तद्विरं शम्भोर्भक्त्यधीनतरस्य वै ॥ २४

वे दोनों भी शिवके शरीरसे उत्पन्न होते हैं और
मरते रहते हैं एवं उन दोनोंकी आयुका प्रमाण भी
वेदमें अलग कहा गया है ॥ १२ ॥

इसलिये हे विप्रवर ! मृत्युहीन एवं अयोनिज
पुत्रकी कामना प्रयत्नपूर्वक छोड़ें और अपने सामर्थ्यवाला
पुत्र प्राप्त करें ॥ १३ ॥

हाँ, यदि देवाधिदेव महादेव रुद्र आपपर प्रसन्न
हो जायँ, तो आपको अत्यन्त दुर्लभ, मृत्युहीन और
अयोनिज पुत्र प्राप्त हो सकता है ॥ १४ ॥

हे महामुने ! मैं, भगवान् विष्णु एवं ब्रह्मा भी
अयोनिज तथा मृत्युहीन पुत्र नहीं दे सकते। यदि इस
प्रकारके पुत्रको प्राप्त करनेकी कामनासे आप महादेवकी
आराधना कीजिये, तो महान् सामर्थ्यवाले वे सर्वेश्वर
आपको इस प्रकारका पुत्र देंगे ॥ १५-१६ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! परम दयालु इन्द्र उन
विप्रेन्द्रको इस प्रकारसे कहकर तथा उनपर अनुग्रह
करके देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये ॥ १७ ॥

वरदाता इन्द्रके चले जानेपर वे शिलादमुनि
महादेवकी आराधना करते हुए अपनी तपस्यासे
शिवको प्रसन्न करने लगे ॥ १८ ॥

इस प्रकार रात-दिन तत्परतापूर्वक तपस्या करते
हुए उन द्विज [शिलादमुनि]-के दिव्य एक हजार वर्ष एक
क्षणके समान बीत गये, यह आश्चर्यजनक था ॥ १९ ॥

उनका समस्त शरीर वज्रसूचीके समान मुखवाले
एवं अन्यान्य रुधिरपान करनेवाले लाखों कीड़ोंसे तथा
वल्मीकिसे ढँक गया। उनका शरीर त्वचा, रुधिर एवं
मांससे रहित हो गया, बाँबीमें स्थित उन मुनिश्रेष्ठ
शिलादकी हड्डियाँ ही बची रह गयी थीं ॥ २०-२१ ॥

तब शिवजीने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य गुणोंसे
युक्त अपना दिव्य शरीर दिखलाया, जिसे कुटिल बुद्धि
रखनेवाले नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥ २२ ॥

तब सभी देवताओंके स्वामी शूलधारी शिवने
देवताओंके एक हजार वर्षसे तप करते हुए उन
शिलादमुनिसे कहा कि मैं आपको वर देनेहेतु आया
हूँ ॥ २३ ॥

महासमाधिमें लीन वे महामुनि शिलाद भक्तिके
अधीन रहनेवाले शिवजीकी उस वाणीको नहीं सुन
सके ॥ २४ ॥

३०

यदा स्पृष्टो मुनिस्तेन करेण त्रिपुरारिणा ।
तदैव मुनिशार्दूल उत्सर्ज तपःक्रमम् ॥ २५
अथोन्मील्य मुनिनेत्रे सोमं शंभुं विलोकयन् ।
द्रुतं प्रणम्य समुदा पादयोन्यपतमुने ॥ २६

हर्षगद्गदया वाचा नतस्कंधः कृताञ्जलिः ।
प्रसन्नात्मा शिलादः स तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ २७

ततः प्रसन्नो भगवान्देवदेवस्त्रिलोचनः ।
वरदोऽस्मीति तं प्राह शिलादं मुनिपुंगवम् ॥ २८
तपसानेन किं कार्यं भवते हि महामते ।
ददामि पुत्रं सर्वज्ञं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ॥ २९

ततः प्रणम्य देवेशं तच्छुत्वा च शिलाशनः ।
हर्षगद्गदया वाचोवाच सोमविभूषणम् ॥ ३०

शिलाद उवाच

महेश यदि तुष्टोऽसि यदि वा वरदश्च मे ।
इच्छामि त्वत्समं पुत्रं मृत्युहीनमयोनिजम् ॥ ३१

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्तस्ततो देवस्त्र्यम्बकस्तेन शङ्करः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा शिलादं मुनिसत्तमम् ॥ ३२

शिव उवाच

पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणाऽहं तपोधन ।
तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः ॥ ३३
तव पुत्रो भविष्यामि नन्दी नामा त्वयोनिजः ।
पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतां मुने ॥ ३४

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा मुनिं प्रेक्ष्य प्रणिपत्यास्थितं घृणी ।
सोमस्तूर्णं तमादिश्य तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ३५
गते तस्मिन्महादेवे स शिलादो महामुनिः ।
स्वमाश्रममुपागम्य ऋषिभ्योऽकथयत्ततः ॥ ३६

कियता चैव कालेन तदासौ जनकः स मे ।
यज्ञाङ्गणं चकर्षाशु यज्ञार्थं यज्ञवित्तमः ॥ ३७

जब शिवजीने अपने हाथसे मुनिका स्पर्श किया, तब मुनिश्रेष्ठ शिलादने तपस्या छोड़ी ॥ २५ ॥

हे मुने! तदनन्तर नेत्र खोलकर पार्वतीसहित शिवका दर्शन प्राप्तकर शीघ्रतासे आनन्दपूर्वक प्रणाम करके शिलादमुनि उनके चरणोंपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त वे शिलाद कंधा झुकाकर हाथ जोड़कर हर्षके कारण गद्गद वाणीमें परमेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ २७ ॥

तदनन्तर प्रसन्न हुए देवाधिदेव त्रिलोचन भगवान् शिवने उन मुनिश्रेष्ठ शिलादसे [पुनः] कहा—मैं आपको वर देने आया हूँ। हे महामते! इस तपस्यासे आपको क्या करना है? मैं आपको सर्वज्ञ तथा सर्वशास्त्रार्थवेत्ता पुत्र दे रहा हूँ ॥ २८-२९ ॥

तब यह सुनकर शिलादने शिवजीको प्रणामकर हर्षके कारण गद्गद वाणीमें उन चन्द्रशेखरसे कहा— ॥ ३० ॥

शिलाद बोले—हे महेश्वर! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और मुझे वर देना चाहते हैं, तो मैं आपके समान ही अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र चाहता हूँ ॥ ३१ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] तब उनके ऐसा कहनेपर त्रिनेत्र भगवान् शिव प्रसन्नचित्त होकर मुनिश्रेष्ठ शिलादसे कहने लगे— ॥ ३२ ॥

शिवजी बोले—हे विप्र! हे तपोधन! पूर्वकालमें ब्रह्मा, देवताओं तथा मुनियोंने [मेरे] अवतारके लिये तपस्याके द्वारा मेरी आराधना की थी, इसलिये मैं नन्दी नामसे आपके अयोनिज पुत्रके रूपमें अवतरित होऊँगा और हे मुने! तब आप मुझ तीनों लोकोंके पिताके भी पिता बन जायँगे ॥ ३३-३४ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर प्रणाम करके स्थित मुनिकी ओर देखकर उन्हें आज्ञा देकर उमासहित दयालु शिव वहीं अन्तर्हित हो गये ॥ ३५ ॥

तब उन महादेवके अन्तर्धान हो जानेपर अपने आश्रममें आकर उन महामुनि शिलादने ऋषियोंको [वह वृत्तान्त] बताया ॥ ३६ ॥

[हे सनत्कुमार!] कुछ समय बाद यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मेरे पिता शिलादमुनि यज्ञ करनेके लिये यज्ञस्थलका शीघ्रतासे कर्षण करने लगे ॥ ३७ ॥

ततः क्षणादहं शंभोस्तनुजस्तस्य चाज्ञया ।
स जातः पूर्वमेवाहं युगान्ताग्निसमप्रभः ॥ ३८

अवर्षस्तदा पुष्करावर्तकाद्या

जगुः खेचराः किन्नराः सिद्धसाध्याः ।
शिलादात्मजत्वं गते मध्यृषीन्द्राः ।

समन्ताच्च वृष्टिं व्यथुः कौसुमीं ते ॥ ३९

अथ ब्रह्मादयो देवा देवपत्न्यश्च सर्वशः ।
तत्राजग्मुश्च सुप्रीत्या हरिश्चैव शिवोऽम्बिका ॥ ४०

तदोत्सवो महानासीन्ननृतश्चाप्सरोगणाः ।
आदृत्य मां तथालिंग्य तुष्टुवुर्हर्षिताश्च ते ॥ ४१

सुप्रशस्य शिलादं तं स्तुत्वा च सुस्तवैः शिवौ ।
सर्वे जग्मुश्च धामानि शिवावप्यखिलेश्वरौ ॥ ४२

शिलादोऽपि च मां दृष्ट्वा कालसूर्यानिलप्रभम् ।
ऋक्षं चतुर्भुजं बालं जटामुकुटधारिणम् ॥ ४३

त्रिशूलाद्यायुधं दीपं सर्वथा रुद्ररूपिणम् ।
महानन्दभरः प्रीत्या प्रणम्यं प्रणनाम च ॥ ४४

शिलाद उवाच

त्वयाहं नन्दितो यस्मान्नदी नामा सुरेश्वर ।
तस्मात्त्वां देवमानन्दं नमामि जगदीश्वरम् ॥ ४५

नन्दीश्वर उवाच

मया सह पिता हृष्टः सुप्रणम्य महेश्वरम् ।
उटजं स्वं जगामाशु निधिं लब्ध्वेव निर्धनः ॥ ४६

यदा गतोऽहमुटजं शिलादस्य महामुने ।
तदाहं तादृशं रूपं त्यक्त्वा मानुष्यमास्थितः ॥ ४७

उसी समय [यज्ञारम्भसे पूर्व ही] शिवजीकी आज्ञासे प्रलयाग्निके सदृश देवीप्यमान होकर मैं उनके शरीरसे पुत्ररूपमें प्रकट हुआ ॥ ३८ ॥

उस समय शिलादमुनिके पुत्ररूपमें मेरे अवतरित होनेपर पुष्करावर्त आदि मेघ वर्षा करने लगे; आकाशचारी किन्नर, सिद्ध और साध्यगण गान करने लगे और ऋषिगण चारों ओरसे पुष्पवृष्टि करने लगे। इसके बाद ब्रह्मा आदि देवगण, देवपत्नियाँ, विष्णु, शिव, अम्बिका—ये सब अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये ॥ ३९-४० ॥

उस समय वहाँपर बहुत बड़ा उत्सव हुआ। अप्सराएँ नाचने लगीं। वे सभी देवगण हर्षित होकर मेरा समादर तथा आलिंगन करके स्तुति करने लगे। वे लोग उन शिलादमुनिकी प्रशंसाकर तथा उत्तम स्तोत्रोंसे शिव एवं पार्वतीकी स्तुतिकर अपने-अपने धामोंको चले गये, अखिलेश्वर शिव-शिवा भी अपने धामको चले गये ॥ ४१-४२ ॥

[महर्षि] शिलाद भी प्रलयकालीन सूर्य और अग्निके समान कान्तिमान्, तीन नेत्रोंसे युक्त, चार भुजावाले, जटामुकुटधारी, त्रिशूल आदि शस्त्र धारण करनेवाले, देवीप्यमान रुद्रके समान रूपवाले तथा सब प्रकारसे प्रणम्य मुझ नन्दीश्वरको बालकके रूपमें देखकर परम आनन्दसे परिपूर्ण होकर प्रेमपूर्वक प्रणाम करने लगे ॥ ४३-४४ ॥

शिलाद बोले—हे सुरेश्वर! आपने मुझे आनन्दित किया है, अतः आपका नाम नन्दी होगा और इसलिये आनन्दस्वरूप आप प्रभु जगदीश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] पिताजी उन महेश्वरको भलीभाँति प्रणाम करके मुझे साथ लेकर शीघ्रतापूर्वक पर्णकुटीमें चले गये। वे इतने प्रसन्न हुए, मानो किसी निर्धनको निधि मिल गयी हो ॥ ४६ ॥

हे महामुने! जब मैं [महर्षि] शिलादकी कुटीमें गया, तब मैंने उस प्रकारके रूपको त्यागकर मनुष्य-शरीर धारण कर लिया ॥ ४७ ॥

मानुष्मास्थितं दृष्ट्वा पिता मे लोकपूजितः ।
विललापातिदुःखार्तः स्वजनैश्च समावृतः ॥ ४८
जातकर्मादिकान्येव सर्वाण्यपि चकार मे ।
शालंकायनपुत्रो वै शिलादः पुत्रवत्सलः ॥ ४९
वेदानध्यापयामास सांगोपांगानशेषतः ।
शास्त्राण्यन्यान्यपि तथा पञ्चवर्षे पिता च माम् ॥ ५०
सम्पूर्णे सप्तमे वर्षे मित्रावरुणसंज्ञकौ ।
मुनी तस्याश्रमं प्राप्तौ द्रष्टुं मां चाज्ञया विभोः ॥ ५१
सत्कृतौ मुनिना तेन सूपविष्टौ महामुनी ।
ऊचतुश्च महात्मानौ मां निरीक्ष्य मुहुर्मुहुः ॥ ५२

मित्रावरुणावृचतुः

तात नंदी तवाल्पायुः सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
न दृष्टमेव चापश्यं ह्यायुर्वर्षादतः परम् ॥ ५३

विप्रयोरित्युक्तवतोः शिलादः पुत्रवत्सलः ।
तमालिङ्ग्य च दुःखार्तो रुरोदातीव विस्वरम् ॥ ५४

मृतवत्पतितं दृष्ट्वा पितरं च पितामहम् ।
प्रत्यवोचत्प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ५५

केन त्वं तात दुःखेन वेपमानश्च रोदिषि ।
दुःखं ते कुत उत्पन्नं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ५६

पितोवाच

तवाल्पमृत्युदुःखेन दुःखितोऽतीव पुत्रक ।
को मे दुःखं हरतु वै शरणं तं प्रयामि हि ॥ ५७

पुत्र उवाच

देवो वा दानवो वापि यमः कालोऽथवापि हि ।
ऋष्येर्युर्यद्यपि होते मामन्येऽपि जनास्तथा ॥ ५८
अथापि चाल्पमृत्युर्मे न भविष्यति मा तुदः ।
सत्यं ब्रवीमि जनक शपथं ते करोम्यहम् ॥ ५९

पितोवाच

किं तपः किं परिज्ञानं को योगश्च प्रभुश्च ते ।
येन त्वं दारुणं दुःखं वञ्चयिष्यसि पुत्र मे ॥ ६०

तदनन्तर मुझे मनुष्य-शरीर धारण किया हुआ देखकर लोकपूजित मेरे पिता अपने कुटुम्बियोंसहित दुखी होकर विलाप करने लगे । शालंकायनमुनिके पुत्र पुत्रवत्सल शिलादने मेरा समस्त जातकर्मादि संस्कार सम्पादित किया ॥ ४८-४९ ॥

पाँचवें वर्षमें मेरे पिताने मुझे सांगोपांग वेदों तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंका भी अध्ययन कराया । सातवें वर्षके सम्पूर्ण होनेपर मित्र और वरुण नामवाले दो मुनि शिवजीकी आज्ञासे मुझे देखनेके लिये उनके आश्रमपर आये ॥ ५०-५१ ॥

उन मुनि [शिलाद]-के द्वारा सत्कृत होकर सुखपूर्वक बैठे हुए दोनों महात्मा महामुनि मुझे बार-बार देखकर कहने लगे— ॥ ५२ ॥

मित्र और वरुण बोले— हे तात ! आपके पुत्र नन्दी-जैसा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पारंगत मुझे अभीतक कोई दिखायी या सुनायी नहीं पड़ा, किंतु [दुःख है कि] यह अल्पायु है । अब इस वर्षसे अधिक इसकी आयु हमलोग देख नहीं पा रहे हैं ॥ ५३ ॥

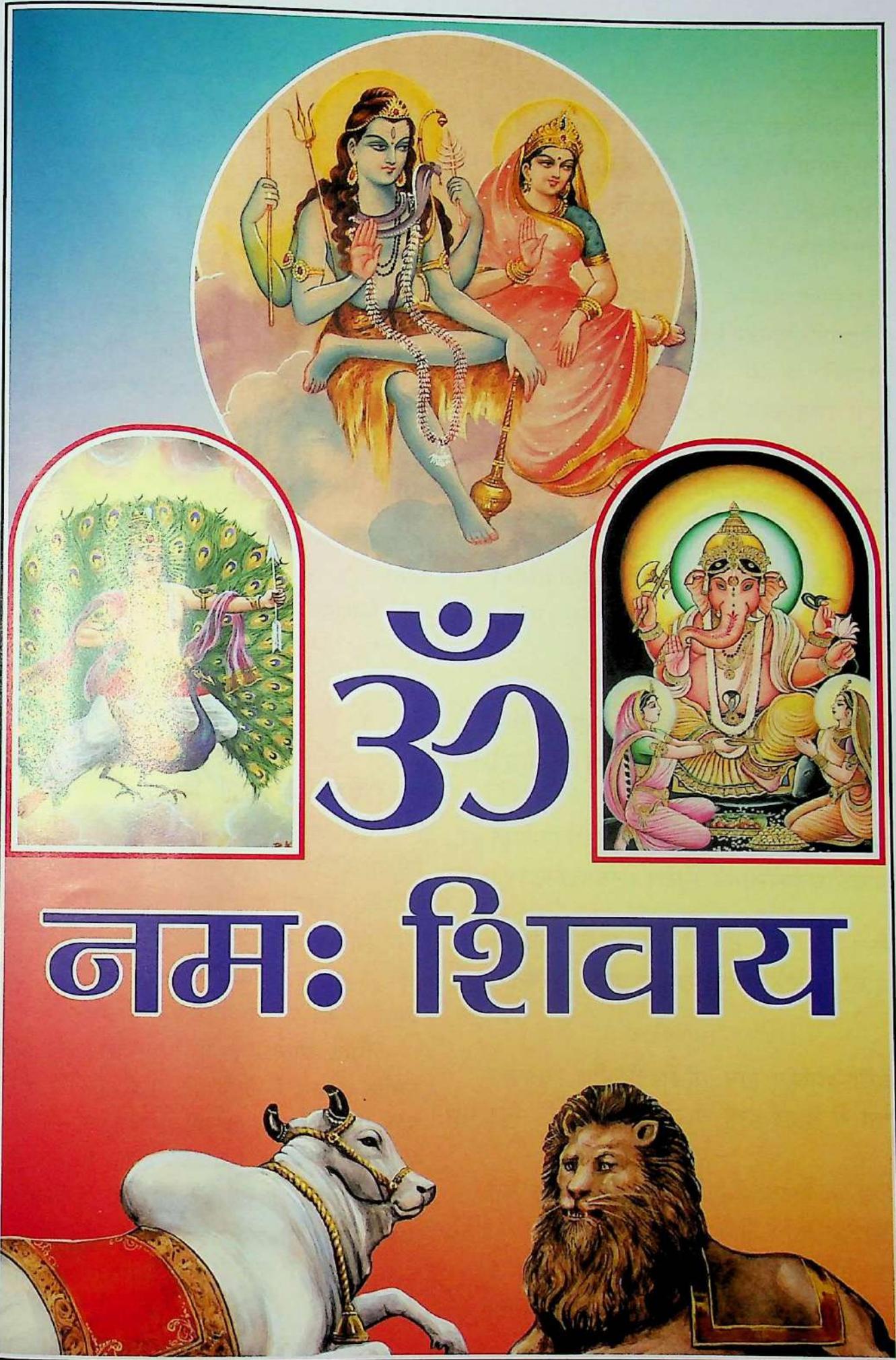
उन विप्रोंके ऐसा कहनेपर पुत्रवत्सल शिलाद उसका आलिंगनकर दुःखसे व्याकुल होकर ऊँचे स्वरमें अत्यधिक विलाप करने लगे ॥ ५४ ॥

तदनन्तर मृतकके समान गिरे हुए पिता एवं पितामहको देखकर वह बालक शिवके चरणकमलका ध्यानकर प्रसन्नचित्त होकर कहने लगा— हे तात ! आप किस दुःखसे दुखी होकर काँपते हुए रो रहे हैं, आपको यह दुःख कहाँसे उत्पन्न हुआ, मैं उसको यथार्थ रूपसे जानना चाहता हूँ ॥ ५५-५६ ॥

पिता बोले— हे पुत्र ! तुम्हारी अल्पावस्थामें मृत्युके दुःखसे मैं अत्यधिक दुखी हूँ । मेरे दुःखको कौन दूर करेगा, मैं उसकी शरणमें जाऊँ ॥ ५७ ॥

पुत्र बोला— [हे पिताजी!] देवता, दानव, यमराज, काल अथवा अन्य कोई भी प्राणी यदि मुझे मारना चाहें, तो भी मेरी अल्पमृत्यु नहीं होगी, आप दुखी न हों । हे पिताजी ! मैं आपकी सौगन्ध खाता हूँ, यह सच कह रहा हूँ ॥ ५८-५९ ॥

पिता बोले— हे पुत्र ! वह कौन-सा तप है, ज्ञान है अथवा योग है या कौन तुम्हारा प्रभु है, जिससे तुम मेरे इस दारुण दुःखको दूर करेगे ? ॥ ६० ॥

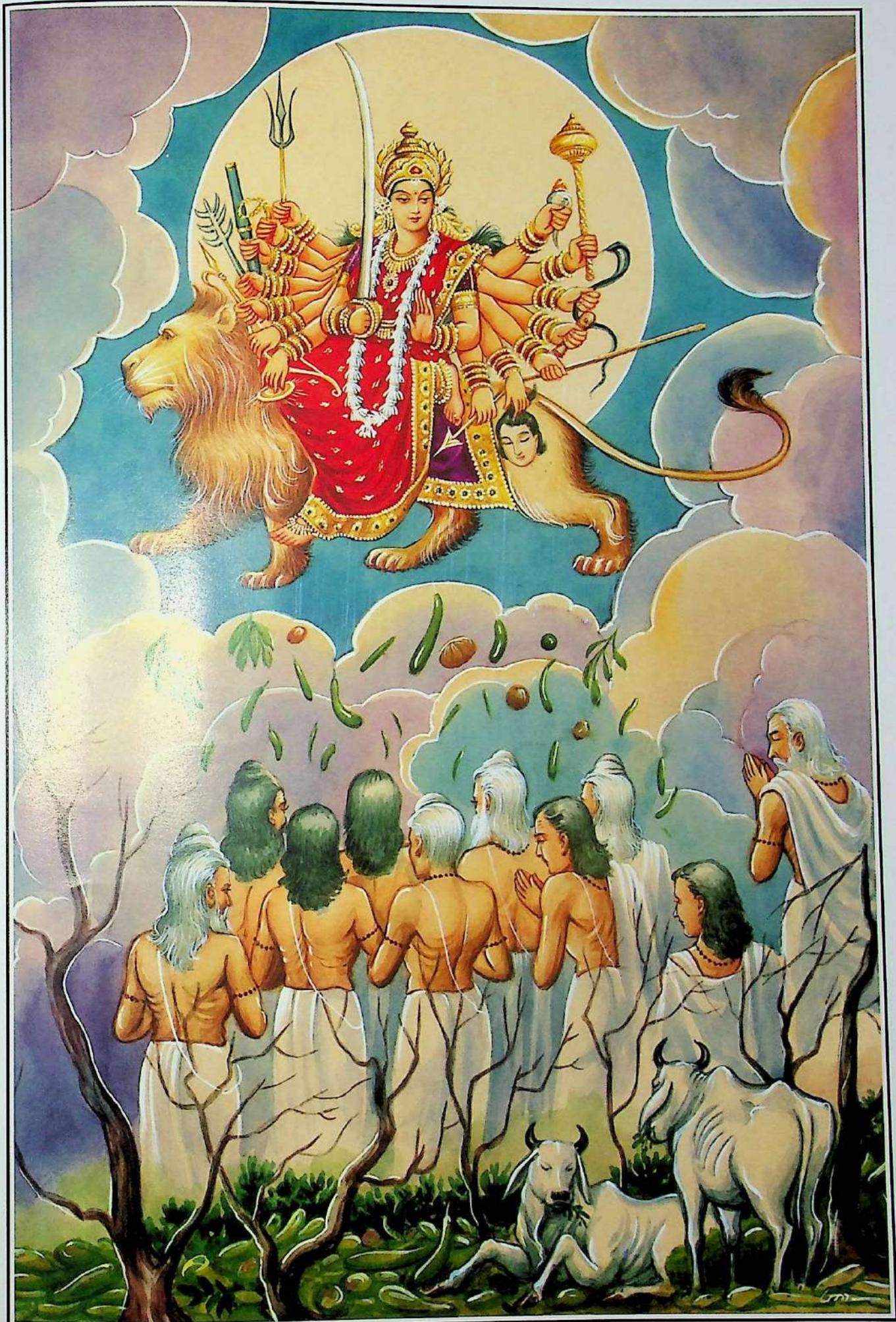


ॐ नमः शिवाय



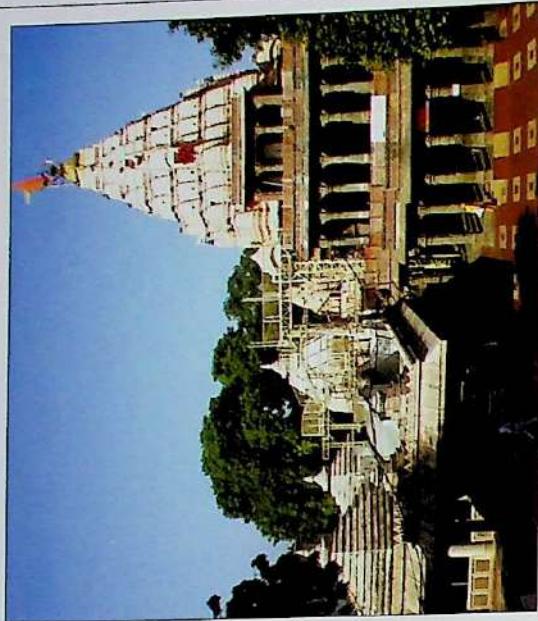
भगवान् सदाशिवद्वारा विष्णुजीको चक्र प्रदान

Deolalik



भगवती शाकम्भरी देवी

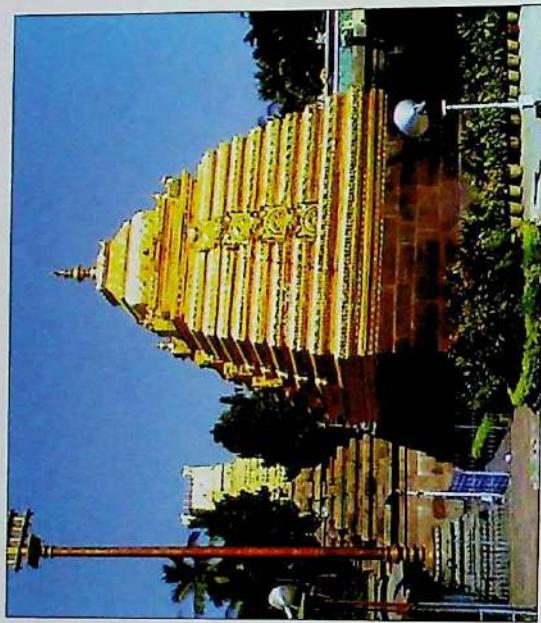
દ્વારદશ જ્યોતિલિંગ — ૨



શ્રીમહાકાલેશ્વરકા વર્તમાન મન્દિર



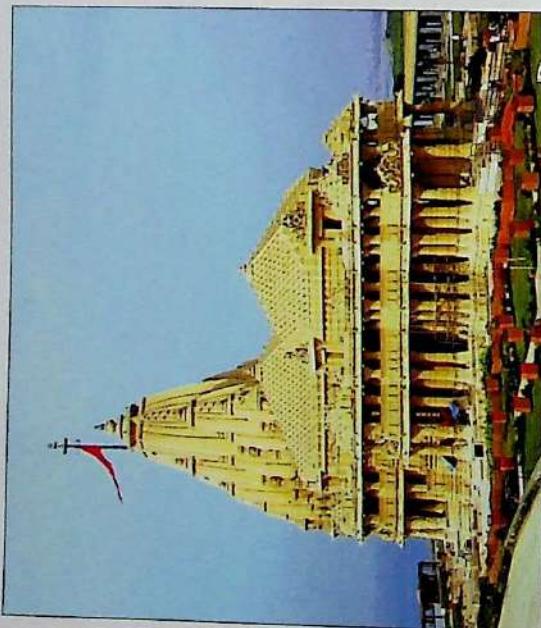
શ્રીમહાકાલેશ્વર જ્યોતિર્લિંગ (મ૦પ૦)



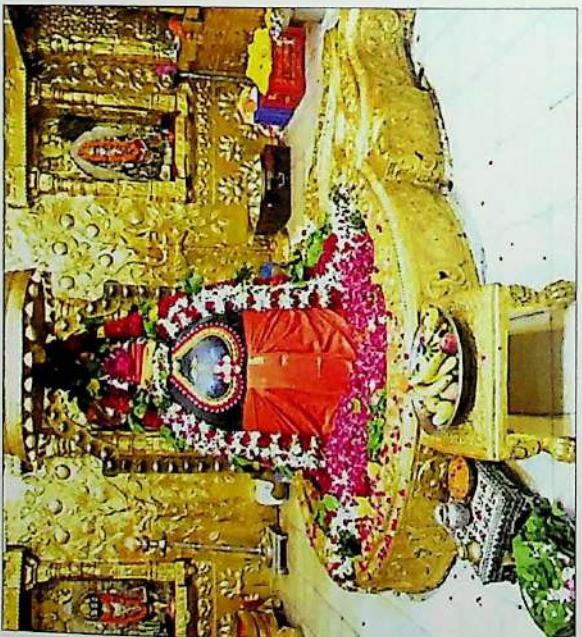
શ્રીમલિલકાર્જુનકા વર્તમાન મન્દિર



શ્રીમલિલકાર્જુન જ્યોતિર્લિંગ (આ૦પ૦)

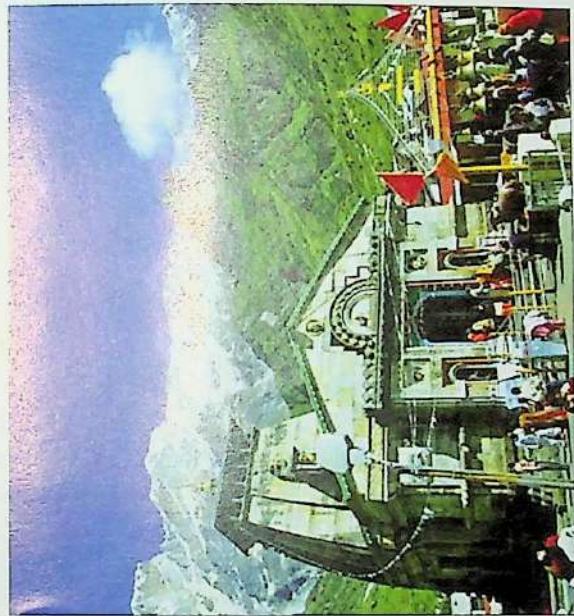


શ્રીસોમનાથકા વર્તમાન મન્દિર

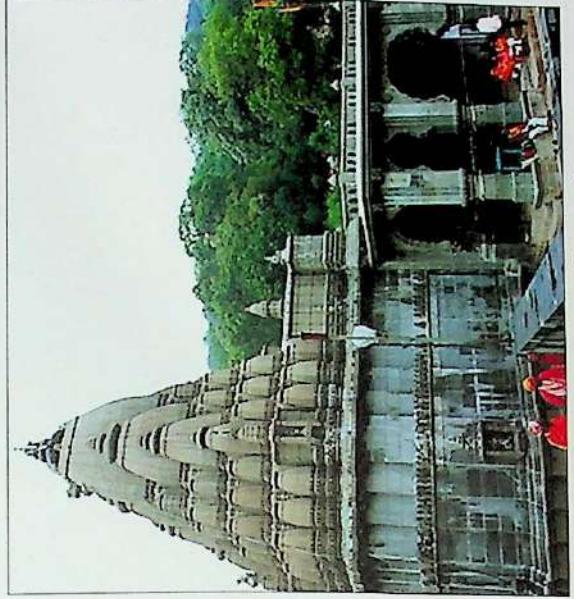


શ્રીસોમનાથ જ્યોતિર્લિંગ (ગુજરાત)

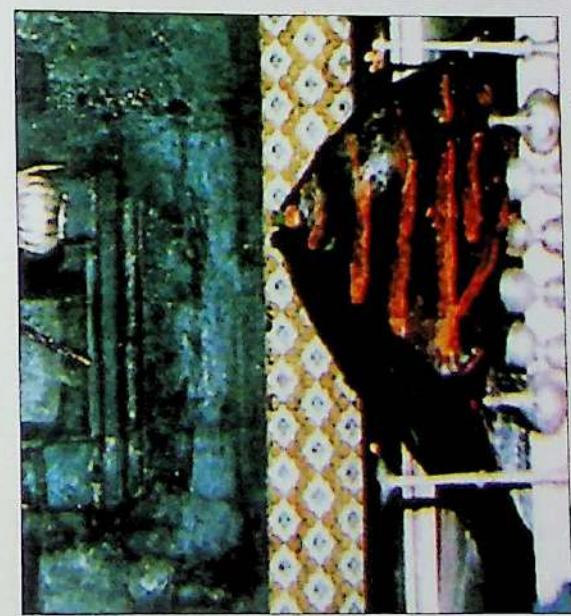
द्वादश ज्योतिलिङ्ग—२



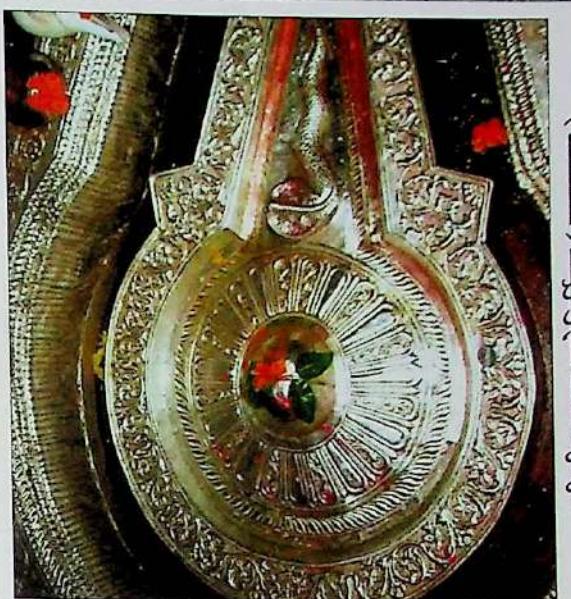
श्रीओङ्करेश्वरका वर्तमान मन्दिर



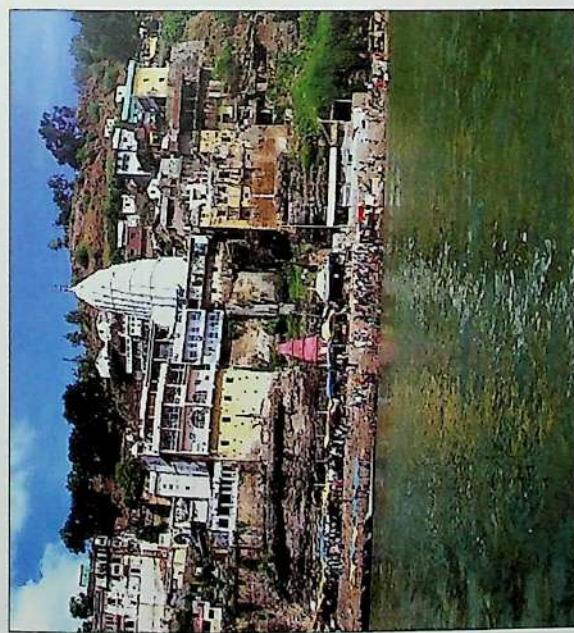
श्रीभीमशङ्करका वर्तमान मन्दिर



श्रीकेदारनाथ क्षेत्रिलिङ्ग (उत्तराखण्ड)



श्रीभीमशङ्कर ज्योतिलिङ्ग (महाराष्ट्र)

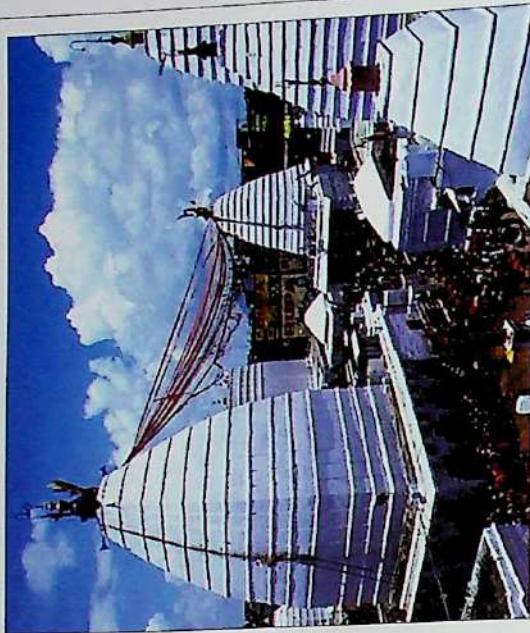


श्रीओङ्करेश्वरका वर्तमान मन्दिर



श्रीओङ्करेश्वर ज्योतिलिङ्ग (मैद्रू)

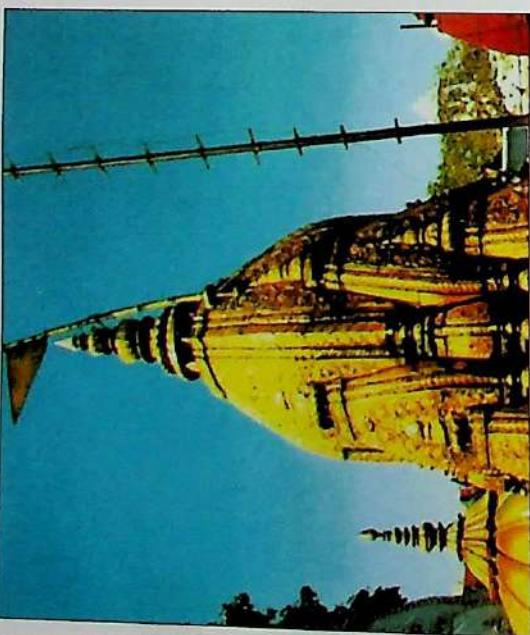
द्वादश ज्योतिलिङ्ग — ३



श्रीवैद्यनाथका वर्तमान मन्दिर



श्रीन्यम्बकेश्वरका वर्तमान मन्दिर



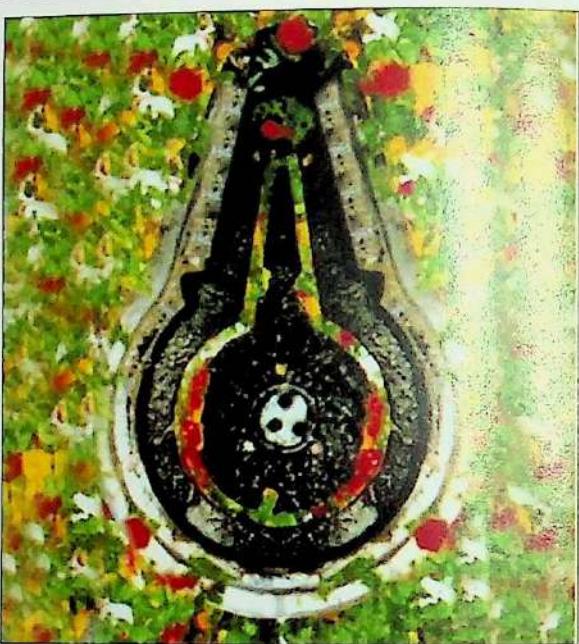
श्रीविश्वेश्वरका वर्तमान मन्दिर



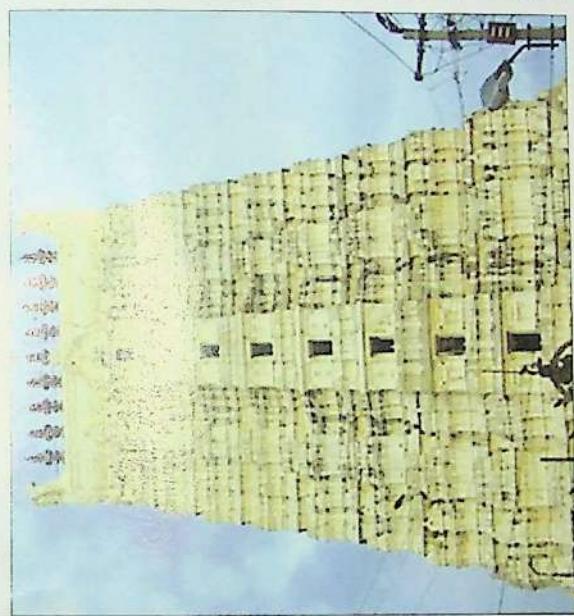
श्रीविश्वेश्वर ज्योतिलिङ्ग (३०४०)



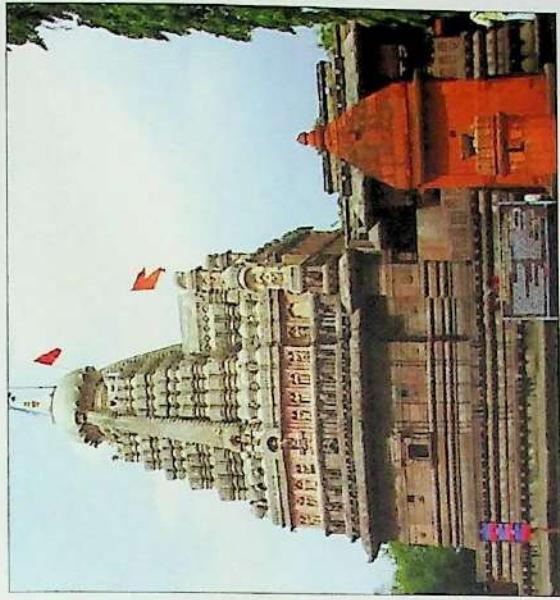
श्रीवैद्यनाथ ज्योतिलिङ्ग (झारखण्ड)



श्रीन्यम्बकेश्वर ज्योतिलिङ्ग (महाराष्ट्र)



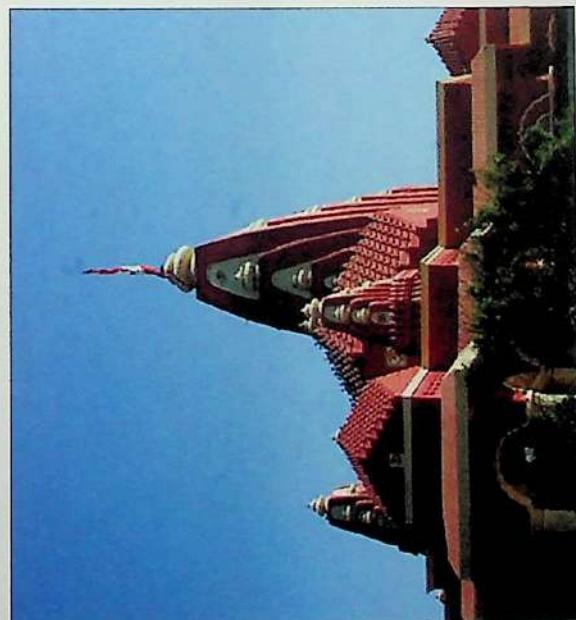
श्रीरामेश्वरका वर्तमान मन्दिर



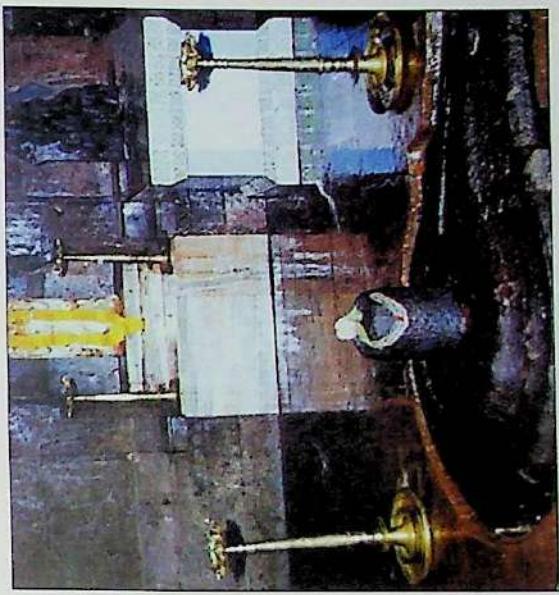
श्रीधुशेश्वरका वर्तमान मन्दिर



श्रीनागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (गुजरात)



श्रीनागेश्वरका वर्तमान मन्दिर



श्रीधुशेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (महाराष्ट्र)



श्रीरामेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग (तमிளநாடு)

देवताओंद्वारा श्रीदुर्गाजीकी स्तुति



पुत्र उवाच
न तात तपसा मृत्युं वंचयिष्ये न विद्यया ।
महादेवस्य भजनामृत्युं जेष्यामि नान्यथा ॥ ६१

नन्दीश्वर उवाच
इत्युक्त्वाहं पितुः पादौ प्रणाम्य शिरसा मुने ।
प्रदक्षिणीकृत्य च तमगच्छं वनमुत्तमम् ॥ ६२

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेशावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
॥ इस प्रकार शिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दिकेशावतारवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरका गणेश्वराधिपति पदपर अभिषेक एवं विवाह

नन्दीश्वर उवाच
तत्र गत्वा मुनेऽहं वै स्थित्वैकान्तस्थले सुधीः ।
अतपं तप उग्रं सन्मुनीनामपि दुष्करम् ॥ १
हृत्पुण्डरीकसुषिरे ध्यात्वा देवं त्रियम्बकम् ।
ऋक्षं दशभुजं शान्तं पञ्चवक्त्रं सदाशिवम् ॥ २
रुद्रजाप्यमकार्षं वै परमध्यानमास्थितः ।
सरितश्चोत्तरे पुण्ये ह्रोक्चित्तः समाहितः ॥ ३
तस्मिञ्चाप्येऽथ संप्रीतः स्थितं मां परमेश्वरः ।
तुष्टोऽब्रवीन्महादेवः सोमः सोमार्द्धभूषणः ॥ ४

शिव उवाच
शैलादे वरदोऽहं ते तपसानेन तोषितः ।
साधु तपतं त्वया धीमन् ब्रूहि यत्ते मनोगतम् ॥ ५

स एवमुक्तो देवेन शिरसा पादयोर्नतः ।
अस्तवं परमेशानं जराशोकविनाशनम् ॥ ६
अथ मां नन्दिनं शम्भुर्भक्त्या परमया युतम् ।
अश्रुपूर्णेक्षणं सम्यक् पादयोः शिरसा नतम् ॥ ७
उत्थाप्य परमेशानः परम्पर्श परमार्तिहा ।
कराभ्यां संमुखाभ्यां तु संगृह्य वृषभध्वजः ॥ ८
निरीक्ष्य गणपांश्चैव देवीं हिमवतः सुताम् ।
उवाच मां कृपादृष्ट्या समीक्ष्य जगतां पतिः ॥ ९

पुत्र बोला—हे तात ! मैं न तो तपसे और न विद्यासे ही मृत्युको रोक सकूँगा, मैं तो केवल महादेवके भजनसे मृत्युको जीतूँगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६१ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! ऐसा कहकर मैं सिर झुकाकर पिताके चरणोंमें प्रणामकर उनकी प्रदक्षिणा करके उत्तम वनकी ओर चला गया ॥ ६२ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेशावतारवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
॥ इस प्रकार शिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दिकेशावतारवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! मैं उस वनमें जाकर निर्जन स्थलमें आसन लगाकर धीरतापूर्वक कठोर तप करने लगा, जो मुनिजनोंके लिये भी असाध्य है ॥ १ ॥

नन्दीके उत्तरकी ओर पवित्र भागमें स्थित हो अपने हृदयकमलके [मध्यवर्ती] विवरमें तीन नेत्रवाले, दस भुजाओंसे युक्त, परम शान्त, पंचमुख सदाशिव त्र्यम्बकदेवका ध्यान करके परम समाधिमें लीन होकर एकाग्रचित्तसे सावधानीपूर्वक रुद्रमन्त्रका जप करने लगा । मुझको उस जपमें स्थित देखकर चन्द्रकला धारण करनेवाले पार्वतीसहित परमेश्वर महादेवने मुझपर प्रसन्न होकर कहा— ॥ २—४ ॥

शिवजी बोले—हे शिलादपुत्र ! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट होकर वर प्रदान करने आया हूँ । हे धीमन् ! तुमने अच्छी तरह तपस्या की है, तुमको जो अभीष्ट हो, उसे माँग लो ॥ ५ ॥

शिवजीके ऐसा कहनेपर मैंने सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और जरा एवं शोकका विनाश करनेवाले उन परमेश्वरकी स्तुति की ॥ ६ ॥

महाकष्टोंका नाश करनेवाले, वृषभध्वज, परमेश्वर शम्भुने परम भक्तिसे युक्त, अश्रुपूर्ण नेत्रवाले और चरणोंमें सम्यक् सिर झुकाये हुए मुझ नन्दीको उठाकर दोनों हाथोंसे पकड़कर मेरा स्पर्श किया । इसके बाद गणपतियों एवं देवी पार्वतीकी ओर देखकर दयामयी दृष्टिसे मुझे निहारते हुए जगत्पति शिवजी कहने लगे— ॥ ७—९ ॥

वत्स नन्दिन् महाप्राज्ञ मृत्योर्भीतिः कुतस्त्व।
मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः ॥ १०
अमरो जरया त्यक्तोऽदुःखी गणपतिः सदा।
अव्ययश्लाक्ष्यश्वेष्टः सपिता ससुहज्जनः ॥ ११
मद्ब्रुलः पाश्वर्गो नित्यं ममेष्टो भवितानिशम्।
न जरा जन्म मृत्युर्वै मत्प्रसादाद्ब्रविष्यति ॥ १२

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा शिरोमालां कुशेशयमयीं निजाम्।
समुन्मुच्य बबन्धाशु मम कण्ठे कृपानिधिः ॥ १३

तयाहं मालया विप्र शुभया कण्ठसक्तया।
ऋक्षो दशभुजश्लासं द्वितीय इव शङ्करः ॥ १४

तत एव समादाय हस्तेन परमेश्वरः।
उवाच ब्रूहि किं तेऽद्य ददामि वरमुत्तमम् ॥ १५

ततो जटाश्रितं वारि गृहीत्वा हारनिर्मलम्।
उक्ता नदी भवेतीह विसर्ज वृषध्वजः ॥ १६

ततः पञ्चमिता नद्यः प्रावर्तन्त शुभावहाः।
सुतोयाश्च महावेगा दिव्यरूपा च सुन्दरीः ॥ १७

जटोदका त्रिस्रोताश्च वृषध्वनिरितीव हि।
स्वर्णोदका जम्बुनदी पञ्च नद्यः प्रकीर्तिताः ॥ १८

एतत्पञ्चनदं नाम शिवपृष्ठतमं शुभम्।
जपेश्वरसमीपे तु पवित्रं परमं मुने ॥ १९

यः पञ्चनदमासाद्य स्नात्वा जप्त्वेश्वरेश्वरम्।
पूजयेच्छिवसायुज्यं प्रयात्येव न संशयः ॥ २०

अथ शम्भुरुवाचोमामभिषिञ्चामि नन्दिनम्।
गणेन्द्रं व्याहरिष्यामि किं वा त्वं मन्यसेऽव्यये ॥ २१

उमोवाच

दातुमर्हसि देवेश नन्दिने परमेश्वर।
महाप्रियतमो नाथ शैलादिस्तनयो मम ॥ २२

हे वत्स ! हे नन्दिन ! हे महाप्राज्ञ ! तुमको मृत्युसे भय कहाँ ? मैंने ही उन दोनों ब्राह्मणोंको भेजा था । तुम तो मेरे ही समान हो, इसमें संशय नहीं है । तुम अपने पिता एवं सुहजनोंके सहित अजर, अमर, दुःखरहित, अविनाशी, अक्षय और सदा मेरे परम प्रिय गणपति हो गये । तुममें मेरे समान ही बल होगा और मेरे प्रिय होकर तुम निरन्तर मेरे समीप निवास करोगे । मेरी कृपासे तुमको जरा, जन्म एवं मृत्यु प्राप्त नहीं होगी ॥ १०—१२ ॥

नन्दीश्वर बोले— [हे सनत्कुमार !] इस प्रकार कहकर कृपानिधि शिवने कमलकी बनी हुई अपनी शिरोमालाको उतारकर मेरे कण्ठमें शीघ्रतासे पहना दिया ॥ १३ ॥

हे विप्र ! उस पवित्र मालाके गलेमें पड़ते ही मैं तीन नेत्र एवं दस भुजाओंसे युक्त होकर दूसरे शिवके समान हो गया ॥ १४ ॥

तदनन्तर परमेश्वरने मुझे अपने हाथसे पकड़कर कहा—हे वत्स ! बताओ, मैं तुमको कौन-सा श्रेष्ठ वर प्रदान करूँ ? ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् वृषध्वजने अपनी जटामें स्थित हारके समान निर्मल जलको लेकर ‘तुम यहींपर नदी हो जाओ’—ऐसा कहा और उसे छिड़क दिया ॥ १६ ॥

उससे स्वच्छ जलवाली, महावेगसे युक्त, दिव्य-स्वरूपा सुन्दरी एवं कल्याणकारिणी पाँच नदियाँ उत्पन्न हुईं । जटोदका, त्रिस्रोता, वृषध्वनि, स्वर्णोदका एवं जम्बुनदी—ये पाँच नदियाँ कही गयी हैं ॥ १७-१८ ॥

हे मुने ! यह पंचनद नामक शिवका शुभ पृष्ठदेश परम पवित्र है, जो जपेश्वरके समीप विद्यमान है । जो [व्यक्ति] पंचनदमें आकर इसमें स्नान तथा जपकर जपेश्वर शिवकी पूजा करता है, उसे शिवसायुज्यकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है ॥ १९-२० ॥

इसके बाद शिवजीने पार्वतीजीसे कहा—मैं नन्दीको अभिषिक्त करना चाहता हूँ और इसे गणेश्वर बनाना चाहता हूँ । हे अव्यये ! इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है ? ॥ २१ ॥

उमा बोलीं—हे देवेश ! हे परमेश्वर ! आप इस नन्दीको अवश्य ही गणेश्वरपद प्रदान करें । हे नाथ ! यह शिलादपुत्र [आजसे] मेरा परम प्रिय पुत्र है ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर उवाच

ततः स शङ्करः स्वीयान्सम्मार गणपान्वरान्।
स्वतन्त्रः परमेशानः सर्वदो भक्तवत्सलः ॥ २३
स्मरणादेव रुद्रस्य सम्प्राप्ताश्च गणेश्वराः।
असङ्ख्याता महामोदाः शङ्कराकृतयोऽखिलाः ॥ २४
ते गणेशाः शिवं देवीं प्रणम्याहुः शुभं वचः।
ते प्रणम्य करौ बद्ध्वा नतस्कन्था महाबलाः ॥ २५

गणेशा ऊचुः

किमर्थं च स्मृता देव ह्याज्ञापय महाप्रभो।
किङ्करान्नः समायातांस्त्रिपुरार्दन कामद ॥ २६

किं सागरान् शोषयामो यमं वा सह किंकरैः।
हन्मो मृत्युं महामृत्युं विशेषं वृद्धपद्मजम् ॥ २७
बद्ध्वेन्द्रं सह देवैश्च विष्णुं वा पार्षदैः सह।
आनयामः सुसंकुञ्छान्दैत्यान्वा दानवैः सह ॥ २८
कस्याद्य व्यसनं घोरं करिष्यामस्तवाज्ञया।
कस्य वाद्योत्सवो देव सर्वकामसमृद्धये ॥ २९

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां गणानां वीरवादिनाम्।
उवाच तान्स प्रशंस्य गणेशान्परमेश्वरः ॥ ३०

शिव उवाच

नन्दीश्वरोऽयं पुत्रो मे सर्वेषामीश्वरेश्वरः।
प्रियो गणाग्रणीः सर्वैः क्रियतां वचनं मम ॥ ३१
सर्वे प्रीत्याभिषिञ्च्छवं मदूणानां गतिं पतिम्।
अद्यप्रभृति युष्माकमयं नन्दीश्वरः प्रभुः ॥ ३२

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्ताः शङ्करेण गणपाः सर्व एव ते।
एवमस्त्विति सम्प्रोच्य सम्भारानाहरँस्ततः ॥ ३३
ततो देवाश्च सेन्द्राश्च नारायणमुखास्तथा।
मुनयः सर्वतो लोका आजग्मुर्दिताननाः ॥ ३४

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] तदनन्तर स्वतन्त्र, सब कुछ प्रदान करनेवाले तथा भक्तवत्सल परमेश्वर शंकरने अपने श्रेष्ठ गणाधिपोंका स्मरण किया। शिवके स्मरण करते ही असंख्य गणेश्वर वहाँ उपस्थित हो गये, वे सब परम आनन्दसे परिपूर्ण तथा शंकरके स्वरूपवाले थे ॥ २३-२४ ॥

वे महाबली गणेश्वर शिव एवं पार्वतीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर तथा विनत होकर शुभ वचन कहने लगे— ॥ २५ ॥

गणेश्वर बोले—हे देव! आपने किसलिये हमलोगोंका स्मरण किया है? हे महाप्रभो! हे त्रिपुरार्दन! हे कामद! यहाँ आये हुए हम सेवकोंको आज्ञा दीजिये ॥ २६ ॥

क्या हमलोग समुद्रोंको सुखा दें अथवा सेवकोंसहित यमराजको मार डालें अथवा मृत्यु, महामृत्यु तथा बूढ़े ब्रह्माका संहार कर दें अथवा देवताओंके सहित इन्द्रको अथवा पार्षदोंसहित विष्णुको अथवा दानवोंसहित अत्यन्त क्रुद्ध देव्योंको बाँधकर ले आयें? आज आपकी आज्ञासे हम किसे घोर दण्ड दें अथवा हे देव! सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये हम आज किसका उत्सव मनायें? ॥ २७—२९ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार वीरतापूर्ण वचन कहनेवाले उन गणोंकी बात सुनकर वे परमेश्वर उन गणपतियोंकी प्रशंसा करके कहने लगे— ॥ ३० ॥

शिवजी बोले—यह नन्दीश्वर मेरा परम प्रिय पुत्र है, अतः तुमलोग इसे सभी गणोंका अग्रणी तथा सभी गणाध्यक्षोंका ईश्वर बनाओ, यह मेरी आज्ञा है ॥ ३१ ॥

मेरे जितने भी गणपति हैं, उन गणपतियोंके आश्रय इस [नन्दी]-को पतिपदपर तुम सब प्रेमपूर्वक अभिषिक्त करो। यह नन्दीश्वर आजसे तुम सभीका स्वामी होगा ॥ ३२ ॥

नन्दीश्वर बोले—तब शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सभी गणेश्वर ‘ऐसा ही होगा’—यह कहकर [अभिषेककी] सामग्री एकत्र करने लगे ॥ ३३ ॥

इसके बाद प्रसन्न मुखमण्डलवाले इन्द्रसहित सभी देवता, नारायण आदि मुख्य [देवगण], मुनिगण एवं अन्य सभी लोग वहाँ उपस्थित हुए ॥ ३४ ॥

पितामहोऽपि भगवन्नियोगाच्छङ्करस्य वै।
चकार नंदिनः सर्वमभिषेकं समाहितः ॥ ३५

ततो विष्णुस्ततः शक्रो लोकपालास्तथैव च।
ऋषयस्तुष्टुवुश्चैव पितामहपुरोगमाः ॥ ३६

स्तुतिमत्सु ततस्तेषु विष्णुः सर्वजगत्पतिः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव च समाहितः ॥ ३७

प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा जयशब्दं चकार च।
ततो गणाधिपाः सर्वे ततो देवास्ततोऽसुराः ॥ ३८

एवं स्तुतश्चाभिषिक्तो देवैः सब्रह्मकैस्तदा।
नन्दीश्वरोऽहं विप्रेन्द्रं नियोगात्परमेशितुः ॥ ३९

उद्भ्राहश्च कृतस्तत्र नियोगात्परमेष्ठिनः।
महोत्सवयुतः प्रीत्या विष्णुब्रह्मादिभिर्मम् ॥ ४०

मरुतां च सुता देवी सुयशास्तु मनोहरा।
पत्नी सा मेऽभवद्विव्या मनोनयननन्दिनी ॥ ४१

लब्धं शशिप्रभं छत्रं तया तत्र विभूषितम्।
चामरैश्चामरासक्तहस्ताग्रैः स्त्रीगणैर्युतम् ॥ ४२

सिंहासनं च परमं तया चाधिष्ठितं मया।
अलंकृतो महालक्ष्म्या मुकुटाद्यैः सुभूषणैः ॥ ४३

लब्धो हारश्च परमो देव्याः कण्ठगतस्तथा।
वृषेन्द्रश्च शितो नागस्मिंहः सिंहध्वजस्तथा ॥ ४४

रथश्च हेमहारश्च चन्द्रबिंबसमः शुभः।
अन्यान्यपि च वस्त्रौ लब्धानि हि मया मुने ॥ ४५

एवं कृतविवाहोऽहं तया पत्न्या महामुने।
पादौ वबन्दे शम्भोश्च शिवाया ब्रह्मणो हरेः ॥ ४६

तथाविधं त्रिलोकेशः सपलीकं च मां प्रभुः।
प्रोवाच परया प्रीत्या स शिवो भक्तवत्सलः ॥ ४७

ईश्वर उवाच

शृणु सत्पुत्र तातस्त्वं सुयशेयं तव प्रिया।
ददामि ते वरं प्रीत्या यत्ते मनसि वाज्ज्ञतम् ॥ ४८

हे भगवन्! शिवजीकी आज्ञासे स्वयं ब्रह्माने एकाग्रचित्त होकर नन्दीश्वरका समस्त गणाध्यक्षोंके अधिपतिपदपर अभिषेक किया। तत्पश्चात् विष्णु इन्द्र एवं [अन्य] लोकपालोंने भी उसी प्रकार अभिषेक किया, तत्पश्चात् ऋषिगण एवं पितामह आदिने उनकी स्तुति की। उन सभीके स्तुति कर लेनेके अनन्तर सम्पूर्ण जगत्के स्वामी विष्णुने सिरपर अंजलि बाँधकर एकाग्रचित्त हो उनकी स्तुति की और हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनका जयकार किया, पुनः सभी गणाधिपों, देवताओं एवं असुरोंने जयकार किया ॥ ३५—३८ ॥

हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार परमेश्वरकी आज्ञासे ब्रह्मासहित सभी देवताओंने मुझ नन्दीश्वरका अभिषेक तथा स्तवन किया ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंने शिवजीकी आज्ञासे बड़े उत्सवके साथ प्रेमपूर्वक मेरा विवाह भी सम्पन्न किया ॥ ४० ॥

मन तथा नेत्रोंको आनन्द देनेवाली मनोहर तथा दिव्य सुयशा नामक मरुत्कन्या मेरी पत्नी हुई ॥ ४१ ॥

उस [सुयशा]-ने हाथके अग्रभागमें चामर धारण की हुई स्त्रियोंसे युक्त तथा चामरोंसे सुशोभित चन्द्रप्रभासदृश छत्र प्राप्त किया। मैं उसके साथ श्रेष्ठतम सिंहासनपर बैठा और स्वयं महालक्ष्मीने मुकुट आदि सुन्दर भूषणोंसे मुझे सुशोभित किया ॥ ४२-४३ ॥

देवीने अपने कण्ठमें स्थित उत्तम हार उतारकर मुझे प्रदान किया। हे मुने! मुझे श्वेत वृषेन्द्र, हाथी, सिंह, सिंहध्वज, रथ, चन्द्रबिंबके समान स्वच्छ सोनेका हार और अन्यान्य वस्तुएँ भी प्राप्त हुई ॥ ४४-४५ ॥

हे महामुने! इस प्रकार विवाह हो जानेपर मैंने उस पत्नीके साथ शिव, पार्वती, ब्रह्मा एवं विष्णुके चरणोंकी बन्दना की ॥ ४६ ॥

उस समय उन त्रिलोकेश्वर भक्तवत्सल प्रभु सदाशिवने उस स्वरूपवाले मुझ सपत्नीक नन्दीश्वरसे अत्यन्त प्रेमके साथ कहा— ॥ ४७ ॥

ईश्वर बोले— हे सत्पुत्र! सुनो, तुम मेरे पुत्र हो। यह सुयशा तुम्हारी पत्नी है। तुम्हारे मनमें जो भी अभिलाषा है, उसे मैं प्रेमपूर्वक तुम्हें प्रदान करूँगा ॥ ४८ ॥

सदाऽहं तव नन्दीश सन्तुष्टोऽस्मि गणेश्वर।
देव्या च सहितो वत्स शृणु मे परमं वचः ॥ ४९
सदेष्टश्च विशिष्टश्च परमैश्वर्यसंयुतः।
महायोगी महेष्वासः सपिता सपितामहः ॥ ५०
अजेयः सर्वजेता च सदा पूज्यो महाबलः।
अहं यत्र भवांस्तत्र यत्र त्वं तत्र चाप्यहम् ॥ ५१
अयं च ते पिता पुत्र परमैश्वर्यसंयुतः।
भविष्यति गणाध्यक्षो मम भक्तो महाबलः ॥ ५२
पितामहोऽपि ते वत्स तथास्तु नियमा इमे।
मत्समीपं गमिष्यन्ति मया दत्तवरास्तथा ॥ ५३

नन्दीश्वर उवाच

ततो देवी महाभागा नन्दिनं वरदाब्रवीत्।
वरं ब्रूहीति मां पुत्र सर्वान्कामान्यथेष्पितान् ॥ ५४
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः प्रावोचत्साञ्जलिस्तदा।
भक्तिर्भवतु मे देवि पादयोस्ते सदा वरा ॥ ५५

श्रुत्वा मम वचो देवी ह्येवमस्त्वति साब्रवीत्।
सुयशां तां च सुप्रीत्या नन्दिप्रियतमां शिवाम् ॥ ५६

देव्युवाच

वत्से वरं यथेष्टं हि त्रिनेत्रा जन्मवर्जिता।
पुत्रपौत्रैस्तु भक्तिर्में तथा च भर्तुरेव हि ॥ ५७

नन्द्युवाच

तदा ब्रह्मा च विष्णुश्च सर्वे देवगणाश्च वै।
ताभ्यां वरान्दुः प्रीत्या सुप्रसन्नाः शिवाज्ञया ॥ ५८
सान्वयं मां गृहीत्वेशस्ततः सम्बन्धिबान्धवैः।
आरुह्य वृषभीशानो गतो देव्या निजं गृहम् ॥ ५९

विष्णवादयः सुराः सर्वे प्रशंसन्तो ह्यमी तदा।
स्वधामानि ययुः प्रीत्या संस्तुवन्तः शिवं शिवाम् ॥ ६०

इति ते कथितो वत्स स्वावतारो महामुने।
सदानन्दकरः पुंसां शिवभक्तिप्रवर्द्धनः ॥ ६१

हे गणेश्वर! हे नन्दीश्वर! पार्वतीसहित मैं तुमपर सदा सन्तुष्ट हूँ। हे वत्स! तुम मेरी उत्तम बात सुनो। तुम अपने पिता एवं पितामहके साथ सदा मेरे प्रिय, विशिष्ट, परमैश्वर्यसे युक्त, महायोगी, महाधनुर्धर, अजेय, सर्वजेता, सदा पूज्य एवं महाबली होओगे। जहाँ मैं रहूँगा, वहाँ तुम रहोगे और जहाँ तुम रहोगे, वहाँ मैं भी रहूँगा ॥ ४९—५१ ॥

हे पुत्र! तुम्हारे ये पिता महान् ऐश्वर्यसे युक्त, महाबली, मेरे भक्त एवं गणोंके अध्यक्ष होंगे ॥ ५२ ॥

हे वत्स! तुम्हारे पितामह भी उसी प्रकारके होंगे। ये सभी मेरे द्वारा वरदान प्राप्तकर मेरी समीपता प्राप्त करेंगे। तुम्हारे लिये मैंने यह वरदान दिया ॥ ५३ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] तब वरदायिनी महाभागा पार्वती देवीने मुझ नन्दीश्वरसे कहा—हे पुत्र! तुम मुझसे सभी अभिलिषित वर माँगो ॥ ५४ ॥

तब पार्वती देवीके उस वचनको सुनकर नन्दीश्वरने हाथ जोड़कर कहा—हे देवि! आपके चरणोंमें सदा मेरी उत्तम भक्ति हो ॥ ५५ ॥

मेरे वचनको सुनकर उन देवीने कहा—ऐसा ही हो, पुनः उन्होंने बड़े प्रेमसे मुझ नन्दीकी कल्याणमयी पत्नी सुयशासे कहा— ॥ ५६ ॥

देवी बोली—हे वत्से! तुम यथेष्ट वर ग्रहण करो। तुम तीन नेत्रवाली एवं जन्म [-मृत्यु]-से रहित रहोगी और पुत्र-पौत्रोंके सहित तुम्हारी भक्ति मुझमें और अपने पतिमें निरन्तर बनी रहेगी ॥ ५७ ॥

नन्दी बोले—उस समय ब्रह्मा, विष्णु तथा सभी देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक शिवकी आज्ञासे उन दोनोंको वर दिये ॥ ५८ ॥

उसके बाद ईश शिवजी सम्बन्धियों, बन्धु-बान्धवों एवं कुटुम्बके साथ मुझे लेकर पार्वतीसहित बैलपर सवार होकर अपने धामको गये ॥ ५९ ॥

वे विष्णु आदि सभी देवता भी मेरी प्रशंसा करते हुए तथा शिव-पार्वतीकी स्तुति करते हुए अपने-अपने धामको चले गये ॥ ६० ॥

हे वत्स! हे महामुने! इस प्रकार मैंने अपना अवतार आपसे कहा, जो मनुष्योंको सदा आनन्द देनेवाला एवं शिवजीमें भक्ति बढ़ानेवाला है ॥ ६१ ॥

य इदं नन्दिनो जन्म वरदानं तथा मम।
अभिषेकं विवाहं च शृणुयाच्छ्रावयेत्था ॥ ६२

पठेद्वा पाठयेद्वापि श्रद्धावान्भक्तिसंयुतः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा परत्र लभते गतिम् ॥ ६३

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दिकेश्वरवताराभिषेक-विवाहवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दिकेश्वर-अवतार-अभिषेक
एवं विवाहवर्णनं नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

जो [व्यक्ति] श्रद्धा तथा भक्तिसे युक्त होकर मुझ नन्दीके इस जन्म, वरदान, अभिषेक तथा विवाहके प्रसंगको सुनता है अथवा सुनाता है अथवा भक्तिपूर्वक पढ़ता है या पढ़ाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर परलोकमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ६२-६३ ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

भैरवावतारवर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु त्वं भैरवीं कथाम्।
यस्याः श्रवणमात्रेण शैवी भक्तिर्दृढा भवेत् ॥ १

भैरवः पूर्णरूपो हि शङ्करस्य परात्मनः।
मूढास्तं वै न जानन्ति मोहिताः शिवमायया ॥ २

सनत्कुमार नो वेत्ति महिमानं महेशितुः।
चतुर्भुजोऽपि विष्णुवै चतुर्वक्त्रोऽपि वै विधिः ॥ ३

चित्रमत्र न किञ्चिद्वै दुर्ज्ञया खलु शास्त्रवी।
तथा संमोहिताः सर्वे नार्चयन्त्यपि तं परम् ॥ ४

वेदयेद्यदि वात्मानं स एव परमेश्वरः।
तदा विदन्ति ते सर्वे स्वेच्छया न हि केऽपि तम् ॥ ५

सर्वगोऽपि महेशानो नेक्ष्यते मूढबुद्धिभिः।
देववद् बुध्यते लोके योज्तीतो मनसां गिराम् ॥ ६

अत्रेतिहासं वक्ष्येऽहं परमर्थे पुरातनम्।
शृणु तं श्रद्धया तात परमं ज्ञानकारणम् ॥ ७

मेरुशृङ्गेऽद्भुते रम्ये स्थितं ब्रह्माणमीश्वरम्।
जगमुर्देवर्षयः सर्वे सुतत्वं ज्ञातुमिच्छया ॥ ८

तत्रागत्य विधिं नत्वा पप्रच्छुस्ते महादरात्।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे नतस्कन्धा मुनीश्वराः ॥ ९

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! अब आप भैरवकी कथा सुनें, जिसके सुननेमात्रसे शिवभक्ति सुस्थिर हो जाती है ॥ १ ॥

भैरवजी परमात्मा शंकरके पूर्णरूप हैं, शिवजीकी मायासे मोहित मूर्खलोग उन्हें नहीं जान पाते ॥ २ ॥

हे सनत्कुमार! चतुर्भुज विष्णु तथा चतुर्मुख ब्रह्माजी भी महेश्वरकी महिमाको नहीं जान पाते हैं ॥ ३ ॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि शिवजीकी माया दुर्ज्ञय है। उसी मायासे मोहित होकर [ये] सभी [संसारी] लोग उन परमेश्वरकी पूजा नहीं करते हैं ॥ ४ ॥

यदि वे परमेश्वर स्वयं ही अपना ज्ञान करा दें, तभी वे सभी लोग उन्हें जान सकते हैं, अपनी इच्छासे कोई भी उन्हें नहीं जान पाता है ॥ ५ ॥

यद्यपि महेश्वर सर्वव्यापी हैं, किंतु मूढ़ बुद्धिवाले उन्हें देख नहीं पाते हैं। जो वाणी एवं मनसे परे हैं, उन्हें लोग मात्र देवता ही समझते हैं ॥ ६ ॥

हे महर्षे! इस विषयमें पुराना इतिहास कह रहा हूँ। हे तात! आप उसको श्रद्धापूर्वक सुनिये। वह परमोत्तम और ज्ञानका कारण है ॥ ७ ॥

समस्त देवता और ऋषिगण परम तत्त्व जाननेकी इच्छासे सुमेरुर्पर्वतके अद्भुत तथा मनोहर शिखरपर स्थित भगवान् ब्रह्माके पास गये ॥ ८ ॥

वहाँ जाकर ब्रह्माजीको नमस्कार करके वे सब हाथ जोड़कर तथा कन्धा झुकाकर आदरपूर्वक पूछने लगे— ॥ ९ ॥

देवर्षय ऊचुः

देवदेव प्रजानाथ सृष्टिकूल्लोकनायक।
तत्त्वतो वद चास्मभ्यं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥ १०

नन्दीश्वर उवाच

स मायया महेशस्य मोहितः पद्मसम्भवः।
अविज्ञाय परं भावं संभावं प्रत्युवाच ह॥ ११
ब्रह्मोवाच

हे सुरा ऋषयः सर्वे सुमत्या शृणुतादरात्।
वच्यहं परमं तत्त्वमव्ययं वै यथार्थतः॥ १२
जगद्योनिरहं धाता स्वयम्भूरज ईश्वरः।
अनादिभागहं ब्रह्म ह्येक आत्मा निरञ्जनः॥ १३
प्रवर्तको हि जगतामहमेव निवर्तकः।
संवर्तको मदधिको नान्यः कश्चित्सुरोन्तमाः॥ १४

नन्दीश्वर उवाच

तस्यैवं वदतो धातुर्विष्णुस्त्र स्थितो मुने।
प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं संकुच्छो मोहितोऽजया॥ १५

न चैतदुचिता ब्रह्मन्योगयुक्तस्य मूर्खता।
अविज्ञाय परं तत्त्वं वृथैतत्ते निगद्यते॥ १६

कर्ता॒ऽहं सर्वलोकानां परमात्मा परः पुमान्।
यज्ञो नारायणो देवो मायाधीशः परागतिः॥ १७

ममाज्ञया त्वया ब्रह्मन् सृष्टिरेषा विधीयते।
जगतां जीवनं नैव मामनादृत्य चेश्वरम्॥ १८

एवं विप्रकृतौ मोहात्परस्परजयैषिणौ।
प्रोचतुर्निर्गमांश्वात्र प्रमाणे सर्वथा तनौ॥ १९
प्रष्टव्यास्ते विशेषेण स्थिता मूर्तिधराश्च ते।
पप्रच्छतुः प्रमाणज्ञानित्युक्त्वा चतुरोऽपि तान्॥ २०

विधिविष्णु ऊचतुः

वेदाः प्रमाणं सर्वत्र प्रतिष्ठां परमामिताः।
यूयं वदत विश्रब्धं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥ २१

देवता तथा ऋषि बोले—हे देवदेव! हे प्रजानाथ! हे सृष्टिकर्ता! हे लोकनायक! आप हमें ठीक-ठीक बताइये कि अद्वितीय तथा अविनाशी तत्त्व क्या है?॥ १०॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी मायासे मोहित वे ब्रह्माजी परम तत्त्वको न समझकर सामान्य बात कहने लगे॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ तथा ऋषियो! आप सब आदरपूर्वक सद्बुद्धिसे मेरी बात सुनें। मैं यथार्थ रूपसे अव्यय परम तत्त्वको बता रहा हूँ॥ १२॥

मैं जगत्का मूल कारण हूँ। मैं धाता, स्वयम्भू, अज, ईश्वर, अनादिभाक्, ब्रह्म, अद्वितीय एवं निरंजन आत्मा हूँ। मैं ही सारे जगत्का प्रवर्तक, संवर्तक तथा निवर्तक हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओ! मुझसे बड़ा दूसरा कोई नहीं है॥ १३-१४॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! जब ब्रह्माजी इस बातको कह रहे थे, उसी समय वहाँ स्थित विष्णुने सनातनी मायासे विमोहित होकर हँसते हुए क्रुद्ध होकर यह वचन कहा—॥ १५॥

हे ब्रह्मन्! योगसे युक्त होते हुए भी आपकी यह मूर्खता उचित नहीं है। परमतत्त्वको न जानकर आप यह व्यर्थ बोल रहे हैं॥ १६॥

सम्पूर्ण लोकोंका कर्ता, परमपुरुष, परमात्मा, यज्ञस्वरूप नारायण, मायाधीश एवं परमगति प्रभु मैं ही हूँ॥ १७॥

हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञासे ही इस सृष्टिकी रचना करते हैं। मुझ ईश्वरका अनादरकर यह जगत् किसी भी प्रकार जीवित नहीं रह सकता॥ १८॥

इस प्रकार परस्पर तिरस्कृत होकर वे दोनों ही अर्थात् ब्रह्म एवं विष्णु मोहवश एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छाकर आपसमें विवाद करते हुए अपने-अपने विषयमें वेदप्रामाण्यकी अपेक्षासे प्रमाणतत्त्वज्ञ, मूर्तिधारी चारों वेदोंके पास जाकर पूछने लगे—॥ १९-२०॥

ब्रह्म एवं विष्णु बोले—हे वेदो! आपलोगोंका सर्वत्र प्रामाण्य है और आपलोगोंको परम प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई है, अतः विश्वासपूर्वक कहिये कि एकमात्र अविनाशी तत्त्व क्या है?॥ २१॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य तयोर्वाचं पुनस्ते हि ऋगादयः ।
अवदंस्तत्त्वतः सर्वे परेशं संस्मरन् प्रभुम् ॥ २२
यदि मान्या वयं देवौ सृष्टिस्थितिकरौ विभू ।
तदा प्रमाणं वक्ष्यामो भवत्सन्देहभेदकम् ॥ २३

नन्दीश्वर उवाच

श्रुत्युक्तविधिमाकर्ण्य प्रोचतुस्तौ सुरौ श्रुतीः ।
युष्मदुक्तं प्रमाणं नौ किं तत्त्वं सम्यगुच्यताम् ॥ २४

ऋग्वेद उवाच

यदन्तःस्थानि भूतानि यतः सर्वं प्रवर्तते ।
यदाहुः परमं तत्त्वं स रुद्रस्त्वेकं एव हि ॥ २५

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञेरखिलैरीशो योगेन च समिज्यते ।
येन प्रमाणं खलु नः स एकः सर्वदृक् शिवः ॥ २६

सामवेद उवाच

येनेदं भ्रम्यते विश्वं योगिभिर्यो विचिन्त्यते ।
यद्ग्रासा भासते विश्वं स एकस्याम्बकः परः ॥ २७

अथर्वावेद उवाच

यं प्रपश्यन्ति देवेशं भक्त्यनुग्रहिणो जनाः ।
तमाहुरेकं कैवल्यं शङ्करं दुःखतः परम् ॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

श्रुत्युक्तमिदमाकर्ण्यतीव मायाविमोहितौ ।
स्मित्वाहतुर्विधिहरी निगमांस्तान्विचेतनौ ॥ २९

विधिहरी ऊचतुः

हे वेदाः किमिदं यूयं भाषन्ते गतचेतनाः ।
किं जातं वोऽद्य सर्वं हि नष्टं सुवयुनं परम् ॥ ३०

कथं प्रमथनाथोऽसौ रममाणो निरन्तरम् ।
दिग्म्बरः पीतवर्णो शिवया धूलिधूसरः ॥ ३१
विरूपवेषो जटिलो वृषगो व्यालभूषणः ।
परं ब्रह्मत्वमापनः क्व च तत्संगवर्जितम् ॥ ३२

नन्दीश्वर बोले—उन दोनोंका यह वचन सुनकर ऋक् आदि सभी वेद परमेश्वर शिवका स्मरण करते हुए यथार्थ बात कहने लगे ॥ २२ ॥

हे सृष्टिस्थितिकर्ता, सर्वव्यापी देवो! यदि हम [आपलोगोंको] मान्य हैं, तो आपलोगोंके सन्देहको दूर करनेवाले प्रमाणको हमलोग कह रहे हैं ॥ २३ ॥

नन्दीश्वर बोले—वेदोंके द्वारा कही गयी विधिको सुनकर ब्रह्मा एवं विष्णुने वेदोंसे कहा कि जो कुछ भी आपलोग कहेंगे, वही प्रमाण हमलोग मान लेंगे, अतः तत्त्व क्या है, इसे भलीभाँति कहें ॥ २४ ॥

ऋग्वेद बोला—जिनके भीतर सम्पूर्ण भूत स्थित हैं, जिनसे सब कुछ प्रवृत्त होता है एवं जिन्हें परम तत्त्व कहते हैं, वे एकमात्र रुद्र ही हैं ॥ २५ ॥

यजुर्वेद बोला—मनुष्य योग एवं समस्त यज्ञोंके द्वारा जिन ईश्वरकी आराधना करता है और जिनसे निश्चय ही हमलोग प्रमाणित हैं, वे एकमात्र सबके द्रष्टा शिव ही परमतत्त्व हैं ॥ २६ ॥

सामवेद बोला—यह जगत् जिनके द्वारा भ्रमण कर रहा है, योगीजन जिनका चिन्तन करते हैं और जिनके प्रकाशसे यह संसार प्रकाशित हो रहा है, वे एकमात्र त्र्याम्बक शिव ही परमतत्त्व हैं ॥ २७ ॥

अथर्वावेद बोला—जिनकी भक्तिका अनुग्रह प्राप्तकर भक्तजन उनका साक्षात्कार करते हैं, उन्हीं दुःखरहित एवं कैवल्यस्वरूप एकमात्र शंकरको परमतत्त्व कहा गया है ॥ २८ ॥

नन्दीश्वर बोले—वेदोंका यह वचन सुनकर शिवजीकी मायासे अत्यन्त विमोहित ब्रह्मा एवं विष्णु अचेतसे हो गये, फिर मुसकराकर उन वेदोंसे कहने लगे— ॥ २९ ॥

ब्रह्मा एवं विष्णु बोले—हे वेदो! आपलोग चेतनाहीन होकर यह क्या प्रलाप कर रहे हैं? आज आपलोगोंको क्या हो गया है? अवश्य ही आपलोगोंका सारा श्रेष्ठ ज्ञान नष्ट हो गया है ॥ ३० ॥

प्रमथनाथ, दिग्म्बर, पीतवर्णवाले, धूलिधूसरित, निरन्तर पार्वतीके साथ रमण करनेवाले, अत्यन्त विकृत रूपवाले, जटाधारी, बैलपर सबारी करनेवाले तथा सर्पोंका आभूषण धारण करनेवाले वे शिव निःसंग परम ब्रह्म किस प्रकार हो सकते हैं? ॥ ३१-३२ ॥

इत्युदीरितमाकर्ण्य प्रणवः सर्वगस्तयोः ।
अमूर्तो मूर्तिमान्प्रीत्या जृम्भमाण उवाच तौ ॥ ३३

प्रणव उवाच

न हीशो भगवान् शक्त्या ह्यात्मनो व्यतिरिक्त्या ।
कदाचिद्रमते रुद्रो लीलारूपधरो हरः ॥ ३४

असौ हि परमेशानः स्वयंज्योतिः सनातनः ।
आनन्दरूपा तस्यैषा शक्तिर्नागन्तुकी शिवा ॥ ३५

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवमुक्तोऽपि तदा विधेविष्णोश्च वै तदा ।
नाज्ञानमगमनाशं श्रीकण्ठस्यैव मायया ॥ ३६
प्रादुरासीत्ततो ज्योतिरुभ्योरन्तरे महत् ।
पूरयन्निजया भासा द्यावाभूष्योर्यदन्तरम् ॥ ३७

ज्योतिर्मण्डलमध्यस्थो ददृशे पुरुषाकृतिः ।
विधिक्रतुभ्यां तत्रैव महाद्वृततनुमुने ॥ ३८

प्रजञ्चालाथ कोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ।
आवयोरन्तरे कोऽसौ बिभृयात्पुरुषाकृतिम् ॥ ३९

विधिः संभावयेद्यावत्तावत्स त्रिविलोचनः ।
दृष्टः क्षणेन च महापुरुषो नीललोहितः ॥ ४०

त्रिशूलपाणिर्भालाक्षो नागोदुषविभूषणः ।
हिरण्यगर्भस्तं दृष्ट्वा विहसन्नाह मोहितः ॥ ४१

ब्रह्मोवाच

नीललोहित जाने त्वां मा भैषीशचन्द्रशेखर ।
भालस्थलान्मम पुरा रुद्रः प्रादुरभूद्वान् ॥ ४२
रोदनाद् रुद्रनामापि योजितोऽसि मया पुरा ।
मामेव शरणं याहि पुत्र रक्षां करोमि ते ॥ ४३

नन्दीश्वर उवाच

अथेश्वरः पद्मयोनेः श्रुत्वा गर्ववर्तीं गिरम् ।
चुकोपातीव च तदा कुर्वन्निव लयं मुने ॥ ४४

उस समय उन दोनोंकी इस बातको सुनकर सर्वत्र व्यापक तथा निराकार प्रणवने मूर्तिमान् प्रकट होकर उनसे कहा— ॥ ३३ ॥

प्रणव बोला—लीलारूपधारी, हर भगवान् रुद्र अपनी शक्तिके बिना कभी भी रमण करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ३४ ॥

ये परमेश्वर शिव सनातन तथा स्वयं ज्योतिःस्वरूप हैं और ये शिवा उन्हींकी आहादिनी शक्ति हैं, अतः आगन्तुक नहीं हैं, अपितु उन्हींके समान नित्य [तथा उनसे अभिन्न] हैं ॥ ३५ ॥

नन्दीश्वर बोले—उस समय ॐकारके इस प्रकार कहनेपर भी शिवमायासे मोहित ब्रह्मा एवं विष्णुका अज्ञान जब दूर नहीं हुआ, तब उसी समय अपने प्रकाशसे पृथ्वी तथा आकाशके अन्तरालको पूर्ण करती हुई एक महान् ज्योति उन दोनोंके बीचमें प्रकट हो गयी ॥ ३६-३७ ॥

हे मुने! उस ज्योतिसमूहके बीचमें स्थित एक अत्यन्त अद्भुत शरीरवाले पुरुषको ब्रह्मा एवं विष्णुने देखा ॥ ३८ ॥

तब क्रोधके कारण ब्रह्माजीका पाँचवाँ सिर जलने लगा कि हम दोनोंके मध्य यह पुरुषशरीरको धारण किये हुए कौन है? ॥ ३९ ॥

जबतक ब्रह्माजी यह विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें उसी क्षण वह महापुरुष त्रिलोचन, नीललोहित सदाशिवके रूपमें दिखायी पड़ा। हाथमें त्रिशूल धारण किये, मस्तकपर नेत्रवाले, सर्प एवं चन्द्रमाको भूषणके रूपमें धारण किये उन्हें देखकर मोहित हुए ब्रह्माजी हँसते हुए कहने लगे— ॥ ४०-४१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नीललोहित! हे चन्द्रशेखर! मैं तुम्हें जानता हूँ डरो मत। तुम पूर्व समयमें मेरे ललाट-प्रदेशसे रोते हुए उत्पन्न हुए थे। पहले मैंने ही रोनेके कारण तुम्हारा नाम रुद्र रखा था। हे पुत्र! मेरी शरणमें आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ॥ ४२-४३ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उसके बाद ब्रह्माकी अहंकारयुक्त वाणी सुनकर शिवजी अत्यन्त क्रोधित हुए, उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो प्रलय कर देंगे ॥ ४४ ॥

स कोपतः समुत्पाद्य पुरुषं भैरवं क्वचित्।
प्रज्वलन्तं सुमहसा प्रीत्या च परमेश्वरः ॥ ४५

ईश्वर उवाच

प्राक् च पंकजजन्मासौ शास्यस्ते कालभैरव।
कालवद्राजसे साक्षात्कालराजस्तो भवान् ॥ ४६

विश्वं भर्तुं समर्थोऽसि भरणाद्वैरवः स्मृतः।
त्वत्तो भेष्यति कालोऽपि ततस्त्वं कालभैरवः ॥ ४७

आमर्दयिष्यति भवान्त्वष्टो दुष्टात्मनो यतः।
आमर्दक इति ख्यातिं ततः सर्वत्र यास्यसि ॥ ४८
यतः पापानि भक्तानां भक्षयिष्यसि तत्क्षणात्।
पापभक्षण इत्येव तव नाम भविष्यति ॥ ४९
या मे मुक्तिपुरी काशी सर्वाभ्योऽपि गरीयसी।
आधिपत्यं च तस्यास्ते कालराज सदैव हि ॥ ५०
तत्र ये पातकिनरास्तेषां शास्ता त्वमेव हि।
शुभाशुभं च तत्कर्म चित्रगुप्तो लिखिष्यति ॥ ५१

नन्दीश्वर उवाच

एतान्वरान्गृह्याथ तत्क्षणात्कालभैरवः।
वामांगुलिनखाग्रेण चकर्त च विधेश्वरः ॥ ५२

यदंगमपराधोति कार्यं तस्यैव शासनम्।
अतो येन कृता निन्दा तच्छिन्नं पञ्चमं शिरः ॥ ५३

अथ छिनं विधिशिरो दृष्ट्वा भीततरो हरिः।
शातरुद्रियमन्त्रैश्च भक्त्या तुष्टाव शङ्करम् ॥ ५४

भीतो हिरण्यगर्भोऽपि जजाप शतरुद्रियम्।
इत्थं तौ गतगावौ हि संजातौ तत्क्षणान्मुने ॥ ५५

परब्रह्म शिवः साक्षात्सच्चिदानन्दलक्षणः।
परमात्मा गुणातीत इति ज्ञानमवाप्तुः ॥ ५६

सनत्कुमार सर्वज्ञ शृणु मे परमं शुभम्।
यावद्वावौ भवेत्तावज्ञानगुप्तिर्विशेषतः ॥ ५७

उस समय परमेश्वर शिव अपने क्रोधके द्वारा परम तेजसे देवीप्यमान भैरव नामक एक पुरुषको उत्पन्न करके प्रेमपूर्वक [उससे कहने लगे—] ॥ ४५ ॥

ईश्वर बोले—हे कालभैरव ! सर्वप्रथम तुम इस पद्मयोनि ब्रह्माको दण्ड दो, तुम साक्षात् कालके सदृश शोभित हो रहे हो, अतः तुम कालराज [नामसे विख्यात] होओगे ॥ ४६ ॥

तुम संसारका पालन करनेमें सर्वथा समर्थ हो, उसका भरण-पोषण करनेसे तुम भैरव कहे गये हो, तुमसे काल भी डरेगा । अतः तुम कालभैरव कहे जाओगे ॥ ४७ ॥

तुम रुष्ट होनेपर दुष्टात्माओंका मर्दन करोगे, इसलिये सर्वत्र आमर्दक नामसे विख्यात होओगे ॥ ४८ ॥

तुम भक्तोंके पापोंका तत्काल भक्षण करोगे, इसलिये तुम्हारा नाम पापभक्षण भी होगा ॥ ४९ ॥

हे कालराज ! सभी पुरियोंसे श्रेष्ठ जो मेरी मुक्तिपुरी काशी है, तुम सदा उसके अधिपति बनकर रहोगे । वहाँ जो पापी मनुष्य होंगे, उनके शासक तुम ही रहोगे, उनके अच्छे-बुरे कर्मको चित्रगुप्त लिखियेंगे ॥ ५०-५१ ॥

नन्दीश्वर बोले—कालभैरवने इस प्रकारके वरोंको प्राप्तकर अपनी बाँयों अँगुलियोंके नखोंके अग्रभागसे ब्रह्माका पाँचवाँ सिर तत्क्षण ही काट डाला ॥ ५२ ॥

जो अंग अपराध करता है, उसीको दण्ड देना चाहिये, अतः जिस सिरने निन्दा की थी, उस पाँचवें सिरको उन्होंने काट दिया ॥ ५३ ॥

उसके बाद ब्रह्माके सिरको कटा हुआ देखकर विष्णु बहुत भयभीत हो गये और शतरुद्रिय मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५४ ॥

हे मुने ! तब भयभीत हुए ब्रह्माजी भी शतरुद्रिय मन्त्रका जप करने लगे । इस प्रकार वे दोनों ही उसी क्षण अहंकाररहित हो गये ॥ ५५ ॥

उन दोनोंको यह ज्ञान हो गया कि साक्षात् शिव ही सच्चिदानन्द लक्षणसे युक्त परमात्मा, गुणातीत तथा परब्रह्म हैं ॥ ५६ ॥

हे सनत्कुमार ! हे सर्वज्ञ ! मेरा यह उत्तम शुभ वचन सुनिये, जबतक अहंकार रहता है, तबतक विशेषरूपसे ज्ञान लुप्त रहता है ॥ ५७ ॥

त्यक्त्वाभिमानं पुरुषो जानाति परमेश्वरम्।
गर्विणं हन्ति विश्वेशो जातो गर्वापहारकः ॥ ५८

अथ विष्णुविधी ज्ञात्वा विगर्वौ परमेश्वरः।
प्रसन्नोऽभूम्हादेवोऽकरोत्तावभयौ प्रभुः ॥ ५९

आश्वास्य तौ महादेवः प्रीतः प्रणतवत्सलः।
प्राह स्वां मूर्तिमपरां भैरवं तं कपर्दिनम् ॥ ६०

महादेव उवाच

त्वया मान्यो विष्णुरसौ तथा शतधृतिः स्वयम्।
कपालं वैधसं वापि नीललोहित धारय ॥ ६१
ब्रह्महत्यापनोदाय व्रतं लोकाय दर्शय।
चर त्वं सततं भिक्षां कपालव्रतमाश्रितः ॥ ६२

इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य तेजोरूपः शिवोऽब्रवीत्।
उत्पाद्य चैकां कन्यां तु ब्रह्महत्याभिविश्रुताम् ॥ ६३

यावद्वाराणसीं दिव्यां पुरीमेषां गमिष्यति।
तावत्त्वं भीषणं कालमनुगच्छोग्ररूपिणम् ॥ ६४
सर्वत्र ते प्रवेशोऽस्ति त्यक्त्वा वाराणसीं पुरीम्।
वाराणसीं यदा गच्छेत्तन्मुक्तो भव तत्क्षणात् ॥ ६५

नन्दीश्वर उवाच

नियोज्य तामिति तदा ब्रह्महत्यां च तां प्रभुः।
महाद्वृतश्च स शिवोऽप्यन्तर्धानमगात्ततः ॥ ६६

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भैरवावतारवर्णनं नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः

भैरवावतारलीलावर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ भैरवीमपरां कथाम्।
शृणु प्रीत्या महादोषसंहर्त्रीं भक्तिवर्द्धिनीम् ॥ १

अहंकारका त्याग करनेपर ही मनुष्य परमेश्वरको जान पाता है। विश्वेश्वर शिव अहंकारी [के अहंकार]-का नाश करते हैं, क्योंकि वे गर्वापहारक कहे गये हैं ॥ ५८ ॥

इसके बाद ब्रह्मा तथा विष्णुको अहंकाररहित जानकर परमेश्वर महादेव प्रसन्न हो गये और उन प्रभुने उन दोनोंको भयरहित कर दिया ॥ ५९ ॥

प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महादेव उन्हें आश्वस्त करके अपने दूसरे स्वरूप उन कपर्दी भैरवसे कहने लगे— ॥ ६० ॥

महादेव बोले—[हे भैरव!] ये ब्रह्मा एवं विष्णु तुम्हरे मान्य हैं। हे नीललोहित! तुम ब्रह्माके [कटे हुए] इस कपालको धारण करो और ब्रह्महत्याको दूर करनेके लिये संसारके समक्ष व्रत प्रदर्शित करो, कपालव्रत धारणकर तुम निरन्तर भिक्षाचरण करो ॥ ६१-६२ ॥

इस प्रकार [कालभैरवसे] कहकर उनके देखते ही ब्रह्महत्या नामक कन्याको उत्पन्नकर तेजोरूप शिवजीने उससे कहा— ॥ ६३ ॥

तुम उग्र रूप धारण करनेवाले इन भयंकर कालभैरवके पीछे-पीछे तबतक चलो, जबतक ये वाराणसीपुरीतक नहीं जाते। इनके वाराणसीमें जाते ही तुम मुक्त हो जाओगी। वाराणसीपुरीको छोड़कर सर्वत्र तुम्हारा प्रवेश होगा ॥ ६४-६५ ॥

नन्दीश्वर बोले—वे परम अद्वृत प्रभु भगवान् शंकर भी उस ब्रह्महत्याको [उस यात्राके लिये] नियुक्त करके अन्तर्हित हो गये ॥ ६६ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ!

अब आप महादोषोंको दूर करनेवाली और भक्तिको बढ़ानेवाली दूसरी भैरवी कथाको प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

तत्सानिष्ठं भैरवोऽपि कालोऽभूत्कालकालनः ।
स देवदेववाक्येन बिभृत्कापालिकं व्रतम् ॥ २

कपालपाणिर्विश्वात्मा चचार भुवनत्रयम् ।
नात्याक्षीच्चापि तं देवं ब्रह्महत्यापि दारुणा ॥ ३

प्रतितीर्थं भ्रमन् नापि विमुक्तो ब्रह्महत्या ।
अतः कामारिमहिमा सर्वोऽपि हृवगम्यताम् ॥ ४

प्रमथैः सेव्यमानोऽपि ह्रेकदा विहरन्हरः ।
कापालिको ययौ स्वैरी नारायणनिकेतनम् ॥ ५

अथायान्तं महाकालं त्रिनेत्रं सर्पकुण्डलम् ।
महादेवांशसम्भूतं पूर्णाकारं च भैरवम् ॥ ६
पपात दण्डवद्धूमौ तं दृष्ट्वा गरुडध्वजः ।
देवाश्रु मुनयश्चैव देवनार्थः समन्ततः ॥ ७
अथ विष्णुः प्रणम्यैनं प्रयातः कमलापतिः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव विविधैः स्तवैः ॥ ८

सानन्दोऽथ हरिः प्राह प्रसन्नात्मा महामुने ।
क्षीरोदमथनोद्धूतां पद्मां पद्मालयां मुदा ॥ ९

विष्णुरुवाच

प्रिये पश्याब्जनयने धन्यासि सुभगेऽनघे ।
धन्योऽहं देवि सुश्रोणि यत्पश्यावो जगत्पतिम् ॥ १०

अयं धाता विधाता च लोकानां प्रभुरीश्वरः ।
अनादिः शरणः शान्तः पुरः षड्विंशसंमितिः ॥ ११

सर्वज्ञः सर्वयोगीशः सर्वभूतैकनायकः ।
सर्वभूतान्तरात्माऽयं सर्वेषां सर्वदः सदा ॥ १२

ये विनिद्रा विनिःश्वासाः शान्ताः ध्यानपरायणाः ।
धिया पश्यन्ति हृदये सोऽयं पद्मे समीक्षताम् ॥ १३

यं विदुर्वेदतत्त्वज्ञा योगिनो यत्मानसाः ।
अरूपो रूपवान्भूत्वा सोऽयमायाति सर्वगः ॥ १४

काशीका सानिध्य प्राप्तकर वे कालभैरव कालके भी भक्षक महाकाल हुए । देवदेवके आदेशसे कापालिक व्रत धारण किये हुए वे विश्वात्मा भैरव हाथमें [ब्रह्माका] कपाल लेकर तीनों लोकोंमें घूमने लगे, किंतु उस दारुण ब्रह्महत्याने कहीं भी उन प्रभुका पीछा करना न छोड़ ॥ २-३ ॥

प्रत्येक तीर्थमें घूमते हुए भी वे ब्रह्महत्यासे नहीं मुक्त हुए, इसमें भी सभीको शिवकी अद्भुत महिमा ही जाननी चाहिये ॥ ४ ॥

एक बार प्रमथगणोंसे सेवित होते हुए भी कापालिक वेषवाले शिवजी [कालभैरव] विहार करते हुए अपनी इच्छासे विष्णुके निवासस्थानपर पहुँचे ॥ ५ ॥

उस समय महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए, सर्पका कुण्डल धारण किये, त्रिनेत्र, महाकाल तथा पूर्णाकार उन भैरवको आता हुआ देखकर गरुडध्वज विष्णुने तथा देवों, मुनियों एवं देवस्त्रियोंने भी दण्डवत् प्रणाम किया । इसके बाद लक्ष्मीपति विष्णुने उन्हें तत्त्वतः जानते हुए पुनः प्रणामकर सिरपर अंजलि रखकर नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की ॥ ६-८ ॥

हे महामुने! तदनन्तर आनन्दसे पूर्ण हुए विष्णु प्रसन्नचित होकर क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई कमलनिवासिनी लक्ष्मीसे प्रेमपूर्वक कहने लगे— ॥ ९ ॥

विष्णुजी बोले— हे प्रिये! हे कमलनयने! हे सुभगे! हे अनघे! हे देवि! हे सुश्रोणि! देखो, तुम धन्य हो और मैं भी धन्य हूँ, जो कि हम दोनों जगत्पति [शिव]-का साक्षात् दर्शन कर रहे हैं ॥ १० ॥

ये ही धाता, विधाता तथा लोकके प्रभु, ईश्वर, अनादि, सबको शरण देनेवाले, शान्त तथा छब्बीस तत्त्वोंके रूपमें भी ये ही अभिव्यक्त हो रहे हैं ॥ ११ ॥

ये सर्वज्ञ, सभी योगियोंके स्वामी, सभी प्राणियोंके एकमात्र नायक, सर्वभूतान्तरात्मा एवं सबको सदा सब कुछ देनेवाले हैं ॥ १२ ॥

हे पद्मे! निद्राको त्यागकर तथा श्वासको रोककर शान्त स्वभाववाले जन जिन्हें ध्यान लगाकर बुद्धिके द्वारा हृदयमें देखते हैं, वे ये ही हैं, आप उनको देखें ॥ १३ ॥

वेदतत्त्वज्ञ एवं स्थिर मनवाले योगीजन जिन्हें जानते हैं, वे ही सर्वव्यापक शिव अरूप होते हुए भी स्वरूप धारणकर यहाँ आ रहे हैं ॥ १४ ॥

अहो विचित्रं देवस्य चेष्टिं परमेष्ठिनः ।
यस्याख्यां ब्रुवतो नित्यं न देहः सोऽपि देहभृत् ॥ १५

तं दृष्ट्वा न पुनर्जन्म लभ्यते मानवैर्भुवि ।
सोऽयमायाति भगवांस्यम्बकः शशिभूषणः ॥ १६

पुण्डरीकदलायामे धन्ये मेऽद्य विलोचने ।
यद् दृश्यते महादेवो ह्याख्यां लक्ष्मि महेश्वरः ॥ १७

थिगिधिक्यदं तु देवानां परं दृष्ट्वा न शङ्करम् ।
लभ्यते यत्र निर्वाणं सर्वदुःखान्तकृत्तु यत् ॥ १८

देवत्वादशुभं किञ्चिद्देवलोके न विद्यते ।
दृष्ट्वापि सर्वे देवेशं यन्मुक्तिं न लभामहे ॥ १९

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशः संप्रहृष्टतनूरुहः ।
प्रणिपत्य महादेवमिदमाह वृषध्वजम् ॥ २०

विष्णुरुवाच

किमिदं देवदेवेन सर्वज्ञेन त्वया विभो ।
क्रियते जगतां धात्रा सर्वपापहराव्यय ॥ २१

क्रीडेयं तव देवेश त्रिलोचन महामते ।
किं कारणं विरूपाक्ष चेष्टिं ते स्मरादन ॥ २२

किमर्थं भगवञ्छम्भो भिक्षां चरसि शक्तिप ।
संशयो मे जगन्नाथ एष त्रैलोक्यराज्यद ॥ २३

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्तस्ततः शम्भुर्विष्णुना भैरवो हरः ।
प्रत्युवाचाद्दुतोतिः स विष्णुं हि विहसन्प्रभुः ॥ २४

भैरव उवाच

ब्रह्मणस्तु शिरश्छन्मंगुल्याग्रनखेन ह ।
तदधं प्रतिहन्तुं हि चराम्येतद् व्रतं शुभम् ॥ २५

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्तो महेशेन भैरवेण रमापतिः ।
स्मृत्वा किञ्चिन्नतशिराः पुनरेवमजिज्ञपत् ॥ २६

अहो, इन परमेष्ठीकी चेष्टा भी अद्भुत है कि जिनके चरित्रिका वर्णन करनेवाला मनुष्य शरीरधारी होकर भी विदेह हो जाता है एवं जिनका दर्शन करनेसे मनुष्योंको पुनः पृथ्वीपर जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता, वे ही त्र्यम्बक शशिभूषण भगवान् शिव आ रहे हैं ॥ १५-१६ ॥

हे लक्ष्मि ! श्वेत कमलदलके समान बड़े-बड़े ये मेरे नेत्र आज धन्य हुए, जो इनके द्वारा महेश्वर महादेवका दर्शन किया जा रहा है ॥ १७ ॥

देवताओंके उस पदको धिक्कार है, जिन्होंने शंकरका दर्शन नहीं किया, जो समस्त दुःखोंका नाश करनेवाले तथा मोक्षदायक हैं ॥ १८ ॥

यदि देवदेवेश शिवका दर्शनकर हम सभीने मुक्ति न प्राप्त की, तो देवलोकमें देवता होनेसे बढ़कर और कुछ भी अशुभ बात नहीं है ॥ १९ ॥

नन्दीश्वर बोले—[लक्ष्मीसे] इस प्रकार कहकर रोमांचित शरीरवाले विष्णु वृषभध्वज महादेवको प्रणाम करके यह कहने लगे— ॥ २० ॥

विष्णुजी बोले—हे विभो ! हे सर्वपापहर ! हे अव्यय ! हे सर्वज्ञ तथा संसारके धाता देवदेव ! आप यह क्या कर रहे हैं ? ॥ २१ ॥

हे देवेश ! हे त्रिलोचन ! हे महामते ! यह आपकी क्रीड़ा किसलिये हो रही है ? हे विरूपाक्ष ! हे स्मरादन ! आपकी इस प्रकारकी चेष्टाका क्या कारण है ? ॥ २२ ॥

हे भगवन् ! हे शम्भो ! हे शक्तिपते ! आप किस कारणसे भिक्षाटन कर रहे हैं ? हे जगन्नाथ ! हे त्रैलोक्यका राज्य देनेवाले ! मुझे यह सन्देह हो रहा है ॥ २३ ॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णु ने जब इस प्रकार शिवरूप भैरवसे कहा, तब अद्भुत लीला करनेवाले उन प्रभुने विष्णुजीसे हँसते हुए कहा— ॥ २४ ॥

भैरव बोले—मैंने अपने अँगुलीके नखाग्रसे ब्रह्मदेवका सिर काट लिया है, उसी पापको दूर करनेके निमित्त इस शुभ व्रतका अनुष्ठान कर रहा हूँ ॥ २५ ॥

नन्दीश्वर बोले—महेशरूप भैरवके इस प्रकार कहनेपर लक्ष्मीपति कुछ स्मरण करके सिर झुकाकर पुनः इस प्रकार कहने लगे— ॥ २६ ॥

विष्णुरुवाच

यथेच्छसि तथा क्रीड सर्वविघ्नापनोदक ।
मायया मां महादेव नाच्छादयितुमर्हसि ॥ २७
नाभीकमलकोशात् कोटिशः कमलासनाः ।
कल्पे कल्पे पुरा ह्यासंस्त्वन्नियोगबलाद्विभो ॥ २८

त्यज मायामिमां देव दुस्तरामकृतात्मभिः ।
ब्रह्मादयो महादेव मायया तव मोहिताः ॥ २९

यथावदनुगच्छामि चेष्टितं ते शिवापते ।
तवैवानुग्रहाच्छम्भो सर्वेश्वर सतांगते ॥ ३०

संहारकाले संप्राप्ने सदेवान्निखिलान्मुनीन् ।
लोकान्वर्णश्रिमवतो हरिष्यसि यदा हर ॥ ३१
तदा कृते महादेव पापं ब्रह्मवधादिकम् ।
पारतन्यं न ते शम्भो स्वरं क्रीडत्यतो भवान् ॥ ३२

अतीत ब्रह्मणां ह्यस्थां स्वक्कण्ठे तव भासते ।
तथाप्यनुगता शम्भो ब्रह्महत्या तवानघ ॥ ३३

कृत्वापि सुमहत्यापं यस्त्वां स्मरति मानवः ।
आधारं जगतामीश तस्य पापं विलीयते ॥ ३४

यथा तमो न तिष्ठेत सन्निधावंशुमालिनः ।
तथैव तव यो भक्तः पापं तस्य व्रजेत्क्षयम् ॥ ३५

यश्चिन्तयति पुण्यात्मा तव पादाम्बुजद्वयम् ।
ब्रह्महत्याकृतमपि पापं तस्य व्रजेत्क्षयम् ॥ ३६
तव नामानुरक्ता वाग्यस्य पुंसो जगत्पते ।
अप्यद्रिकूटतुलितं नैनस्तमनुबाधते ॥ ३७

परमात्मन्यरं धाम स्वेच्छाभिधृतविग्रह ।
कुतूहलं तवेशोदं कृपणाधीनतेश्वर ॥ ३८

अद्य धन्योऽस्मि देवेश यन्न पश्यन्ति योगिनः ।
पश्यामि तं जगन्मूर्ति परमेश्वरमव्ययम् ॥ ३९

विष्णुजी बोले— सभी विघ्नोंका नाश करनेवाले हे महादेव ! आपकी जैसी इच्छा हो, वैसी क्रीड़ा कीजिये, परंतु मुझे अपनी मायासे मोहित न करें ॥ २७ ॥
हे विभो ! आपकी आज्ञाशक्तिसे मेरे नाभीकमलके कोशसे कल्प-कल्पमें करोड़ों ब्रह्मा पहले उत्पन्न हो चुके हैं ॥ २८ ॥

हे देव ! आप पुण्यहीन मनुष्योंके लिये दुस्तर इस मायाका त्याग करें । हे महादेव ! आपकी मायासे ब्रह्मा आदि भी मोहित हो जाते हैं ॥ २९ ॥

सत्युरुषोंको गति देनेवाले हे पार्वतीपते ! हे शम्भो ! हे सर्वेश्वर ! मैं आपकी कृपासे ही आपकी समस्त चेष्टाएँ ठीक-ठीक जानता हूँ ॥ ३० ॥

हे हर ! संहारकालके उपस्थित होनेपर जब आप समस्त देवताओं, मुनियों एवं वर्णाश्रमी जनोंको उपसंहृत करेंगे, तब भी हे महादेव ! आपको ब्रह्मवध आदिका पाप नहीं लगेगा । हे शिव ! आप पराधीन नहीं हैं । अतः आप स्वतन्त्र होकर क्रीड़ा करते हैं ॥ ३१-३२ ॥

आपके कण्ठमें पूर्वमें उत्पन्न हो चुके ब्रह्माओंकी अस्थियोंकी माला भासित हो रही है, तब भी हे निष्पाप शिव ! आपके पीछे ब्रह्महत्या लगी है ॥ ३३ ॥

हे ईश ! जो मनुष्य महान् पाप करके भी आप जगदाधारका स्मरण करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार सूर्यके समीप अन्धकार टिक नहीं सकता, उसी प्रकार जो आपका भक्त है, उसका पाप विनष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥

जो पुण्यात्मा आपके दोनों चरणकमलोंका स्मरण करता है, उसका ब्रह्महत्याजनित पाप भी नष्ट हो जाता है । हे जगत्पते ! जिस मनुष्यकी वाणी आपके नाममें अनुरक्त है, पर्वतसमूहके समान भारी-से-भारी पाप भी उसे बाधित नहीं कर सकता है ॥ ३६-३७ ॥

हे परमात्मन् ! हे परमधाम ! स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले हे ईश्वर ! यह भक्तोंकी अधीनता भी आपका कुतूहलमात्र है ॥ ३८ ॥

हे देवेश ! आज मैं धन्य हूँ; क्योंकि योगीजन भी जिन्हें नहीं देख पाते हैं, उन जगन्मूर्ति अव्यय परमेश्वरका मैं दर्शन कर रहा हूँ ॥ ३९ ॥

अद्य मे परमो लाभस्त्वद्य मे मंगलं परम्।
तं दृष्ट्वामृततृप्तस्य तृणं स्वर्गापवर्गकम्॥ ४०

इत्थं वदति गोविन्दे विमला पद्मया तया।
मनोरथवती नाम भिक्षा पात्रे समर्पिता॥ ४१
भिक्षाटनाय देवोऽपि निरगात्परया मुदा।
अन्यत्रापि महादेवो भैरवश्चात्तविग्रहः॥ ४२

दृष्ट्वानुयायिनीं तां तु समाहूय जनार्दनः।
संप्रार्थयद् ब्रह्महत्यां विमुच्च त्वं त्रिशूलिनम्॥ ४३

ब्रह्महत्योवाच

अनेनापि मिषेणाहं संसेव्यामुं वृषध्वजम्।
आत्मानं पावयिष्यामि त्वपुनर्भवदर्शनम्॥ ४४
नन्दीश्वर उवाच

सा तत्याज न तत्पार्व व्याहृतापि मुरारिणा।
तमूचेऽथ हरिं शंभुः स्मेरास्यो भैरवो वचः॥ ४५

भैरव उवाच

त्वद्वाक्पीयूषपानेन तृप्तोऽस्मि बहुमानद।
स्वभावोऽयं हि साधूनां यत्त्वं वदसि मापते॥ ४६
वरं वृणीष्व गोविन्द वरदोऽस्मि तवानघ।
अग्रणीर्मम भक्तानां त्वं हरे निर्विकारवान्॥ ४७

नो माद्यन्ति तथा भैश्यैर्भिक्षवोऽप्यतिसंस्कृतैः।
यथा मानसुधापानैर्ननु भिक्षाटनज्वराः॥ ४८

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य वचः शंभोभैरवस्य परात्मनः।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा समवोचन्महेश्वरम्॥ ४९

विष्णुरुवाच

एष एव वरः श्लाघ्यो यदहं देवताधिपम्।
पश्यामि त्वां देवदेव मनोवाणीपथातिगम्॥ ५०

अद्भ्रेयं सुधादृष्टिरनया मे महोत्सवः।
अयत्ननिधिलाभोऽयं वीक्षणं हर ते सताम्॥ ५१

आज मुझे परम लाभ मिला और मेरा परम कल्याण हो गया। उन आपके दर्शनसे मैं अमृतपानकर तृप्त हुएके समान तृप्त हो गया। मुझे स्वर्ग और मोक्ष तृणके समान ज्ञात हो रहे हैं॥ ४०॥

गोविन्द विष्णुके इस प्रकार कहनेके पश्चात् उन महालक्ष्मीने अत्यन्त निर्मल मनोरथवती नामकी भिक्षा उनके पात्रमें दे दी। तब लीलासे भैरवरूपधारी वे महादेव भी परम प्रसन्न हो भिक्षाटनके लिये अन्यत्र चलनेको उद्यत हो गये॥ ४१-४२॥

उस समय विष्णुने उनके पीछे-पीछे जानेवाली ब्रह्महत्याको बुलाकर उससे प्रार्थना की कि तुम इन त्रिशूलधारी भैरवको छोड़ दो॥ ४३॥

ब्रह्महत्या बोली—जिनका दर्शन करनेसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती, ऐसे वृषभध्वजकी सेवाकर इस बहानेसे मैं भी अपनेको पवित्र कर लूँगी॥ ४४॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णुके कहनेसे भी जब ब्रह्महत्याने भैरवका पीछा नहीं छोड़ा, तब भैरव शम्भुने मुसकराकर हरिसे यह वचन कहा—॥ ४५॥

भैरव बोले—हे बहुमानद! आपके वचनामृतका पानकर मैं तृप्त हो गया। हे लक्ष्मीके पति! सज्जनोंके स्वभावके अनुरूप ही आप वचन बोल रहे हैं॥ ४६॥

हे गोविन्द! तुम वर माँगो। हे निष्पाप! मैं तुम्हें वर देनेवाला हूँ। हे विकाररहित हरे! तुम मेरे भक्तोंमें अग्रगण्य रहोगे॥ ४७॥

भिक्षाटनरूपी ज्वरसे पीड़ित भिक्षु मानसुधाका पानकर जैसी तृप्ति प्राप्त करते हैं, वैसी तृप्ति अतिसंस्कृत भिक्षाओंसे भी नहीं प्राप्त करते हैं॥ ४८॥

नन्दीश्वर बोले—परमात्मा शम्भुके अवतार भैरवके इन वचनोंको सुनकर विष्णु परम प्रसन्न होकर महेश्वरसे बोले—॥ ४९॥

विष्णु बोले—हे देवदेव! मेरे लिये यही वह प्रशंसनीय है, जिससे कि मैं [आज] मन और वाणीसे अगोचर देवताओंके स्वामी आपका दर्शन प्राप्त कर रहा हूँ॥ ५०॥

आपकी जो अमृतमयी पूर्ण दृष्टि [मुझपर] पड़ रही है, इसीसे मुझे महान् हर्ष हो रहा है। हे हर! सज्जनोंके लिये आपका दर्शन बिना यत्के प्राप्त निधिके समान है॥ ५१॥

अवियोगोऽस्तु मे देव त्वदङ्गियुगलेन वै।
एष एव वरः शंभो नान्यं कञ्चिद् वृणे वरम्॥ ५२

श्रीभैरव उवाच

एवं भवतु ते तात यत्त्वयोक्तं महामते।
सर्वेषामपि देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि॥ ५३

नन्दीश्वर उवाच

अनुगृहेति दैत्यारिं केंद्राद्रिभुवने चरन्।
भेजेऽविमुक्तनगरीं नाम्ना वाराणसीं पुरीम्॥ ५४

क्षेत्रे प्रविष्टमात्रेऽथ भैरवे भीषणाकृतौ।
हाहेत्युक्त्वा ब्रह्महत्या पातालं चाविशत्तदा॥ ५५

कपालं ब्रह्मणः सद्यो भैरवस्य करांबुजात्।
पपात भुवि तत्तीर्थमभूत्कापालमोचनम्॥ ५६

कपालं ब्रह्मणो रुद्रः सर्वेषामेव पश्यताम्।
हस्तात्पतन्तमालोक्य ननर्त परया मुदा॥ ५७

विधेः कपालं नामुंचत्करमत्यन्तदुस्सहम्।
परस्य भ्रमतः क्वापि तत्काशयां क्षणतोऽपतत्॥ ५८

शूलिनो ब्रह्मणो हत्या नापैति स्म च या क्वचित्।
सा काशयां क्षणतो नष्टा तस्मात्सेव्या हि काशिका॥ ५९

कपालमोचनं काशयां यः स्मरेत्तीर्थमुत्तमम्।
इहान्यत्रापि यत्पापं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति॥ ६०

आगत्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः।
तर्पयित्वा पितृन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ६१

कपालमोचनं तीर्थं पुरस्कृत्वा तु भैरवः।
तत्रैव तस्थौ भक्तानां भक्षयन्नधसन्ततिम्॥ ६२

कृष्णाष्टम्यां तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः।
आविर्भूत सल्लीलो भैरवात्मा सतां प्रियः॥ ६३

हे देव! आपके चरणयुगलसे मेरा वियोग न हो,
हे शम्भो! यही मेरे लिये वरदान है। मैं किसी अन्य
वरका वरण नहीं करता हूँ॥ ५२॥

श्रीभैरव बोले—महामते तात! जैसा आपने
कहा है, वैसा ही हो। आप सभी देवताओंको वर
देनेवाले होंगे॥ ५३॥

नन्दीश्वर बोले—[ब्रह्माण्डके] भुवनोंसहित
केन्द्रभूत सुमेरुपर्वतपर विचरण करते हुए दैत्यशत्रु
विष्णुको इस प्रकार अनुगृहीतकर भैरव विमुक्तनगरी
वाराणसीपुरीमें जा पहुँचे॥ ५४॥

भयंकर आकृतिवाले भैरवके उस क्षेत्रमें प्रवेश
करनेमात्रसे ही ब्रह्महत्या उसी समय हाहाकार करके
पातालमें चली गयी॥ ५५॥

उसी समय भैरवके हस्तकमलसे ब्रह्माका कपाल
पृथिवीपर गिर पड़ा। तबसे वह तीर्थ कपालमोचन
नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ५६॥

अपने हाथसे ब्रह्माके कपालको गिरता हुआ
देखकर रुद्र सबके सामने परमानन्दसे नाचने लगे॥ ५७॥

अत्यन्त दुस्सह जो ब्रह्माजीका कपाल [अन्य
क्षेत्रोंमें] भ्रमण करते हुए परमेश्वरके हाथसे कहीं नहीं छूट
पाया था, वह काशीमें क्षणमात्रमें छूटकर गिर पड़ा। शूल
धारण करनेवाले शिवकी जो ब्रह्महत्या कहीं भी नहीं दूर
हो सकी, वह काशीमें आते ही क्षणभरमें नष्ट हो गयी,
इसलिये काशीका ही सेवन करना चाहिये॥ ५८-५९॥

जो मनुष्य काशीमें [स्थित] कपालमोचन
नामक उत्तम तीर्थका स्मरण करता है, उसका यहाँ
अथवा अन्यत्रका किया हुआ पाप भी शीघ्र ही नष्ट
हो जाता है॥ ६०॥

इस श्रेष्ठ तीर्थमें आकर विधानके अनुसार
स्नानकर देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे
ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है॥ ६१॥

कपालमोचन नामक तीर्थको समादृतकर भैरव
भक्तोंके पापसमूहका भक्षण करते हुए वर्हीपर विराजमान
हो गये॥ ६२॥

सुन्दर लीला करनेवाले, सज्जनोंके प्रिय, भैरवात्मा
परमेश्वर शिव मार्गशीर्षमासके कृष्णपक्षकी अष्टमी
तिथिको आविर्भूत हुए॥ ६३॥

मार्गशीषसिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ।
उपोष्य जागरं कुर्वन्महापापैः प्रमुच्यते ॥ ६४

अन्यत्रापि नरो भक्त्या तद् व्रतं यः करिष्यति।
सजागरं महापापैर्मुक्तो यास्यति सद्गतिम् ॥ ६५

अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतं जन्तुभिस्त्वधम्।
तत्पर्वं विलयं याति कालभैरवदर्शनात् ॥ ६६
कालभैरवभक्तानां पातकानि करोति यः।
स मूढो दुःखितो भूत्वा पुनर्दुर्गतिमान्युयात् ॥ ६७
विश्वेश्वरेऽपि ये भक्ता नो भक्ताः कालभैरवे।
ते लभन्ते महादुःखं काश्यां चैव विशेषतः ॥ ६८

वाराणस्यामुषित्वा यो भैरवं न भजेन्नरः।
तस्य पापानि वर्द्धन्ते शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ६९

कालराजं न यः काश्यां प्रतिभूताष्टमीकुजम्।
भजेत्तस्य क्षयं पुण्यं कृष्णपक्षे यथा शशी ॥ ७०

श्रुत्वाख्यानमिदं पुण्यं ब्रह्महत्यापनोदकम्।
भैरवोत्पत्तिसंज्ञं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७१

बन्धनागारसंस्थोऽपि प्राप्तोऽपि विपदं पराम्।
प्रादुर्भावं भैरवस्य श्रुत्वा मुच्येत सङ्कटात् ॥ ७२

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भैरवावतारलीलावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भैरवावतारलीलावर्णन
नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः नृसिंहचरित्रवर्णन

नन्दीश्वर उवाच
विध्वंसी दक्षयज्ञस्य वीरभद्राह्यः प्रभोः।
अवतारश्च विज्ञेयः शिवस्य परमात्मनः ॥ १

जो मनुष्य मार्गशीषमासके कृष्णपक्षकी अष्टमीतिथिको कालभैरवकी सन्निधिमें उपवास करके जागरण करता है, वह महान् पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ६४ ॥

जो मनुष्य अन्यत्र भी भक्तिपूर्वक जागरणके सहित इस व्रतको करेगा, वह महापापोंसे मुक्त होकर सदगतिको प्राप्त कर लेगा ॥ ६५ ॥

प्राणीके द्वारा लाखों जन्मोंमें किया गया जो पाप है, वह सभी कालभैरवके दर्शन करनेसे लुप्त हो जाता है। जो कालभैरवके भक्तोंका अपराध करता है, वह मूर्ख दुःखित होकर पुनः-पुनः दुर्गतिको प्राप्त करता रहता है ॥ ६६-६७ ॥

जो काशीमें रहकर विश्वेश्वरमें तो भक्ति करते हैं, परंतु कालभैरवकी भक्ति नहीं करते, वे विशेषरूपसे महादुःखको प्राप्त करते हैं ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य वाराणसीमें रहकर [भी] कालभैरवका भजन नहीं करता है, उसके पाप शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ते हैं ॥ ६९ ॥

जो मंगलवार, चतुर्दशी तथा अष्टमीके दिन काशीमें कालराजका भजन नहीं करता है, उसका पुण्य कृष्णपक्षके चन्द्रमाके समान क्षीण हो जाता है ॥ ७० ॥

ब्रह्महत्याको दूर करनेवाले, भैरवोत्पत्तिसंज्ञक इस पवित्र आख्यानको सुनकर प्राणी सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ७१ ॥

कारागारमें पड़ा हुआ अथवा भयंकर कष्टमें फँसा हुआ प्राणी भी भैरवकी उत्पत्ति [के आख्यान]-को सुनकर संकटसे छूट जाता है ॥ ७२ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] दक्ष प्रजापतिके यज्ञको विध्वंस करनेवाले वीरभद्र नामक [गणाध्यक्ष]-को परमात्मा प्रभु शिवजीका अवतार

सतीचरिते कथितं चरितं तस्य कृत्स्नशः ।
श्रुतं त्वयापि बहुधा नातः प्रोक्तं सुविस्तरात् ॥ २

अतः परं मुनिश्रेष्ठं भवत्नेहाद् ब्रवीमि तत् ।
शार्दूलाख्यावतारं च शङ्करस्य प्रभोः शृणु ॥ ३

सदाशिवेन देवानां हितार्थं रूपमद्भुतम् ।
शारभं च धृतं दिव्यं ज्वलज्ज्वालासमप्रभम् ॥ ४

शिवावतारा अमिताः सद्भक्तहितकारकाः ।
सद्गुर्ख्या न शक्यते कर्तुं तेषां च मुनिसत्तमाः ॥ ५

आकाशस्य च ताराणां रेणुकानां क्षितेस्तथा ।
आसाराणां च वृद्धेन बहुकल्पैः कदापि हि ॥ ६
सद्गुर्ख्या विशक्यते कर्तुं सुप्राज्ञैर्बहुजन्मभिः ।
न वै शिवावताराणां सत्यं जानीहि मद्भूचः ॥ ७
तथापि च यथाबुद्ध्या कथयामि यथाश्रुतम् ।
चरित्रं शारभं दिव्यं परमैश्वर्यसूचकम् ॥ ८

जयश्च विजयश्चैव भवद्धिः शापितौ यदा ।
तदा दितिसुतौ द्वौ तावभूतां कश्यपान्मुने ॥ ९

हिरण्यकशिपुश्चाद्यो हिरण्याक्षोऽनुजो बली ।
देवर्षिपार्षदौ जातौ तौ द्वावपि दितेः सुतौ ॥ १०

पृथ्व्युद्धरे विधात्रा वै प्रार्थितो हि पुरा प्रभुः ।
हिरण्याक्षं जघानासौ विष्णुर्वाराहरूपधृक् ॥ ११

तं श्रुत्वा भ्रातरं वीरं निहतं प्राणसन्निभम् ।
चुकोप हरयेऽतीव हिरण्यकशिपुर्मुने ॥ १२

वर्षाणामयुतं तप्त्वा ब्रह्मणो वरमाप सः ।
न कश्चिचन्मारयेन्मां वै त्वत्सृष्टाविति तुष्टतः ॥ १३

शोणिताख्यपुरं गत्वा देवानाहूय सर्वतः ।
त्रिलोकीं स्ववशे कृत्वा चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ १४

जानना चाहिये, उनका सम्पूर्ण चरित सतीके चरित्रमें कहा गया है। आपने भी उसे अनेक प्रकारसे सुन लिया है, इसीलिये यहाँ विस्तारसे नहीं कहा गया ॥ १-२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इसके पश्चात् आपके स्नेहवश अब प्रभु शंकरके शार्दूल नामक अवतारको कह रहा हूँ उसको सुनिये ॥ ३ ॥

भगवान् सदाशिवने देवताओंके कल्याणार्थ जलती हुई अग्निके समान कान्तियुक्त अत्यन्त अद्भुत शरभ रूपको धारण किया था ॥ ४ ॥

हे मुनिसत्तमो! श्रेष्ठ भक्तोंके हितसाधक अपरिमित शिवावतार हुए हैं, उनकी संख्याकी गणना नहीं की जा सकती है ॥ ५ ॥

आकाशके तारोंकी, पृथ्वीके धूलिकणोंकी तथा वर्षाकी बूँदोंकी गणना अनेक कल्पोंमें अनेक जन्म लेकर कोई बुद्धिमान् पुरुष भले ही कर ले, परंतु शिवजीके अवतारोंकी गणना कदापि नहीं की जा सकती है, मेरा यह कथन सत्य समझें। फिर भी जैसा मैंने सुना है, अपनी बुद्धिके अनुसार दिव्य तथा परम ऐश्वर्यसूचक उस शरभ-चरित्रको कह रहा हूँ ॥ ६—८ ॥

हे मुने! जब आपलोगोंद्वारा जय-विजय [नामक द्वारपालों]-को शाप दिया गया, तब वे दोनों कश्यपके द्वारा दितिके गर्भसे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥

प्रथम हिरण्यकशिपु तथा छोटा भाई महाबली हिरण्याक्ष था, वे दोनों पहले भगवान् विष्णुके देवर्षिपार्षद थे, जो [आपलोगोंसे शापित होकर] दितिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए ॥ १० ॥

पूर्वकालमें पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु ब्रह्माजीद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वध किया ॥ ११ ॥

हे मुने! अपने प्राणोंके समान [प्रिय] उस वीर भाईको मारा गया सुनकर हिरण्यकशिपुने विष्णुपर अत्यधिक क्रोध किया ॥ १२ ॥

तत्पश्चात् हिरण्यकशिपुने दस हजार वर्षतक तप करके सन्तुष्ट हुए ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त किया कि आपकी सृष्टिमें कोई भी मुझे न मार सके ॥ १३ ॥

वह हिरण्यकशिपु शोणितपुर नामक पुरमें जाकर चारों तरफसे देवताओंको बुलाकर त्रिलोकीको अपने वशमें करके निष्कण्टक राज्य करने लगा ॥ १४ ॥

देवर्षिकदनं चक्रे सर्वधर्मविलोपकः।
द्विजपीडाकरः पापी हिरण्यकशिपुमुने॥ १५

प्रहादेन स्वपुत्रेण हरिभक्तेन दैत्यराद्।
यदा विद्वेषमकरोद्धरिवैरि विशेषतः॥ १६

सभास्तम्भात्तदा विष्णुरभूदाविद्वृतं मुने।
सन्ध्यायां क्रोधमापन्नो नृसिंहवपुषा ततः॥ १७

सर्वथा मुनिशार्दूल करालं नृहरेवपुः।
प्रजज्वालातिभयदं त्रासयन्दैत्यसत्तमान्॥ १८

नृसिंहेन तदा दैत्या निहताश्वैव तत्क्षणम्।
हिरण्यकशिपुश्चाथ युद्धं चक्रे सुदारुणम्॥ १९

महायुद्धं तयोरासीन्मुहूर्तं मुनिसत्तमाः।
विकरालं च भयदं सर्वेषां रोमहर्षणम्॥ २०

सायं चकर्ष देवेशो देहल्यां दैत्यपुङ्गवम्।
व्योम्नि देवेषु पश्यत्सु नृसिंहश्च रमेश्वरः॥ २१

अथोत्संगे च तं कृत्वा नखैस्तदुदरं द्रुतम्।
विदार्य मारयामास पश्यतां त्रिदिवौकसाम्॥ २२

हते हिरण्यकशिपौ नृसिंहेनैव विष्णुना।
जगत्स्वास्थ्यं तदा लेभे न वै देवा विशेषतः॥ २३

देवदुन्दुभयो नेदुः प्रहादो विस्मयं गतः।
लक्ष्मीश्च विस्मयं प्राप्ता रूपं दूष्ट्वाऽद्भुतं हरेः॥ २४

हतो यद्यपि दैत्येन्द्रस्तथापि न परं सुखम्।
ययुर्देवा नृसिंहस्य ज्वाला सा न निर्वर्तिता॥ २५

तया च व्याकुलं जातं सर्वं चैव जगत्पुनः।
देवाश्च दुःखमापन्नाः किं भविष्यति वा पुनः॥ २६

इत्येवं च वदन्तस्ते भयाद् दूरमुपस्थिताः।
नृसिंहक्रोधजज्वालाव्याकुलाः पद्मभूमुखाः॥ २७

प्रहादं प्रेषयामासुस्तच्छान्त्यै निकटं हरेः।
सर्वान्मिलित्वा प्रहादः प्रार्थितो गतवांस्तदा॥ २८

हे मुने! सभी धर्मोंको नष्ट करनेवाला तथा ब्राह्मणोंको पीड़ित करनेवाला पापी हिरण्यकशिपु देवताओं तथा ऋषियोंको सताने लगा॥ १५॥

हे मुने! तदनन्तर विष्णुवैरी दैत्यराजने अपने हरिभक्त पुत्र प्रहादसे भी जब विशेषरूपसे द्वेष करना प्रारम्भ कर दिया, तब सभामण्डपके खम्भेसे सन्ध्याके समय अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान् विष्णु नृसिंहशरीरसे प्रकट हुए॥ १६-१७॥

हे मुनिशार्दूल! भगवान् नृसिंहका विकराल तथा भयदायक शरीर सब प्रकारसे महादैत्योंको सन्त्रस्त करता हुआ अग्निके समान जाज्वल्यमान हो उठा॥ १८॥

नृसिंहने उसी क्षण सभी दैत्योंका संहार कर डाला और तब [दैत्योंके संहारको देखकर] हिरण्यकशिपुने उनसे अत्यन्त भयानक युद्ध किया॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मुहूर्तभरतक उन दोनोंमें विकराल, सबको भयभीत करनेवाला तथा लोमहर्षक युद्ध होता रहा॥ २०॥

सायंकाल होनेपर लक्ष्मीपति देवेश नृसिंहने आकाशमें स्थित देवताओंके देखते-देखते हिरण्यकशिपुको देहलीपर खींच लिया और अपनी गोदमें उसे लेकर नखोंसे शीघ्र ही स्वर्गनिवासियोंके समक्ष उसका उदर विदीर्णकर मार डाला॥ २१-२२॥

इस प्रकार नृसिंहरूपधारी विष्णुके द्वारा हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर जगत्में चारों तरफ शान्ति स्थापित हो गयी, परंतु इससे देवताओंको विशेष आनन्द प्राप्त नहीं हुआ॥ २३॥

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, प्रहाद आश्चर्यचकित हो गये, विष्णुके उस अद्भुत रूपको देखकर लक्ष्मीजी भी अत्यन्त विस्मित हो गयी॥ २४॥

यद्यपि हिरण्यकशिपु मार डाला गया, किंतु भगवान् नृसिंहके क्रोधकी ज्वाला शान्त नहीं हुई, इसी कारण देवताओंको उत्तम सुख प्राप्त नहीं हो रहा था॥ २५॥

उस ज्वालासे सम्पूर्ण संसार व्याकुल हो उठा, देवता भी दुखी हुए। 'अब क्या होगा'—ऐसा कहते हुए वे भयके कारण दूर चले गये। नृसिंहके क्रोधसे उत्पन्न ज्वालासे व्याकुल हुए ब्रह्मा आदिने उस ज्वालाकी शान्तिहेतु प्रहादको श्रीहरिके पास भेजा। सभीने मिलकर जब प्रार्थना की, तब प्रहाद वहाँ गये॥ २६-२८॥

उरसाऽलिंगयामास तं नृसिंहः कृपानिधिः ।
हृदयं शीतलं जातं रुद्ध्वाला न निवर्त्तिता ॥ २९

तथापि न निवृत्ता रुद्ध्वाला नरहरेर्यदा ।
दुःखं प्राप्तास्ततो देवाः शङ्करं शरणं ययुः ॥ ३०

तत्र गत्वा सुराः सर्वे ब्रह्माद्या मुनयस्तथा ।
शङ्करं स्तवयामासुलोकानां सुखहेतवे ॥ ३१

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ।
पाहि नः शरणापन्नान्सर्वान्देवाञ्चगन्ति च ॥ ३२

नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु सदाशिव ।
पूर्वं दुःखं यदा जातं तदा ते रक्षिता वयम् ॥ ३३

समुद्रो मथितश्चैव रत्नानां च विभागशः ।
कृते देवैस्तदा शंभो गृहीतं गरलं त्वया ॥ ३४

रक्षिताः स्म तदा नाथ नीलकण्ठ इति श्रुतः ।
विषं पास्यसि नो चेत्वं भस्मीभूतास्तदाखिलाः ॥ ३५

प्रसिद्धं च यदा यस्य दुःखं च जायते प्रभो ।
तदा त्वनाममात्रेण सर्वं दुःखं विलीयते ॥ ३६

इदानीं नृहरिज्वालापीडितान्नः सदाशिव ।
तां त्वं शमयितुं देव शक्तोऽसीति सुनिश्चितम् ॥ ३७

नन्दीश्वर उवाच

इति स्तुतस्तदा देवैः शङ्करो भक्तवत्सलः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्माऽभयं दत्त्वा परं प्रभुः ॥ ३८

शङ्कर उवाच

स्वस्थानं गच्छत सुराः सर्वे ब्रह्मादयोऽभयाः ।
शमयिष्यामि यदुःखं सर्वथा हि व्रतं मम ॥ ३९

गतो मच्छरणं यस्तु तस्य दुःखं क्षयं गतम् ।
मत्प्रियः शरणापन्नः प्राणेभ्योऽपि न संशयः ॥ ४०

कृपानिधि नृसिंहने उन्हें [अपने] हृदयसे लगा लिया, जिससे उनका हृदय तो शीतल हो गया, परंतु क्रोधकी ज्वाला शान्त न हुई ॥ २९ ॥

इसपर भी जब नृसिंहके क्रोधकी ज्वाला शान्त नहीं हुई, तब दुःखको प्राप्त हुए देवता [भगवान्] शंकरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥

वहाँ जाकर ब्रह्मा आदि सभी देवता तथा मुनिगण संसारके सुखके लिये शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ३१ ॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! शरणमें आये हुए हम सभी देवताओं तथा लोकोंकी रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥

हे सदाशिव! आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है। पूर्वकालमें जब भी हमलोगोंपर दुःख पड़ा, तब आपने ही हमलोगोंकी रक्षा की है। जब समुद्रमन्थन किया गया और देवताओंके द्वारा रत्नोंको आपसमें बाँट लिया गया, हे शम्भो! तब आपने विषको ही ग्रहण कर लिया। हे नाथ! उस समय आपने हमारी रक्षा की और 'नीलकण्ठ' इस नामसे प्रसिद्ध हुए। यदि आप विषपान न करते, तो सभी लोग भस्म हो जाते ॥ ३३—३५ ॥

हे प्रभो! यह प्रसिद्ध ही है कि जब जिस किसीको दुःख प्राप्त होता है तब आपके नाममात्रके स्मरणसे ही उसका समस्त दुःख दूर हो जाता है ॥ ३६ ॥

हे सदाशिव! इस समय नृसिंहके क्रोधकी ज्वालासे पीड़ित हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। हे देव! आप उसे शान्त करनेमें समर्थ हैं—यह पूर्णरूपसे निश्चित है ॥ ३७ ॥

नन्दीश्वर बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भक्तवत्सल भगवान् शिव उन्हें परम अभय प्रदान करके प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे— ॥ ३८ ॥

शंकर बोले—हे ब्रह्मादि देवताओ! आपलोग निडर होकर अपने-अपने स्थानपर जायें, आपलोगोंका जो दुःख है, उसे मैं सब प्रकारसे दूर करूँगा—यह मेरा व्रत है ॥ ३९ ॥

जो भी मेरी शरणमें आता है, उसका दुःख नष्ट हो जाता है; क्योंकि शरणागत मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ४० ॥

नन्दीश्वर उवाच
 इति श्रुत्वा तदा देवा ह्यानन्दं परमं गताः ।
 यथागतं तथा जग्मुः स्मरन्तः शङ्करं मुदा ॥ ४१
 इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शार्दूलावतारे नृसिंहचरितवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥
 "इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके शार्दूल-अवतारमें
 नृसिंहचरितवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः

भगवान् नृसिंह और वीरभद्रका संवाद

नन्दीश्वर उवाच
 एवमध्यर्थितो देवैर्मतिं चक्रे कृपालयः ।
 महातेजो नृसिंहाख्यं संहर्तुं परमेश्वरः ॥ १
 तदूर्ध्वं स्मृतवान् रुद्रो वीरभद्रं महाबलम् ।
 आत्मनो भैरवं रूपं प्राह प्रलयकारकम् ॥ २

आजगाम ततः सद्यो गणानामग्रणीर्हसन् ।
 साङ्घासैर्गणवरैरुत्पतद्विरितस्ततः ॥ ३

नृसिंहरूपैरत्युग्रैः कोटिभिः परिवारितः ।
 माद्यद्विरभितो वीरैर्नृत्यद्विश्वं मुदान्वितैः ॥ ४

क्रीडद्विश्वं महावीरैर्ब्रह्माद्यैः कन्दुकैरिव ।
 अदृष्टपूर्वैर्न्यैश्च वेष्टितो वीरवन्दितः ॥ ५

कल्पान्तज्वलनज्वालो विलसल्लोचनत्रयः ।
 अशस्त्रो हि जटाजूटी ज्वलद् बालेन्दुमण्डितः ॥ ६
 बालेन्दुवलयाकारतीक्षणदंष्ट्राङ्कुरद्वयः ।
 आखण्डलधनुः खण्डसन्निभभूलतान्वितः ॥ ७
 महाप्रचण्डहुङ्कारबधिरीकृतदिङ्कुमुखः ।
 नीलमेघाङ्गनशयामो भीषणः श्वश्रुलोऽद्भुतः ॥ ८
 वाद्यखण्डमखण्डाभ्यां भ्रामयन्स्त्रिशिखं मुहुः ।
 वीरभद्रोऽपि भगवान्वीरशक्तिविजृम्भितः ॥ ९

नन्दीश्वर बोले—तब यह सुनकर वे देवता परम आनन्दित हुए और वे जैसे आये थे, प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका स्मरण करते हुए वैसे ही चले गये ॥ ४१ ॥
 "इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके शार्दूल-अवतारमें
 नृसिंहचरितवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनकुमार!] देवताओंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब कृपानिधि परमेश्वरने नृसिंह नामक महातेजको संहत करनेका निश्चय किया ॥ १ ॥

इसके बाद रुद्रने महाबलवान् प्रलयकारी एवं अपने भैरवरूप वीरभद्रका स्मरण किया और उनसे कहा ॥ २ ॥

तब तत्काल ही अद्वृहास करते हुए श्रेष्ठ गणोंसे परिवेष्टित गणाग्रणी वीरभद्र वहाँ आ पहुँचे । वीरभद्रके वे गण इधर-उधर उछल रहे थे, उनमेंसे करोड़ों गण अति उग्र नृसिंहरूप धारण किये हुए थे । कुछ आनन्दित हो नाचते हुए वीरभद्रकी परिक्रमा कर रहे थे । कुछ उन्मत्त थे, और कुछ ब्रह्मादि देवताओंसे कन्दुकके समान क्रीड़ा कर रहे थे । कुछ ऐसे भी थे, जो सर्वथा अज्ञात थे । इस प्रकारके कल्पान्तकी अग्निके समान प्रज्वलित त्रिनेत्रसे युक्त, मस्तकपर जटाजूट एवं बालचन्द्रमा तथा अल्प शस्त्रोंको धारण किये हुए जाज्वल्यमान वीरभद्र अपने गणोंसे वन्दित हो रहे थे ॥ ३—५ ॥

उनके आगेके तीक्ष्ण दन्ताग्र बालचन्द्राकार तथा दोनों भौंहें इन्द्रधनुषके खण्डके समान प्रतीत हो रही थीं । वीरभद्रके प्रचण्डतम हुंकारसे दिशाएँ बधिर हो रही थीं । उनका रूप काले बादल और काजलके समान कृष्णवर्ण और भयावह था, उनके मुखपर दाढ़ी एवं मूँछें थीं । अद्भुत स्वरूपवाले वे अपनी अखण्ड भुजाओंसे वाद्यखण्ड (वाद्यदण्ड)-की भाँति बार-बार त्रिशूल घुमा रहे थे । इस प्रकार अपनी वीरोचित

स्वयं विज्ञापयामास किमत्र स्मृतिकारणम् ।
आज्ञापय जगत्स्वामिन् प्रसादः क्रियतां मयि ॥ १० ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य महेशानो वीरभद्रोक्तमादरात् ।
विलोक्य वचनं प्रीत्या प्रोवाच खलदण्डधृक् ॥ ११ ॥

शङ्कर उवाच

अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरवम् ।
ज्वलितः स नृसिंहाग्निः शमयैनं दुरासदम् ॥ १२ ॥

सान्त्वयन् बोधयादौ तं तेन किन्नोपशास्यति ।
ततो मत्परमं भावं भैरवं सम्प्रदर्शय ॥ १३ ॥

सूक्ष्मं संहत्य सूक्ष्मेण स्थूलं स्थूलेन तेजसा ।
वशमानय वहिं त्वं वीरभद्र ममाज्ञया ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्यादिष्टो गणाध्यक्षो प्रशान्तं वपुरास्थितः ।
जगाम रंहसा तत्र यत्रास्ते नरकेसरी ॥ १५ ॥
ततः सम्बोधयामास वीरभद्रो हरो हरिम् ।
उवाच वाक्यमीशानः पितापुत्रमिवौरसम् ॥ १६ ॥

वीरभद्र उवाच

जगत्सुखाय भगवन्नवतीर्णोऽसि माधव ।
स्थित्यर्थं त्वं प्रयुक्तोऽसि परेशः परमेष्ठिना ॥ १७ ॥
जनुचक्रं भगवता प्रच्छन्नं मत्स्यरूपिणा ।
पुच्छेनैव समाबद्ध भ्रमन्नेकार्णवे पुरा ॥ १८ ॥

बिभर्षि कूर्मरूपेण वाराहेणोद्धता मही ।
अनेन हरिरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ १९ ॥

वामनेन बलिर्बद्धस्त्वया विक्रमता पुनः ।
त्वमेव सर्वभूतानां प्रभवः प्रभुरव्ययः ॥ २० ॥

शक्तिसहित भगवान् वीरभद्र शिवजीके समीप आकर स्वयं बोले—हे देव! यहाँ आपद्वारा मैं किस उद्देश्यसे स्मरण किया गया हूँ? हे जगत्के स्वामिन्! शीघ्र मेरे ऊपर प्रसन्न होकर आज्ञा प्रदान कीजिये ॥ ६—१० ॥

नन्दीश्वर बोले—वीरभद्रके आदरपूर्वक कहे गये इस वचनको सुनकर दुष्टोंको दण्ड देनेवाले शिवजी उनकी ओर देखकर प्रीतिपूर्वक कहने लगे— ॥ ११ ॥

शंकर बोले—[हे वीरभद्र!] असमयमें देवताओंको घोर भय उत्पन्न हो गया है। नृसिंहकी असह्य कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी है, तुम इस कोपाग्निको शान्त करो ॥ १२ ॥

पहले सान्त्वना देते हुए उन्हें समझाओ कि आप क्यों नहीं शान्त होते हैं। तब भी यदि वे शान्त न हों तो तुम मेरे परम भैरवरूपको दिखाओ ॥ १३ ॥

हे वीरभद्र! तुम सूक्ष्म तेजसे सूक्ष्मका और स्थूल तेजसे स्थूलका संहरण करके मेरी आज्ञासे अग्निको वशमें करो ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीकी इस आज्ञाको स्वीकार गणाध्यक्ष वीरभद्रने परमशान्त रूप धारण कर लिया और जहाँ नृसिंह थे, वहाँ वे अतिशीघ्र जा पहुँचे ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् शिवरूप वीरभद्रने नृसिंहरूपी विष्णुको समझाया और उन महेश्वरने इस प्रकार वचन कहा, जैसे पिता अपने औरस पुत्रसे बात करता है ॥ १६ ॥

वीरभद्र बोले—हे भगवन्! हे माधव! आप संसारके कल्याणके निमित्त अवतीर्ण हुए हैं। परमेष्ठीने आप परमेश्वरको पालनके लिये नियुक्त किया है ॥ १७ ॥

पूर्व समयमें जब प्रलय हुआ था, उस समय भगवन्! आपने मत्स्यका रूप धारणकर प्राणियों [से युक्त नौका]-को अपनी पूँछमें बाँधकर [सागरमें] भ्रमण करते हुए उनकी रक्षा की थी। इसी प्रकार आपने कूर्मस्वरूपसे [मन्दराचलको] धारण किया एवं वराहावतारद्वारा पृथ्वीका उद्धार किया था और [इस समय भी आपने] इस नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुका वध किया है। इसी प्रकार आपने वामनावतार ग्रहणकर [दैत्यराज] बलिको तीन पैरमें तीनों लोकों और उसके शरीरको नापकर बाँध लिया। आप ही सभी प्राणियोंके उत्पत्तिस्थान और अविनाशी प्रभु हैं ॥ १८—२० ॥

यदा यदा हि लोकस्य दुःखं किञ्चित्प्रजायते ।
 तदा तदावतीर्णस्त्वं करिष्यसि निरामयम् ॥ २१
 नाधिकस्त्वत्समोऽप्यस्ति हरे शिवपरायणः ।
 त्वया वेदाश्च धर्माश्च शुभमार्गं प्रतिष्ठिताः ॥ २२
 यदर्थमवतारोऽयं निहतः स हि दानवः ।
 हिरण्यकशिपुश्चैव प्रह्लादोऽपि सुरक्षितः ॥ २३
 अतीव घोरं भगवन्नरसिंहवपुस्तव ।
 उपसंहर विश्वात्मस्त्वमेव मम सन्निधौ ॥ २४
 नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः शान्तया गिरा ।
 ततोऽधिकं महाघोरं कोपं चक्रे महामदः ॥ २५
 उवाच च महाघोरं कठिनं वचनं तदा ।
 वीरभद्रं महावीरं दंष्ट्राभिर्भीषयन्मुने ॥ २६
 नृसिंह उवाच

आगतोऽसि यतस्तत्र गच्छ त्वं मा हितं वद ।
 इदानीं संहरिष्यामि जगदेतच्चराचरम् ॥ २७
 संहर्तुर्न हि संहारः स्वतो वा परतोऽपि वा ।
 शासनं मम सर्वत्र शास्ता कोऽपि न विद्यते ॥ २८
 मत्प्रसादेन सकलमभयं हि प्रवर्तते ।
 अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः ॥ २९
 यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमद्भूर्जितमेव वा ।
 तत्तद्विद्विग्नाध्यक्षं मम तेजोविजृम्भितम् ॥ ३०

देवताः परमार्थज्ञं मामेव परमं विदुः ।
 मदंशाः शक्तिसम्पन्ना ब्रह्मशक्रादयः सुराः ॥ ३१

मन्त्राभिकमलाज्ञातः पुरा ब्रह्मा जगत्करः ।
 सर्वाधिकः स्वतन्त्रश्च कर्ता हर्ताखिलेश्वरः ॥ ३२

इदं तु मत्परं तेजः किं पुनः श्रोतुमिच्छसि ।
 अतो मां शरणं प्राप्य गच्छ त्वं विगतज्वरः ॥ ३३

जब-जब इस संसारपर कोई विपत्ति आती है, तब-तब आप अवतार ग्रहणकर उसे दुःखरहित करते हैं। हे हरे! आपसे बढ़कर अथवा आपके समान भी कोई अन्य शिवपरायण नहीं है। आपने ही वेदों तथा धर्मोंको शुभमार्गमें प्रतिष्ठित किया है ॥ २१-२२ ॥

जिसके लिये आपका यह अवतार हुआ है, वह दानव हिरण्यकशिपु मार डाला गया और प्रह्लादकी भी रक्षा हो गयी ॥ २३ ॥

अतः हे भगवन्! हे विश्वात्मन्! [आपका प्रयोजन सिद्ध हो चुका है,] अब आप अपने इस घोर नृसिंहरूपको मेरे समक्ष ही उपसंहत कीजिये ॥ २४ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार वीरभद्रद्वारा शान्त वाणीमें निवेदन किये जानेपर महामदसे भरे हुए उन नृसिंहने पहलेसे भी अधिक महाभयानक क्रोध किया और हे मुने! अपने दाँतोंसे भयभीत करते हुए महावीर वीरभद्रसे महाघोर एवं कठोर वचन कहा— ॥ २५-२६ ॥

नृसिंह बोले—[हे वीरभद्र!] तुम जहाँसे आये हो, वहीं चले जाओ और मुझसे लोकहितकी बात न कहो। मैं अभी इसी समय इस चराचर जगत्को विनष्ट करूँगा। स्वयं मुझ संहारकर्ताका संहार अपनेसे अथवा दूसरेसे नहीं हो सकता है। सर्वत्र मेरा ही शासन है, मेरे ऊपर शासन करनेवाला कोई भी नहीं है ॥ २७-२८ ॥

मेरी कृपासे सारा संसार निर्भय रहता है, मैं ही सभी शक्तियोंका प्रवर्तक एवं निवर्तक हूँ ॥ २९ ॥

हे गणाध्यक्ष! [इस जगत्में] जो भी विभूतिमान्, कान्तियुक्त तथा शक्तिसम्पन्न वस्तु है, उस-उसको मेरे ही तेजसे विजृम्भित जानो ॥ ३० ॥

समस्त देवगण मुझे ही परमार्थको जानेवाला तथा परमब्रह्म कहते हैं और ब्रह्मा एवं इन्द्रादि समस्त देवगण मेरे ही अंश तथा [मुझसे ही] शक्तिसम्पन्न हैं ॥ ३१ ॥

जगत्कर्ता ब्रह्मा भी पूर्व समयमें मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हुए थे। मैं ही सबसे अधिक, स्वतन्त्र, कर्ता, हर्ता तथा अखिलेश्वर हूँ ॥ ३२ ॥

यह [नृसिंहरूपकी ज्वाला] मेरा सर्वाधिक तेज है, [मेरे विषयमें] और क्या सुनना चाहते हो? अतः मेरी शरणमें आकर निर्भय होकर तुम चले जाओ ॥ ३३ ॥

अवेहि परमं भावमिदभूतं गणेश्वर।
मामकं सकलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ३४

कालोऽस्म्यहं लोकविनाशहेतु-
लोकान्समाहर्तुमहं प्रवृत्तः।
मृत्योर्मृत्युं विद्धि मां वीरभद्र
जीवन्त्येते मत्प्रसादेन देवाः॥ ३५

नन्दीश्वर उवाच
साहङ्कारं वचः श्रुत्वा हेरमितविक्रमः।
विहस्योवाच सावज्ञं ततो विस्फुरिताधरः॥ ३६

वीरभद्र उवाच
किन जानासि विश्वेशं संहर्तारं पिनाकिनम्।
असद्वादो विवादश्च विनाशस्त्वयि केवलः॥ ३७

तवान्योन्यावताराणि कानि शेषाणि साम्प्रतम्।
कृतानि येन केनैव कथाशेषो भविष्यति॥ ३८

दोषं तं वद येन त्वमवस्थामीदूशीं गतः।
तेन संहारदक्षेण दक्षिणाशेषमेष्यसि॥ ३९

प्रकृतिस्त्वं पुमान्कद्रस्त्वयि वीर्यं समाहितम्।
त्वन्नाभिपङ्क्जाज्ञातः पञ्चवक्त्रः पितामहः॥ ४०

जगत्यीसर्जनार्थं शङ्करं नीललोहितम्।
ललाटेऽचिन्तयत्पोऽयं तपस्युग्रे च संस्थितः॥ ४१

तल्ललाटादभूच्छम्भुः सृष्ट्यर्थे तेन भूषणम्।
अतोऽहं देवदेवस्य तस्य भैरवरूपिणः॥ ४२

त्वत्संहारे नियुक्तोऽस्मि विनयेन बलेन च।
देवदेवेन रुद्रेण सकलप्रभुणा हरे॥ ४३

एकं रक्षो विदायैव तच्छक्तिकलया युतः।
अहंकारावलेपेन गर्जसि त्वमतन्त्रितः॥ ४४

हे गणेश्वर! दिखायी पड़नेवाले इस संसारको
मेरा ही परम स्वरूप जानो। देवता, असुर एवं
मनुष्योंसे युक्त यह सारा विश्व मेरा है॥ ३४॥

मैं लोकोंके विनाशका कारण कालस्वरूप हूँ।
अतः मैं लोकोंका संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ।
हे वीरभद्र! मुझे मृत्युका भी मृत्यु समझो, ये देवगण
मेरी ही कृपासे जीवन धारण करते हैं॥ ३५॥

नन्दीश्वर बोले—विष्णुके अहंकारयुक्त वचनको
सुनकर महापराक्रमी वीरभद्र ओठोंको फड़फड़ते हुए
अवज्ञापूर्वक हँसकर कहने लगे—॥ ३६॥

वीरभद्र बोले—क्या आप संसारके ईश्वर तथा
संहारकर्ता पिनाकधारी शिवको नहीं जानते हैं?
आपमें केवल मिथ्या वाद-विवाद भरा पड़ा है, जो कि
आपके विनाशका कारण है॥ ३७॥

आपके अन्यान्य कितने ही अवतार हो चुके हैं,
कितने ही बाकी हैं। हे विष्णो! जिस कारणसे आपका
यह अवतार हुआ है, कहीं ऐसा न हो कि उसी अवतारसे
आप कथामात्र ही शेष न रह जाय॥ ३८॥

आप उस दोषको बताइये, जिससे आप इस
दशाको प्राप्त हुए हैं। संसारके संहारमें प्रवीण होनेके
कारण कहीं ऐसा न हो कि उसकी दक्षिणा आपको
ही प्राप्त हो जाय॥ ३९॥

आप प्रकृति हैं तथा रुद्र पुरुष हैं, उन्होंने आपमें
अपने वीर्यका आधान किया है, इसीलिये आपके
नाभिकमलसे पाँच मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए
हैं॥ ४०॥

उन्होंने इस त्रिलोकीकी सृष्टिके लिये अपने
ललाटमें नीललोहित शिवका ध्यान किया और वे
उग्र तपमें स्थित हुए। तब उन्हींके ललाटसे सृष्टिहेतु
शिवजी उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीने उन्हें भूषणरूपमें
धारण किया। मैं उन्हीं देवाधिदेव भैरवरूपधारीकी आज्ञासे
यहाँ आया हूँ। हे हरे! मैं उन्हीं देवदेव सर्वेश्वर रुद्रके
द्वारा विनय और बल दोनोंसे आपका नियमन करनेके
लिये नियुक्त किया गया हूँ॥ ४१—४३॥

आपने तो उनकी शक्तिकी कलामात्रसे ही
युक्त होकर एक राक्षसका वध किया, पर अब
असावधान होकर अहंकारके प्रभावसे गर्जन कर रहे

उपकारो हि साधूनां सुखाय किल संमतः ।
उपकारो ह्यसाधूनामपकाराय केवलम् ॥ ४५

यन्सिंह महेशानं पुनर्भूतं तु मन्यसे ।
तर्हज्ञानी महागर्वी विकारी सर्वथा भवान् ॥ ४६

न त्वं स्वष्टा न संहर्ता भर्तापि न नृसिंहक ।
परतन्त्रो विमूढात्मा न स्वतन्त्रो हि कुत्रचित् ॥ ४७

कुलालचक्रवच्छक्त्या प्रेरितोऽसि पिनाकिना ।
नानावतारकर्ता त्वं तदधीनः सदा हरे ॥ ४८

अद्यापि तव निक्षिप्तं कपालं कूर्मरूपिणः ।
हरहारलतामध्ये दग्धं कश्चिन्न बध्यते ॥ ४९

विस्मृतिः किं तदंशेन दंष्ट्रोत्पातनपीडितम् ।
वाराहविघ्नहस्तेऽद्य याक्रोशन्तारकारिणा ॥ ५०

दग्धोऽसि पश्य शूलाग्नेर्विष्वक्सेनच्छलाद्वान् ।
दक्षयज्ञे शिरश्छिन्नं मया तेजःस्वरूपिणा ॥ ५१

अद्यापि तव पुत्रस्य ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ।
छिन्नं न सज्जितं भूयो हरे तद्विस्मृतं त्वया ॥ ५२

निर्जितस्त्वं दधीचेन संग्रामे समरदृणः ।
कण्डूयमाने शिरसि कथं तद्विस्मृतं त्वया ॥ ५३

चक्रं विक्रमतो यस्य चक्रपाणे तव प्रियम् ।
कुतः प्राप्तं कृतं केन त्वया तदपि विस्मृतम् ॥ ५४

ये मया सकला लोका गृहीतास्त्वं पयोनिधौ ।
निद्रापरवशः शेषे स कथं सात्त्विको भवान् ॥ ५५

हैं। सज्जन व्यक्तियोंके साथ किया गया उपकार सुखको बढ़ानेवाला होता है। किंतु वही उपकार यदि दुष्ट व्यक्तियोंके साथ किया जाय तो वह हानिकारक होता है ॥ ४४-४५ ॥

हे नृसिंह! यदि आप शिवजीको अजन्मा नहीं मानते हैं, तो निश्चय ही आप अज्ञानी, महागर्वी एवं दोषोंसे परिपूर्ण हैं ॥ ४६ ॥

हे नृसिंह! आप न स्वष्टा हैं, न भर्ता हैं और न संहारकर्ता ही हैं, आप किसी भी प्रकार स्वतन्त्र नहीं हैं, आप परतन्त्र एवं विमूढ चित्तवाले हैं ॥ ४७ ॥

हे हरे! आप महादेवकी शक्तिसे ही कुलालचक्रकी भाँति प्रेरित हैं और सदा उन्हींके अधीन रहकर अनेक अवतार धारण करते हैं ॥ ४८ ॥

[हे हरे!] कूर्मावतारके समय [बारम्बार मन्दराचलके द्वारा धर्षित होनेसे] झुलसे हुए कपालको किसीने धारण नहीं किया। तुम्हरेद्वारा त्यागा गया वह कपाल आज भी शिवजीकी हारलता (मुण्डमाला)-में विद्यमान है ॥ ४९ ॥

उनके अंशमात्रसे उत्पन्न हुए तारकासुरने जो आपका वैरी था, वराहावतारमें तुम्हरे दाँतोंको उखाड़कर जैसी पीड़ा पहुँचायी, पुनः जिन शिवजीकी कृपासे आपके सारे विघ्न दूर हो गये, क्या उन परमात्मा शिवजीको आप भूल गये! ॥ ५० ॥

विष्वक्सेनावतारमें शिवजीने अपने शूलाग्रसे आपको दग्ध कर दिया था। तेजस्वरूप मैंने दक्षके यज्ञमें आपके पुत्र ब्रह्माका पाँचवाँ सिर काट दिया था, जिसे अबतक कोई जोड़ न सका, हे हरे! क्या आप उसे भूल गये हैं? ॥ ५१-५२ ॥

शिवभक्त दधीचिने सिर खुजलानेमात्रसे मरुदग्णोंसहित आपको संग्राममें जीत लिया था, क्या आप उसे भूल गये? हे चक्रपाणे! आप जिस चक्रके सहरे अपना पुरुषार्थ प्रकट करते हैं, वह कहाँसे और किसके द्वारा प्राप्त हुआ है, क्या आप उसको भूल गये हैं? ॥ ५३-५४ ॥

मैंने तो सम्पूर्ण लोकोंको धारण कर रखा है और तुम क्षीरसागरमें निद्राके परवश होकर सोते रहते हो, ऐसी स्थितिमें तुम सात्त्विक कैसे हो? ॥ ५५ ॥

त्वदादिस्तम्बपर्यन्तं रुद्रशक्तिविजृभितम् ।
शक्तिमानभितस्त्वं च ह्यनलान्त्वं विमोहितः ॥ ५६

तत्तेजसो हि माहात्म्यं पुमान्द्रष्टुं न हि क्षमः ।
अस्थूला ये प्रपश्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ५७

द्यावापृथिव्या इन्द्रागनेर्यमस्य वरुणस्य च ।
ध्वान्तोदरे शशांके च जनित्वा परमेश्वरः ॥ ५८

कालोऽसि त्वं महाकालः कालकालो महेश्वरः ।
अतस्त्वमुग्रकलया मृत्योर्मृत्युर्भविष्यसि ॥ ५९

स्थिरोऽद्य त्वक्षरो वीरो वीरो विश्वावकः प्रभुः ।
उपहन्ता ज्वरं भीमो मृगः पक्षी हिरण्मयः ॥ ६०

शास्ता शेषस्य जगतस्तत्त्वं नैव चतुर्मुखः ।
नान्ये च केवलं शम्भुः सर्वशास्ता न संशयः ॥ ६१

इत्थं सर्वं समालोक्य संहरात्मानमात्मना ।
न विनष्टं त्वमात्मानं कुरु हे नृहरेऽबुध ॥ ६२

नो चेदिदानीं क्रोधस्य महाभैरवरूपिणः ।
वज्राशनिरिव स्थाणौ त्वयि मृत्युः पतिष्यति ॥ ६३

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा वीरभद्रोऽपि विरामाकुतोभयः ।
दृष्ट्वा नृसिंहाभिप्रायं क्रोधमूर्त्तिशशवस्य सः ॥ ६४

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शरभावतार-वर्णन
नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः भगवान् शिवका शरभावतार-धारण

सनत्कुमार उवाच

नन्दीश्वर महाप्राज्ञ विज्ञातं तदनन्तरम् ।
ममोपरि कृपां कृत्वा प्रीत्या त्वं तद्वदाधुना ॥ १

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तो वीरभद्रेण नृसिंहः क्रोधविह्वलः ।
निनदन्ननुवेगेन तं ग्रहीतुं प्रचक्रमे ॥ २

आपसे लेकर स्तम्बपर्यन्त शिवजीकी शक्ति फैली हुई है, उसीसे आप सर्वथा शक्तिमान् हैं, अन्यथा आप उनके लिंगाकार तेजमात्रके प्रकट होते ही मोहित हो गये थे। उनके तेजके माहात्म्यको देखनेमें कोई भी पुरुष समर्थ नहीं है। सूक्ष्म बुद्धिवाले लोग ही उन सर्वव्यापीके परम पदको देख पाते हैं ॥ ५६-५७ ॥

आकाश, पृथ्वीका अन्तराल, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, अन्धकारको लील जानेवाले सूर्य एवं चन्द्रमाको उत्पन्नकर वही परमेश्वर उनमें प्रविष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

हे [नृसिंह!] आप ही काल, महाकाल, कालकाल तथा महेश्वर हैं, आप अपनी उग्रकलाके कारण मृत्युके भी मृत्यु हैं ॥ ५९ ॥

वे [शिवजी ही] स्थिर, अक्षर, वीर, विश्वरक्षक, प्रभु, दुःखोंके नाशकर्ता, भीम, मृग, पक्षी, हिरण्मय हैं और सम्पूर्ण जगत्के शास्ता हैं; आप, ब्रह्मा तथा अन्य कोई नहीं है, केवल शम्भु ही सबके शासक हैं, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६०-६१ ॥

इस प्रकार सब कुछ विचारकर आप अपनी ज्वालाको स्वयं ही शान्त करें, हे नृसिंह! हे अबुध! आप अपनेको विनष्ट न करें, अन्यथा इसी समय जैसे सूखे वृक्षपर बिजली गिरती है, वैसे ही महाभैरवरूप उन रुद्रका क्रोध मृत्युरूप होकर तुमपर गिरेगा ॥ ६२-६३ ॥

नन्दी बोले—इतना कहकर शिवकी क्रोधमूर्ति वे वीरभद्र निर्भय होकर नृसिंहका अभिप्राय जानकर मौन हो गये ॥ ६४ ॥

सनत्कुमार बोले—हे नन्दीश्वर! हे महाप्राज्ञ! इसके बाद [जो वृत्तान्त आपको] ज्ञात हुआ, मेरे ऊपर कृपा करके उस वृत्तान्तको इस समय प्रीतिपूर्वक कहिये ॥ १ ॥

नन्दीश्वर बोले—वीरभद्रके इस प्रकारके कहनेपर नृसिंह क्रोधसे व्याकुल हो गये और गर्जन करते हुए बड़े वेगसे उन्हें पकड़नेके लिये उद्घात हुए ॥ २ ॥

अत्रान्तरे महाघोरं प्रत्यक्षभयकारणम्।
गगनव्यापि दुर्धर्षं शैवतेजः समुद्भवम्॥ ३

वीरभद्रस्य तद्वप्मदृश्यं तु ततः क्षणात्।
तद्वै हिरण्मयं सौम्यं न सौरं नाग्निसम्भवम्॥ ४

न तडिच्चन्द्रसदृशमनौपम्यं महेश्वरम्।
तदा तेजांसि सर्वाणि तस्मिल्लीनानि शङ्करे॥ ५

न तद्वयोमं महत्तेजो व्यक्तान्तश्चाभवत्ततः।
रुद्रसाधारणं चैव चिह्नितं विकृताकृतिः॥ ६

ततस्संहाररूपेण सुव्यक्तं परमेश्वरः।
पश्यतां सर्वदेवानां जयशब्दादिमंगलैः॥ ७

सहस्रबाहुर्जटिलश्चन्द्राद्वकृतशेखरः।
समृद्धोग्रशरीरेण पक्षाभ्यां चञ्चुना द्विजः॥ ८

अतितीक्ष्णो महादंष्ट्रो वज्रतुल्यनखायुधः।
कण्ठे कालो महाबाहुश्चतुष्पाद्विहिसन्निभः॥ ९

युगान्तोद्यतजीमूतभीमगम्भीरनिःस्वनः।
महाकुपितकृत्याग्निव्यावृत्तनयनत्रयः॥ १०

स्पष्टदंष्ट्राधरोष्ठश्च हुंकारैः संयुतो हरः।
ईदृग्विधस्वरूपश्च ह्युग्र आविर्बभूव ह॥ ११

हरिस्तदर्शनादेव विनष्टबलविक्रमः।
बिभ्रद्वामसहस्रांशोरथः खद्योतविभ्रमम्॥ १२

अथ विभ्रम्य पक्षाभ्यां नाभिपादान्विदारयन्।
पादान्बबंधं पुच्छेन बाहुभ्यां बाहुमण्डलम्॥ १३

भिन्दनुरसि बाहुभ्यां निजग्राह हरो हरिम्।
ततो जगाम गगनं देवैस्मह महर्षिभिः॥ १४

इसी बीच महाघोर, प्रत्यक्ष, भयके कारण अत्यन्त प्रचण्ड, आकाशव्यापी, दुर्धर्ष, शिवतेजसे उत्पन्न तथा कभी भी न दिखायी पड़नेवाला वीरभद्रका अद्भुत रूप प्रकट हुआ, जो न तो हिरण्मय था, न सौम्य था, वह तेज न सूर्य और न तो अग्निसे उत्पन्न हुआ था, न बिजलीके समान और न चन्द्रमाके समान था, वह शिवतेज अनुपम था। उस समय सभी तेज उन शंकरके तेजमें विलीन हो गये। वह महातेज आकाशमें भी न समा सका। वह तेज प्रकट कालरूप ही था। अत्यन्त विकृताकार वह तेज रुद्रका साधारण चिह्न था॥ ३—६॥

जय-जय आदि मंगल शब्दोंके साथ उन देवताओंके देखते-देखते ही परमेश्वर स्वयं संहाररूपसे प्रकट हुए॥ ७॥

हजार भुजाओंसे समन्वित, जटाधर, ललाटपर बालचन्द्र धारण किये हुए अत्यन्त उग्र शरीरवाले वे दो पंख एवं चोंचसे युक्त पक्षीके रूपमें दिखायी पड़ रहे थे। उनके दाँत अत्यन्त विशाल तथा तीक्ष्णतम थे। वे वज्रतुल्य नखरूपी आयुधसे युक्त थे, वे नीलकण्ठ, महाबाहु और चार चरणोंसे युक्त तथा अग्निके समान तेजस्वी थे। वे युगान्तकालीन अर्थात् प्रलयकारी मेघके समान गम्भीर गर्जना कर रहे थे और महाकोपसे व्याप्त नेत्रोद्वारा कृत्याग्निके समान जान पड़ते थे। उनके दाँत और अधरोष्ठ क्रोधके कारण फड़क रहे थे। इस प्रकारका उग्र स्वरूप धारण किये, हुंकार करते हुए विकटरूपधारी शंकर [नृसिंहजीके आगे] प्रकट हो गये॥ ८—११॥

उस रूपको देखते ही नृसिंहका समस्त बल पराक्रम उसी प्रकार लुप्त हो गया, जिस प्रकार सूर्यके तेजसे तिरस्कृत जुगनू विभ्रान्त हो जाता है॥ १२॥

इसके बाद उन्होंने अपने दोनों पक्षोंको घुमाते हुए उनसे नृसिंहके नाभि और चरणोंको विदीर्ण करते हुए अपनी पूँछसे उनके चरणोंको तथा हाथोंसे उनकी भुजाओंको बाँध लिया। इसके बाद भुजाओंसे हृदय विदीर्ण करते हुए शिवजीने नृसिंहको पकड़ लिया। उसके बाद देवताओं और महर्षियोंके साथ आकाशमें चले गये॥ १३-१४॥

सहस्रेभ्याद्विष्टुं स हि श्येन इवोरगम्।
उत्क्षिप्योत्क्षिप्य संगृह्य निपात्य च निपात्य च ॥ १५

उद्गीयोद्गीय भगवान्पक्षघातविमोहितम्।
हरिं हरस्तं वृषभं विवेशानन्त ईश्वरः ॥ १६

अनुयान्तं सुराः सर्वे नमोवाक्येन तुष्टुवुः।
प्रणेमुः सादरं प्रीत्या ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः ॥ १७

नीयमानः परवशो दीनवक्त्रः कृताञ्जलिः।
तुष्टाव परमेशानं हरिस्तं ललिताक्षरैः ॥ १८
नाम्नामष्टशतेनैव स्तुत्वा तं मृडमेव च।
पुनश्च प्रार्थयामास नृसिंहः शरभेश्वरम् ॥ १९
यदा यदा ममाज्ञेयं मतिः स्याद्वर्वदूषिता।
तदा तदाऽपनेतव्या त्वयैव परमेश्वर ॥ २०

नन्दीश्वर उवाच

एवं विज्ञापयन्नीत्या शङ्करं नरकेसरी।
नत्वाशक्तोऽभवद्विष्टुर्जीवितान्तपराजितः ॥ २१
तद्वक्त्रं शेषगात्रान्तं कृत्वा सर्वस्वविग्रहम्।
शक्तियुक्तं तदीयाङ्गं वीरभद्रः क्षणात्ततः ॥ २२

नन्दीश्वर उवाच

अथ ब्रह्मादयो देवाः शारभं रूपमास्थितम्।
तुष्टुवुः शङ्करं देवं सर्वलोकैकशङ्करम् ॥ २३
देवा ऊचुः
ब्रह्मविष्णवन्द्रचन्द्रादिसुराः सर्वे महर्षयः।
दितिजाद्याः सम्प्रसूताः त्वत्तः सर्वे महेश्वर ॥ २४
ब्रह्मविष्णुमहेन्द्रांश्च सूर्याद्यानसुरान्सुरान्।
त्वं वै सृजसि पास्यत्सि त्वमेव सकलेश्वरः ॥ २५

यतो हरसि संसारं हर इत्युच्यते बुधैः।
निगृहीतो हरिर्यस्माद्धर इत्युच्यते बुधैः ॥ २६

यतो बिभर्षि सकलं विभज्य तनुमष्टधा।
अतोऽस्मान्याहि भगवन् सुरान् दानैरभीमितैः ॥ २७

जिस प्रकार गरुड निर्भयतापूर्वक साँपको कभी ऊपर कभी नीचे पटकता है, कभी उसे लेकर उड़ जाता है, उसी प्रकार उन्होंने नृसिंहको अपने पंखोंसे मार-मारकर आहत कर दिया। फिर वे अनन्त ईश्वर उन नृसिंहको लेकर वृषभपर सवार हो चल पड़े ॥ १५-१६ ॥

तत्पश्चात् सभी ब्रह्मादि देवों तथा मुनीश्वरोंने जाते हुए शिवको आदरपूर्वक प्रणाम किया और वे लोग 'नमः' शब्दसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ १७ ॥

इस प्रकार ले जाये जाते हुए पराधीन तथा दीनमुख नृसिंह हाथ जोड़कर मनोहर अक्षरों [-वाले स्तोत्रों]-से उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे। शिवके एक सौ आठ नामोंद्वारा इन शरभेश्वरकी स्तुतिकर नृसिंहने पुनः उनसे प्रार्थना की—हे परमेश्वर! जब-जब मेरी यह मूढ़ बुद्धि अहंकारसे दूषित हो जाय, तब-तब आप ही उसे दूर करें ॥ १८—२० ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार प्रीतिपूर्वक शिवसे प्रार्थना करते हुए नृसिंहरूपधारी विष्णु जीवनपर्यन्त पराधीनता स्वीकारकर बार-बार प्रणाम करके दीन हो गये। वीरभद्रने क्षणमात्रमें ही नृसिंहके मुखसहित समस्त शरीर एवं उनकी शक्तिको अपनेमें समाहित कर लिया ॥ २१-२२ ॥

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर ब्रह्मादि समस्त देवता शरभरूप धारण किये हुए सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कल्याणकारी भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे ॥ २३ ॥

देवता बोले—हे महेश्वर! ब्रह्मा-विष्णु-इन्द्र-चन्द्रमा आदि समस्त देवता, महर्षि एवं दैत्य आदि—सबके सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं ॥ २४ ॥

आप ही ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, चन्द्र तथा सूर्य आदि देवताओं एवं असुरोंका सृजन, पालन एवं संहार करते हैं, आप ही सबके स्वामी हैं ॥ २५ ॥

आप संसारका हरण करते हैं, इसलिये विद्वान् लोग आपको 'हर' कहते हैं और आपने विष्णुका निग्रह किया है, इसलिये भी आप विद्वानोंके द्वारा हर कहे जाते हैं। हे प्रभो! आप अपने शरीरको आठ भागोंमें बाँटकर इस जगत्का संरक्षण करते हैं, अतः हे भगवन्! अभीष्ट वरोंके द्वारा हम देवताओंकी रक्षा कीजिये ॥ २६-२७ ॥

त्वं महापुरुषः शम्भुः सर्वेशः सुरनायकः।
निःस्वात्मा निर्विकारात्मा परब्रह्म सतां गतिः ॥ २८
दीनबन्धुर्दयासिन्धुरद्धुतोतिःपरात्मदृक् ।
प्राज्ञो विराट् विभुः सत्यः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ २९

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य वचः शम्भुर्देवानां परमेश्वरः।
उवाच तान् सुरान्देवामहर्षीश्च पुरातनान् ॥ ३०
यथा जलं जले क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्।
एक एव तदा विष्णुः शिवे लीनो न चान्यथा ॥ ३१

एको विष्णुर्नृसिंहात्मा सदर्पश्च महाबलः।
जगत्संहारकरणे प्रवृत्तो नरकेसरी ॥ ३२
प्रार्थनीयो नमस्तस्मै मद्भक्तैः सिद्धिकारिभिः।
मद्भक्तप्रवरश्चैव मद्भक्तवरदायकः ॥ ३३

नन्दीश्वर उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् पक्षिराजो महाबलः।
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३४
वीरभद्रोऽपि भगवानाणाध्यक्षो महाबलः।
नृसिंहकृत्तिं निष्कृष्ट्य समादाय ययौ गिरिम् ॥ ३५

नृसिंहकृत्तिवसनस्तदाप्रभृति शङ्करः।
तद्वक्त्रं मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम् ॥ ३६

ततो देवा निरातङ्काः कीर्तयन्तः कथामिमाम्।
विस्मयोत्फुल्लनयना जग्मुः सर्वे यथागतम् ॥ ३७

य इदं परमाख्यानं पुण्यं वेदरसान्वितम्।
पठति शृणुयाच्चैव सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३८

धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्यम्पुष्टिवर्द्धनम्।
सर्वविष्णप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३९

दुःखप्रशमनं वाञ्छासिद्धिदं मंगलालयम्।
अपमृत्युहरं बुद्धिप्रदं शत्रुविनाशनम् ॥ ४०

आप महापुरुष, शम्भु, सर्वेश्वर, सुरनायक, निःस्वात्मा, निर्विकारात्मा, परब्रह्म, सत्पुरुषोंकी गति, दीनबन्धु, दयासिन्धु, अद्भुत लीला करनेवाले, परात्मदृक्, प्राज्ञ, विराट्, विभु, सत्य एवं सत्-चित्-आनन्द लक्षणसे युक्त हैं ॥ २८-२९ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार देवताओंके वचनको सुनकर परमेश्वर सदाशिव उन पुरातन देवताओं एवं महर्षियोंसे कहने लगे— ॥ ३० ॥

[शिवजी बोले—] जिस प्रकार जलमें जल, दूधमें दूध और धीमें धी मिलकर समरस हो जाता है, ठीक उसी प्रकार भगवान् विष्णु भी शिवजीमें मिलकर समरस हो गये हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३१ ॥

इस समय एकमात्र विष्णु ही महाबलवान् तथा अहंकारी नृसिंहका रूप धारणकर संसारके संहार करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार है। सिद्धिहेतु प्रयत्नशील मेरे भक्तोंके द्वारा वे प्रार्थनाके योग्य हैं, वे स्वयं भी मेरे भक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं और मेरे भक्तोंको वर देनेवाले हैं ॥ ३२-३३ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर महाबली भगवान् पक्षिराज देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। गणाध्यक्ष महाबलवान् भगवान् वीरभद्र भी नृसिंहका चर्म निकाल और उसे लेकर कैलासपर्वतपर चले गये ॥ ३४-३५ ॥

उसी समयसे शिवजी नृसिंहके चर्मको धारण करते हैं। उन्होंने नृसिंहके मुखको अपनी मुण्डमालाका सुमेरु बनाया था। तदनन्तर सभी देवता निर्भय होकर इस कथाका वर्णन करते हुए विस्मयसे प्रफुल्लितनेत्र हो जैसे आये थे, वैसे ही चले गये ॥ ३६-३७ ॥

जो [व्यक्ति] वेदरससे परिपूर्ण इस परम पवित्र आख्यानको पढ़ता है तथा सुनता है, उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ३८ ॥

यह आख्यान धन्य, यशको प्रदान करनेवाला, आयुको बढ़ानेवाला, आरोग्य देनेवाला तथा पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, समस्त विष्णोंको शान्त करनेवाला, सभी व्याधियोंका नाश करनेवाला, दुःखोंको दूर करनेवाला, मनोरथ सिद्ध करनेवाला, कल्याणका आश्रयस्थान, अपमृत्युका हरण करनेवाला, बुद्धिको बढ़ानेवाला तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला है ॥ ३९-४० ॥

इदं तु शरभाकारं परं रूपं पिनाकिनः।
प्रकाशनीयं भक्तेषु शङ्करस्य चरेषु वै॥ ४१

तैरेव पठितव्यं च श्रोतव्यं च शिवात्मभिः।
नवधाभक्तिदं दिव्यमन्तःकरणबुद्धिदम्॥ ४२

शिवोत्सवेषु सर्वेषु चतुर्दश्यष्टमीषु च।
पठेत्प्रतिष्ठाकाले तु शिवसन्निधिकारणम्॥ ४३

चौरव्याघ्रनृसिंहात्मकृतराजभयेषु च।
अन्येषूत्पातभूकम्पदस्यादिपांसुवृष्टिषु ॥ ४४

उल्कापाते महावाते विनावृष्ट्यतिवृष्टिषु।
पठेद्यः प्रयतो विद्वान् शिवभक्तो दृढव्रतः॥ ४५

यः पठेच्छृणुयाद्वापि निष्कामो व्रतमैश्वरम्।
रुद्रलोकं समासाद्य रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥ ४६

रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रेण सह मोदते।
ततः सायुज्यमाजोति शिवस्य कृपया मुने॥ ४७

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शरभावतारवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शरभावतारवर्णनं नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भगवान् शंकरके गृहपति-अवतारकी कथा

नन्दीश्वर उवाच

शृणु ब्रह्मसुतं प्रीत्या चरितं शशिमौलिनः।
सोऽवतीर्णो यथा प्रीत्या विश्वानरगृहे शिवः॥ १

नामा गृहपतिः सोऽभूदग्निलोकपतिर्मुने।
अग्निरूपस्तैजसश्च सर्वात्मा परमः प्रभुः॥ २

नर्मदायास्तटे रम्ये पुरे नर्मपुरे पुरा।
पुरारिभक्तः पुण्यात्माभवद्विश्वानरो मुनिः॥ ३

यह शरभरूप पिनाकधारी शिवजीका उत्तम रूप है, इसे शिवके भक्तों तथा गणोंमें प्रकाशित करते रहना चाहिये अर्थात् साधारण जनोंके समक्ष यह प्रकाश्य नहीं है। उन्हीं शिवभक्तोंको इस आख्यानको पढ़ना एवं सुनना चाहिये। यह नौ प्रकारकी भक्ति प्रदान करनेवाला दिव्य एवं अन्तःकरण तथा बुद्धिका वर्धन करनेवाला है॥ ४१-४२॥

शिवजीके सभी उत्सवोंमें, चतुर्दशी तथा अष्टमीको एवं शिवकी प्रतिष्ठाके समय इस आख्यानको पढ़नेसे शिवजीका सांनिध्य प्राप्त होता है॥ ४३॥

चोर-बाघ-मनुष्य-सिंहके भयमें, आत्मकृत अर्थात् मनमें अकारण उत्पन्न भय तथा राजभयमें, अन्य प्रकारके उत्पात, भूकम्प, डाकू आदिसे भय उपस्थित होनेपर, धूलिवर्षाकालमें, उल्कापात, महावात, अनावृष्टि और अतिवृष्टिमें जो विद्वान् सावधान होकर इसे पढ़ता है, वह दृढ़व्रती शिवभक्त हो जाता है। जो निष्काम भावसे इस शिवचरित्रिको पढ़ता या सुनता है और शिवव्रत करता है, वह रुद्रलोकको प्राप्तकर रुद्रका अनुचर हो जाता है। इस प्रकार रुद्रलोकको प्राप्तकर वह रुद्रके साथ आनन्द करता है और हे मुने! उसके बाद शिवजीकी कृपासे वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है॥ ४४—४७॥

नन्दीश्वर बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब चन्द्रमाको सिरपर धारण करनेवाले शिवके एक अन्य चरित्रिको प्रसन्नतापूर्वक सुनिये, जिस प्रकार उन्होंने प्रेमपूर्वक विश्वानरके घरमें जन्म लिया॥ १॥

हे मुने! गृहपति नामवाले वे अग्निलोकके स्वामी हुए, वे अग्निके सदृश, तेजस्वी, सर्वात्मा एवं परम प्रभु थे। पूर्वकालमें नर्मदाके तटपर नर्मपुरमें शिवजीके भक्त विश्वानर नामवाले पुण्यात्मा मुनि हुए॥ २-३॥

ब्रह्मचर्याश्रमे निष्ठो ब्रह्मयज्ञरतः सदा ।
शाणिडल्यगोत्रः शुचिमान्ब्रह्मतेजोनिधिर्वशी ॥ ४

विज्ञाताखिलशास्त्रार्थः सदाचाररतः सदा ।
शैवाचारप्रवीणोऽति लौकिकाचारविद्वरः ॥ ५

चित्ते विचार्य गृहिणीगुणान्विश्वानरः शुभान् ।
उदुवाह विधानेन स्वोचितां कुलकन्यकाम् ॥ ६

अग्निशुश्रूषणरतः पञ्चयज्ञपरायणः ।
षट्कर्मनिरतो नित्यं देवपित्रितिथिप्रियः ॥ ७

एवं बहुतिथे काले गते तस्याग्रजन्मनः ।
भार्या शुचिष्मती नाम भर्तारं प्राह सुव्रता ॥ ८

नाथ भोगा मया सर्वे भुक्ता वै त्वत्प्रसादतः ।
स्त्रीणां समुचिता ये स्युः त्वां समेत्य मुदावहाः ॥ ९

एवं मे प्रार्थितं नाथ चिराय हृदि संस्थितम् ।
गृहस्थानां समुचितं त्वमेतदातुमर्हसि ॥ १०

विश्वानर उवाच

किमदेयं हि सुश्रोणि तव प्रियहितैषिणि ।
तत्प्रार्थय महाभागे प्रयच्छाम्यविलम्बितम् ॥ ११
महेशितुः प्रसादेन मम किञ्चिन्न दुर्लभम् ।
इहामुत्र च कल्याणि सर्वकल्याणकारिणः ॥ १२

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य वचः पत्युस्तस्य सा पतिदेवता ।
उवाच हृष्टवदना करौ बद्ध्वा विनीतिका ॥ १३

शुचिष्मत्युवाच

वरयोग्यास्मि चेन्नाथ यदि देयो वरो मम ।
महेशसदूशं पुत्रं देहि नान्यं वरं वृणे ॥ १४

वे सदा ब्रह्मचर्याश्रम धर्मका पालन करते हुए नित्य-प्रति ब्रह्मयज्ञ किया करते थे । वे शाणिडल्यगोत्री थे और बड़े पवित्र, ब्रह्मतेजस्वी तथा जितेन्द्रिय थे ॥ ४ ॥

वे सभी शास्त्रोंके अर्थोंके ज्ञाता, सर्वदा सदाचारमें तत्पर, शैव आचारमें अति प्रवीण तथा लौकिक आचारके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे ॥ ५ ॥

उन्होंने भार्याके उत्तम गुणोंपर विचारकर उचित समयमें विधिपूर्वक अपने योग्य कुलीन कन्यासे विवाह किया ॥ ६ ॥

वे प्रतिदिन अग्निशुश्रूषा, पंचयज्ञ तथा षट्कर्ममें संलग्न रहते थे और देवता, पितर एवं अतिथियोंका पूजन करते थे ॥ ७ ॥

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके उपरान्त [एक दिन] उन ब्राह्मणकी शुचिष्मती नामक पतिव्रता पत्नीने पतिसे कहा— ॥ ८ ॥

हे नाथ ! मैंने आपकी कृपासे आपके साथ उन सभी भोगोंको भोग लिया है, जो स्त्रियोंके योग्य तथा आनन्ददायक हैं ॥ ९ ॥

हे नाथ ! अब मेरी एक ही विशेष अभिलाषा है, जो मेरे हृदयमें चिरकालसे स्थित है और वह गृहस्थोंके लिये उचित भी है, उसे देनेकी कृपा करें ॥ १० ॥

विश्वानर बोले—हे सुश्रोणि ! हे प्रियहितैषिणि ! मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है । हे महाभाग ! तुम उसे माँगो, मैं शीघ्र ही प्रदान करूँगा । हे कल्याणि ! सम्पूर्ण कल्याण करनेवाले महेश्वरकी कृपासे मुझे इस लोक एवं परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है ॥ ११-१२ ॥

नन्दीश्वर बोले—पतिके इस वचनको सुनकर प्रसन्न मुखवाली वह पतिव्रता स्त्री प्रसन्नतासे विनीत हो दोनों हाथ जोड़कर कहने लगी— ॥ १३ ॥

शुचिष्मती बोली—हे नाथ ! यदि मैं वरके योग्य हूँ और यदि आपको मुझे वर प्रदान करना है तो मुझे शिवके समान पुत्र दीजिये, मैं कोई अन्य वर नहीं चाहती हूँ ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा ब्राह्मणः स शुचिव्रतः ।
क्षणं समाधिमाधाय हृद्येतत्समचिन्तयत् ॥ १५
अहो किं मे तया तन्व्या प्रार्थितं हृतिदुर्लभम् ।
मनोरथपथाद्वारमस्तु वा स हि सर्वकृत् ॥ १६

तेनैवास्या मुखे स्थित्वा वाक्स्वरूपेण शाम्भुना ।
व्याहृतं कोऽन्यथा कर्तुमुत्सहेत भवेदिदम् ॥ १७

इति सञ्चिन्त्य स मुनिर्विश्वानर उदारधीः ।
ततः प्रोवाच तां पल्लीमेकपल्लीव्रते स्थितः ॥ १८

नन्दीश्वर उवाच

इत्थमाश्वास्य तां पल्लीं जगाम तपसे मुनिः ।
यत्र विश्वेश्वरः साक्षात्काशीनाथोऽधितिष्ठति ॥ १९

प्राय वाराणसीं तूर्णं दृष्ट्वा तां मणिकर्णिकाम् ।
तत्याज तापत्रितयमपि जन्मशतार्जितम् ॥ २०

दृष्ट्वा सर्वाणि लिंगानि विश्वेशप्रमुखानि च ।
स्नात्वा सर्वेषु कुण्डेषु वापीकूपसरस्सु च ॥ २१
नत्वा विनायकान्सर्वानौरीं शर्वा प्रणम्य च ।
सम्पूज्य कालराजं च भैरवं पापभक्षणम् ॥ २२
दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वा प्रयत्नतः ।
आदिकेशवमुख्यांश्च केशवं परितोष्य च ॥ २३
लोलार्कमुखसूर्यांश्च प्रणम्य स पुनः पुनः ।
कृत्वा च पिण्डदानानि सर्वतीर्थेष्वतन्त्रितः ॥ २४
सहस्रभोजनाद्यैश्च मुनीन्विप्रान्व्रतर्प्य च ।
महापूजोपचारैश्च लिंगान्यभ्यर्च्य भक्तिः ॥ २५
असकृच्यन्तयामास किं लिंगं क्षिप्रसिद्धिदम् ।
यत्र निश्चलतामेति तपस्तनयकाम्यया ॥ २६

क्षणं विचार्य स मुनिरिति विश्वानरः सुधीः ।
क्षिप्रं पुत्रप्रदं लिंगं वीरेशं प्रशशांस ह ॥ २७

नन्दीश्वर बोले—उसके इस वचनको सुनकर वे पवित्रात्मा ब्राह्मण क्षणभरके लिये समाधिस्थ होकर अपने हृदयमें विचार करने लगे । अहो ! मेरी इस स्त्रीने अत्यन्त दुर्लभ तथा मनोरथ मार्गसे दूर कैसी वस्तु माँगी है अथवा वे शिवजी ही सब कुछ पूरा करनेवाले हैं ॥ १५-१६ ॥

उन शम्भुने ही इसके मुखमें वाणीरूपसे स्थित होकर ऐसा कहा है । शिवजीकी यदि ऐसी इच्छा है, तो उसे अन्यथा करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ! ॥ १७ ॥

ऐसा विचारकर उदार बुद्धिवाले तथा एकपल्ली-व्रतमें परायण रहनेवाले विश्वानर मुनिने बादमें उस पल्लीसे कहा— ॥ १८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार अपनी पल्लीको [अनेक प्रकारसे] आश्वस्त करके मुनि तप करनेके लिये वहाँ चले गये, जहाँ साक्षात् काशीनाथ विश्वेश्वर स्थित हैं ॥ १९ ॥

उन्होंने शीघ्र ही वाराणसी पहुँचकर मणिकर्णिकाका दर्शन करके अपने सैकड़ों जन्मोंके अर्जित तीनों तापोंसे मुक्ति प्राप्त कर ली ॥ २० ॥

उसके बाद उन्होंने विश्वेश्वर आदि सभी लिंगोंका दर्शन करके काशीस्थ सभी कुण्डों, वापियों एवं सरोवरोंमें स्नान करके, सभी विनायकोंको नमस्कार करके, शिवा गौरीको प्रणाम करके, पापोंका भक्षण करनेवाले कालराज भैरवका भी पूजन किया, फिर प्रयत्नपूर्वक दण्डपाणि विनायक आदि प्रमुख गणोंकी स्तुतिकर, आदिकेशव आदि [मुख्य द्वादश केशवों]-को प्रसन्न करके फिर लोलार्क आदि प्रमुख सूर्योंको बार-बार प्रणाम किया, पुनः सभी तीर्थोंमें समाहितचित्त होकर पिण्डदान करके हजारों प्रकारके भोजनादिसे मुनियों तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्टकर महापूजोपचारसे भक्तिपूर्वक [अनेक] लिंगोंका पूजन करके वे बार-बार विचार करने लगे कि शीघ्र ही सिद्धि प्रदान करनेवाला कौन-सा लिंग है, जहाँ पुत्रकी कामनासे मेरा तप सफल होगा ॥ २१—२६ ॥

उन बुद्धिमान् विश्वानर मुनिने कुछ क्षण ऐसा विचार करके शीघ्र ही पुत्र देनेवाले वीरेश [नामक] लिंगकी प्रशंसा की । [उन्होंने अपने मनमें विचार किया

असंख्यातः सहस्राणि सिद्धाः सिद्धिं गतास्ततः ।
सिद्धलिंगमिति ख्यातं तस्माद्वीरेश्वरं परम् ॥ २८
वीरेश्वरं महालिंगमब्दमध्यर्च्यं भक्तिः ।
आयुर्मनोरथं सर्वं पुत्रादिकमनेकशः ॥ २९
अहमप्यत्र वीरेशं समाराध्य त्रिकालतः ।
आशु पुत्रमवाप्स्यामि यथाभिलषितं स्त्रिया ॥ ३०

नन्दीश्वर उवाच

इति कृत्वा मतिं धीरो विप्रो विश्वानरः कृती ।
चन्द्रकूपजले स्नात्वा जग्राह नियमं व्रती ॥ ३१
एकाहारोऽभवन्मासं मासं नक्ताशनोऽभवत् ।
अयाचिताशनो मासं मासं त्यक्ताशनः पुनः ॥ ३२

पयोव्रतोऽभवन्मासं मासं शाकफलाशनः ।
मासं मुष्टितिलाहारो मासं पानीयभोजनः ॥ ३३

पञ्चगव्याशनो मासं मासं चान्द्रायणव्रती ।
मासं कुशाग्रजलभुग्मासं श्वसनभक्षणः ॥ ३४
एवमब्दमितं कालं तताप स तपोऽद्वृतम् ।
त्रिकालमर्चयद्वक्त्या वीरेशं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ३५
अथ त्रयोदशे मासि स्नात्वा त्रिपथगाम्भसि ।
प्रत्यूष एव वीरेशं यावदायाति स द्विजः ॥ ३६
तावद्विलोकयाञ्छक्रे मध्ये लिंगं तपोधनः ।
विभूतिभूषणं बालमष्टवर्षाकृतिं शिशुम् ॥ ३७
आकर्णायतनेत्रं च सुरक्तदशनच्छदम् ।
चारुपिंगजटामौलिं नग्नं प्रहसिताननम् ॥ ३८
शैशवोचितनेपथ्यधारिणं चितिधारिणम् ।
पठन्तं श्रुतिसूक्तानि हसन्तं च स्वलीलया ॥ ३९

तमालोक्य मुदं प्राप्य रोमकञ्चुकितो मुनिः ।
प्रोच्यचार हृदालापान्नमोऽस्त्विति पुनः पुनः ॥ ४०
अभिलाषप्रदैः पद्मैरष्टभिर्बालरूपिणम् ।
तुष्टाव परमानन्दं शंभुं विश्वानरः कृती ॥ ४१

कि] यह वीरेश्वर सिद्ध लिंग है, [इसकी पूजाके प्रभावसे] असंख्य साधक सिद्धिको प्राप्त किये हैं, इसीलिये यह श्रेष्ठ लिंग सबसे अधिक प्रसिद्ध है। लोग भक्तिभावसे समन्वित होकर वर्षपर्यन्त इस वीरेश्वर महालिंगकी पूजा करके आयु तथा पुत्रादि सभी मनोरथ प्राप्त करते हैं। अतः मैं भी यहीं वीरेश लिंगकी त्रिकाल आराधनाकर शीघ्र वैसा ही पुत्र प्राप्त करूँगा, जैसे कि मेरी स्त्रीने अभिलाषा की है ॥ २७—३० ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा विचारकर बुद्धिमान्, पुण्यात्मा तथा व्रती ब्राह्मण विश्वानरने चन्द्रकूपके जलमें स्नानकर नियम धारण किया ॥ ३१ ॥

उन्होंने एक मासपर्यन्त दिनमें एकाहार, एक मासपर्यन्त रात्रिमें एकाहार, एक मासपर्यन्त अयाचित आहार पुनः एक मासतक निराहार रहकर तप किया ॥ ३२ ॥

वे एक महीनेतक दूध पीकर, एक महीनेतक शाक-फल खाकर, एक महीनेतक मुट्ठीभर तिल खाकर और एक महीने पानी पीकर रहे ॥ ३३ ॥

वे एक महीनेतक पंचगव्य पीकर, एक मासतक चान्द्रायणव्रतकर, एक मासतक कुशाग्रका जल पीकर पुनः एक महीने वायु भक्षणकर रहने लगे ॥ ३४ ॥

उत्तम वीरेश्वरलिंगकी भक्तिपूर्वक पूजा करते हुए इस प्रकार उन्होंने एक वर्षतक अद्वृत तप किया ॥ ३५ ॥

उसके बाद तेरहवें महीनेमें गंगाके जलमें प्रातःकाल स्नानकर ज्यों ही वे ब्राह्मण वीरेश्वरकी ओर आये, उसी समय उन तपोधनने [वीरेश्वर] लिंगके मध्यमें विभूतिसे विभूषित, आठ वर्षकी आकृतिवाले एक बालकको देखा। उस बालककी आँखें कानोंतक फैली हुई थीं, उसके ओठ गहरे लाल थे, मस्तकपर अत्यन्त पिंगलवर्णकी जटा शोभा पा रही थी, वह नग्न तथा प्रसन्नमुख था और बालोचित वेशभूषा तथा चिताका भस्म धारण किये हुए श्रुतिके सूक्तोंका पाठ करता हुआ लीलापूर्वक हँस रहा था ॥ ३६—३९ ॥

उसे देखकर आनन्दित होकर रोमांचयुक्त विश्वानर मुनिने बार-बार हृदयसे ‘नमोऽस्तु’ कहकर प्रणाम किया। तदनन्तर विश्वानर मुनि कृतार्थ होकर अभिलाषा पूर्ण करनेवाले आठ पद्मोंसे बालकरूपधारी परमानन्द-स्वरूप शिवकी स्तुति करने लगे ॥ ४०-४१ ॥

विश्वानर उवाच
एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं
सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किञ्चित् ।
एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे
तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥ ४२ ॥

कर्ता हर्ता त्वं हि सर्वस्य शम्भो
नानारूपेष्वेकरूपोऽप्यरूपः ।
यद्वृत्तत्यगर्थम् एकोऽप्यनेक-
स्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये ॥ ४३ ॥

रजौ सर्पः शुक्किकायां च रौप्यं
नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ ।
यद्यत्सद्विद्विष्वगेव प्रपञ्चो
यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥ ४४ ॥

तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ
तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः ।
पुष्टे गन्धो दुग्धमध्येऽपि सर्पि-
र्यत्तच्छंभो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥ ४५ ॥

शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ-
स्यघाणस्त्वं व्यंघिरायासि दूरात् ।
व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोऽप्यजिह्वः
कस्त्वां सम्यग्वेत्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥ ४६ ॥

नो वेद त्वामीश साक्षाद्विवेदो
नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य ।
नो योगीन्द्रा नेन्द्रमुख्याश्च देवा
भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥ ४७ ॥

नो ते गोत्रं नेश जन्मापि नाख्या
नो वा रूपं नैव शीलं न देशः ।
इथम्भूतोऽपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः
सर्वान्कामान्यूरयेस्त्वं भजे त्वाम् ॥ ४८ ॥

विश्वानर बोले—यह सब कुछ एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, वही सत्य है, वही सत्य है, सर्वत्र उस ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह ब्रह्म एकमात्र ही है और दूसरा कोई नहीं है, इसलिये मैं एकमात्र आप महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ ॥ ४२ ॥

हे शम्भो! एक आप ही सबका सृजन करनेवाले तथा हरण करनेवाले हैं, आप रूपविहीन होकर भी अनेक रूपोंमें एक रूपवाले हैं, जैसे आत्मधर्म एक होता हुआ भी अनेक रूपोंवाला है, इसलिये मैं आप महेश्वरको छोड़कर किसी अन्यकी शरण नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ ४३ ॥

जिस प्रकार रस्सीमें साँप, सीपीमें चाँदी और मृगमरीचिकामें जलप्रवाह [मिथ्या] भासित होता है, उसी प्रकार [आपमें] यह सारा प्रपञ्च भासित हो रहा है। जिसके जान लेनेपर इस प्रपञ्चका मिथ्यात्व भलीभाँति ज्ञात हो जाता है, मैं उन महेश्वरकी शरण प्राप्त करता हूँ ॥ ४४ ॥

हे शम्भो! जिस प्रकार जलमें शीतलता, अग्निमें दाहकता, सूर्यमें ताप, चन्द्रमामें आह्लादकत्व, पुष्टमें गन्ध एवं दुग्धमें घृत व्याप्त रहता है, उसी प्रकार सर्वत्र आप ही व्याप्त हैं, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ ॥ ४५ ॥

हे प्रभो! आप कानोंके बिना सुनते हैं, नाकके बिना सूँधते हैं, बिना पैरके दूरसे आते हैं, बिना आँखके देखते हैं और बिना जिह्वाके रस ग्रहण करते हैं, अतः आपको भलीभाँति कौन जान सकता है। इस प्रकार मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ ॥ ४६ ॥

हे ईश! आपको न साक्षात् वेद, न विष्णु, न सर्वस्त्वा ब्रह्मा, न योगीन्द्र और न तो इन्द्रादि देवगण ही जान सकते हैं, केवल भक्त ही आपको जान पाता है, अतः मैं आपकी शरण प्राप्त करता हूँ ॥ ४७ ॥

हे ईश! आपका न तो गोत्र है, न जन्म है, न आपका नाम है, न आपका रूप है, न शील है एवं न देश। ऐसा होते हुए भी आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं और आप समस्त मनोरथोंको पूर्ण करते हैं, अतः मैं आपका भजन करता हूँ ॥ ४८ ॥

त्वतः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे
त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः।
त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बाल-
स्तत्त्वं यत्किं नान्यतस्त्वां नतोऽहम्॥४९
नन्दीश्वर उवाच

स्तुत्वेति विप्रो निपपात भूमौ
संबद्धपाणिर्भवतीह यावत्।
तावत्स बालोऽखिलवृद्धवृद्धः
प्रोवाच भूदेवमतीव हृष्टः॥५०
बाल उवाच

विश्वानर मुनिश्रेष्ठ भूदेवाहं त्वयाद्य वै।
तोषितः सुप्रसन्नात्मा वृणीष्व वरमुत्तमम्॥५१
तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती।
प्रत्यब्रवीन्मुनिश्रेष्ठः शङ्करं बालरूपिणम्॥५२
विश्वानर उवाच

महेश्वर किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो।
सर्वान्तरात्मा भगवान् शर्वः सर्वप्रदो भवान्॥५३
याच्चां प्रति नियुक्तं मां किं ब्रूषे दैन्यकारिणीम्।
इति ज्ञात्वा महेशान यथेच्छसि तथा कुरु॥५४

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य हि।
शुचिः शुचिव्रतस्याथ शुचिं स्मित्वाब्रवीच्छिशुः॥५५
त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि।
अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयम्॥५६
तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते।
ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिः सर्वामरप्रियः॥५७

अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम्।
अब्दत्रिकालपठनात्कामदं शिवसन्निधौ॥५८

एतत्स्तोत्रप्रपठनं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।
सर्वशान्तिकरं चापि सर्वापत्तिविनाशनम्॥५९

हे कामशत्रो! सब कुछ आपसे है और आप ही सब कुछ हैं, आप पार्वतीपति हैं, आप दिगम्बर एवं अत्यन्त शान्त हैं। आप वृद्ध, युवा और बालक हैं। कौन ऐसा पदार्थ है, जो आप नहीं हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥४९॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार स्तुतिकर हाथ जोड़े हुए वे ब्राह्मण जबतक पृथ्वीपर गिरते, तबतक वह बालक वृद्धोंके भी वृद्ध पुरातन पुरुषके रूपमें अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्राह्मणसे कहने लगा—॥५०॥

बालक बोला—हे विश्वानर! हे मुनिश्रेष्ठ! हे ब्राह्मण! आपने आज मुझे अत्यन्त सन्तुष्ट कर दिया। अतः आप प्रसन्नचित्त होकर उत्तम वर माँगिये॥५१॥

तब मुनियोंमें श्रेष्ठ वे विश्वानर मुनि प्रसन्नचित्त हो उठकर बालकरूपी शिवजीसे कहने लगे॥५२॥

विश्वानर बोले—हे महेश्वर! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतः आपसे कौन ऐसी बात है, जो छिपी रह सकती है। हे प्रभो! आप सर्वान्तरात्मा, भगवान्, शर्व तथा सब कुछ प्रदान करनेवाले हैं॥५३॥

दीनता प्रकट करनेवाली याचनाके लिये मुझे नियुक्त करके आप मुझसे क्या कहलाना चाहते हैं, हे महेशान! ऐसा जानकर आप जैसा चाहते हैं, वैसा करें॥५४॥

नन्दीश्वर बोले—पवित्र व्रत करनेवाले उन विश्वानरके इस पवित्र वचनको सुनकर परम पवित्र उस बालकरूप महादेवने मन्द-मन्द मुसकराकर कहा—॥५५॥

हे शुचे! आपने शुचिष्मतीमें हृदयसे जो इच्छा की है, वह थोड़े ही दिनोंमें निःसन्देह पूर्ण हो जायगी॥५६॥

हे महामते! मैं शुचिष्मतीके गर्भसे आपके पुत्ररूपमें जन्म लूँगा और शुद्धात्मा तथा सभी देवताओंको प्रिय मैं गृहपति नामसे प्रसिद्ध होऊँगा॥५७॥

आपके द्वारा कहा गया यह पवित्र अभिलाषाष्टकस्तोत्र एक वर्षपर्यन्त तीनों कालमें शिवकी सन्निधिमें पढ़ते रहनेपर [मनुष्योंको] सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला होगा॥५८॥

इस स्तोत्रका पाठ पुत्र-पौत्र-धन प्रदान करनेवाला, सभी प्रकारकी शान्ति करनेवाला तथा सम्पूर्ण आपत्तियोंका विनाश करनेवाला है और यह स्वर्ग, मोक्ष तथा

स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकं नात्र संशयः ।
सर्वस्तोत्रसमं हेतत्सर्वकामप्रदं सदा ॥ ६०

प्रातरुत्थाय सुन्नातो लिंगमध्यर्च्य शाम्भवम् ।
वर्ष जपनिदं स्तोत्रमपुत्रः पुत्रवान्भवेत् ॥ ६१

अभिलाषाष्टकमिदं न देयं यस्य कस्यचित् ।
गोपनीयं प्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत् ॥ ६२

स्त्रिया वा पुरुषेणापि नियमाल्लिंगसन्निधौ ।
अब्दं जप्तमिदं स्तोत्रं पुत्रदं नात्र संशयः ॥ ६३

नन्दीश्वर उवाच
इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुर्बलरूपः सतां गतिः ।
सोऽपि विश्वानरो विप्रो हृष्टात्मा स्वगृहं ययौ ॥ ६४

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतारवर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय योर्ण हुआ ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

विश्वानरके पुत्ररूपमें गृहपति नामसे शिवका प्रादुर्भाव

नन्दीश्वर उवाच

स विप्रो गृहमागत्य महाहर्षसमन्वितः ।
प्रियायै कथयामास तद्वृत्तान्तमशेषतः ॥ १
तच्छुत्वा विप्रपत्नी सा मुदं प्राप शुचिष्मती ।
अतीव प्रेमसंयुक्ता प्रशशांस विधिं निजम् ॥ २

अथ कालेन तद्योषिदन्तर्वर्त्ती बभूव ह ।
विधिवद् विहिते तेन गर्भाधानाख्यकर्मणि ॥ ३

ततः पुंसवनं तेन स्पन्दनात्प्राग्विपश्चित्ता ।
गृह्योक्तविधिना सम्यक् कृतं पुंस्त्वविवृद्धये ॥ ४

सम्पत्ति देनेवाला है, इसमें संशय नहीं है। यह स्तोत्र अकेला ही सभी स्तोत्रोंके तुल्य है तथा सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला है ॥ ५९-६० ॥

प्रातःकाल उठकर भली-भाँति स्नान करके शिव-लिंगकी पूजाकर वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका पाठ करता हुआ पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है ॥ ६१ ॥

इस अभिलाषाष्टकस्तोत्रको जिस किसीको नहीं बताना चाहिये और इसे प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, यह महावन्ध्या स्त्रीको भी सन्तान देनेवाला है ॥ ६२ ॥

जो स्त्री अथवा पुरुष नियमपूर्वक शिवलिंगके समीप एक वर्षपर्यन्त इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे यह स्तोत्र पुत्र प्रदान करता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले बालक-रूपधारी शिवजी अन्तर्धान हो गये और वे विश्वानर ब्राह्मण भी प्रसन्नचित्त होकर अपने घर चले गये ॥ ६४ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनकुमार! घर आकर उस ब्राह्मणने परम हर्षसे युक्त होकर अपनी स्त्रीसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १ ॥

यह सुनकर उस विप्रपत्नी शुचिष्मतीको महान् आनन्द प्राप्त हुआ और वह प्रेमयुक्त होकर अपने भाग्यकी सराहना करने लगी ॥ २ ॥

तदनन्तर कुछ समयके बाद उस ब्राह्मणद्वारा यथाविधि गर्भाधानकर्म किये जानेपर उसकी पत्नी गर्भवती हुई ॥ ३ ॥

तत्पश्चात् उस विद्वान् ब्राह्मणने गृह्यसूत्रमें कथित विधिके अनुसार पुंस्त्वकी वृद्धिके लिये गर्भस्पन्दनके पहले ही भली-भाँति पुंसवन संस्कार किया ॥ ४ ॥

सीमन्तोऽथाष्टमे मासे गर्भरूपसमृद्धिकृत्।
सुखप्रसवसिद्धौ च तेनाकारि क्रियाविदा ॥ ५

अथातः शुभतारासु ताराधिपवराननः।
केन्द्रे गुरौ शुभे लग्ने सुग्रहेषु युगेषु च ॥ ६

अरिष्टदीपनिर्वाणः सर्वारिष्टविनाशकृत्।
तनयो नाम तस्यां तु शुचिष्पत्यां बभूव ह ॥ ७

शर्वः समस्तसुखदो भूर्भुवःस्वर्निवासिनाम्।
गन्धवाहनवाहाश्च दिग्वधूर्मुखवाससः ॥ ८

इष्टगन्धप्रसूनौघैर्वर्ववृष्टुस्ते घनाघनाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः प्रसेदुः सर्वतो दिशः ॥ ९

परितः सरितः स्वच्छा भूतानां मानसैः सह ।
तमोऽताम्यत्तु नितरां रजोऽपि विरजोऽभवत् ॥ १०

सत्त्वाः सत्त्वसमायुक्ताः सुधावृष्टिर्बभूव वै ।
कल्याणी सर्वथा वाणी प्राणिनः प्रियवत्यभूत् ॥ ११

रंभामुख्या अप्सरसो मङ्गलद्रव्यपाणयः ।
विद्याधर्यश्च किन्नर्यस्तथामर्यः सहस्रशः ॥ १२

गन्धर्वोरगयक्षणां सुमानिन्यः शुभस्वराः ।
गायन्त्यो मंगलं गीतं तत्राजग्मुनेकशः ॥ १३

मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ।
वसिष्ठः कश्यपोऽगस्त्यो विभाण्डो माण्डवीसुतः ॥ १४

लोमशो रोमचरणो भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
भृगुस्तु गालवो गर्गो जातूकण्यः पराशरः ॥ १५

आपस्तम्बो याज्ञवल्क्यो दक्षवाल्मीकिमुद्गलाः ।
शातातपश्च लिखितः शिलादः शंख उञ्छभुक् ॥ १६

जमदग्निश्च संवर्तो मतंगो भरतोऽशुमान् ।
व्यासः कात्यायनः कुत्सः शौनकः सुश्रुतः शुकः ॥ १७

तत्पश्चात् आठवाँ महीना आनेपर क्रियावेत्ता
उस ब्राह्मणने सुखपूर्वक प्रसवके लिये गर्भके रूपकी
वृद्धि करनेवाला सीमन्त-संस्कार कराया ॥ ५ ॥

तदुपरान्त ताराओंके अनुकूल होनेपर बृहस्पतिके
केन्द्रवर्ती होनेपर और शुभ ग्रहोंका योग होनेपर शुभ
लग्नमें चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला सूतिकागृहके
दीपकको अपने तेजसे शान्त अर्थात् प्रभाहीन-सा
करनेवाला तथा सभी अरिष्टोंका विनाश करनेवाला
पुत्र उस शुचिष्पत्यांके गर्भसे उत्पन्न हुआ ॥ ६-७ ॥

वह बालक शिवजी ही थे, जो भूर्भुवः स्वः—
इन तीनों लोकोंको समग्र सुख देनेके लिये अवतीर्ण
हुए। उस समय गन्धको समग्र वहन करनेवाले वायुके
वाहन (मेघ) दिशारूपी वधुओंके मुखपर वस्त्रसे बन
गये अर्थात् चारों ओर काली घटा उमड़ आयी। वे
घनघोर बादल गन्धवाली पुष्पराशिकी वर्षा करने
लगे। देवदुन्दुभियाँ बज उठीं और सारी दिशाएँ निर्मल
हो गयीं। प्राणियोंके मनोंके साथ चारों ओर नदियाँ
स्वच्छ हो गयीं, अन्धकार पूर्णरूपसे दूर हो गया,
रजोगुण विरज अर्थात् विनष्ट हो गया। प्राणी
सत्त्वगुणसे सम्पन्न हो गये। [चारों ओरसे] अमृतकी
वर्षा होने लगी। सभी प्राणियोंकी वाणी कल्याणकारी
और प्रिय लगनेवाली हो गयी ॥ ८—११ ॥

रम्भा आदि अप्सराएँ, विद्याधरियाँ, किन्नरियाँ,
देवपत्नियाँ और गन्धर्व-उरग एवं यक्षोंकी पत्नियाँ
हजारोंकी संख्यामें अपने-अपने हाथोंमें मंगल-द्रव्य
धारण किये हुए सुन्दर स्वरोंमें मंगल गीत गाती हुई
वहाँ आ गयीं ॥ १२-१३ ॥

मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा,
वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, विभाण्ड, माण्डवीपुत्र
लोमश, रोमचरण, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव,
गर्ग, जातूकण्य, पराशर, आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य,
दक्ष, वाल्मीकि, मुद्गल, शातातप, लिखित, शिलाद,
उञ्छवृत्तिसे जीविका चलानेवाले शंख, जमदग्नि,
संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान्, व्यास, कात्यायन,
कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुक, ऋष्यशृंग, दुर्वासा, शुचि,

ऋष्यशृङ्गोऽथ दुर्वासा: शुचिनर्ददतुम्बुरु ।
उत्तंको वामदेवश्च पवनोऽसितदेवलौ ॥ १८
सालङ्कायनहारीतौ विश्वामित्रोऽथ भार्गवः ।
मृकण्डः सह पुत्रेण पर्वतो दारुकस्तथा ॥ १९
धौम्योपमन्युवत्साद्या मुनयो मुनिकन्यकाः ।
तत्त्वान्त्यर्थं समाजग्मुर्धन्यं विश्वानराश्रमम् ॥ २०
ब्रह्मा बृहस्पतियुतो देवो गरुडवाहनः ।
नन्दिभृङ्गिसमायुक्तो गौर्या सह वृषध्वजः ॥ २१
महेन्द्रमुख्या गीर्वाणा नागाः पातालवासिनः ।
रत्नान्यादाय बहुशः ससरित्का महाब्ध्यः ॥ २२
स्थावरा जंगमं रूपं धृत्वायाताः सहस्रशः ।
महामहोत्सवे तस्मिन् बभूवाकालकौमुदी ॥ २३
जातकर्म स्वयं तस्य कृतवान्विधिरानतः ।
श्रुतिं विचार्य तद्वूपं नाम्ना गृहपतिस्त्वयम् ॥ २४
इति नाम ददौ तस्मै देयमेकादशोऽहनि ।
नामकर्मविधानेन तदर्थं श्रुतिमुच्चरन् ॥ २५
चतुर्निंगममन्त्रोक्तैराशीर्भिरभिनन्द्य च ।
समयाद्द्वं समारुद्ध्य सर्वेषां च पितामहः ॥ २६
कृत्वा बालोचितां रक्षां लौकिकीं गतिमाश्रितः ।
आरुद्ध्य यानं स्वं धाम हरोऽपि हरिणा ययौ ॥ २७

अहो रूपमहो तेजस्त्वहो सर्वांगलक्षणम् ।
अहो शुचिष्मतीभाग्यमाविरासीत्स्वयं हरः ॥ २८
अथवा किमिदं चित्रं शर्वभक्तजनेष्वहो ।
स्वयमाविरभूद् रुद्रो यतो रुद्रस्तदर्चितः ॥ २९

इति स्तुवन्तस्तेऽन्योऽन्यं सम्प्रहृष्टतनूरुहाः ।
विश्वानरं समापृच्छ्य जग्मुः सर्वे यथागतम् ॥ ३०

अतः पुत्रं समीहन्ते गृहस्थाश्रमवासिनः ।
पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा सनातनी ॥ ३१

नारद, तुम्बुरु, उत्तंक, वामदेव, पवन, असित, देवल, सालंकायन, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव, अपने पुत्र [मार्कण्डेय] के साथ मृकण्ड, पर्वत, दारुक, धौम्य, उपमन्यु, वत्स आदि मुनिगण तथा मुनिकन्याएँ उस बालककी [अदृष्ट] शान्तिके लिये विश्वानरके प्रशंसनीय आश्रमपर आ गये ॥ १४—२० ॥

बृहस्पतिसहित ब्रह्मा तथा भगवान् विष्णु, नन्दी, भृंगी तथा पार्वतीसहित शंकर, महेन्द्र आदि देवता, पातालवासी नागगण एवं अनेक प्रकारके रत्न लेकर नदियोंसहित समुद्र वहाँ गये और स्थावर [पर्वत आदि] हजारोंकी संख्यामें जंगमरूप धारणकर वहाँ आये। उस महोत्सवमें अचानक असमयमें चाँदनी उत्पन्न हो गयी ॥ २१—२३ ॥

उसके बाद ब्रह्माने विनम्र होकर स्वयं उसका जातकर्म-संस्कार किया, फिर वेदविधिका विचार करके ग्यारहवें दिन उसके रूपको देखकर उसका नाम गृहपति रखा। उन्होंने नामकरणके समय श्रुतिके मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चारों वेदोंके चार मन्त्रोंसे उसे आशीर्वाद देकर लौकिक रीतिका आश्रय लेकर [रक्षामन्त्रोंसे] उसकी बालोचित रक्षा सम्पन्न की और हंसपर सवार हो सबके पितामह वे ब्रह्माजी अपने धामको चले गये। इसी प्रकार विष्णुके साथ शंकर भी अपने वाहनपर सवार हो अपने लोकको चले गये ॥ २४—२७ ॥

वे आपसमें विचार कर रहे थे कि अहो! कैसा इसका रूप है, इसका विलक्षण तेज कैसा है और इसके सभी अंगलक्षण कैसे हैं, देखो शुचिष्मती कैसी भाग्यवती है कि [इसके गर्भसे] साक्षात् शिवजी प्रकट हो गये अथवा शिवजीके भक्तोंमें इस प्रकारकी घटना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; जिससे उनके द्वारा अर्चित रुद्र स्वयं प्रकट हो गये ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार आपसमें प्रशंसा करते हुए पुलकित रोमोंवाले सभी देवता विश्वानरसे आज्ञा ले जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार चले गये ॥ ३० ॥

पुत्रवान् व्यक्ति पुत्रसे लोकोंको जीतता है—यह सनातनी श्रुति है, इसीलिये समस्त गृहस्थ पुत्रकी कामना करते हैं ॥ ३१ ॥

अपुत्रस्य गृहं शून्यमपुत्रस्यार्जनं वृथा ।
अपुत्रस्य तपश्चिन्नं नो पवित्रत्यपुत्रतः ॥ ३२

न पुत्रात्परमो लाभो न पुत्रात्परमं सुखम् ।
न पुत्रात्परमं मित्रं परत्रेह च कुत्रचित् ॥ ३३
निष्क्रमोऽथ चतुर्थोऽस्य मासि पित्रा कृतो गृहात् ।
अन्नप्राशनमब्दाद्दें चूडाब्दे चार्थवत्कृता ॥ ३४

कर्णवेधं ततः कृत्वा श्रवणक्षें स कर्मवित् ।
ब्रह्मतेजोभिवृद्ध्यर्थं पञ्चमेऽब्दे व्रतं ददौ ॥ ३५

उपाकर्मं ततः कृत्वा वेदानध्यापयत्सुधीः ।
त्र्यब्दं वेदान्स विधिनाध्यैष्ट सांगपदक्रमान् ॥ ३६

विद्याजातं समस्तं च साक्षिमात्रं गुरोर्मुखात् ।
विनयादिगुणानाविष्कुर्वञ्चग्राह शक्तिमान् ॥ ३७

ततोऽथ नवमे वर्षे पित्रोः शुश्रूषणे रतम् ।
विश्वानरं गृहपतिं द्रष्टुमायाच्च नारदः ॥ ३८

विश्वानरोटजं प्राप्य देवर्षिस्तं तु कौतुकी ।
अपृच्छत्कुशलं तत्र गृहीतार्घासनः क्रमात् ॥ ३९
ततः सर्वं च तद्वागयं पुत्रधर्मं च सम्मुखे ।
विश्वानरं समवदत्स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ४०

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तो मुनिना बालः पित्रोराज्ञामवाप्य सः ।
प्रणाम्य नारदं श्रीमान् भक्त्या प्रहृ उपाविशत् ॥ ४१

नारद उवाच

वैश्वानर समध्येहि ममोत्संगे निषीद भोः ।
लक्षणानि परीक्षेऽहं पाणिं दर्शय दक्षिणम् ॥ ४२
ततो दृष्ट्वा तु सर्वं हि तालुजिह्वादि नारदः ।
विश्वानरं समवदच्छिवप्रेरणया सुधीः ॥ ४३

पुत्रहीनका घर सूना है, पुत्रहीनका धन कमाना व्यर्थ है, अपुत्रका तप खण्डित है, जिसको पुत्र नहीं है, वह कभी पवित्र नहीं होता ॥ ३२ ॥

पुत्रसे बढ़कर कोई परम लाभ नहीं, पुत्रसे बढ़कर कोई परम सुख नहीं और इस लोक तथा परलोकमें पुत्रसे बढ़कर कोई परम मित्र नहीं है ॥ ३३ ॥

चौथे महीनेमें गृहपतिके पिताने उसका गृहनिष्क्रमण-संस्कार किया । फिर छठे महीनेमें उसका विधिपूर्वक अन्न-प्राशन और वर्ष पूरा होनेपर चूडाकरणसंस्कार किया ॥ ३४ ॥

इसके बाद उस कर्मवेत्ताने श्रवणक्षत्रमें कर्णवेध करके उसके ब्रह्मतेजकी अभिवृद्धिके लिये पाँच वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत-संस्कार किया ॥ ३५ ॥

पुनः बुद्धिमान् पिताने उपाकर्मकर उसे वेदोंका अध्ययन कराया । इस प्रकार तीन वर्षमें ही उसने विधिपूर्वक अंग, पद तथा क्रमसहित समस्त वेदोंको पढ़ लिया ॥ ३६ ॥

प्रतिभाशाली उस बालकने गुरु पिताके मुखसे समस्त विद्याएँ अपने विनय आदि गुणोंको प्रकाशित करते हुए मात्र साक्षिभावसे ग्रहण कर लिया ॥ ३७ ॥

तदुपरान्त नौवें वर्षमें माता-पिताकी सेवामें निरत गृहपति तथा उसके पिता विश्वानरको देखनेके लिये नारदजी [वहाँ] आये ॥ ३८ ॥

कौतुकी देवर्षि नारदजीने विश्वानरकी पर्णशालामें प्रवेशकर अर्घ्य, आसन आदि क्रमसे ग्रहणकर उनसे कुशल-मंगल पूछा और उसके बाद शिवके चरणोंका ध्यान करके उनके सामने ही उनके समग्र भाग्य तथा पुत्रधर्मका वर्णन विश्वानरसे किया ॥ ३९-४० ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार ! तदुपरान्त] मुनि नारदजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह शोभासम्पन्न बालक माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर भक्तिपूर्वक उनको नम्रतासे प्रणामकर बैठ गया ॥ ४१ ॥

नारदजी बोले—हे वैश्वानर ! मैं तुम्हारे लक्षणोंकी परीक्षा करूँगा, तुम आओ, मेरी गोदमें बैठ जाओ और अपना दाहिना हाथ मुझे दिखाओ । तब विद्वान् नारदजी बालकके तालु, जिह्वा आदिको देखकर शिवजीकी प्रेरणासे विश्वानरसे कहने लगे— ॥ ४२-४३ ॥

नारद उवाच

विश्वानर मुने वच्चि शृणु पुत्राङ्गमादरात् ।
सर्वांगस्वङ्कवान्युत्रो महालक्षणवानयम् ॥ ४४

किन्तु सर्वगुणोपेतं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
सम्पूर्णनिर्मलकलं पालयेद्विधुद्विधिः ॥ ४५

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयस्वसौ शिशुः ।
गुणोऽपि दोषतां याति वक्रीभूते विधातरि ॥ ४६

शंकेऽस्य द्वादशे वर्षे प्रत्यूहो विद्युदग्नितः ।
इत्युक्त्वा नारदोऽगच्छदेवलोकं यथागतम् ॥ ४७

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारेपाख्याने गृहपत्यवतारवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतारवर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

नारदजी बोले— हे विश्वानर ! हे मुने ! मैं आपके पुत्रके सब लक्षणोंको कहता हूँ, उसे आदरपूर्वक सुनिये, आपके पुत्रके सभी अंग उत्तम लक्षणोंसे युक्त हैं, इसलिये यह अत्यन्त भाग्यशाली है। किंतु इसके सर्वगुणसम्पन्न, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे समन्वित और चन्द्रमाके समान निर्मल कलाओंसे सुशोभित होनेपर भी विधाता ही इसकी रक्षा करें। इसलिये सब तरहके उपायोंसे इस बालककी रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि विधाताके विपरीत होनेपर गुण भी दोष हो जाता है। मुझे इस बातकी शंका है कि बारहवें वर्षमें इसे बिजली अथवा अग्निसे विघ्न है। ऐसा कहकर नारदजी जैसे आये थे, वैसे देवलोकको चले गये ॥ ४४—४७ ॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

भगवान् शिवके गृहपति नामक अग्नीश्वरलिंगका माहात्म्य

नन्दीश्वर उवाच

विश्वानरः सपलीकः तच्छुत्वा नारदेरितम् ।
तदेवं मन्यमानोऽभूद्भ्रपातं सुदारुणम् ॥ १

हा हतोऽस्मीति वचसा हृदयं समताडयत् ।
मूर्च्छामिवाप महतीं पुत्रशोकसमाकुलः ॥ २

शुचिष्मत्यपि दुःखार्ता रुरोदातीव दुस्महम् ।
अतिस्वरेण हारावैरत्यन्तं व्याकुलेन्द्रिया ॥ ३

श्रुत्वार्तनादमिति विश्वनरोऽपि मोहं
हित्वोत्थितः किमिति किं त्विति किं किमेतत् ।
उच्चैर्वदन् गृहपतिः क्व स मे बहिस्थः
प्राणोऽन्तरात्मनिलयस्सकलेन्द्रियेशः ॥ ४

ततो दृष्ट्वा स पितरौ बहुशोकसमावृतौ ।
स्मित्वोवाच गृहपतिः सबालः शङ्करांशजः ॥ ५

नन्दीश्वर बोले— [हे सनत्कुमार !] नारदजीकी बात सुनकर स्त्रीसहित विश्वानरने उसे अत्यन्त दारुण वज्रपातके समान समझा ॥ १ ॥

‘हाय मैं मर गया’—ऐसा कहकर वे छाती पीटने लगे और पुत्रके शोकसे सन्तप्त होकर मूर्छित हो गये। शुचिष्मती भी अत्यधिक दुःखित होकर ऊँचे स्वरमें हाहाकार करती हुई व्याकुल इन्द्रियोंवाली होकर रोने लगी ॥ २-३ ॥

शुचिष्मतीके विलापको सुनकर विश्वानर भी मूर्छाका त्याग करके उठकर ओरे ! यह क्या हुआ, यह क्या हुआ, इस प्रकार ऊँचे स्वरमें रोते हुए बोले—हाय ! मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियोंका स्वामी, मेरा बाहर विचरनेवाला प्राण तथा मेरे आत्मामें निवास करनेवाला मेरा पुत्र गृहपति कहाँ है ? तब अपने माता-पिताको अत्यधिक शोकसे व्याकुल देखकर शंकरजीके अंशसे उत्पन्न वह बालक गृहपति मुसकराकर कहने लगा— ॥ ४-५ ॥

गृहपतिरुवाच
हे मातस्तात किं जातं कारणं तद्वदाधुना ।
किमर्थं रुदितोऽत्यर्थं त्रासस्तादृक् कुतो हि वाम् ॥ ६

न मां कृतवपुस्त्राणं भवच्चरणरेणुभिः ।
कालः कलयितुं शक्तो वराकी चञ्चलालिपका ॥ ७

प्रतिज्ञां शृणुतां तातौ यदि वां तनयो ह्यहम् ।
करिष्येऽहं तथा येन मृत्युस्त्रस्तो भविष्यति ॥ ८

मृत्युञ्जयं समाराध्य सर्वज्ञं सर्वदं सताम् ।
जपिष्यामि महाकालं सत्यं तातौ वदाम्यहम् ॥ ९

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य जारितौ द्विजदम्पती ।
अकालामृतवर्षांघैर्गतितापौ तदोचतुः ॥ १०

द्विजदम्पती ऊचतुः

पुनर्ब्रूहि पुनर्ब्रूहि कीदृक् कीदृक् पुनर्वद ।
कालः कलयितुं नालं वराकी चञ्चलास्ति का ॥ ११

आवयोस्तापनाशाय महोपायस्त्वयेरितः ।
मृत्युञ्जयाख्यदेवस्य समाराधनलक्षणः ॥ १२

तद्वच्च शरणं शम्भोर्नातः परतरं हि तत् ।
मनोरथपथातीतकारिणः पापहारिणः ॥ १३

किं न श्रुतं त्वया तात श्वेतकेतुं यथा पुरा ।
पाशितं कालपाशेन रक्ष त्रिपुरान्तकः ॥ १४

शिलादतनयं मृत्युग्रस्तमष्टाब्दमात्रकम् ।
शिवो निजजनं चक्रे नन्दिनं विश्वनंदिनम् ॥ १५

क्षीरोदमथनोद्भूतं प्रलयानलसन्निभम् ।
पीत्वा हालाहलं घोरमरक्षद्भुवनत्रयम् ॥ १६

जलंधरं महादर्पं हृतत्रैलोक्यसम्पदम् ।
रुचिरांगुष्ठरेखोत्थक्रेण निजघान यः ॥ १७

गृहपति बोला—हे माता ! हे पिता ! क्या हुआ है ? जिससे कि आपलोग इतने दुखी होकर रो रहे हैं, इसका कारण मुझे बताइये । इस तरह आपलोग भयभीत क्यों हो रहे हैं ? ॥ ६ ॥

आपलोगोंकी चरणधूलिसे सुरक्षित मेरे शरीरको काल भी मारनेमें समर्थ नहीं हो सकता, फिर अत्यन्त अल्प बिजली मेरा कर ही क्या सकती है ? ॥ ७ ॥

हे माता-पिता ! आपलोग मेरी प्रतिज्ञा सुनें, यदि मैं आप दोनोंका पुत्र हूँ, तो ऐसा कार्य करूँगा, जिससे मृत्यु भी सन्त्रस्त हो जायगी । हे माता-पिता ! मैं सत्यरुपोंको सब कुछ देनेवाले सर्वज्ञ मृत्युञ्जय भगवान्की भलीभाँति आराधना करके महाकालको भी जीत लूँगा, यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥ ८-९ ॥

नन्दीश्वर बोले—उसकी इस प्रकारकी बातको सुनकर मुरझाये हुए द्विजदम्पती अकालमें हुई अमृतकी सघन वृष्टिके समान दुःखरहित होकर कहने लगे ॥ १० ॥

द्विजदम्पती बोले—[हे पुत्र!] फिर कहो ! फिर कहो ! तुमने क्या कहा कि मुझे काल भी मारनेमें समर्थ नहीं है । फिर बेचारी बिजली कौन है ? तुमने हमलोगोंके शोकका निवारण करनेके लिये मृत्युञ्जयदेवताका समाराधनरूप उपाय उचित ही कहा है ॥ ११-१२ ॥

शिवजीका आश्रय ही सचमुच ऐसा है, उनसे बड़ा कोई नहीं है, वे सभी पापोंको दूर करनेवाले एवं मनोरथमार्गसे भी परे कामनाको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ १३ ॥

हे तात ! क्या तुमने नहीं सुना है कि पूर्वकालमें जब श्वेतकेतु कालपाशमें बाँध लिया गया था, तब शिवजीने उसकी रक्षा की थी ? शिलादपुत्र नन्दीश्वर जो केवल आठ वर्षका बालक था, शिवजीने कालपाशसे छुड़ाकर उसे अपना गण तथा विश्वका रक्षक बना दिया ॥ १४-१५ ॥

क्षीरसागरके मन्थनसे उत्पन्न तथा प्रलयगिनिके समान महाभयानक हालाहल विषको पीकर शिवजीने ही तीनों लोकोंकी रक्षा की थी ॥ १६ ॥

जिन्होंने त्रिलोकीकी सम्पत्तियोंका हरण करनेवाले महान् अभिमानी जलन्धर नामक दैत्यको अपने सुन्दर अङ्गूठेकी रेखासे उत्पन्न चक्रके द्वारा मार डाला । जिन्होंने त्रिलोककी सम्पदाको प्राप्तकर मोहित हुए त्रिपुरको

य एकेषुनिपातोत्थज्वलनैस्त्रिपुरम्पुरा ।
त्रैलोक्यैश्वर्यसम्मूढं शोषयामास भानुना ॥ १८
कामं दृष्टिनिपातेन त्रैलोक्यविजयोर्जितम् ।
निनायानंगपदवीं वीक्ष्यमाणोष्वजादिषु ॥ १९
तं ब्रह्माद्यैककर्तारं मेघवाहनमच्युतम् ।
प्रयाहि पुत्र शरणं विश्वरक्षामणिं शिवम् ॥ २०
नन्दीश्वर उवाच

पित्रोरनुज्ञां प्राप्येति प्रणाम्य चरणौ तयोः ।
प्रादक्षिण्यमुपावृत्य ब्रह्माश्वास्य विनिर्ययौ ॥ २१
सम्प्राप्य काशीं दुष्प्रापां ब्रह्मनारायणादिभिः ।
महासंवर्तसन्तापहन्त्रीं विश्वेशपालिताम् ॥ २२
स्वर्धुन्या हारयष्ट्येव राजितां कण्ठभूमिषु ।
विचित्रगुणशालिन्या हरपत्या विराजिताम् ॥ २३

तत्र प्राप्य स विप्रेशः प्राग्ययौ मणिकर्णिकाम् ।
तत्र स्नात्वा विधानेन दृष्ट्वा विश्वेश्वरं प्रभुम् ॥ २४
सञ्जलिर्नतशीषोऽसौ महानन्दान्वितः सुधीः ।
त्रैलोक्यप्राणसन्त्राणकारिणं प्रणनाम ह ॥ २५

आलोक्यालोक्य तल्लिङ्गं तुतोष हृदये मुहुः ।
परमानन्दकन्दाद्यं स्फुटमेतत्र संशयः ॥ २६

अहो न मत्तो धन्योऽस्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ।
यदद्राक्षिषमद्याहं श्रीमद्विश्वेश्वरं विभुम् ॥ २७

मम भाग्योदयायैव नारदेन महर्षिणा ।
पुरागत्य तथोक्तं यत्कृतकृत्योऽस्यहं ततः ॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

इत्यानन्दामृतरसैर्विधाय स हि पारणम् ।
ततः शुभेऽहि संस्थाप्य लिङ्गं सर्वहितप्रदम् ॥ २९

जग्राह नियमान्योरान् दुष्करानकृतात्मभिः ।
अष्टोत्तरशतैः कुम्भैः पूर्णंगङ्गाऽभ्यसा शुभैः ॥ ३०

एक ही बाण चलाकर उससे उत्पन्न हुई ज्वालाओंवाली अग्निसे सुखा डाला और जिन्होंने त्रिलोकके विजयसे उन्मत्त हुए कामदेवको ब्रह्मा आदिके देखते-ही-देखते दृष्टिनिक्षेपमात्रसे अनंग बना दिया । हे पुत्र ! तुम ब्रह्मा आदिके एकमात्र जन्मदाता, मेघपर सवार होनेवाले, अविनाशी तथा विश्वकी रक्षारूप मणि उन शिवजीकी शरणमें जाओ ॥ १७—२० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! माता-पिताकी आज्ञा पाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करके और उन्हें बहुत तरहसे आश्वासन देकर वह वहाँसे चल दिया और उस काशीपुरीमें पहुँचा, जो ब्रह्मा, नारायण आदि देवोंके लिये दुर्लभ, महाप्रलयके सन्तापका विनाश करनेवाली, विश्वेश्वरद्वारा पालित, कण्ठ अर्थात् तटप्रदेशमें हारकी तरह पड़ी हुई गंगाजीसे सुशोभित और अद्भुत गुणोंसे सम्पन्न हरपत्नी [भगवती गिरिजा]-से शोभायमान है ॥ २१—२३ ॥

वहाँ पहुँचकर वे विप्रवर पहले मणिकर्णिका गये । वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके प्रभु विश्वेश्वरका दर्शन करके उन बुद्धिमान्‌ने परम आनन्दसे युक्त होकर तीनों लोकोंके प्राणोंकी रक्षा करनेवाले शिवजीको हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम किया । वे बार-बार उसे देखकर हर्षित हो रहे थे और मनमें विचार कर रहे थे कि सचमुच यह लिंग परम आनन्दकन्दसे परिपूर्ण है, यह स्पष्ट ही है, इसमें संशय नहीं है ॥ २४—२६ ॥

अहो ! इस चराचर त्रिलोकीमें मुझसे बढ़कर कोई धन्य नहीं है, जो कि मैंने आज ऐश्वर्यमय तथा सर्वव्यापी विश्वेश्वरका दर्शन किया ॥ २७ ॥

मेरे भाग्योदयके लिये ही महर्षि नारदने जो मुझे आकर पहले ही बता दिया था, जिससे आज मैं [विश्वेश्वरका दर्शन प्राप्तकर] कृतकृत्य हो गया ॥ २८ ॥

नन्दीश्वर बोले—मुने ! इस प्रकार आनन्दामृतरूपी रसोंद्वारा पारण करके गृहपतिने शुभ दिनमें सर्वहितप्रद शिवलिंगकी स्थापना की ॥ २९ ॥

तत्पश्चात् अजितेन्द्रियोंके लिये अति दुष्कर कठोर नियमोंको ग्रहणकर अनुष्ठानपरायण हुआ पवित्र चित्तवाला वह प्रतिदिन वस्त्रोंसे छाने गये गंगाजलसे

संस्नाप्य वाससा पूतैः पूतात्मा प्रत्यहं शिवम्।
नीलोत्पलमयीं मालां समर्पयति सोऽन्वहम्॥ ३१
अष्टाधिकसहस्रैस्तु सुमनोभिर्विनिर्मिताम्।

स पक्षे वाथ वा मासे कन्दमूलफलाशनः॥ ३२

शीर्णपणाशनैर्धीरः षण्मासं सम्बभूव सः।
षण्मासं वायुभक्षोऽभूत्पण्मासं जलबिन्दुभुक्॥ ३३

एवं वर्षद्वयं तस्य व्यतिक्रान्तं महात्मनः।
शिवैकमनसो विप्रास्तप्यमानस्य नारद॥ ३४

जन्मतो द्वादशे वर्षे तद्वचो नारदेरितम्।
सत्यं करिष्यन्निव तमभ्यगात्कुलिशायुधः॥ ३५

उवाच च वरं ब्रूहि दद्धि त्वन्मनसि स्थितम्।
अहं शतक्रतुर्विप्र प्रसन्नोऽस्मि शुभव्रतैः॥ ३६

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य महेन्द्रस्य वाक्यं मुनिकुमारकः।
उवाच मधुरं धीरः कीर्तयन्मधुराक्षरम्॥ ३७

गृहपतिरुवाच

मधवन् वृत्रशत्रो त्वां जाने कुलिशपाणिनम्।
नाहं वृणे वरं त्वतः शङ्करो वरदोऽस्ति मे॥ ३८

इन्द्र उवाच

न मत्तः शङ्करस्त्वन्यो देवदेवोऽस्म्यहं शिशो।
विहाय बालिशत्वं त्वं वरं याचस्व मा चिरम्॥ ३९

गृहपतिरुवाच

गच्छाहल्यापतेऽसाधो गोत्रारे पाकशासन।
न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवान्तरं स्फुटम्॥ ४०

नन्दीश्वर उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रोधसंक्तलोचनः।
उद्यम्य कुलिशं घोरं भीषयामास बालकम्॥ ४१

स दृष्ट्वा बालको वज्रं विद्युज्ज्वालासमाकुलम्।
स्मरन्नारदवाक्यं च मुमूर्च्छ भयविह्वलः॥ ४२

पूर्ण एक सौ आठ पवित्र घड़ोंसे शिवजीको स्नान कराने लगा और एक हजार आठ नीलकमलोंसे बनी हुई माला समर्पित करने लगा॥ ३०-३१ १/२॥

पहले वह पक्षमें [एक बार] फिर महीने-महीनेमें फल-मूल-कन्दको खाकर [छः महीनेतक] रहा। इसके बाद अत्यन्त धीर वह गृहपति पुनः छः मास सूखे पत्ते खाकर और छः महीने वायु पीकर, फिर छः महीने एक बूँद जल पीकर तपस्या करनेमें लगा रहा॥ ३२-३३॥

हे नारद! इस प्रकार एकमात्र शिवजीको मनमें धारण करके तपमें निरत उस महात्माके दो वर्ष बीत गये। हे शौनक! तब जन्मसे बारहवें वर्षमें देवर्षि नारदद्वारा कही गयी बातको मानो सत्य करनेकी इच्छासे स्वयं इन्द्रदेव उसके पास आये और बोले— हे विप्र! मैं इन्द्र इस उत्तम तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ, तुम्हारे मनमें जो अभिलिष्ट हो, उस वरको माँगो, मैं प्रदान कर रहा हूँ॥ ३४—३६॥

नन्दीश्वर बोले—इन्द्रके इस वचनको सुनकर महा-धीर मुनिकुमारने मधुर मधुराक्षरमयी वाणीमें कहा—॥ ३७॥

गृहपति बोला—हे मधवन्! हे वृत्रशत्रो! मैं वज्र धारण करनेवाले आपको जानता हूँ। मैं आपसे वर नहीं माँगता, मुझे वर देनेवाले तो शिवजी हैं॥ ३८॥

इन्द्र बोले—हे बालक! मेरे सिवा कोई दूसरा शिव नहीं है, मैं सभी देवताओंका भी देव हूँ। अतः तुम अपना लड़कपन त्यागकर [मुझसे] वर माँगो और देर मत करो॥ ३९॥

गृहपति बोला—तुम अहल्याके शीलको नष्ट करनेवाले असाधु हो, पाक नामक असुरका वध करनेवाले पर्वतोंके शत्रु हे इन्द्र! तुम चले जाओ, यह स्पष्ट है कि मैं शिवजीके अतिरिक्त और किसी देवतासे वरकी प्रार्थना नहीं करता॥ ४०॥

नन्दीश्वर बोले—उसकी यह बात सुनते ही क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले इन्द्र अपना घोर वज्र उठाकर बालकको भयभीत करने लगे॥ ४१॥

विद्युज्ज्वालाके समान प्रज्वलित वज्रको देखकर नारदकी बातका स्मरण करता हुआ वह बालक भयसे व्याकुल होकर मूर्छित हो गया। उसके

अथ गौरीपतिः शम्भुराविरासीत्तमोनुदः ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते स्पर्शैः संजीवयन्निव ॥ ४३

उन्मील्य नेत्रकमले सुप्ते इव दिनक्षये ।
अपश्यदग्रे चोत्थाय शम्भुमर्कशताधिकम् ॥ ४४

भाले लोचनमालोक्य कण्ठेकालं वृषध्वजम् ।
वामाङ्गसन्निविष्टाद्वितनयं चन्द्रशेखरम् ॥ ४५

कपर्देन विराजन्तं त्रिशूलाजगवायुधम् ।
स्फुरत्कर्पूरगौरांगं परिणद्धगजाजिनम् ॥ ४६

परिज्ञाय महादेवं गुरुवाक्यत आगमात् ।
हर्षबाष्पाकुलासन्नकण्ठरोमाञ्चकञ्चुकः ॥ ४७

क्षणं च गिरिवत्तस्थौ चित्रकृत्रिमपुत्रकः ।
यथा तथा सुसम्पन्नो विस्मृत्यात्मानमेव च ॥ ४८

न स्तोतुं न नमस्कर्तुं किञ्चिद्विज्ञप्तुमेव च ।
यदा स न शशाकालं तदा स्मित्वाह शङ्करः ॥ ४९

ईश्वर उवाच

शिशो गृहपते शक्राद्वच्रोद्यतकरादहो ।
ज्ञातं भीतोऽसि मा भैषीर्जिज्ञासा ते मया कृता ॥ ५०

मम भक्तस्य नो शक्रो न वज्रं चान्तकोऽपि च ।
प्रभवेदिन्द्ररूपेण मयैव त्वं बिभीषितः ॥ ५१

वरं ददामि ते भद्रं त्वमग्निपदभाग्भव ।
सर्वेषामेव देवानां वरदस्त्वं भविष्यसि ॥ ५२

सर्वेषामेव भूतानां त्वमग्नेऽन्तश्चरो भव ।
धर्मराजेन्द्रयोर्मध्ये दिगीशो राज्यमाप्नुहि ॥ ५३

त्वयेदं स्थापितं लिङ्गं तव नामा भविष्यति ।
अग्नीश्वर इति ख्यातं सर्वतेजोविबृंहणम् ॥ ५४

पश्चात् अन्धकारका नाश करनेवाले गौरीपति शिवजी प्रकट हो गये और हाथके स्पर्शसे उसे जीवित-सा करते हुए उससे बोले—उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो ॥ ४२-४३ ॥

तब [उस अपूर्व स्पर्शको प्राप्त करके] उसने रात्रिमें सोये हुएके समान अपने नेत्रकमलोंको खोलकर उठ करके अपने आगे सैकड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रकाशमान शिवजीको देखा । उनके मस्तकमें नेत्र शोभित हो रहा था, कण्ठमें विषकी कालिमा थी, वे बैलपर सवार थे, उनके बायीं ओर भगवती पार्वती स्थित थीं, उनके मस्तकपर अर्धचन्द्र सुशोभित हो रहा था, वे जटाजूटसे युक्त थे, त्रिशूल एवं अजगव धनुष धारण किये हुए थे । उनका गौर शरीर कर्पूरके समान उज्ज्वल था और वे गजचर्म धारण किये हुए थे । तब गुरुवाक्य तथा आगमप्रमाणसे उन्हें महादेव जानकर हर्षातिरेकसे उसका कण्ठ झुँध गया और शरीर रोमांचित हो गया । उसकी स्मृति लुप्त हो गयी । फिर भी वह जैसे-तैसे क्षणभरके लिये चित्रलिखित पुतलेके समान स्तम्भित हो अवाक् खड़ा रहा ॥ ४४-४८ ॥

जब वह न तो स्तुति, न नमस्कार और न कुछ कहनेमें ही समर्थ रहा, तब शिवजीने मुसकराकर उससे कहा— ॥ ५९ ॥

ईश्वर बोले—हे बालक! हे गृहपते! मैंने समझ लिया कि तुम हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रसे डर गये हो, अब डरो मत! यह तो मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली थी। मेरे भक्तको इन्द्र, वज्र अथवा काल भी नहीं डरा सकते हैं। यह तो मैंने ही इन्द्रका रूप धारणकर तुम्हें डराया था ॥ ५०-५१ ॥

हे भद्र! अब मैं तुम्हें वर प्रदान करता हूँ कि तुम अग्निका पद ग्रहण करनेवाले हो जाओ। तुम सभी देवताओंके वरदाता बनोगे। तुम सभी प्राणियोंके अन्दर [वैश्वानर नामकी] अग्नि बनकर विचरण करो और दक्षिण एवं पूर्व दिशाके मध्यमें [आग्नेयकोणका] दिगीश्वर बनकर राज्य करो ॥ ५२-५३ ॥

तुम्हारे द्वारा स्थापित यह लिंग [आजसे] तुम्हरे ही नामसे [प्रसिद्ध] होगा। यह अग्नीश्वर नामवाला होगा, जो सभी तेजोंका विशिष्ट रूपसे अभिवर्धन

अग्नीश्वरस्य भक्तानां न भयं विद्युदग्निभिः ।
अग्निमान्द्यभयं नैव नाकालमरणं क्वचित् ॥ ५५

अग्नीश्वरं समध्यर्च्य काश्यां सर्वसमृद्धिदम् ।
अन्यत्रापि मृतो दैवाद्विलोके महीयते ॥ ५६

नन्दीश्वर उवाच
इत्युक्त्वानीय तद्बन्धून्पित्रोश्च परिपश्यतोः ।
दिक्पतित्वेऽभिषिद्याग्निं तत्र लिंगे शिवोऽविशत् ॥ ५७

इथमग्न्यवतारस्ते वर्णितो मे जनार्दनः ।
नामा गृहपतिस्तात शङ्करस्य परात्मनः ॥ ५८

चित्रहोत्रपुरी रम्या सुखदर्चिष्मती वरा ।
जातवेदसि ये भक्ता ते तत्र निवसन्ति वै ॥ ५९

अग्निप्रवेशं ये कुर्युर्दृढसत्त्वा जितेन्द्रियाः ।
स्त्रियो वा सत्त्वसम्पन्नास्ते सर्वेऽप्यग्नितेजसः ॥ ६०

अग्निहोत्ररता विप्राः स्थापिता ब्रह्मचारिणः ।
पञ्चाग्निवर्त्तिनोऽप्येवमग्निलोकेऽग्निवर्चसः ॥ ६१

शीते शीतापनुत्यै यस्त्वेधोभारान्प्रयच्छति ।
कुर्यादग्नीष्टिकां वाथ स वसेदग्निसत्रिधौ ॥ ६२

अनाथस्याग्निसंस्कारं यः कुर्याच्छङ्खयान्वितः ।
अशक्तः प्रेरयेदन्यं सोऽग्निलोके महीयते ॥ ६३

अग्निरेको द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ।
गुरुर्देवो व्रतं तीर्थं सर्वमग्निर्विनिश्चितम् ॥ ६४

करेगा । अग्नीश्वरके भक्तोंको विद्युत् एवं अग्निसे भय नहीं होगा । उन्हें अग्निमान्द्यका भय नहीं होगा और अकालमरण भी कभी नहीं होगा ॥ ५४-५५ ॥

सम्पूर्ण समृद्धियोंको देनेवाले इस अग्नीश्वर लिंगका काशीमें पूजन करके मनुष्य दैवयोगसे यदि कहीं भी मृत्युको प्राप्त होगा, तो उसे अग्निलोककी प्राप्ति हो जायगी ॥ ५६ ॥

नन्दीश्वर बोले— इस प्रकार कहकर शिवजीने गृहपतिके [माता-पिता एवं] बन्धुओंको बुलाकर उनके माता-पिताके देखते-देखते उस बालकको अग्निकोणके दिक्पालपदपर अभिषिक्तकर स्वयं उस लिंगमें प्रवेश किया ॥ ५७ ॥

हे तात ! इस प्रकार मैंने परमात्मा शिवके गृहपति नामक अग्निके रूपमें दुर्जनोंको पीड़ा देनेवाले अवतारका वर्णन किया ॥ ५८ ॥

चित्रहोत्र नामक सुखदायिनी, रम्य तथा प्रकाशमान पुरी है, जो लोग अग्निके भक्त हैं, वे वहाँ निवास करते हैं ॥ ५९ ॥

जितेन्द्रिय एवं दृढ़ सत्त्व भाववाले पुरुष अथवा सत्त्वसम्पन्न स्त्रियाँ उस अग्निलोकमें प्रवेश करती हैं, वे सभी अग्निके समान तेजस्वी होते हैं ॥ ६० ॥

अग्निहोत्रमें तत्पर ब्राह्मण, अग्निको स्थापित करनेवाले ब्रह्मचारी तथा पंचाग्नि तापनेवाले तपस्वी लोग भी अग्निके समान तेजस्वी होकर अग्निलोकमें निवास करते हैं ॥ ६१ ॥

जो शीतकालमें शीतको दूर करनेके लिये काष्ठ-समूहका दान करता है अथवा ईटोंसे अग्निकुण्डका निर्माण करता है, वह अग्निके सानिध्यमें निवास करता है । जो श्रद्धायुक्त होकर अनाथ व्यक्तिका अग्निसंस्कार करता है अथवा स्वयं अशक्त होनेपर [इसके लिये] दूसरेको प्रेरित करता है, वह अग्निलोकमें पूजित होता है ॥ ६२-६३ ॥

एकमात्र अग्निदेव ही द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य)-का परम कल्याण करनेवाले हैं । अग्नि ही उनके गुरु, देवता, ब्रत, तीर्थ एवं सब कुछ हैं— ऐसा निश्चित है ॥ ६४ ॥

अपावनानि सर्वाणि वह्निसंसर्गतः क्षणात् ।
पावनानि भवन्त्येव तस्माद्यः पावकः स्मृतः ॥ ६५

अन्तरात्मा ह्ययं साक्षात्त्रिश्चयो ह्याशुशुक्षणिः ।
मांसग्रासान्यचेत्कुक्षौ स्त्रीणां नो मांसपेशिकाम् ॥ ६६

तैजसी शाम्भवी मूर्तिः प्रत्यक्षा दहनात्मिका ।
कर्त्री हत्री पालयित्री विनैतां किं विलोक्यते ॥ ६७

चित्रभानुरयं साक्षात्त्रेत्रं त्रिभुवनेशितुः ।
अन्थे तमोमये लोके विनैनं कः प्रकाशनः ॥ ६८

धूपप्रदीपनैवेद्यपयोदधिघृतैक्षवम् ।
एतद्दुक्तं निषेवन्ते सर्वे दिवि दिवौकसः ॥ ६९

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां गृहपत्यवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें गृहपत्यवतार-
वर्णन नामक पञ्चहावाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

यक्षेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

यक्षेश्वरावतारं च शृणु शंभोर्मुनीश्वर ।
गर्विणं गर्वहन्तारं सतां भक्तिविवर्द्धनम् ॥ १

पुरा देवाश्च दैत्याश्च पीयूषार्थं महाबलाः ।
क्षीरोदधिं ममन्थुस्ते सुकृतस्वार्थसन्धयः ॥ २

मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीराब्धेः सुरदानवैः ।
अग्नेः समुत्थितं तस्माद्विषं कालानलप्रभम् ॥ ३

तं दृष्ट्वा निखिला देवा दैत्याश्च भयविह्वलाः ।
विद्वृत्य तरसा तात शंभोस्ते शरणं ययुः ॥ ४

अग्निके संसर्गमात्रसे क्षणभरमें ही सभी अपवित्र वस्तुएँ पवित्र हो जाती हैं, इसलिये इन्हें पावक कहा गया है ॥ ६५ ॥

ये अग्नि प्राणियोंके साक्षात् अन्तरात्मा हैं और निश्चय ही सब कुछ जला देनेवाले हैं। ये स्त्रियोंकी कुक्षिमें मांसके ग्रासोंको तो पचा देते हैं, किंतु उसीमें रहनेवाले मांसपेशी (गर्भ)-को [दयावश] नहीं पचाते ॥ ६६ ॥

ये अग्नि साक्षात् शिवकी तेजोमयी दहनात्मिका मूर्ति हैं। यही [अग्निरूपा मूर्ति] सृष्टि करनेवाली, विनाश करनेवाली एवं पालन करनेवाली है। इनके बिना कुछ नहीं दिखायी पड़ता है ॥ ६७ ॥

ये अग्नि शिवजीके साक्षात् नेत्र हैं। अन्धकारसे पूर्ण इस तमोमय संसारको अग्निके बिना कौन प्रकाशित कर सकता है ॥ ६८ ॥

धूप, दीप, नैवेद्य, दूध, दही, घी एवं मिष्ठानादि पदार्थ अग्निमें हवन करनेपर स्वर्गमे निवास करनेवाले देवगण उसे प्राप्त करते हैं ॥ ६९ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! अब आप

[भगवान्] शम्भुके यक्षेश्वरावतारको सुनिये, जो अहंकारसे युक्त जनोंके गर्वको नष्ट करनेवाला तथा सज्जनोंकी भक्तिका संवर्धन करनेवाला है ॥ १ ॥

पूर्वकालमें महाबलवान् देवता एवं दैत्योंने अपने-अपने स्वार्थके लिये आपसमें भलीभाँति सन्धिकर अमृत प्राप्त करनेके लिये क्षीरसागरका मन्थन किया था ॥ २ ॥

जब देवता एवं दानव अमृतके लिये क्षीरसागरका मन्थन कर रहे थे तो सर्वप्रथम [समुद्रमें विद्यमान] अग्निसे कालाग्निके समान विष निकला ॥ ३ ॥

हे तात! उस विषको देखते ही समस्त देवता और दानव भयसे व्यकुल हो गये और वे भागकर शीघ्र ही शिवजीकी शरणमें गये ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा तं शङ्करं सर्वे सर्वदेवशिखामणिम्।
प्रणम्य तुष्टुवुर्भक्त्या साच्युता नतमस्तकाः॥ ५

ततः प्रसन्नो भगवान् शङ्करो भक्तवत्सलः।
पर्पौ विषं महाघोरं सुरासुरगणार्दनम्॥ ६

पीतं तं विषमं कण्ठे निदधे विषमुल्बणम्।
रेजे तेनाति स विभुर्नीलकण्ठो बभूव ह॥ ७

ततः सुरासुरगणा ममन्थुः पुनरेव तम्।
विषदाहविनिर्मुक्ताः शिवानुग्रहतोऽखिलाः॥ ८

ततो बहूनि रत्नानि निस्सूतानि ततो मुने।
अमृतं च पदार्थं हि सुरदानवयोर्मुने॥ ९

तं पपुः केवलं देवा नासुराः कृपया हरेः।
ततो बभूव सुमहद्रलं तेषां मिथोऽकदम्॥ १०

द्वन्द्युद्धं बभूवाथ देवदानवयोर्मुने।
तत्र राहुभयाच्चन्द्रो विदुद्राव तदर्दितः॥ ११

जगाम सदनं शंभोः शरणं भयविह्वलः।
सुप्रणम्य च तुष्टाव पाहि पाहीति संवदन्॥ १२

ततः सतामभयदः शङ्करो भक्तवत्सलः।
दधे शिरसि चन्द्रं स विभुः शरणमागतम्॥ १३

अथागतस्तदा राहुस्तुष्टाव सुप्रणम्य तम्।
शङ्करं सकलाधीशं वारिभरिष्टाभिरादरात्॥ १४

शंभुस्तन्मतमाज्ञाय तच्छरांस्यच्युतेन ह।
पुरा छिन्नानि वै केतुसंज्ञानि निदधे गले॥ १५

ततो युद्धेऽसुराः सर्वे देवैश्वैव पराजिताः।
पीत्वामृतं सुराः सर्वे जयं प्रापुर्महाबलाः॥ १६

विष्णुसहित सभी देवता समस्त देवताओंके शिखामणिस्वरूप उन शिवजीको देखकर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। उससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् सदाशिवने देवता एवं दानवोंको पीड़ित करनेवाले उस महाघोर विषका पान कर लिया॥ ५-६॥

पीये गये उस महाभयानक विषको उन्होंने अपने कण्ठमें ही धारण कर लिया, उससे वे प्रभु अत्यन्त सुशोभित हुए और नीलकण्ठ नामवाले हो गये॥ ७॥

उसके पश्चात् शिवजीके अनुग्रहसे विषके दाहसे मुक्त हुए देवताओं एवं असुरोंने पुनः समुद्रका मन्थन किया॥ ८॥

हे मुने! इसके बाद देवता तथा दानवोंके [प्रयत्नोंसे मथे गये] समुद्रसे अनेक रत्न निकले और अमृत जैसा—यह उत्तम पदार्थ भी उसीसे निकला, किंतु विष्णुकी कृपासे देवताओं तथा असुरोंमेंसे केवल देवता ही उसे पी गये, असुर नहीं। तब यह महान् रत्न उनके बीच द्वेषका कारण बन गया॥ ९-१०॥

हे मुने! देवों और दानवोंमें [भीषण] द्वन्द्युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब राहुसे पीड़ित हुए चन्द्रमा उसके भयसे सन्तप्त होकर भाग खड़े हुए और भयसे व्याकुल होकर शिवजीकी शरणमें उनके भवन गये एवं प्रणाम करके ‘रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये’—इस प्रकार कहते हुए उनकी स्तुति करने लगे॥ ११-१२॥

तब सत्पुरुषोंको अभय प्रदान करनेवाले भक्तवत्सल तथा सर्वव्यापक शिवजीने शरणमें आये हुए चन्द्रमाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ १३॥

तदनन्तर [चन्द्रमाका पीछा करता हुआ] राहु भी वहाँ आया और उसने सर्वेश्वर शिवजीको भलीभौति प्रणामकर आदरपूर्वक प्रिय वाणीमें उनकी स्तुति की॥ १४॥

शिवजीने उसका अभिप्राय जानकर पूर्वमें विष्णुके द्वारा काटे गये उसके केतुसंज्ञक सिरोंको [अपनी मुण्डमालामें पिरोकर] गलेमें धारण कर लिया॥ १५॥

इसके बाद उस युद्धमें सभी असुर देवताओंसे पराजित हो गये। अमृतका पान करके सभी महाबली देवगणोंने विजय प्राप्त की॥ १६॥

विष्णुप्रभृतयः सर्वे बभूत्शतिगर्विताः ।
बलानि चांकुरन्तोऽन्तः शिवमायाविमोहिताः ॥ १७

ततः स शङ्करो देवः सर्वधीशोऽथ गर्वहा ।
यक्षो भूत्वा जगामाशु यत्र देवाः स्थिता मुने ॥ १८

सर्वान् दृष्ट्वाच्युतमुखान्देवान्यक्षपतिः स वै ।
महागर्वाद्यमनसा महेशः प्राह गर्वहा ॥ १९

यक्षेश्वर उवाच

किमर्थं संस्थिता यूयमत्र सर्वे सुरा मिथः ।
किमु काष्ठाखिलं ब्रूत कारणं मेऽनु पृच्छते ॥ २०

देवा ऊचुः

अभूदत्र महान्देव रणः परमदारुणः ।
असुरा नाशिताः सर्वेऽवशिष्टा विद्वुता गताः ॥ २१

वयं सर्वे महावीरा दैत्यघा बलवत्तराः ।
अग्रेऽस्माकं कियन्तस्ते दैत्याः क्षुद्रबलाः सदा ॥ २२

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां सुराणां गर्वगर्भितम् ।
गर्वहासौ महादेवो यक्षरूपो वचोऽब्रवीत् ॥ २३

यक्षेश्वर उवाच

हे सुरा निखिला यूयं मद्वचः शृणुतादरात् ।
यथार्थं वच्मि नासत्यं सर्वगर्वापहारकम् ॥ २४

गर्वमेनं न कुरुत कर्ता हर्तापरः प्रभुः ।
विस्मृताश्च महेशानं कथयध्वं वृथा बलाः ॥ २५

युष्माकं चेत्स हि मदो जानतां स्वबलं महत् ।
मत्स्थापितं तृणमिदं छिन्त स्वास्त्रैश्च तैः सुराः ॥ २६

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वैकं तृणं तेषां निचिक्षेप पुरस्ततः ।
जहे सर्वमदं यक्षरूप ईशः सतां गतिः ॥ २७

[विजय प्राप्त कर लेनेपर] शिवजीकी मायासे मोहित हुए विष्णु आदि देवताओंको अत्यन्त अहंकार हो गया और वे अपने-अपने बलोंकी प्रशंसा करने लगे ॥ १७ ॥

हे मुने! इसके बाद गर्वको चूर करनेवाले सर्वधीश वे भगवान् शंकर यक्षका रूप धारणकर जहाँ देवगण स्थित थे, वहाँ शीघ्र गये ॥ १८ ॥

गर्वका नाश करनेवाले यक्षपतिरूपी महेशने विष्णु आदि देवगणोंको देखकर अत्यन्त गर्वयुक्त मनसे उनसे कहा— ॥ १९ ॥

यक्षेश्वर बोले—हे देवताओ! आप सभी यहाँ एकत्र होकर किसलिये खड़े हैं? मैं इसका कारण पूछ रहा हूँ, आपलोग बतायें ॥ २० ॥

देवता बोले—हे देव! यहाँ [देव-दानवोंमें] भयंकर विकट संग्राम छिड़ा हुआ था, जिसमें समस्त असुर विनष्ट हो गये और जो बचे थे, वे भागकर चले गये ॥ २१ ॥

हम सब बड़े पराक्रमी, दैत्योंको मारनेवाले तथा बड़े बलशाली हैं। हमारे समक्ष तुच्छ बलवाले वे क्षुद्र दैत्य भला किस प्रकार टिक सकते हैं? ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर बोले—देवताओंकी गर्वभरी यह बात सुनकर गर्वका नाश करनेवाले यक्षरूपी महादेवने यह वचन कहा— ॥ २३ ॥

यक्षेश्वर बोले—हे देवगणो! आप सभी लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये, मैं [आप] सबके गर्वका नाश करनेवाला यथार्थ वचन कह रहा हूँ, असत्य नहीं। आपलोग इस प्रकारका अहंकार मत कीजिये, सबका रचयिता और संहारकर्ता स्वामी तो कोई दूसरा ही है। आपलोग उन महादेवको भूल गये और निर्बल होकर भी अपने बलका वृथा घमण्ड करते हैं ॥ २४-२५ ॥

हे देवगण! अपने महान् बलको जानते हुए आपलोगोंको यदि घमण्ड है, तो आपलोग मेरे द्वारा रखे गये इस तिनकेको अपने उन शस्त्रोंसे काटें ॥ २६ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर सत्पुरुषोंको गति देनेवाले यक्षरूपी महादेवजीने उन देवताओंके आगे एक तिनका फेंक दिया, जिसके द्वारा उन्होंने सभी देवताओंका मद दूर कर दिया ॥ २७ ॥

अथ सर्वे सुरा विष्णुप्रमुखा वीरमानिनः ।
कृत्वा स्वपौरुषं तत्र स्वायुधानि विचक्षिपुः ॥ २८

तत्रासन् विफलान्याशु तान्यस्त्राणि दिवौकसाम् ।
शिवप्रभावतस्तेषां मूढगर्वापहारिणः ॥ २९

अथासीत्तु नभोवाणी देवविस्मयहारिणी ।
यक्षोऽयं शङ्करो देवाः सर्वगर्वापहारकः ॥ ३०

कर्ता हर्ता तथा भर्तायमेव परमेश्वरः ।
एतद्बलेन बलिनो जीवाः सर्वेऽन्यथा न हि ॥ ३१

अस्य मायाप्रभावाद् वै मोहिताः स्वप्रभुं शिवम् ।
मदतो बुबुधुनैवाद्यापि बोधतनुं प्रभुम् ॥ ३२

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा नभोवाणीं बुबुधुस्ते गतस्मयाः ।
यक्षेश्वरं प्रणेमुश्च तुष्टुवुश्च तमीश्वरम् ॥ ३३

देवा ऊचुः

देवदेव महादेव सर्वगर्वापहारक ।
यक्षेश्वर महालील माया तेऽत्यद्भुता प्रभो ॥ ३४
मोहिता माययाद्यापि तव यक्षस्वरूपिणः ।
सर्वमभिभाषन्तस्त्वत्पुरो हि पृथड्मयाः ॥ ३५

इदानीं ज्ञानमायातं तवैव कृपया प्रभो ।
कर्ता हर्ता च भर्ता च त्वमेवान्यो न शङ्कर ॥ ३६
त्वमेव सर्वशक्तीनां सर्वेषां हि प्रवर्तकः ।
निवर्तकश्च सर्वेशः परमात्माव्ययोऽद्वयः ॥ ३७
यक्षेश्वरस्वरूपेण सर्वेषां नो मदो हृतः ।
कृतो मन्यामहे तत्तेऽनुग्रहो हि कृपालुना ॥ ३८

अथो स यक्षनाथोऽनुग्रह्य वै सकलान् सुरान् ।
विबोध्य विविधैर्वर्क्यैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३९

[इस तिनकेको काटनेके लिये] अपनेको वीर माननेवाले विष्णु आदि सभी देवताओंने अपने पुरुषार्थका प्रयोग करके उसके ऊपर अपने-अपने अस्त्रको चलाया । किंतु मूढ़ोंके गर्वका नाश करनेवाले [भगवान्] शिवके प्रभावसे उन देवताओंके वे अस्त्र शीघ्र ही बेकार हो गये ॥ २८-२९ ॥

तब देवताओंके आश्चर्यको दूर करनेवाली आकाशवाणी हुई कि हे देवताओ ! ये यक्ष [-रूपमें] सबके अहंकारका अपहरण करनेवाले सदाशिव ही हैं ॥ ३० ॥

ये परमेश्वर ही सबके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं । इन्हींके बलसे सभी जीव बलवान् हैं, अन्यथा नहीं ॥ ३१ ॥

हे देवताओ ! इनकी मायाके प्रभावसे मोहित होकर तथा अहंकारवश आपलोग अपने ज्ञानमूर्ति स्वामी भगवान् शिवको अभीतक पहचान नहीं सके ! ॥ ३२ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकारकी आकाशवाणीको सुनकर देवताओंका सारा गर्व दूर हो गया और वे अपने ईश्वरको पहचान गये । उन्होंने यक्षेश्वरको प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की ॥ ३३ ॥

देवता बोले—हे देवदेव ! हे महादेव ! सबके अभिमानको दूर करनेवाले हे यक्षेश्वर ! महालीला करनेवाले हे प्रभो ! आपकी माया अत्यन्त अद्भुत है ॥ ३४ ॥

हे प्रभो ! यक्षरूप धारण करनेवाले आपकी मायासे मोहित हुए हमलोग इस समय अपनेको [आपसे] पृथक् समझकर आपके सामने ही गर्वपूर्वक बोल रहे हैं ॥ ३५ ॥

हे प्रभो ! हे शंकर ! अब आपकी ही कृपासे हमें इस समय ज्ञान हो गया कि आप ही कर्ता, हर्ता एवं भर्ता हैं, दूसरा नहीं । आप ही सभी जीवोंकी समस्त शक्तियोंके प्रवर्तक एवं निवर्तक हैं, आप ही सर्वेश, परमात्मा, अव्यय एवं अद्वितीय हैं ॥ ३६-३७ ॥

आपने यक्षेश्वरका रूप धारणकर जो हमलोगोंके मदको दूर कर दिया है, उसे हमलोग आप कृपालुके द्वारा किया गया परम अनुग्रह मानते हैं ॥ ३८ ॥

उसके पश्चात् वे यक्षेश्वर सम्पूर्ण देवताओंपर कृपा करते हुए उन्हें अनेक वचनोंसे समझाकर वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ३९ ॥

इत्थं स वर्णितः शम्भोरवतारः सुखावहः ।
यक्षेश्वराख्यः सुखदः सतां तुष्टोऽभयंकरः ॥ ४०

इदमाख्यानममलं सर्वगर्वापहारकम् ।
सतां सुशान्तिदं नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥ ४१

य इदं शृणुयाद्दक्त्या श्रावयेद्वा सुधीः पुमान् ।
सर्वकामानवाज्ञोति ततश्च लभते गतिम् ॥ ४२

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां यक्षेश्वरावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यक्षेश्वरावतार-वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

[हे मुनीश्वर !] इस प्रकार शिवजीके यक्षेश्वर नामक अवतारका वर्णन कर दिया गया, जो सबको आनन्द देनेवाला तथा सुख प्रदान करनेवाला है। यह यक्षरूप प्रसन्न होनेपर सज्जनोंको अभय प्रदान करनेवाला है ॥ ४० ॥

यह आख्यान अत्यन्त निर्मल तथा सबके अभिमानको नष्ट करनेवाला है। यह सत्पुरुषोंको सर्वदा शान्तिदायक एवं मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। जो बुद्धिमान् मनुष्य भक्तिसे युक्त हो इसको सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और इसके बाद परमगतिको प्राप्त करता है ॥ ४१-४२ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवान् शिवके महाकाल आदि प्रमुख दस अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणवथो गिरिशस्याद्यावतारान् दशसंख्यकान् ।
महाकालमुखान् भक्त्योपासनाकाण्डसेवितान् ॥ १

तत्राद्यो हि महाकालो भुक्तिमुक्तिप्रदः सताम् ।
शक्तिस्तत्र महाकाली भक्तेप्सितफलप्रदा ॥ २

तारनामा द्वितीयश्च ताराशक्तिस्तथैव सा ।
भुक्तिमुक्तिप्रदौ चोभौ स्वसेवकसुखप्रदौ ॥ ३

भुवनेशो हि बालाहस्तृतीयः परिकीर्तिः ।
भुवनेशी शिवा तत्र बालाह्वा सुखदा सताम् ॥ ४

श्रीविद्येशः षोडशाह्वः श्रीर्विद्या षोडशी शिवा ।
चतुर्थो भक्तसुखदो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ५

नन्दीश्वर बोले— [हे सनत्कुमार !] अब आप उपासनाकाण्डद्वारा सेवित महेश्वरके सर्वप्रथम होनेवाले महाकाल आदि दस प्रमुख अवतारोंको भक्तिपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

उनमें प्रथम महाकाल नामक अवतार है, जो सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। [इस अवतारमें] उनकी शक्ति महाकाली हैं, जो भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करती हैं ॥ २ ॥

दूसरा अवतार तार नामसे विख्यात है, जिनकी शक्ति तारा हैं। ये दोनों ही अपने भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाले एवं भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं ॥ ३ ॥

तीसरा अवतार बाल भुवनेश्वरके नामसे पुकारा जाता है। उनकी शक्ति बाला भुवनेश्वरी कही जाती हैं, ये सत्पुरुषोंको सुख प्रदान करती हैं। चौथा अवतार षोडश नामक विद्येशके रूपमें हुआ है। षोडशी श्रीविद्या उनकी महाशक्ति हैं। यह अवतार भक्तोंको सुख प्रदान करनेवाला तथा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है ॥ ४-५ ॥

पञ्चमो भैरवः ख्यातः सर्वदा भक्तकामदः।
भैरवी गिरिजा तत्र सदुपासककामदा ॥ ६

छिन्नमस्तकनामासौ शिवः षष्ठः प्रकीर्तिः।
भक्तकामप्रदा चैव गिरिजा छिन्नमस्तका ॥ ७

धूमवान् सप्तमः शम्भुः सर्वकामफलप्रदः।
धूमावती शिवा तत्र सदुपासककामदा ॥ ८

शिवावतारः सुखदो ह्यष्टमो बगलामुखः।
शक्तिस्तत्र महानन्दा विख्याता बगलामुखी ॥ ९

शिवावतारो मातङ्गो नवमः परिकीर्तिः।
मातंगी तत्र शर्वाणी सर्वकामफलप्रदा ॥ १०

दशमः कमलः शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः।
कमला गिरिजा तत्र स्वभक्तपरिपालिनी ॥ ११

एते दशमिताः शैवा अवताराः सुखप्रदाः।
भुक्तिमुक्तिप्रदाशचैव भक्तानां सर्वदा सताम् ॥ १२

एते दशावतारा हि शङ्करस्य महात्मनः।
नानासुखप्रदा नित्यं सेवतां निर्विकारतः ॥ १३

एतदशावताराणां माहात्म्यं वर्णितं मुने।
सर्वकामप्रदं ज्ञेयं तन्त्रशास्त्रादिगर्भितम् ॥ १४

एतासामादिशक्तीनामद्भुतो महिमा मुने।
सर्वकामप्रदो ज्ञेयस्तन्त्रशास्त्रादिगर्भितः ॥ १५

शत्रुमारणकार्यादौ तत्तच्छक्तिः परा मता।
खलदण्डकरी नित्यं ब्रह्मतेजोविवर्द्धिनी ॥ १६

पाँचवाँ अवतार भैरव नामसे प्रसिद्ध है, जो भक्तोंकी कामनाओंको निरन्तर पूर्ण करनेवाला है। इनकी महाशक्ति गिरिजा भैरवी नामसे प्रसिद्ध हैं, जो सज्जनों एवं उपासकोंकी कामनाएँ पूर्ण करती हैं ॥ ६ ॥

शिवका छठा अवतार छिन्नमस्तक नामक कहा गया है और उनकी महाशक्ति छिन्नमस्तका गिरिजा हैं, जो अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाली हैं ॥ ७ ॥

शिवके सातवें अवतारका नाम धूमवान् है, जो सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। उनकी शक्ति धूमावती हैं, जो सज्जन उपासकोंको फल देनेवाली हैं ॥ ८ ॥

शिवजीका आठवाँ अवतार बगलामुख है, जो सुख देनेवाला है। उनकी शक्ति बगलामुखी कही गयी हैं, जो परम आनन्दस्वरूपिणी हैं ॥ ९ ॥

शिवजीका नौवाँ अवतार मातंग नामसे विख्यात है और उनकी शक्ति मातंगी हैं, जो [अपने भक्तोंकी] समस्त कामनाओंका फल प्रदान करती हैं ॥ १० ॥

शिवजीका कल्याणकारी दसवाँ अवतार कमल नामवाला है, जो भोग और मोक्ष देनेवाला है। उनकी शक्ति पार्वतीका नाम कमला है, जो भक्तोंका पालन करती हैं ॥ ११ ॥

शिवजीके ये दस अवतार हैं, जो सज्जनों एवं भक्तोंको सर्वदा सुख देनेवाले तथा उन्हें भुक्ति एवं मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं ॥ १२ ॥

महात्मा शिवके ये दसों अवतार निर्विकार रूपसे सेवा करनेवालोंको निरन्तर सभी प्रकारके सुख देते रहते हैं। हे मुने! मैंने शंकरजीके इन दसों अवतारोंके माहात्म्यका वर्णन किया है, इस माहात्म्यको सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला कहा गया है तथा यह तन्त्र-शास्त्रोंमें निगूढ़ है, ऐसा जानना चाहिये ॥ १३-१४ ॥

हे मुने! इन [अवतारोंकी] आदि शक्तियोंकी महिमा भी अद्भुत है। इसे सभी कामनाओंको प्रदान करनेवाली तथा तन्त्रशास्त्र आदिमें गोपित जानना चाहिये। ये शक्तियाँ दुष्टोंको दण्ड देनेवाली तथा ब्रह्मतेजका विवर्धन करनेवाली हैं और शत्रुनिग्रह आदि कार्यके लिये सर्वश्रेष्ठ कही गयी हैं ॥ १५-१६ ॥

इत्युक्तास्ते मया ब्रह्मन्नवतारा महेशितुः।
सशक्तिका दशमिता महाकालमुखाः शुभाः॥ १७

शैवपर्वेषु सर्वेषु योऽधीते भक्तितत्परः।
एतदाख्यानममलं सोऽतिशम्भुप्रियो भवेत्॥ १८
ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी क्षत्रियो विजयी भवेत्।
धनाधिपो हि वैश्यः स्याच्छूद्रः सुखमवाञ्यात्॥ १९

शांकरा निजर्थमस्थाः शृण्वन्तश्चरितं त्विदम्।
सुखिनः स्युर्विशेषेण शिवभक्ता भवन्तु च॥ २०

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां शिवदशावतारवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें शिवदशावतार-
वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने शक्तियोंसहित शिवजीके महाकालादि प्रमुख शुभ दस अवतारोंका वर्णन किया॥ १७॥

जो भक्तिमें तत्पर होकर सभी शैव पर्वोंमें शिवके इस निर्मल इतिहासको पढ़ता है, वह शिवका अत्यन्त प्रिय हो जाता है; ब्राह्मण ब्रह्मतेजसे युक्त तथा क्षत्रिय विजयी हो जाता है, वैश्य धनाधिपति हो जाता है एवं शूद्र सुख प्राप्त करता है॥ १८-१९॥

अपने धर्ममें स्थित होकर इस चरित्रको सुननेवाले शिवभक्त सुखी हो जाते हैं और वे विशेषरूपसे शिवके भक्त हो जाते हैं॥ २०॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

शिवजीके एकादश रुद्रावतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

एकादशावतारान्वै शृण्वथो शांकरान्वरान्।
यान् श्रुत्वा न हि बाध्येत बाधासत्यादिसम्भवा॥ १

पुरा सर्वे सुराः शक्रमुखा दैत्यपराजिताः।
त्यक्त्वामरावतीं भीत्यापलायन्त निजां पुरीम्॥ २
दैत्यप्रपीडिता देवा जगमुस्ते कश्यपान्तिकम्।
बध्वा करान्नतस्कन्थाः प्रणेमुस्तं सुविह्वलम्॥ ३

सुनुत्वा तं सुराः सर्वे कृत्वा विज्ञसिमादरात्।
सर्वं निवेदयामासुः स्वदुःखं तत्पराजयम्॥ ४

ततः स कश्यपस्तात तत्पिता शिवसक्तधीः।
तदाकर्ण्यामराकं वै दुःखितोऽभूत्र चाधिकम्॥ ५

तानाशवास्य मुनिः सोऽथ धैर्यमाधाय शान्तधीः।
काशीं जगाम सुप्रीत्या विश्वेश्वरपुरीं मुने॥ ६

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] अब शिवजीके उत्तम ग्यारह अवतारोंको सुनिये, जिन्हें सुनकर मनुष्यको असत्य आदिसे उत्पन्न होनेवाला पाप पीड़ित नहीं करता है॥ १॥

पूर्वकालकी बात है, दैत्योंसे पराजित होकर इन्द्र आदि देवता भयसे अपनी अमरावतीपुरी छोड़कर भाग गये थे। दैत्योंसे पीड़ित वे देवता कश्यपके समीप गये और अत्यन्त विनम्रताके साथ हाथ जोड़कर व्याकुलचित्त हो उन्हें प्रणाम किया॥ २-३॥

भलीभाँति उनकी स्तुति करके सभी देवताओंने आदरपूर्वक प्रार्थनाकर अपने पराजयजन्य दुःखको निवेदन किया। हे तात! उसके बाद शिवमें आसक्त मनवाले उनके पिता कश्यप देवताओंका दुःख सुनकर कुछ दुखी तो हुए, पर अधिक नहीं; [क्योंकि उनकी बुद्धि शिवमें निरत थी]॥ ४-५॥

हे मुने! शान्त बुद्धिवाले उन मुनिने देवताओंको आश्वस्त करके तथा धैर्य धारण करके अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक विश्वेश्वरपुरी काशीकी ओर प्रस्थान किया॥ ६॥

गंगाम्भसि ततः स्नात्वा कृत्वा तं विधिमादरात् ।
विश्वेश्वरं समानर्च साम्बं सर्वेश्वरं प्रभुम् ॥ ७

शिवलिंगं सुसंस्थाप्य चकार विपुलं तपः ।
शम्भुमुद्दिश्य सुप्रीत्या देवानां हितकाम्यया ॥ ८

महान्कालो व्यतीयाय तपतस्तस्य वै मुने ।
शिवपादाम्बुजासक्तमनसो धैर्यशालिनः ॥ ९

अथ प्रादुरभूच्छम्भुर्वं दातुं तदर्षये ।
स्वपदासक्तमनसे दीनबन्धुः सतां गतिः ॥ १०

वरं ब्रूहीति चोवाच सुप्रसन्नो महेश्वरः ।
कश्यपं मुनिशार्दूलं स्वभक्तं भक्तवत्सलः ॥ ११

दृष्ट्वाथ तं महेशानं स प्रणाम्य कृताञ्जलिः ।
तुष्टाव कश्यपो हृष्टो देवतातः प्रसन्नधीः ॥ १२

कश्यप उवाच

देवदेव महेशान शरणागतवत्सल ।
सर्वेशः परमात्मा त्वं ध्यानगम्योऽद्वयोऽव्ययः ॥ १३
बलनिग्रहकर्ता त्वं महेश्वर सतां गतिः ।
दीनबन्धुर्दयासिन्धुर्भक्तरक्षणदक्षधीः ॥ १४

एते सुरास्त्वदीया हि त्वद्भक्ताश्च विशेषतः ।
दैत्यैः पराजिताश्चाद्य पाहि तान्दुःखितान् प्रभो ॥ १५

असमर्थो रमेशोऽपि दुःखदस्ते मुहुर्मुहुः ।
अतः सुरा मच्छरणा वेदयन्तोऽसुखं च तत् ॥ १६

तदर्थं देवदेवेश देवदुःखविनाशक ।
तत्पूरितुं तपोनिष्ठां प्रसन्नार्थं तवासदम् ॥ १७

शरणं ते प्रपन्नोऽस्मि सर्वथाहं महेश्वर ।
कामं मे पूरय स्वामिन्देवदुःखं विनाशय ॥ १८

वहाँ गंगाके जलमें स्नान करके श्रद्धासे नित्यक्रियाकर उन्होंने पार्वतीसहित सर्वेश्वर प्रभु विश्वेश्वरका पूजन किया और देवगणोंके कल्याणकी कामनासे शिवकी प्रसन्नताहेतु श्रद्धायुक्त हो लिंगकी स्थापनाकर कठोर तप करने लगे ॥ ७-८ ॥

हे मुने! इस प्रकार शिवके चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले उन धैर्यवान् मर्हणिको तप करते हुए बहुत समय बीत गया ॥ ९ ॥

तब सज्जनोंके एकमात्र शरण दीनबन्धु भगवान् शिव अपने चरणकमलोंमें आसक्त मनवाले उन ऋषिको वर देनेके लिये प्रकट हुए ॥ १० ॥

भक्तवत्सल शिवजीने अति प्रसन्न होकर अपने भक्त मुनिश्रेष्ठ कश्यपसे 'वर माँगिये'—ऐसा कहा ॥ ११ ॥

उन महेश्वरको देखकर देवगणके पिता कश्यपने हर्षित हो उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर प्रसन्नचित होकर उनकी स्तुति की ॥ १२ ॥

कश्यपजी बोले—हे देवदेव! हे महेशान! हे शरणागतवत्सल! आप सर्वेश्वर, परमात्मा, ध्यानगम्य, अद्वितीय तथा अविनाशी हैं ॥ १३ ॥

हे महेश्वर! आप बलवानोंका निग्रह करनेवाले, सज्जनोंको शरण देनेवाले, दीनबन्धु, दयासागर एवं भक्तोंकी रक्षा करनेमें दक्ष बुद्धिवाले हैं ॥ १४ ॥

ये सभी देवता आपके हैं और विशेषरूपसे आपके भक्त हैं। हे प्रभो! इस समय ये दैत्योंसे पराजित हो गये हैं, अतः आप इन दुःखियोंकी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥

विष्णु भी असमर्थ हो जानेपर आपको ही बारम्बार कष्ट देते हैं। इसलिये देवता भी [मानो असहायसे होकर] अपना दुःख प्रकट करते हुए मेरी शरणमें आये हुए हैं ॥ १६ ॥

हे देवदेवेश! हे देवगणके दुःखका निवारण करनेवाले! मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। [अतएव देवताओंके] अभीष्टको पूर्ण करनेके लिये काशीपुरीमें आकर आपके लिये तपस्या कर रहा हूँ ॥ १७ ॥

हे महेश्वर! मैं सब प्रकारसे आपकी शरणमें प्राप्त हुआ हूँ। हे स्वामिन्! मेरी कामनाको पूर्ण कीजिये और देवताओंके दुःखको दूर कीजिये ॥ १८ ॥

पुत्रदुःखैश्च देवेश दुःखितोऽहं विशेषतः।
सुखिनं कुरु मामीश सहायस्त्वं दिवौकसाम्॥ १९

भूत्वा मम सुतो नाथ देवा यक्षाः पराजिताः।
दैत्यैर्महाबलैः शम्भो सुरानन्दप्रदो भव॥ २०

सदैवास्तु महेशान् सर्वलेखसहायकः।
यथा दैत्यकृता बाधा न बाधेत् सुरान्प्रभो॥ २१

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्य तु सर्वेशस्तथेति प्रोच्य शङ्करः।
पश्यतस्तस्य भगवांस्तत्रैवान्तर्दधे हरः॥ २२

कश्यपोऽपि महाहष्टः स्वस्थानमगमद् द्रुतम्।
देवेभ्यः कथयामास सर्ववृत्तान्तमादरात्॥ २३

ततः स शङ्करः शर्वः सत्यं कर्तुं स्वकं वचः।
सुरभ्यां कश्यपाज्ञे एकादशस्वरूपवान्॥ २४

महोत्सवस्तदासीद् वै सर्वं शिवमयं त्वभूत्।
आसन्हष्टाः सुराश्वाथ मुनिना कश्यपेन च॥ २५

कपाली पिंगलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
शास्ताजपादहिर्बुद्ध्यशशंभुश्चण्डो भवस्तथा॥ २६

एकादशैते रुद्रास्तु सुरभीतनयाः स्मृताः।
देवकार्यार्थमुत्पन्नाः शिवरूपाः सुखास्पदम्॥ २७

ते रुद्राः काश्यपा वीरा महाबलपराक्रमाः।
दैत्यान् जघ्नुश्च संग्रामे देवसाहाय्यकारिणः॥ २८

तद्रुद्रकृपया देवा दैत्यान् जित्वा च निर्भयाः।
चक्रुः स्वराज्यं सर्वे ते शक्राद्याः स्वस्थमानसाः॥ २९

अद्यापि ते महारुद्राः सर्वे शिवस्वरूपकाः।
देवानां रक्षणार्थाय विराजन्ते सदा दिवि॥ ३०

ऐशान्यां पुरि ते वासं चक्रिरे भक्तवत्सलाः।
विरमन्ते सदा तत्र नानालीलाविशारदाः॥ ३१

हे देवेश! मैं अपने पुत्रोंके दुःखोंसे विशेषरूपसे दुखी हूँ। हे ईश! मुझे सुखी कीजिये; आप ही देवताओंके सहायक हैं। हे नाथ! देवता तथा यक्ष महाबली दैत्योंसे पराभवको प्राप्त हुए हैं, अतः हे शम्भो! आप मेरे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण होकर देवताओंको आनन्द प्रदान कीजिये॥ १९-२०॥

हे महेश्वर! हे प्रभो! जिस प्रकार इन देवताओंको दैत्योंके द्वारा की जानेवाली बाधा पीड़ित न करे, उस प्रकार आप सदा सभी देवताओंके सहायक बनें॥ २१॥

नन्दीश्वर बोले—कश्यपके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सर्वेश्वर हर भगवान् शंकरजी ‘तथास्तु’ कहकर उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये॥ २२॥

कश्यपजी भी अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र अपने स्थानपर चले गये और उन्होंने आदरपूर्वक देवताओंसे समस्त वृत्तान्त कह सुनाया॥ २३॥

उसके बाद संहर्ता शंकरजीने अपना वचन सत्य करनेके निमित्त ग्यारह रूप धारणकर कश्यपसे उनकी सुरभि नामक पत्नीके गर्भसे अवतार ग्रहण किया॥ २४॥

उस समय महान् उत्सव हुआ और सब कुछ शिवमय हो गया। कश्यपमुनिसहित सभी देवता भी बहुत प्रसन्न हुए॥ २५॥

कपाली, पिंगल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, शास्ता, अजपाद्, अहिर्बुद्ध्य, शम्भु, चण्ड तथा भव—ये ग्यारहों रुद्र सुरभिके पुत्र कहे गये हैं। ये सुखके आवासस्थान [रुद्रगण] देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये उत्पन्न हुए थे। वे कश्यपपुत्र रुद्रगण वीर तथा महान् बल एवं पराक्रमवाले थे। इन्होंने संग्राममें देवताओंके सहायक बनकर दैत्योंका संहार कर डाला॥ २६—२८॥

उन रुद्रोंकी कृपासे इन्द्र आदि सभी देवता दैत्योंको जीतकर निर्भय हो गये और स्वस्थचित होकर अपना-अपना राजकार्य संभालने लगे॥ २९॥

आज भी शिवस्वरूप वे सभी महारुद्र देवताओंकी रक्षाके लिये सदा स्वर्गमें विराजमान हैं॥ ३०॥

भक्तवत्सल एवं नाना प्रकारकी लीला करनेमें निपुण वे सब ईशानपुरीमें निवास करते हैं तथा वहाँ सदा रमण करते हैं॥ ३१॥

तेषामनुचरा रुद्राः कोटिशः परिकीर्तिः ।
 सर्वत्र संस्थितास्तत्र त्रिलोकेष्वभिभागशः ॥ ३२
 इति ते वर्णितास्तातावताराः शङ्करस्य वै ।
 एकादशमिता रुद्राः सर्वलोकसुखावहाः ॥ ३३
 इदमाख्यानममलं सर्वपापप्रणाशकम् ।
 धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामप्रदायकम् ॥ ३४

य इदं शृणुयात्तात् श्रावयेद्वै समाहितः ।
 इह सर्वसुखं भुक्त्वा ततो मुक्तिं लभेत् सः ॥ ३५

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां एकादशावतारवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें एकादशावतारवर्णन नामक अठाहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १८ ॥

उनके अनुचर करोड़ों रुद्र कहे गये हैं, जो तीनों लोकोंमें विभक्त होकर चारों ओर सर्वत्र स्थित हैं ॥ ३२ ॥

हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे शंकरजीके अवतारोंका वर्णन किया; ये एकादश रुद्र सबको सुख प्रदान करनेवाले हैं ॥ ३३ ॥

यह आख्यान निर्मल, सभी पापोंको दूर करनेवाला, धन तथा यश प्रदान करनेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है ॥ ३४ ॥

हे तात! जो सावधान होकर इसको सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥ ३५ ॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

शिवजीके दुर्वासावतारकी कथा

नन्दीश्वर उवाच

अथान्यच्चरितं शास्त्रोः शृणु प्रीत्या महामुने ।
 यथा बभूव दुर्वासाः शङ्करो धर्महेतवे ॥ १
 ब्रह्मपुत्रो बभूवातितपस्वी ब्रह्मवित्प्रभुः ।
 अनसूयापतिर्थीमान्ब्रह्माज्ञाप्रतिपालकः ॥ २

सुनिर्देशाद् ब्रह्मणो हि सस्त्रीकः पुत्रकाम्यया ।
 स त्र्यक्षकुलनामानं ययौ च तपसे गिरिम् ॥ ३

प्राणानायम्य विधिवन्निर्विन्ध्यातटिनीतटे ।
 तपश्चार सुमहद् अद्वन्द्वोऽब्दशतं मुनिः ॥ ४

य एक ईश्वरः कश्चिदविकारी महाप्रभुः ।
 स मे पुत्रवरं दद्यादिति निश्चितमानसः ॥ ५

बहुकालो व्यतीयाय तस्मिंस्तपति सत्तपः ।
 आविर्बभूव तस्मात् शुचिर्ज्वला महीयसी ॥ ६

नन्दीश्वर बोले—हे महामुने! अब आप शास्त्रके एक और चरित्रिको प्रेमपूर्वक सुनिये, जिसमें शंकरजी धर्म [की स्थापना]-के लिये दुर्वासा होकर प्रकट हुए थे ॥ १ ॥

ब्रह्माके परम तपस्वी एवं ब्रह्मवेत्ता अत्रि नामक पुत्र हुए; वे बड़े बुद्धिमान्, ब्रह्माजीकी आज्ञाका पालन करनेवाले एवं अनसूयाके पति थे ॥ २ ॥

वे किसी समय ब्रह्माजीके निर्देशानुसार पुत्रकी इच्छासे पत्नीसहित तप करनेके लिये त्र्यक्षकुल नामक पर्वतपर गये ॥ ३ ॥

उन मुनिने निर्विन्ध्या नदीके तटपर अपने प्राणोंको रोककर निर्दून्दू हो सौ वर्षपर्यन्त विधिपूर्वक महाघोर तप किया ॥ ४ ॥

उन्होंने अपने मनमें निश्चय किया कि जो एकमात्र अविकारी अनिर्वचनीय महाप्रभु ईश्वर हैं, वे मुझे श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करेंगे ॥ ५ ॥

इस प्रकार उत्कृष्ट तपमें प्रवृत्त हुए उन महर्षिका बहुत समय व्यतीत हो गया। तब उनके शरीरसे अत्यन्त पवित्र और बहुत बड़ी अग्निज्वाला प्रकट हुई ॥ ६ ॥

८८

तथा सन्निखिला लोका दग्धप्राया मुनीश्वराः ।
तथा सुरर्षयः सर्वे पीडिता वासवादयः ॥ ७

अथ सर्वे वासवाद्या सुराश्च मुनयो मुने ।
ब्रह्मस्थानं ययुः शीघ्रं तज्ज्वालातिप्रपीडिताः ॥ ८

नत्वा नुत्वा विधिं देवाः तत्स्वदुःखं न्यवेदयन् ।
ब्रह्मा सह सुरेस्तात् विष्णुलोकं ययावरम् ॥ ९

तत्र गत्वा रमानाथं नत्वा नुत्वा विधिः सुरैः ।
स्वदुःखं तत्समाचख्यौ विष्णवेऽनन्तकं मुने ॥ १०

विष्णुश्च विधिना देवै रुद्रस्थानं ययौ द्रुतम् ।
हरं प्रणम्य तत्रैत्य तुष्टाव परमेश्वरम् ॥ ११

स्तुत्वा बहुतया विष्णुः स्वदुःखं च न्यवेदयत् ।
शर्वं ज्वालासमुद्भूतमत्रेश्वरं तपसः परम् ॥ १२

अथ तत्र समेतास्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
मुने संमन्त्रयाञ्चकुरन्योऽन्यं जगतां हितम् ॥ १३

तदा ब्रह्मादयो देवास्त्रयस्ते वरदर्षभाः ।
जगमुस्तदाश्रमं शीघ्रं वरं दातुं तदर्षये ॥ १४

स्वचिह्नचिह्नितांस्तान्स दृष्ट्वात्रिमुनिसत्तमः ।
प्रणनाम च तुष्टाव वाग्भरिष्टाभिरादरात् ॥ १५

ततः स विस्मितो विप्रस्तानुवाच कृताञ्जलिः ।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा ब्रह्मविष्णुहराभिधान् ॥ १६

अत्रिरुवाच

हे ब्रह्मन् हे हरे रुद्र पूज्यास्त्रिजगतां मताः ।
प्रभवश्वेश्वराः सृष्टिरक्षासंहरकारकाः ॥ १७

उस ज्वालासे सम्पूर्ण लोक प्रायः जलने लगा
और इन्द्रादि सभी देवता, श्रेष्ठ मुनिगण तथा समस्त
सुरर्षिगण भी पीड़ित हो उठे ॥ ७ ॥

हे मुने ! इसके बाद इन्द्र आदि सभी देवता एवं
मुनिगण उस ज्वालासे अतीव पीड़ित होकर शीघ्र ही
ब्रह्मलोक गये ॥ ८ ॥

हे तात ! देवताओंने नमस्कार एवं स्तुतिकर
ब्रह्मदेवके समक्ष अपना दुःख प्रकट किया । तब
ब्रह्माजी उन देवताओंको लेकर शीघ्रतासे विष्णुलोकको
गये ॥ ९ ॥

हे मुने ! वहाँ देवताओंके साथ जाकर लक्ष्मीपतिको
नमस्कार करके तथा उनकी स्तुतिकर अनन्त भगवान्
विष्णुसे ब्रह्माजीने दुःख निवेदन किया ॥ १० ॥

तदनन्तर भगवान् विष्णु भी ब्रह्मा एवं देवताओंको
लेकर शीघ्र रुद्रलोक गये और वहाँ पहुँचकर परमेश्वर
शिवजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति की ॥ ११ ॥

बहुत स्तुति करनेके बाद भगवान् विष्णुने
शिवजीसे अपना सारा दुःख निवेदन किया कि
अत्रिके तपसे एक ज्वाला उत्पन्न हुई है ॥ १२ ॥

हे मुने ! तदुपरान्त उस स्थानपर एकत्रित
हुए ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वरने मिलकर संसारके
हितसाधनके लिये आपसमें मन्त्रणा की ॥ १३ ॥

इसके बाद ब्रह्मा आदि वरदश्रेष्ठ वे तीनों देवता
उन मुनिको वर देनेके लिये शीघ्र ही उनके आश्रमपर
पहुँचे ॥ १४ ॥

अपने-अपने [हंसादि वाहनोंके] चिह्नोंसे
चिह्नित उन देवगणोंको देखकर मुनिश्रेष्ठ अत्रिने उन्हें
प्रणाम किया और प्रिय वाणीसे आदरपूर्वक उनकी
स्तुति की ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् हाथ जोड़े हुए वे विनीतात्मा ब्रह्मपुत्र
अत्रि उन ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवसे विस्मित होकर
कहने लगे— ॥ १६ ॥

अत्रि बोले—हे ब्रह्मन् ! हे विष्णो ! हे शिव !
आप सब तीनों लोकोंके पूज्य, प्रभु, ईश्वर और उत्पत्ति,
स्थिति तथा प्रलय करनेवाले माने गये हैं ॥ १७ ॥

एक एव मया ध्यात ईश्वरः पुत्रहेतवे।
यः कश्चिदीश्वरः ख्यातो जगतां स्वस्त्रिया सह ॥ १८
यूयं त्रयस्सुराः कस्मादागता वरदर्षभाः।
एतन्मे संशयं छित्त्वा ततो दत्तेप्सितं वरम् ॥ १९
इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यूचुस्ते सुरास्त्रयः।
यादृक्कृतस्ते संकल्पस्तथैवाभूम्नुनीश्वर ॥ २०
वयं त्रयो भवेशानाः समाना वरदर्षभाः।
अस्मदंशभवास्तस्माद्विष्णुन्ति सुतास्त्रयः ॥ २१
विदिता भुवने सर्वे पित्रोः कीर्तिविवर्द्धनाः।
इत्युक्त्वा ते त्रयो देवाः स्वधामानि यथुर्मुदा ॥ २२
वरं लब्ध्वा मुनिः सोऽथ जगाम स्वाश्रमं मुदा।
युतोऽनसूयया प्रीतो ब्रह्मानन्दप्रदो मुने ॥ २३
अथ ब्रह्मा हरिः शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः।
पुत्ररूपैः प्रसन्नास्ते नानालीलाप्रकाशकाः ॥ २४
विधेरंशाद्विधुर्जज्ञेऽनसूयायां मुनीश्वरात्।
आविर्बभूवोदधितः क्षिप्तो देवैः स एव हि ॥ २५
विष्णोरंशात् स्त्रियां तस्यामत्रेदत्तो व्यजायत।
संन्यासपद्धतिर्यन् वर्द्धिता परमा मुने ॥ २६
दुर्वासा मुनिशार्दूलः शिवांशान्मुनिसत्तम।
जज्ञे तस्यां स्त्रियामत्रेर्वरथर्मप्रवर्तकः ॥ २७
भूत्वा रुद्रश्च दुर्वासा ब्रह्मतेजोविवर्द्धनः।
चक्रे धर्मपरीक्षां च बहूनां स दयापरः ॥ २८
सूर्यवंशे समुत्पन्नो योऽम्बरीषो नृपोऽभवत्।
तत्परीक्षामकार्षीत्स तां शृणु त्वं मुनीश्वर ॥ २९
सोऽम्बरीषो नृपवरः सप्तद्वीपरसापतिः।
नियमं हि चकारासावेकादश्यां व्रते दृढम् ॥ ३०
एकादश्या व्रतं कृत्वा द्वादश्यां चैव पारणाम्।
करिष्यामीति सुदृढसंकल्पस्तु नराधिपः ॥ ३१

मैंने तो सप्तलीक [तपोनिरत होकर] पुत्रकी कामनासे केवल एकमात्र जो इस सारे जगत्के ईश्वर हैं, उन्हींका ध्यान किया था। किंतु वरदाताओंमें श्रेष्ठ आप तीनों देवता यहाँ कैसे उपस्थित हुए हैं; मेरे इस संशयको दूरकर मुझे अभीष्ट वर दीजिये ॥ १८-१९ ॥

उनकी यह बात सुनकर उन तीनों देवताओंने कहा—हे मुनिराज ! जैसा आपने संकल्प किया था, वैसा ही हुआ है, हम ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तीनों ही समानरूपसे इस जगत्के ईश्वर हैं, इसलिये वर देनेके लिये उपस्थित हुए हैं, अतः हमलोगोंके अंशसे आपके तीन पुत्र उत्पन्न होंगे। वे सभी जगत्में प्रसिद्ध होकर माता एवं पिताकी कीर्तिको बढ़ानेवाले होंगे। ऐसा कहकर वे तीनों देवता प्रसन्न हो अपने-अपने धामको चले गये ॥ २०—२२ ॥

हे मुने ! ब्रह्मानन्दके प्रदाता अत्रि मुनि भी वर प्राप्तकर हर्षित हो अनसूयाके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानपर चले आये ॥ २३ ॥

तब अनेक लीलाओंको करनेवाले वे ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव प्रसन्न हो पुत्ररूपसे अनसूयाके गर्भसे उत्पन्न हुए। समय पूर्ण होनेपर मुनीश्वरके द्वारा अनसूयासे ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, किंतु देवताओंके द्वारा समुद्रमें डाल देनेके कारण वे पुनः समुद्रसे उत्पन्न हुए ॥ २४-२५ ॥

हे मुने ! विष्णुके अंशसे अत्रिके द्वारा उन अनसूयासे दत्तात्रेय उत्पन्न हुए, जिन्होंने सर्वोत्तम संन्यासपद्धतिका संवर्धन किया ॥ २६ ॥

हे मुनिसत्तम ! अत्रिके द्वारा उन अनसूयासे शिवके अंशसे श्रेष्ठ धर्मका प्रचार करनेवाले मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उत्पन्न हुए। रुद्रने दुर्वासाके रूपमें प्रकट होकर ब्रह्मतेजको बढ़ाया और दयापूर्वक बहुतोंके धर्मकी परीक्षा भी ली ॥ २७-२८ ॥

हे मुनीश्वर ! सूर्यवंशमें उत्पन्न जो अम्बरीष नामक राजा थे, उनकी परीक्षा दुर्वासाने ली थी; उस आख्यानको आप सुनिये ॥ २९ ॥

वे नृपश्रेष्ठ अम्बरीष सात द्वीपोंवाली पृथ्वीके स्वामी थे। एकादशीके व्रतमें स्थित होकर वे दृढ़ नियमका पालन करते थे। उन राजाका यह दृढ़ संकल्प था कि मैं एकादशीव्रतकर द्वादशीको पारण करूँगा ॥ ३०-३१ ॥

ज्ञात्वा तत्रियमं तस्य दुर्वासा मुनिसत्तमः ।
तदन्तिकं गतः शिष्यैर्बहुभिः शङ्करांशजः ॥ ३२

पारणे द्वादशीं स्वल्पां ज्ञात्वा यावत्स भोजनम् ।
कर्तुं व्यवसितस्तावदागतं स न्यमन्त्रयत् ॥ ३३

ततः स्नानार्थमगमदुर्वासाः शिष्यसंयुतः ।
विलम्बं कृतवांस्तत्र परीक्षार्थं मुनिर्बहु ॥ ३४

धर्मविचं तदा ज्ञात्वा स नृपः शास्त्रशासनात् ।
जलं प्राश्यास्थितस्तत्र तदागमनकांक्षया ॥ ३५

एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासा मुनिरागतः ।
कृताशनं नृपं ज्ञात्वा परीक्षार्थं धृताकृतिः ॥ ३६

चुक्रोधाति नृपे तस्मिन्परीक्षार्थं वृषस्य सः ।
प्रोवाच वचनं तूयं स मुनिः शङ्करांशजः ॥ ३७

दुर्वासा उवाच

मां निमन्त्र्य नृपाभोज्य जलं पीतं त्वयाधम ।
दर्शयामि फलं तस्य दुष्टदण्डधरो ह्यहम् ॥ ३८

इत्युक्त्वा क्रोधताप्राक्षो नृपं दग्धुं समुद्यतः ।
समुत्स्थौ द्रुतं चक्रं तत्स्थं रक्षार्थमैश्वरम् ॥ ३९

प्रजञ्चालाति तं चक्रं मुनिं दग्धुं सुदर्शनम् ।
शिवरूपं तमज्ञात्वा शिवमायाविमोहितम् ॥ ४०

एतस्मिन्नन्तरे व्योमवाण्युवाचाशरीरिणी ।
अम्बरीषं महात्मानं ब्रह्मभक्तं च वैष्णवम् ॥ ४१

व्योमवाण्युवाच

सुदर्शनमिदं चक्रं हरये शम्भुनार्पितम् ।
शान्तं कुरु प्रज्वलितमद्य दुर्वाससे नृप ॥ ४२

शंकरजीके अंशसे उत्पन्न हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उनके उस नियमको जानकर अपने अनेक शिष्योंको साथ ले उनके समीप गये ॥ ३२ ॥

उस दिन स्वल्प द्वादशी जानकर राजाने [पारण करनेके लिये] ज्यों ही भोजन करनेका विचार किया, उसी समय शिष्योंसहित दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे, तब राजाने उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया ॥ ३३ ॥

इसके बाद मुनि दुर्वासा शिष्योंके साथ स्नान करनेके लिये चले गये और राजाकी परीक्षा लेनेके लिये उन्होंने वहाँ बहुत विलम्ब कर दिया ॥ ३४ ॥

तब धर्ममें विष्णु जानकर राजा शास्त्रकी आज्ञासे जलका प्राशन करके दुर्वासाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥

इसी बीच महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे और राजाको जलप्राशन किया जानकर उनकी परीक्षा लेनेके लिये [महर्षिने भयानक] आकृति धारण कर ली और अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। शिवके अंशसे उत्पन्न हुए वे दुर्वासा धर्मकी परीक्षा करनेके उद्देश्यसे राजासे कठोर वचन कहने लगे ॥ ३६-३७ ॥

दुर्वासा बोले—हे अधम नृप! तुमने मुझे निमन्त्रण देकर बिना भोजन कराये ही जल पी लिया। मैं तुम्हें उसका फल दिखाता हूँ; क्योंकि मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ ॥ ३८ ॥

इतना कहकर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले वे ज्यों ही राजाको भस्म करनेके लिये उद्यत हुए, इतनेमें ही राजाके भीतर रहनेवाला ईश्वरका चक्र उनकी रक्षाके लिये शीघ्रतासे प्रकट हो गया ॥ ३९ ॥

वह सुदर्शन चक्र शिवमायासे विमोहित शिवस्वरूप मुनि दुर्वासाको न जानकर उन्हें जलानेके लिये भयंकर रूपमें जल उठा। इसी समय अशरीरी आकाशवाणीने विष्णुप्रिय ब्राह्मणभक्त महात्मा अम्बरीषसे कहा— ॥ ४०-४१ ॥

आकाशवाणी बोली—हे राजन्! शिवजीने ही यह सुदर्शन चक्र विष्णुको प्रदान किया है; दुर्वासाको जलानेके लिये प्रज्वलित चक्रको इस समय शीघ्र शान्त कीजिये ॥ ४२ ॥

दुर्वासायं शिवः साक्षात् चक्रं हरयेऽर्पितम्।
एवं साधारणमुनिं न जानीहि नृपोत्तम् ॥ ४३
तब धर्मपरीक्षार्थमागतोऽयं मुनीश्वरः।
शरणं याहि तस्याशु भविष्यत्यन्यथा लयः ॥ ४४

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा च नभोवाणी विराम मुनीश्वर।
अस्तावीत्स हरांशं तमम्बरीषोऽपि चादरात् ॥ ४५

अम्बरीष उवाच

यद्यस्ति दत्तमिष्टं च स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्धरेरस्त्रं प्रशाम्यतु ॥ ४६

यदि नो भगवान्नीतो मद्भक्तो भक्तवत्सलः।
सुदर्शनमिदं चास्त्रं प्रशाम्यतु विशेषतः ॥ ४७

नन्दीश्वर उवाच

इति स्तुवति रुद्राग्रे शैवं चक्रं सुदर्शनम्।
अशाम्यत्सर्वथा ज्ञात्वा तं शिवांशं सुलब्धधीः ॥ ४८

अथाम्बरीषः स नृपः प्रणनाम च तं मुनिम्।
शिवावतारं संज्ञाय स्वपरीक्षार्थमागतम् ॥ ४९

सुप्रसन्नो बभूवाथ स मुनिः शङ्करांशजः।
भुक्त्वा तस्मै वरं दत्त्वा स्वाभीष्टं स्वालयं ययौ ॥ ५०
अम्बरीषपरीक्षायां दुर्वासश्चरितं मुने।
प्रोक्तमन्यच्चरित्रं त्वं शृणु तस्य मुनीश्वर ॥ ५१

पुनर्दाशरथेश्वके परीक्षां नियमेन वै।
मुनिरूपेण कालेन यः कृतो नियमो मुने ॥ ५२

ये दुर्वासा साक्षात् शिव हैं; इन्होंने ही विष्णुको यह चक्र प्रदान किया है। हे नृपश्रेष्ठ! इन्हें सामान्य मुनि मत समझिये। ये मुनीश्वर आपके धर्मकी परीक्षाके लिये आये हैं, अतः शीघ्र ही इनकी शरणमें जाइये, नहीं तो प्रलय हो जायगा ॥ ४३-४४ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी, तब वे अम्बरीष भी शिवके अंशस्वरूप उन मुनिकी स्तुति आदरसे करने लगे ॥ ४५ ॥

अम्बरीषजी बोले—यदि मैंने दान किया है, इष्टापूर्ति किया है, अपने धर्मका भलीभाँति अनुष्ठान किया है और हमारा कुल ब्रह्मण्य है, तो विष्णुका यह अस्त्र शान्त हो जाय ॥ ४६ ॥

यदि मेरे द्वारा सेवित भक्तवत्सल भगवान् मुझपर प्रसन्न हैं तो यह सुदर्शनचक्र विशेष रूपसे शान्त हो जाय ॥ ४७ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार रुद्रांशभूत दुर्वासाके आगे अम्बरीषके स्तुति करनेपर [आकाशवाणीसे] प्रेरित बुद्धिवाला वह शैव सुदर्शन चक्र उन्हें शिवांश जानकर पूर्ण रूपसे शान्त हो गया ॥ ४८ ॥

इसके बाद उन राजा अम्बरीषने अपनी परीक्षाके निमित्त आये हुए उन मुनिको शिवावतार जानकर उन्हें प्रणाम किया ॥ ४९ ॥

तदनन्तर शिवजीके अंशसे उत्पन्न वे मुनि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और भोजन करके अभीष्ट वर प्रदानकर अपने स्थानको छले गये। हे मुने! मैंने अम्बरीषकी परीक्षामें दुर्वासाका चरित्र कह दिया। हे मुनीश्वर! अब आप उनका दूसरा चरित्र सुनिये ॥ ५०-५१ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने दशरथपुत्र रामकी नियमसे परीक्षा ली। काल जब मुनिका रूप धारणकर श्रीरामचन्द्रजीसे भेंट करनेके लिये पहुँचा, तब उसने रामसे एक अनुबन्ध किया [और कहा—मैं आपसे कुछ बात करूँगा। किंतु यदि उस समय कोई तीसरा पहुँचा तो वह आपका वध्य होगा। रामचन्द्रजीने तथास्तु कहकर लक्ष्मणको पहरेपर नियुक्त कर दिया और कालसे एकान्तमें बातचीत करने लगे। इसी बीच वहाँ दुर्वासा पहुँचे।] उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—मैं आवश्यक कार्यसे रामचन्द्रसे मिलना चाहता

तदैव मुनिना तेन सौमित्रिः प्रेषितो हठात् ।
तं तत्याज द्रुतं रामो बन्धुं प्रणवशान्मुने ॥ ५३

सा कथा विदिता लोके मुनिभिर्बहुधोदिता ।
नातो मे विस्तरात्प्रोक्ता ज्ञाता यत्सर्वथा बुधैः ॥ ५४

नियमं सुदृढं दृष्ट्वा सुप्रसन्नोऽभवन्मुनिः ।
दुर्वासा सुप्रसन्नात्मा वरं तस्मै प्रदत्तवान् ॥ ५५

श्रीकृष्णनियमस्यापि परीक्षां स चकार ह ।
तां शृणु त्वं मुनिश्रेष्ठ कथयामि कथां च ताम् ॥ ५६
ब्रह्मप्रार्थनया विष्णुर्वसुदेवसुतोऽभवत् ।
धराभारावतारार्थं साधूनां रक्षणाय च ॥ ५७

हत्वा दुष्टान्महापापान् ब्रह्मद्रोहकरान्खलान् ।
रक्ष निखिलान्साधून्ब्राह्मणान्कृष्णनामभाक् ॥ ५८

ब्रह्मभक्तिं चकाराति स कृष्णो वसुदेवजः ।
नित्यं हि भोजयामास सुरसान्ब्राह्मणान्बहून् ॥ ५९

ब्रह्मभक्तो विशेषेण कृष्णश्चेति प्रथामगात् ।
सन्दर्शुकामः स मुनिः कृष्णान्तिकमगान्मुने ॥ ६०
रुक्मिणीसहितं कृष्णं सनं कृत्वा रथे स्वयम् ।
संयोज्य संस्थितो वाहं सुप्रसन्न उवाह तम् ॥ ६१

मुनी रथात्समुत्तीर्य दृष्ट्वा तां दृढतां पराम् ।
तस्मै भूत्वा सुप्रसन्नो वज्राङ्गत्ववरं ददौ ॥ ६२

द्युनद्यामेकदा स्नानं कुर्वन्ननो बभूव ह ।
लज्जितोऽभून्मुनिश्रेष्ठो दुर्वासा: कौतुकी मुने ॥ ६३

हूँ । लक्ष्मणजीने इधर रामकी प्रतिज्ञा, उधर दुर्वासाका शाप—इस प्रकार दोनों ओरसे असमंजसमें पड़कर विचार किया कि ब्रह्मशापसे दग्ध होना अच्छा नहीं, अतः उन्होंने दुर्वासाके आनेका समाचार श्रीरामको दे दिया । हे मुने ! इस प्रकार दुर्वासाके द्वारा हठपूर्वक भेजे जानेपर श्रीरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तत्क्षण लक्ष्मणको त्याग दिया ॥ ५२-५३ ॥

महर्षियोंने यह कथा बहुधा कही है, जिसके कारण यह लोकमें प्रसिद्ध है । अतः इसे विस्तारसे नहीं कहा; क्योंकि बुद्धिमान् लोग तो इस कथाको जानते ही हैं ॥ ५४ ॥

महर्षि दुर्वासा उनके इस अत्यन्त दृढ़ नियमको देखकर सन्तुष्ट हुए और प्रसन्नचित्त हो उन्हें वर प्रदान किया ॥ ५५ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! उन्होंने श्रीकृष्णके नियमकी भी परीक्षा ली थी; मैं उस कथाको कह रहा हूँ, आप उसे सुनिये । ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये एवं साधुओंकी रक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णु वसुदेवके पुत्ररूपमें अवतरित हुए ॥ ५६-५७ ॥

श्रीकृष्ण नामवाले विष्णुने ब्रह्मद्रोही खलों, दुष्टों एवं महापापियोंका संहार करके समस्त साधुओं एवं ब्राह्मणोंकी रक्षा की ॥ ५८ ॥

वे वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके प्रति अत्यधिक भक्ति रखते थे और प्रतिदिन बहुत-से ब्राह्मणोंको सरस भोजन कराते थे ॥ ५९ ॥

‘श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके विशेषरूपसे भक्त हैं’ जब वे इस प्रसिद्धिको प्राप्त हुए, तब हे मुने ! उन्हें देखनेकी इच्छासे वे (दुर्वासा) मुनि कृष्णके पास पहुँचे ॥ ६० ॥

उन्होंने श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणीको रथमें जोत दिया और उस रथपर स्वयं सवार होकर [उन्हें] हाँकने लगे । श्रीकृष्ण [एवं रुक्मिणी]-ने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस रथका वहन किया ॥ ६१ ॥

[ब्राह्मणके विषयमें] उन दोनोंकी इतनी बड़ी दृढता देखकर रथसे उतरकर मुनिने प्रसन्न हो उन्हें वज्रके समान अंगवाला होनेका वर दिया ॥ ६२ ॥

हे मुने ! एक समय गंगाजीमें स्नान करते हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा नग्न हो गये थे; उस समय वे कौतुकी मुनि लज्जाका अनुभव करने लगे ॥ ६३ ॥

तज्जात्वा द्रौपदी स्नानं कुर्वती तत्र चादरात्।
तल्लज्जां छादयामास भिन्नस्वाञ्छलदानतः ॥ ६४

तदादाय प्रवाहेनागतं स्वनिकटं मुनिः।
तेनाच्छाद्य स्वगुह्यं च तस्यै तुष्टो बभूव सः ॥ ६५
द्रौपद्यै च वरं प्रादात्तदञ्चलविवर्द्धनम्।
पाण्डवान्मुखिनश्चक्रे द्रौपदी तद्वरात्पुनः ॥ ६६
हंसडिष्म्भौ नृपौ कौचित्स्वावमानकरौ खलौ।
दत्त्वा निदेशं च हरेन्नशयामास स प्रभुः ॥ ६७
ब्रह्मतेजो विशेषेण स्थापयामास भूतले।
संन्यासपद्धतिं चैव यथाशास्त्रविधिक्रमम् ॥ ६८
बहूनुद्धारयामास सूपदेशं विबोध्य च।
ज्ञानं दत्त्वा विशेषेण बहून्मुक्तांश्चकार सः ॥ ६९
इत्थं चक्रे स दुर्वासा विचित्रं चरितं बहु।
धन्यं यशस्यमायुष्यं शृणवतः सर्वकामदम् ॥ ७०

य इदं शृणुयाद्दक्त्या दुर्वासश्चरितं मुदा।
श्रावयेद्वा परान् यश्च स सुखीह परत्र च ॥ ७१

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां दुर्वासश्चरितवर्णं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें दुर्वासाचरितवर्णन नामक उनीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ १९ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

शिवजीका हनुमान्‌के रूपमें अवतार तथा उनके चरितका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

अतः परं शृणु प्रीत्या हनुमच्चरितं मुने।
यथा चकाराशु हरो लीलास्तद्वूपतो वराः ॥ १

चकार सुहितं प्रीत्या रामस्य परमेश्वरः।
तत्सर्वं चरितं विप्र शृणु सर्वसुखावहम् ॥ २

उस समय वहाँ स्नान कर रही द्रौपदीने यह जानकर अपना आँचल फाड़कर तथा उसे आदरपूर्वक प्रदान करके उनकी लज्जाको ढँक दिया था ॥ ६४ ॥

इस प्रकार प्रवाहके द्वारा अपने समीप आये उस वस्त्रको लेकर वे मुनि अपने गुह्य अंगको उससे ढँककर उस [द्रौपदी]-पर प्रसन्न हुए और उन्होंने द्रौपदीको उसके आँचलके बढ़नेका वर दिया। समय आनेपर उसी वरदानके प्रभावसे द्रौपदीने पाण्डवोंको सुखी बनाया ॥ ६५-६६ ॥

हंस एवं डिष्म्भ नामक महाखल कोई दो राजा थे। उन्होंने दुर्वासाका अनादर किया। तब इन्हीं दुर्वासाने श्रीकृष्णको सन्देश देकर उनका नाश करवाया ॥ ६७ ॥

उन्होंने पृथ्वीपर विशेषरूपसे ब्रह्मतेज और शास्त्रकी रीतिके अनुसार संन्यासपद्धतिकी स्थापना की ॥ ६८ ॥

उन्होंने अत्यन्त सुन्दर उपदेश देकर बहुतोंका उद्घार किया और विशेष रूपसे ज्ञान देकर बहुतोंको मुक्त भी कर दिया ॥ ६९ ॥

इस प्रकार उन दुर्वासाने अनेक विचित्र चरित्र किये। [दुर्वासाका] यह चरित्र श्रवण करनेवालेको धन, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है ॥ ७० ॥

जो दुर्वासाके इस चरित्रको प्रीतिपूर्वक सुनता है अथवा जो प्रसन्नतापूर्वक दूसरोंको सुनाता है, वह इस लोकमें एवं परलोकमें सुखी रहता है ॥ ७१ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! अब इसके पश्चात् शिवजीने जिस प्रकार हनुमानजीके रूपमें अवतार लेकर मनोहर लीलाएँ कीं, उस हनुमच्चरित्रिको प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

उन परमेश्वरने प्रेमपूर्वक [हनुमदरूपसे] श्रीरामका परम हित किया, हे विप्र! सर्वसुखकारी उस सम्पूर्ण चरित्रका श्रवण कीजिये ॥ २ ॥

एकस्मिन्समये शम्भुरद्धुतोतिकरः प्रभुः ।
ददर्श मोहिनीरूपं विष्णोः स हि वसेदगुणः ॥ ३

चक्रे स्वं क्षुभितं शम्भुः कामबाणहतो यथा ।
स्वं वीर्यं पातयामास रामकार्यार्थमीश्वरः ॥ ४

तद्वीर्यं स्थापयामासुः पत्रे सप्तर्षयश्च ते ।
प्रेरिता मनसा तेन रामकार्यार्थमादरात् ॥ ५

तैर्गौतमसुतायां तद्वीर्यं शम्भोर्महर्षिभिः ।
कर्णद्वारा तथाञ्जन्यां रामकार्यार्थमाहितम् ॥ ६

ततश्च समये तस्माद्धनूमानिति नामभाक् ।
शम्भुर्जङ्गे कपितनुर्महाबलपराक्रमः ॥ ७

हनूमान्स कपीशानः शिशुरेव महाबलः ।
रविबिम्बं बभक्षाशु ज्ञात्वा लघुफलं प्रगे ॥ ८

देवप्रार्थनया तं सोऽत्यजज्ञात्वा महाबलम् ।
शिवावतारं च प्राप वरान्दत्तान् सुरर्षिभिः ॥ ९

स्वजनन्यन्तिकं प्रागादथ सोऽतिप्रहर्षितः ।
हनूमान्सर्वमाचर्ष्यौ तस्यै तद् वृत्तमादरात् ॥ १०

तदाज्ञया ततो धीरः सर्वविद्यामयलतः ।
सूर्यात्यपाठ स कपिर्गत्वा नित्यं तदन्तिकम् ॥ ११

सूर्याज्ञया तदंशस्य सुग्रीवस्यान्तिकं ययौ ।
मातुराजामनुप्राप्य रुद्रांशः कपिसत्तमः ॥ १२

ज्येष्ठभ्रात्रा वालिना हि स्वस्त्रीभोक्त्रा तिरस्कृतः ।
ऋष्यमूकगिरौ तेन न्यवसत्स हनूमता ॥ १३

ततोऽभूत्स सुकण्ठस्य मन्त्री कपिवरः सुधीः ।
सर्वथा सुहितं चक्रे सुग्रीवस्य हरांशजः ॥ १४

एक बार अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले तथा
सर्वगुणसम्पन्न उन भगवान् शिवने विष्णुके मोहिनी
रूपको देखा ॥ ३ ॥

[उस मोहिनी रूपको देखते ही] कामबाणसे
आहतकी भाँति शम्भुने अपनेको विक्षुब्ध कर दिया
और उन ईश्वरने श्रीरामके कार्यके लिये अपने तेजका
उत्सर्ग कर दिया ॥ ४ ॥

शिवजीके मनकी प्रेरणासे प्रेरित हुए सप्तर्षियोंने
उनके तेजको रामकार्यके लिये आदरपूर्वक पत्तेपर
स्थापित कर दिया ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् उन महर्षियोंने शम्भुके उस तेजको
श्रीरामके कार्यके लिये गौतमकी कन्या अंजनीमें
कानके माध्यमसे स्थापित कर दिया ॥ ६ ॥

समय आनेपर वह शम्भुतेज महान् बल तथा
पराक्रमवाला और वानर शरीरवाला होकर हनुमान्जके
नामसे प्रकट हुआ ॥ ७ ॥

वे महाबलवान् कपीश्वर हनुमान् जब शिशु ही
थे, उसी समय प्रातःकाल उदय होते हुए सूर्यबिम्बको
छोटा फल जानकर निगल गये थे ॥ ८ ॥

तब देवताओंकी प्रार्थनासे उन्होंने सूर्यको उगल
दिया । उन्हें महाबली शिवावतार जानकर देवताओं तथा
ऋषियोंके द्वारा प्रदत्त वरोंको उन्होंने प्राप्त किया ॥ ९ ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न हनुमान् जी अपनी
माताके निकट गये और आदरपूर्वक उनसे वह वृत्तान्
कह सुनाया ॥ १० ॥

इसके बाद माताकी आज्ञासे नित्यप्रति सूर्यके
पास जाकर धैर्यशाली हनुमान् जीने बिना यलके ही
उनसे सारी विद्याएँ पढ़ लीं ॥ ११ ॥

उसके बाद माताकी आज्ञा प्राप्तकर रुद्रके
अंशभूत कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी सूर्यकी आज्ञासे [प्रेरित
हो] सूर्यके अंशसे उत्पन्न हुए सुग्रीवके पास गये । वे
सुग्रीव अपने ज्येष्ठ भ्राता वालि, जिसने उनकी स्त्रीका
बलात् हरण कर लिया था, तिरस्कृत हो ऋष्यमूक पर्वतपर
हनुमान् जीके साथ निवास करने लगे ॥ १२-१३ ॥

तब वे सुग्रीवके मन्त्री हो गये । शिवजीके अंशसे
उत्पन्न परम बुद्धिमान् कपिश्रेष्ठ हनुमान् जीने सब
प्रकारसे सुग्रीवका हित किया । उन्होंने भाई [लक्ष्मण]-

तत्रागतेन सभात्रा हृतभार्येण दुःखिना।
कारयामास रामेण तस्य सख्यं सुखावहम्॥ १५
घातयामास रामश्च वालिनं कपिकुञ्जरम्।
भ्रातृपत्न्याश्च भोक्तारं पापिनं वीरमानिनम्॥ १६

ततो रामाज्ञया तात हनूमान्वानरेश्वरः।
स सीतान्वेषणं चक्रे बहुभिर्वानैः सुधीः॥ १७
ज्ञात्वा लङ्घागतां सीतां गतस्तत्र कपीश्वरः।
द्रुतमुल्लंघ्य सिंधुं तमनिस्तीर्य परैः स वै॥ १८

चक्रेऽद्भुतचरित्रं स तत्र विक्रमसंयुतम्।
अभिज्ञानं ददौ प्रीत्या सीतायै स्वप्रभोर्वरम्॥ १९
सीताशोकं जहाराशु स वीरः कपिनायकः।
श्रावयित्वा रामवृत्तं तत्प्राणावनकारकम्॥ २०

तदभिज्ञानमादाय निवृत्तो रामसन्निधिम्।
रावणाराममाहत्य जघान बहुराक्षसान्॥ २१

तदैव रावणसुतं हत्वा सबहुराक्षसम्।
स महोपद्रवं चक्रे महोतिस्तत्र निर्भयः॥ २२

यदा दग्धो रावणेनावगुण्ड्य वसनानि च।
तैलाभ्यक्तानि सुदृढं महाबलवता मुने॥ २३
उत्प्लुत्योत्प्लुत्य च तदा महादेवांशजः कपिः।
ददाह लंकां निखिलां कृत्वा व्याजं तमेव हि॥ २४

दग्धवा लंकां वंचयित्वा विभीषणगृहं ततः।
अपतद्वारिधौ वीरस्ततः स कपिकुञ्जरः॥ २५

स्वपुच्छं तत्र निर्वाप्य प्राप तस्य परं तटम्।
अखिन्नः स यदौ रामसन्निधिं गिरिशांशजः॥ २६

अविलंबेन सुजवो हनूमान् कपिसत्तमः।
रामोपकण्ठमागत्य ददौ सीताशिरोमणिम्॥ २७

के साथ वहाँ आये हुए अपहृत पलीवाले दुखी रामके साथ उनकी सुखदायी मित्रता करवायी ॥ १४-१५ ॥

रामचन्द्रजीने भाईकी स्त्रीके साथ रमण करनेवाले, महापापी एवं अपनेको वीर माननेवाले कपिराज वालिका वध कर दिया ॥ १६ ॥

हे तात! तदनन्तर वे महाबुद्धिमान् वानरेश्वर हनुमान् रामचन्द्रजीकी आज्ञासे बहुतसे वानरोंके साथ सीताकी खोजमें लग गये ॥ १७ ॥

सीताको लंकामें विद्यमान जानकर वे कपीश्वर दूसरोंके द्वारा न लाँघे जा सकनेवाले उस समुद्रको बड़ी शीघ्रतासे लाँघकर वहाँ गये ॥ १८ ॥

वहाँ उन्होंने पराक्रमयुक्त अद्भुत कार्य किया और जानकीको प्रीतिपूर्वक अपने प्रभुका उत्तम [मुद्रिकारूप] चिह्न प्रदान किया। जानकीके प्राणोंकी रक्षा करनेवाला रामवृत्त सुनाकर उन वीर वानरनायकने शीघ्र ही उनके शोकको दूर कर दिया ॥ १९-२० ॥

उन्होंने रावणकी अशोकवाटिका उजाड़कर बहुत-से राक्षसोंका वध कर दिया; फिर सीतासे स्मरणचिह्न लेकर रामचन्द्रके पास लौटने लगे ॥ २१ ॥

उस समय महालीला करनेवाले उन्होंने अत्यन्त निर्भय होकर रावणके पुत्र तथा अनेक राक्षसोंको मारकर वहाँ लंकामें महान् उपद्रव किया ॥ २२ ॥

हे मुने! जब महाबलशाली रावणने तैलसे सने हुए वस्त्रोंको उनकी पूँछमें दृढ़तापूर्वक लपेटकर उसमें आग लगा दी, तब महादेवके अंशसे उत्पन्न हनुमान् जीने इसी बहानेसे कूद-कूदकर समस्त लंकाको जला दिया ॥ २३-२४ ॥

तदनन्तर वे कपिश्रेष्ठ वीर हनुमान् [केवल] विभीषणके घरको छोड़कर सारी लंकाको जला करके समुद्रमें कूद पड़े ॥ २५ ॥

वहाँ अपनी पूँछ बुझाकर शिवके अंशसे उत्पन्न वे समुद्रके दूसरे किनारेपर आये और प्रसन्न होकर श्रीरामजीके पास गये ॥ २६ ॥

सुन्दर वेगवाले कपिश्रेष्ठ हनुमान् जीने शीघ्रतापूर्वक श्रीरामके निकट जाकर उन्हें सीताजीकी चूड़ामणि प्रदान की ॥ २७ ॥

ततस्तदाज्ञया वीरः सिंधौ सेतुमबन्धयत्।
वानरैः स समानीय बहून् गिरिवरान् बली॥ २८

गत्वा तत्र ततो रामस्तरुकामो यथा ततः।
शिवलिंगं समानर्च प्रतिष्ठाप्य जयेष्प्या॥ २९

तद्वारात्स जयं प्राप्य वरं तीर्त्वोदधिं ततः।
लंकामावृत्य कपिभी रणं चक्रे स राक्षसैः॥ ३०

जघानाथासुरान्वीरो रामसैन्यं रक्ष सः।
शक्तिक्षतं लक्ष्मणं च संजीविन्या हृजीवयत्॥ ३१

सर्वथा सुखिनं चक्रे सरामं लक्ष्मणं हि सः।
सर्वसैन्यं रक्षासौ महादेवात्मजः प्रभुः॥ ३२

रावणं परिवाराद्यं नाशयामास विश्रमः।
सुखीचकार देवान्स महाबलग्रहः कपिः॥ ३३

महिरावणसंज्ञं स हत्वा रामं सलक्ष्मणम्।
तत्स्थानादानयामास स्वस्थानं परिपाल्य च॥ ३४

रामकार्यं चकाराशु सर्वथा कपिपुङ्गवः।
असुरान्नमयामास नानालीलां चकार च॥ ३५

स्थापयामास भूलोके रामभक्तिं कपीश्वरः।
स्वयं भक्तवरो भूत्वा सीतारामसुखप्रदः॥ ३६

लक्ष्मणप्राणदाता च सर्वदेवमदापहः।
रुद्रावतारो भगवान्भक्तोद्धारकरः स वै॥ ३७

हनुमान्स महावीरो रामकार्यकरः सदा।
रामदूताभिधो लोके दैत्यघो भक्तवत्सलः॥ ३८

इति ते कथितं तात हनुमच्चरितं वरम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम्॥ ३९

तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे वानरोंके साथ उन बलवान् तथा वीर हनुमान्‌जीने अनेक विशाल पर्वतोंको लाकर समुद्रपर पुल बाँधा॥ २८॥

तब पार जानेकी कामनावाले श्रीरामचन्द्रजीने विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे शिवलिंगको यथाविधि प्रतिष्ठितकर तदुपरान्त उसका पूजन किया॥ २९॥

तत्पश्चात् उन्होंने पूज्यतम शिवजीसे विजयका वरदान प्राप्त करके समुद्र पारकर वानरोंके साथ लंकाको घेरकर राक्षसोंसे युद्ध किया॥ ३०॥

उन वीर हनुमान्‌ने राक्षसोंका वध किया, श्रीरामचन्द्रजीकी सेनाकी रक्षा की तथा शक्तिसे घायल लक्ष्मणको संजीवनी बूटीके द्वारा पुनः जीवित कर दिया॥ ३१॥

इस प्रकार महादेवके पुत्र प्रभु उन हनुमान्‌जीने लक्ष्मणसहित श्रीरामजीको सब प्रकारसे सुखी बनाया और सम्पूर्ण सेनाकी रक्षा की॥ ३२॥

महान् बल धारण करनेवाले उन कपिने बिना श्रमके परिवारसहित रावणका विनाश किया और देवताओंको सुखी बनाया॥ ३३॥

उन्होंने महिरावण नामक राक्षसको मारकर लक्ष्मणसहित रामकी रक्षा करके उसके स्थानसे उन्हें अपने स्थानपर ला दिया॥ ३४॥

इस प्रकार उन कपिपुंगवने सब प्रकारसे श्रीरामका कार्य शीघ्र ही सम्पन्न किया, असुरोंका वध किया एवं नाना प्रकारकी लीलाएँ कीं॥ ३५॥

सीतारामको सुख देनेवाले वानरराजने स्वयं श्रेष्ठ भक्त होकर भूलोकमें रामभक्तिकी स्थापना की॥ ३६॥

वे लक्ष्मणके प्राणोंके रक्षक, सभी देवताओंका गर्व चूर करनेवाले, रुद्रके अवतार, भगवत्स्वरूप और भक्तोंका उद्धार करनेवाले थे॥ ३७॥

वे हनुमान्‌जी महावीर, सदा रामका कार्य सिद्ध करनेवाले, लोकमें रामदूतके रूपमें विख्यात, दैत्योंका संहार करनेवाले तथा भक्तवत्सल थे॥ ३८॥

हे तात! इस प्रकार मैंने हनुमान्‌जीका श्रेष्ठ चरित्र कहा, जो धन, यश, आयु तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाला है॥ ३९॥

य इदं शृणुयाद्वक्त्वा श्रावयेद्वा समाहितः ।

स भुक्त्वेहस्थिलान्कामान् अन्ते मोक्षं लभेत्परम् ॥ ४० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें हनुमदवतारचरित्रवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

शिवजीके महेशावतार-वर्णनक्रममें अम्बिकाके शापसे भैरवका
वेतालरूपमें पृथ्वीपर अवतरित होना

नन्दीश्वर उवाच

अथ प्रीत्या शृणु मुनेऽवतारं परमं प्रभोः ।
शङ्करस्यात्मभूपुत्र शृणवतां सर्वकामदम् ॥ १ ॥

एकदा मुनिशार्दूल गिरिजाशङ्करावुभौ ।
विहर्तुकामौ संजातौ स्वेच्छया परमेश्वरौ ॥ २ ॥
भैरवं द्वारपालं च कृत्वाभ्यन्तरमागतौ ।
नानासखिगणैः प्रीत्या सेवितौ नरशीलितौ ॥ ३ ॥

चिरं विहृत्य तत्र द्वौ स्वतन्त्रौ परमेश्वरौ ।
बभूवतुः प्रसन्नौ तौ नानालीलाकरौ मुने ॥ ४ ॥
अथोन्मत्ताकृतिर्देवी स्वतन्त्रा लीलया शिवा ।
आगता द्वारि तद्रूपा प्रभोराज्ञामवाप सा ॥ ५ ॥
तां देवीं भैरवः सोऽथ नारीदृष्ट्या विलोक्य च ।
निषिद्धेथ बहिर्गन्तुं तद्रूपेण विमोहितः ॥ ६ ॥

नारीदृष्ट्या सुदृष्टा सा भैरवेण यदा मुने ।
क्रुद्धाभवच्छिवा देवी तं शशाप तदाऽम्बिका ॥ ७ ॥

शिवोवाच

नारीदृष्ट्या पश्यसि त्वं यतो मां पुरुषाधम ।
अतो भव धरायां हि मानुषस्त्वं च भैरव ॥ ८ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्थं यदाभवच्छप्तो भैरवः शिवया मुने ।
हाहाकारो महानासीदुःखमाप स लीलया ॥ ९ ॥

जो सावधान होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें परम मोक्षको प्राप्त करता है ॥ ४० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां हनुमदवतारचरित्रवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! हे ब्रह्मपुत्र! अब शिवजीके एक और श्रेष्ठ अवतारको प्रीतिपूर्वक सुनिये, जो सुननेवालोंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है ॥ १ ॥

हे मुनिशार्दूल! एक बार परमेश्वर शिव एवं गिरिजा अपनी इच्छासे विहार करनेके लिये तत्पर हुए। भैरवको द्वारपालके रूपमें स्थापितकर वे भीतर आ गये और अनेक सखियोंसे प्रेमपूर्वक सेवित हो मनुष्यके समान लीला करने लगे ॥ २-३ ॥

हे मुने! इस प्रकार वहाँ बहुत कालतक विहारकर अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले तथा स्वतन्त्र वे दोनों ही परमेश्वर परम प्रसन्न हुए ॥ ४ ॥

तदनन्तर परम स्वतन्त्र वे शिव लीलावशात् उन्मत्त वेषमें शिवजीकी आज्ञासे द्वारपर आयीं ॥ ५ ॥

तब उन देवीको [साधारण] नारीकी दृष्टिसे देखकर उनके [उस उन्मत्त] रूपसे भ्रमित हुए भैरवने उन्हें बाहर जानेसे रोका ॥ ६ ॥

हे मुने! जब भैरवने [देवीको एक सामान्य] नारीकी दृष्टिसे देखा, तब वे देवी शिव क्रोधित हो गयीं और उन अम्बिकाने उन्हें शाप दे दिया ॥ ७ ॥

शिवा बोलीं—हे पुरुषाधम! हे भैरव! तुम मुझे [सामान्य] स्त्रीकी दृष्टिसे देख रहे हो, इसलिये तुम पृथ्वीपर मनुष्यरूप धारण करो ॥ ८ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार जब पार्वतीने भैरवको शाप दे दिया, तब महान् हाहाकार मच गया। [पार्वतीकी इस] लीलासे भैरव अत्यन्त दुखी हुए ॥ ९ ॥

ततश्च शङ्करः शीघ्रं तमागत्य मुनीश्वर।
आश्वासयद्वैरवं हि नानानुनयकोविदः ॥ १०

तच्छापद्वैरवः सोऽथ क्षिताववतरम्भुने।
मनुष्ययोन्यां वैतालसंज्ञकः शङ्करेच्छ्या ॥ ११

तत्स्नेहतः शिवः सोऽपि क्षिताववतरद्विभुः।
शिवया सह सल्लीलो लौकिकीं गतिमाश्रितः ॥ १२

महेशाह्वः शिवश्वासीच्छारदा गिरिजा मुने।
सुलीलां चक्रतुः प्रीत्या नानालीलाविशारदौ ॥ १३

इति ते कथितं तात महेशचरितं वरम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ १४

य इदं शृणुयाद्वक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
स भुक्त्वेहाखिलान्धोगानन्ते मोक्षमवाज्ञयात् ॥ १५

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें महेशावतारवर्णन नामक
इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

शिवके वृषेश्वरावतार-वर्णनके प्रसंगमें समुद्रमन्थनकी कथा

नन्दीश्वर उवाच

शृणु ब्रह्मसुत प्राज्ञ वृषेशाख्यं मुनीश्वर।
शिवावतारं सल्लीलं हरिगर्वहरं वरम् ॥ १

पुरा देवासुराः सर्वे जरामृत्युभयार्दिताः।
परस्यरं च संधाय रत्नान्यादित्सवोऽभवन् ॥ २

ततः सुरासुराः सर्वे क्षीरोदं सागरोत्तमम्।
उद्यता मथितुं तं च बभूवुर्मुनिनन्दन ॥ ३

आसन् शुचिस्मिताः सर्वे केनेदं मन्थनं भवेत्।
स्वकार्यसिद्धये तस्य ब्रह्मनिति सुरासुराः ॥ ४

हे मुनीश्वर! इसके बाद अनेकविध अनुनय-
विनयमें प्रवीण श्रीशिवजीने शीघ्रतासे वहाँ आकर
भैरवको आश्वस्त किया। हे मुने! तब उस शापसे एवं
शिवजीकी इच्छासे वे भैरव पृथ्वीपर मनुष्ययोनिमें
वैताल नामसे उत्पन्न हुए ॥ १०-११ ॥

उनके स्नेहसे लौकिक गतिका आश्रय ग्रहणकर
उत्तम लीलाओंवाले वे प्रभु शिवजी भी पार्वतीके साथ
पृथ्वीपर अवतरित हुए ॥ १२ ॥

हे मुने! शिवजी महेश नामसे तथा पार्वतीजी शारदा
नामसे प्रसिद्ध हुई और नाना प्रकारकी लीलाएँ करनेमें
प्रवीण वे दोनों प्रेमपूर्वक उत्तम लीला करते रहे ॥ १३ ॥

हे तात! इस प्रकार मैंने शिवजीके उत्तम
चरित्रिका वर्णन आपसे किया, जो धन, यश, आयु
तथा सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला है। जो
मनुष्य सावधानचित्त होकर भक्तिपूर्वक इसे सुनता है
अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंको
भोगकर अन्तमें मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ॥ १४-१५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां महेशावतारवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें महेशावतारवर्णन नामक
इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २१ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे ब्रह्मसुत! हे प्राज्ञ! हे
मुनीश्वर! अब आप भगवान् विष्णुके अहंकारको
नष्ट करनेवाले तथा श्रेष्ठ लीलासे परिपूर्ण शिवजीके
वृषेश्वर नामक उत्तम अवतारको सुनें ॥ १ ॥

पूर्व समयमें जरा एवं मृत्युसे भयभीत हुए
देवताओं एवं असुरोंने आपसमें सन्धिकर समुद्रसे रल
ग्रहण करनेका विचार किया ॥ २ ॥

हे मुनिनन्दन! तदनन्तर सभी देवता और
असुर समुद्रोंमें श्रेष्ठ क्षीरसागरको मथनेके लिये उद्यत
हुए ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन्! मधुर मुसकानवाले सभी देवता तथा
असुर अपनी कार्यसिद्धिके लिये विचार करने लगे कि
किस उपायसे उस क्षीरसागरका मन्थन किया जाय ॥ ४ ॥

तदा नभोगता वाणी मेघगम्भीरनिःस्वना ।
उवाच देवान्देत्यांश्वाश्वासयन्तीश्वराज्ञया ॥ ५

नभोवाण्युवाच
हे देवा असुराश्चैव मन्थध्वं क्षीरसागरम् ।
भवतां बलबुद्धिर्हि भविष्यति न संशयः ॥ ६

मन्दरं चैव मन्थानं रज्जुं कुरुत वासुकिम् ।
मिथः सर्वे मिलित्वा तु मन्थनं कुरुतादरात् ॥ ७

नन्दीश्वर उवाच
नभोगतां तदा वाणीं निशम्याथ सुरासुराः ।
उद्योगं चक्रिरे सर्वे तत्कर्तुं मुनिसत्तम् ॥ ८

सुसन्धायाखिलास्ते वै मन्दरं पर्वतोत्तमम् ।
कनकाभं च सरलं नानाशोभार्चितं ययुः ॥ ९

सुप्रसाद्य गिरीशं तं तदाज्ञप्ताः सुरासुराः ।
बलादुत्पाटयामासुर्नेतुकामाः पयोऽर्णवम् ॥ १०

भुजैरुत्पाट्य ते सर्वे जग्मुः क्षीरार्णवं मुने ।
अशक्ता अभवंस्तत्र तमानेतुं हतौजसः ॥ ११

तद्भूजैः स परिभ्रष्टः पतितो मंदरो गिरिः ।
सहसातिगुरुः सद्यो देवदेत्योपरि ध्रुवम् ॥ १२

एवं भग्नोद्यमा भग्नाः सम्बभूवुः सुरासुराः ।
चेतनाः प्राप्य च ततस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥ १३

तदिच्छयोद्यताः सर्वे पुनरुत्थाप्य तं गिरिम् ।
निचिक्षिपुर्जले नीत्वा क्षीरोदस्योत्तरे तटे ॥ १४

ततः सुरासुरगणा रज्जुं कृत्वा च वासुकिम् ।
रत्नान्यादातुकामास्ते ममंथुः क्षीरसागरम् ॥ १५

क्षीरोदे मथ्यमाने तु श्रीः स्वर्लोकमहेश्वरी ।
समुद्भूता समुद्राच्च भृगुपुत्री हरिप्रिया ॥ १६

तब मेघके समान गम्भीर ध्वनिसे युक्त आकाशवाणी शिवजीकी आज्ञासे देवताओं तथा असुरोंको आश्वस्त करती हुई कहने लगी— ॥ ५ ॥

आकाशवाणी बोली—हे देवगणो! हे असुरो! आपलोग क्षीरसागरका मन्थन कीजिये, [इस कार्यके लिये] आपलोगोंको बल और बुद्धिकी प्राप्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥

आपलोग मन्दराचलपूर्वतको मथानी एवं वासुकि नागको रस्सी बनाइये और सभी लोग आपसमें मिलकर आदरपूर्वक मन्थन कीजिये ॥ ७ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनिसत्तम! तब [इस प्रकारकी] आकाशवाणी सुनकर सभी देवता तथा असुर ऐसा करनेके लिये प्रयत्न करने लगे ॥ ८ ॥

वे सब आपसमें मिलकर सोनेके समान कन्तिवाले, ऋजुकाय तथा नाना प्रकारकी शोभासे सम्पन्न पर्वतश्रेष्ठ मन्दराचलके समीप गये ॥ ९ ॥

उस गिरीश्वरको प्रसन्न करके तथा उसकी आज्ञा प्राप्तकर उसे क्षीरसागरमें ले जानेकी इच्छावाले देवताओं तथा असुरोंने बलपूर्वक उसे उखाड़ लिया ॥ १० ॥

हे मुने! अपनी भुजाओंसे [मन्दराचलको] उखाड़कर वे सब क्षीरसागरके पास जाने लगे, किंतु क्षीण बलवाले वे उसे ले जानेमें असमर्थ हो गये ॥ ११ ॥

अत्यन्त भारी वह मन्दराचल अकस्मात् उनकी भुजाओंसे छूटकर शीघ्र ही देवताओं और देत्योंके ऊपर गिर पड़ा ॥ १२ ॥

तब भग्न उद्यमवाले देवता तथा असुर आहत हो गये, फिर [कुछ समय बाद] चेतना प्राप्तकर जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥

इसके बाद जगदीश्वरकी इच्छासे उद्यत हुए उन सबने उस पर्वतको पुनः उठाकर क्षीरसागरके उत्तरी तटपर ले जाकर जलमें डाल दिया ॥ १४ ॥

तदनन्तर रत्न प्राप्त करनेकी इच्छावाले देवता तथा असुर वासुकि नागकी रस्सी बनाकर क्षीरसागरका मन्थन करने लगे ॥ १५ ॥

क्षीरसागरका मन्थन किये जानेपर स्वर्गलोककी महेश्वरी भृगुपुत्री हरिप्रिया महालक्ष्मी समुद्रसे प्रकट हुई। उसके बाद धन्वन्तरि, चन्द्रमा, पारिजात कल्पवृक्ष,

धन्वन्तरिः शशांकश्च पारिजातो महाद्रुमः ।
 उच्चैःश्रवाश्च तुरगो गज ऐरावतस्तथा ॥ १७
 सुरा हरिधनुः शङ्खे गावः कामदुधास्ततः ।
 कौस्तुभाख्यो मणिश्चैव तथा पीयूषमेव च ॥ १८
 पुनश्च मथ्यमाने तु कालकूटं महाविषम् ।
 युगान्तानलभं जातं सुरासुरभयावहम् ॥ १९
 पीयूषजन्मकाले तु बिन्दवो ये बहिर्गताः ।
 तेभ्यः कान्ताः समुद्भूता बह्यो ह्यद्भूतदर्शनाः ॥ २०
 शरत्पूर्णेन्दुवदनास्तिडित्सूर्यानलप्रभाः ।
 हारकेयूरकटकैर्दिव्यरत्नैरलङ्कृताः ॥ २१
 लावण्यामृततोयेन ताः सिञ्चन्त्यो दिशो दश ।
 जगदुन्मादयन्त्येव भूभङ्गायत्रीक्षणाः ॥ २२
 कोटिशस्ताः समुत्पन्नास्त्वमृतात्कामनिसृताः ।
 ततोऽमृतं समुत्पन्नं जरामृत्युनिवारणम् ॥ २३
 लक्ष्मीं शंखं कौस्तुभं च खड्गं जग्राह केशवः ।
 जग्राहाकों हयं दिव्यमुच्चैःश्रवसमादरात् ॥ २४
 पारिजातं तरुवरमैरावतमिभेश्वरम् ।
 शचीपतिश्च जग्राह निर्जीशो महादरात् ॥ २५
 कालकूटं शशांकं च देवत्राणाय शङ्खरः ।
 स्वकण्ठे धृतवान् शम्भुः स्वेच्छया भक्तवत्सलः ॥ २६
 दैत्याः सुराख्यां रमणीमीश्वराजविमोहिताः ।
 जगृहुः सकला व्यास सर्वे धन्वन्तरिं जनाः ॥ २७
 जगृहुर्मुनयः सर्वे कामधेनुं मुनीश्वराः ।
 सामान्यतस्त्रियस्ताश्च स्थिता आसन्निमोहिकाः ॥ २८
 अमृतार्थं महायुद्धं संबभूव जयैषिणाम् ।
 सुराणामसुराणां च मिथः संक्षुब्धचेतसाम् ॥ २९
 हृतं सोमं च दैतेयैर्बलादेवान्विजित्य च ।
 बलिप्रभृतिभिर्व्यास युगान्तागन्यकं सुप्रभैः ॥ ३०

उच्चैःश्रवा घोडा, ऐरावत हाथी, सुरा, विष्णुका शार्ङ्गधनुष, शंख, कामधेनु, गोवृन्द, कौस्तुभमणि तथा अमृत उत्पन्न हुए। पुनः मथे जानेपर प्रलयकालीन अग्निके समान कान्तिवाला और देवताओं तथा असुरोंको भय उत्पन्न करनेवाला कालकूट नामक महाविष उत्पन्न हुआ ॥ १६—१९ ॥

अमृत उत्पन्न होनेके समय उसकी जो बूँदें बाहर छलक पड़ीं, उनसे अद्भुत दर्शनवाली बहुत-सी स्त्रियाँ प्रकट हुईं। वे शरत्कालीन पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, बिजली, सूर्य तथा अग्निके समान प्रभावाली और हार, बाजूबन्द, कटक तथा दिव्य रत्नोंसे अलंकृत थीं। वे अपने सौन्दर्यरूपी अमृतजलसे दसों दिशाओंको सींच रही थीं और अपने भ्रूविलासके कारण विस्तीर्ण नेत्रोंवाली वे संसारको उन्मत्त कर रही थीं। इस प्रकार उन अमृतकी बूँदोंसे स्वेच्छया करोड़ों स्त्रियाँ निकलीं। तदनन्तर जरा और मृत्युको दूर करनेवाला अमृत उत्पन्न हुआ ॥ २०—२३ ॥

लक्ष्मी, शंख, कौस्तुभमणि एवं खड्गको श्रीविष्णुने ग्रहण किया। सूर्यने बड़े आदरके साथ दिव्य उच्चैःश्रवा नामका घोडा ले लिया। देवताओंके स्वामी शचीपति इन्द्रने अत्यन्त आदरपूर्वक वृक्षोंमें श्रेष्ठ पारिजात एवं हाथियोंके राजा ऐरावतको ग्रहण किया ॥ २४-२५ ॥

भक्तवत्सल तथा कल्याणकारी शिवजीने देवताओंकी रक्षाके लिये कण्ठमें [महाभयंकर] कालकूट विषको तथा चन्द्रमाको [मस्तकपर] स्वेच्छासे धारण किया ॥ २६ ॥

ईश्वरकी मायासे मोहित हुए दैत्योंने आनन्द प्रदान करनेवाली मदिरा ग्रहण की। फिर हे व्यास! सभी मनुष्योंने धन्वन्तरि वैद्यको ग्रहण किया ॥ २७ ॥

सभी मुनिगणोंने कामधेनुको ग्रहण किया और मोहित करनेवाली वे स्त्रियाँ सामान्य रूपसे स्थित रहीं ॥ २८ ॥

विजयकी अभिलाषावाले तथा व्याकुल चित्तवाले देवताओं एवं राक्षसोंमें अमृतके लिये परस्पर महान् युद्ध हुआ ॥ २९ ॥

हे व्यास! प्रलयकालीन अग्नि तथा सूर्यके समान महान् तेजस्वी बलि आदि दैत्योंने बलपूर्वक देवगणोंको जीतकर उनसे अमृत छीन लिया ॥ ३० ॥

देवाः शङ्करमापना विह्वलाः शिवमायया ।
 सर्वे शक्रादयस्तात् दैत्यैरर्दिता बलात् ॥ ३१
 ततस्तदमृतं यत्नात्म्रीस्वरूपेण मायया ।
 शिवाज्ञया रमेशेन दैत्येभ्यश्च हतं मुने ॥ ३२
 अपाययत्सुरांस्तांश्च मोहिनी स्त्रीस्वरूपधृक् ।
 मोहयित्वासुरान्सर्वान्हरिमायाविनां वरः ॥ ३३
 गत्वा निकटमेतस्या ऊचिरे दैत्यपुंगवाः ।
 पाययस्व सुधामेतां माभूद्देदोऽत्र पंक्तिषु ॥ ३४
 एतदुक्त्वा ददुस्तस्मै विष्णावे छलरूपिणे ।
 ते दैत्या दानवाः सर्वे शिवमायाविमोहिताः ॥ ३५
 एतस्मिन्नन्तरे दृष्ट्वा स्त्रियो दानवपुंगवाः ।
 अनयन्नमृतोद्भूता यथास्थानं यथासुखम् ॥ ३६
 तासां पुराणि दिव्यानि स्वर्गाच्छतगुणान्यपि ।
 घोरैर्यन्त्रैः सुगुप्तानि प्रयमायाकृतानि च ॥ ३७
 सुरक्षितानि सर्वाणि कृत्वा युद्धाय निर्ययुः ।
 अस्पृष्टवृक्षसो दैत्याः कृत्वा समयमेव हि ॥ ३८
 न स्पृशामः स्त्रियश्चेमा यदि देवैर्विनिर्जिताः ।
 इत्युक्त्वा ते महावीरा दैत्याः सर्वे युयुत्सवः ॥ ३९
 सिंहनादं ततश्शकुः शंखान्दध्मः पृथक्पृथक् ।
 पूरयन्त इवाकाशं तर्पयन्तो बलाहकान् ॥ ४०
 युद्धं बभूव देवानामसुरैः सह भीकरम् ।
 देवासुराख्यमतुलं प्रसिद्धं भुवनत्रये ॥ ४१
 जयं प्रापुः सुराः सर्वे विष्णुना परिरक्षिताः ।
 दैत्याः पलायितास्तत्र हताः सामरविष्णुना ॥ ४२
 दैत्याः संमोहिता देवैर्विष्णुना च महात्मना ।
 हतावशिष्टाः पातालं विविशुर्विवराणि च ॥ ४३
 अनुवव्राज तान्विष्णुश्शक्रपाणिर्महाबलः ।
 पातालं परमं गत्वा संस्थितान्भीतभीतवत् ॥ ४४

हे तात ! तदनन्तर शिवकी मायासे दैत्योंके द्वारा बलपूर्वक पीड़ित किये गये इन्द्रादि सभी देवता व्याकुल होकर शिवजीकी शरणमें आये । हे मुने ! तब शिवजीकी आज्ञासे विष्णुने मायासे स्त्रीरूप धारणकर बड़े यत्नसे दैत्योंसे उस अमृतको छीन लिया ॥ ३१-३२ ॥

तत्पश्चात् मायावियोंमें श्रेष्ठ मोहिनी स्त्रीरूपधारी विष्णुने समस्त दैत्योंको मोहितकर वह अमृत देवगणोंको पिला दिया ॥ ३३ ॥

तब उस [मोहिनी रूपवाली] स्त्रीके पास जाकर उन श्रेष्ठ दैत्योंने कहा—इस सुधाको हम सभी दैत्योंको भी पिलाओ, जिससे किसी प्रकारका पंक्तिभेद न हो ॥ ३४ ॥

ऐसा कहकर शिवमायासे मोहित हुए उन सभी दैत्यों एवं दानवोंने कपटरूपधारी उन विष्णुको वह अमृत दे दिया ॥ ३५ ॥

इसी बीच वे वरिष्ठ दैत्य अमृतसे उत्पन्न स्त्रियोंको देखकर उन्हें सुखपूर्वक यथास्थान ले गये ॥ ३६ ॥

उन स्त्रियोंके नगर स्वर्गसे भी सौ गुने मनोहर, मयदानवकी मायासे विनिर्मित तथा सुदृढ़ यन्त्रोंसे सुरक्षित थे । उन सभीको सुरक्षित करके उनका आलिंगन किये बिना ही वे दैत्य प्रतिज्ञा करके युद्धहेतु निकल पड़े । यदि देवगण हमें जीत लेंगे तो हम इन स्त्रियोंका स्पर्श भी नहीं करेंगे—ऐसा कहकर युद्धकी इच्छावाले वे समस्त महावीर दैत्य आकाशको पूरित-सा करते हुए तथा मेघोंको तृप्त [-सा] करते हुए पृथक्-पृथक् सिंहनाद करने लगे और शंख बजाने लगे ॥ ३७—४० ॥

देवगणोंका असुरोंके साथ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध देवासुर नामक भयानक संग्राम हुआ ॥ ४१ ॥

[उस संग्राममें] विष्णुके द्वारा सब प्रकारसे रक्षित सभी देवताओंकी विजय हुई । बहुत-से दैत्य देवताओं और विष्णुके द्वारा मार डाले गये और शेष दैत्य भाग गये । कुछ दैत्योंको देवताओं तथा महात्मा विष्णुने मोहित कर दिया । जो मरनेसे बचे, वे पाताल एवं [पृथ्वीके] विवरोंमें प्रवेश कर गये ॥ ४२-४३ ॥

महाबली विष्णुने हाथमें चक्र लेकर अत्युत्तम पातालमें जाकर भयभीत होकर स्थित हुए उन दैत्योंका पीछा किया ॥ ४४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुर्ददर्शमृतसम्भवाः।
कान्ताः पूर्णंदुवदना दिव्यलावण्यगर्विताः॥ ४५

संमोहितः कामबाणैर्लेभे तत्रैव निर्वृतिम्।
ताभिश्च वरनारीभिः क्रीडमानो बभूव ह॥ ४६

ताभ्यः पुत्रानजनयद्विष्णुर्वरपराक्रमान्।
महीं सर्वा कंपयन्तो नानायुद्धविशारदान्॥ ४७

ततो वै हरिपुत्रास्ते महाबलपराक्रमाः।
महोपद्रवमाचेरुः स्वर्गे भुवि च दुःखदम्॥ ४८

लोकोपद्रवमालक्ष्य निर्जरा मुनयोऽथ वै।
चक्रनिर्वेदनं तेषां ब्रह्मणे प्रणिपत्य च॥ ४९

तच्छुत्वादाय तान्ब्रह्मा ययौ कैलासपर्वतम्।
तत्र दृष्ट्वा शिवं देवं प्रणनाम पुनः पुनः॥ ५०

तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैर्नतस्कन्थः कृताञ्जलिः।
जय देव महादेव सर्वस्वामिनिति ब्रुवन्॥ ५१

ब्रह्मोवाच

देवदेव महादेव लोकान् रक्षाखिलान्नभो।
उपद्रुतान्विष्णुपुत्रैः पातालस्थैर्विकारिभिः॥ ५२

नारीष्वमृतभूतासु संसक्तात्मा हरिर्विभो।
पाताले तिष्ठतीदानीं रमते हि विकारवान्॥ ५३

नन्दीश्वर उवाच

इत्थं बहुस्तुतः शम्भुर्ब्रह्मणा सर्षिनिर्जरैः।
लोकसंरक्षणार्थाय विष्णोरानयनाय च॥ ५४

ततः स भगवान् शम्भुः कृपासिंधुमहेश्वरः।
तदुपद्रवमाज्ञाय वृषरूपो बभूव ह॥ ५५

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां विष्णूपद्रववृषावतारवर्णनं
नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें विष्णूपद्रववृषावतारवर्णन
नामक बाईंसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

इसी बीच विष्णुने वहाँपर अमृतसे उत्पन्न हुई, पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली तथा दिव्य सौन्दर्यसे गर्वित स्त्रियोंको देखा और वे मोहित होकर वहाँपर उन श्रेष्ठ स्त्रियोंके साथ विहार करने लगे तथा उन्होंने वहाँ शान्ति प्राप्त की॥ ४५-४६॥

विष्णुने उन स्त्रियोंसे श्रेष्ठ पराक्रमवाले तथा युद्ध करनेमें निपुण अनेक पुत्र उत्पन्न किये, जिनके बलसे सारी पृथ्वी काँप उठती थी। तत्पश्चात् महाबलवान् एवं पराक्रमी वे विष्णुपुत्र सम्पूर्ण पृथ्वीको कम्पित करते हुए स्वर्गलोक तथा भूलोकमें दुःखद महान् उपद्रव करने लगे॥ ४७-४८॥

सारे संसारमें उनका [इस प्रकारका] उपद्रव देखकर मुनियों एवं देवताओंने ब्रह्माको प्रणामकर उनसे निवेदन किया॥ ४९॥

यह सुनकर ब्रह्माजी उन्हें साथ लेकर कैलास पर्वतपर गये। वहाँ प्रभु शिवजीको देखकर विनम्र भावसे अंजलि बाँधे हुए उन्होंने बारंबार प्रणाम किया तथा हे देव! हे महादेव! हे सर्वस्वामिन्! आपकी जय हो—ऐसा कहते हुए अनेक स्तुतियोंके द्वारा उनकी स्तुति की॥ ५०-५१॥

ब्रह्मा बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे प्रभो! पातालमें स्थित, विकारयुक्त तथा उपद्रवी विष्णुपुत्रोंसे [सन्त्रस्त] सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा कीजिये॥ ५२॥

हे विभो! विकारसे ग्रस्त होकर विष्णुजी अमृतसे उत्पन्न स्त्रियोंमें आसक्तचित्त होकर इस समय पातालमें स्थित हैं और उनके साथ स्थित हैं॥ ५३॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार लोकसंरक्षणके लिये तथा पातालसे विष्णुको लानेके निमित्त ऋषियोंसहित देवताओं तथा ब्रह्माने शिवजीकी बहुत स्तुति की॥ ५४॥

तदनन्तर कृपासिन्धु भगवान् महेश्वर शिवने उस उपद्रवका वृत्तान्त जानकर वृषभका रूप धारण कर लिया॥ ५५॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

विष्णुद्वारा भगवान् शिवके वृषभेश्वरावतारका स्तवन

नन्दीश्वर उवाच

ततो वृषभरूपेण गर्जमानः पिनाकधृक् ।
प्रविष्टो विवरं तत्र निनदन्धैरवान् रवान् ॥ १
निपेतुस्तस्य निनदैः पुराणि नगराणि च ।
प्रकम्पो हि बभूवाथ सर्वेषां पुरवासिनाम् ॥ २
ततो वृषो हरेः पुत्रान्संग्रामोद्यतकार्मुकान् ।
शिवमायाविमूढात्ममहाबलपराक्रमान् ॥ ३

हरिपुत्रास्ततस्तेऽथ प्राकुप्यन्मुनिसत्तम ।
प्रदुद्धुवुः प्रगज्योच्चैर्वाराः शङ्करसम्मुखम् ॥ ४
आयातांस्तान्हरेः पुत्रान् रुद्रो वृषभरूपधृक् ।
प्राकुप्यद्विष्णुपुत्रांश्च खुरैः शृंगैर्व्यदारयत् ॥ ५

विदारितांगा रुद्रेण सर्वे हरिसुताश्च ते ।
नष्टा द्रुतं संबभूवर्गतप्राणा विचेतसः ॥ ६

हतेषु तेषु पुत्रेषु विष्णुर्बलवतां वरः ।
निष्क्रम्याथ प्रगज्योच्चैर्ययौ शीघ्रं हरान्तिकम् ॥ ७

दृष्ट्वा रुद्रं प्रव्रजन्तं हतविष्णुसुतं वृषम् ।
शरैः सन्ताडयामास दिव्यैरस्त्रैश्च केशवः ॥ ८

ततः क्रुद्धो महादेवो वृषभूपी महाबलः ।
अस्त्राणि तानि विष्णोश्च जग्रास गिरिगोचरः ॥ ९

अथ कृत्वा महाकोपं वृषात्मा स महेश्वरः ।
विननाद महाघोरं कम्पयस्त्रिजगन्मुने ॥ १०

तत उत्प्लुत्य तरसा खुरैः शृंगैर्व्यदारयत् ।
विष्णुं क्रोधाकुलं मूढमजानन्तं निजं हरिम् ॥ ११

नन्दीश्वर बोले—तब वृषभका रूप धारणकर गर्जन तथा भीषण ध्वनि करते हुए पिनाकधारी शिवजीने उस [पातालके] विवरमें प्रवेश किया ॥ १ ॥

उनके निनादसे पुर और नगर सभी गिरने लगे एवं सभी नगरवासियोंको कँपकँपी होने लगी ॥ २ ॥

उसके बाद वृषभरूप धारण करनेवाले शिवजी महेश्वरकी मायासे मोहित महान् बल तथा पराक्रमवाले और संग्रामके लिये धनुष उठाये हुए विष्णुपुत्रोंके सम्मुख पहुँचे ॥ ३ ॥

हे मुनिसत्तम ! तब वे वीर विष्णुपुत्र कुपित हो उठे और जोर-जोरसे गर्जन करके शिवजीके सामने दौड़े ॥ ४ ॥

वृषरूपधारी महादेव भी [अपने सामने] आये हुए विष्णुपुत्रोंपर कुपित हो उठे और खुरों तथा शृंगोंसे उन्हें विदीर्ण करने लगे ॥ ५ ॥

शिवजीके द्वारा क्षत-विक्षत किये गये शरीरवाले वे सभी मूढ़ विष्णुपुत्र शीघ्र ही प्राणरहित हो विनष्ट हो गये ॥ ६ ॥

उन पुत्रोंके मारे जानेपर बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णु [पाताल-विवरसे] शीघ्र बाहर निकलकर जोरसे गर्जना करके शिवजीके निकट जा पहुँचे ॥ ७ ॥

पुत्रोंको मारकर जाते हुए वृषभरूपधारी शिवजीको देखकर विष्णुने बाणों तथा दिव्यास्त्रोंसे उनपर प्रहार किया ॥ ८ ॥

तब महाबलवान् कैलासनिवासी वृषभरूपधारी शिवने क्रुद्ध होकर विष्णुके उन अस्त्रोंको निगल लिया ॥ ९ ॥

हे मुने ! इसके बाद वृषभरूपधारी उन महेश्वरने अत्यन्त क्रोधकर तीनों लोकोंको कँपाते हुए महाघोर गर्जना की ॥ १० ॥

क्रोधमें उन्मत्त हुए और अज्ञानवश [शिवजीको] अपना ईश्वर न माननेवाले विष्णुको बड़े वेगसे कूद-कूदकर अपने सींगों तथा खुरोंसे उन्होंने विदीर्ण कर दिया ॥ ११ ॥

ततः स शिथिलात्मा हि व्यथितांगो बभूव ह।
तत्प्रहारमसह्याशु हरिमायाविमोहितः ॥ १२

गतगर्वो हरिश्चैव विचेता गतचेतनः।
ज्ञातवान् परमेशानं विहरन्तं वृषात्मना ॥ १३

अथ विज्ञाय गौरीशमागतं वृषरूपतः।
प्राह गम्भीरया वाचा नतस्कन्धः कृताञ्जलिः ॥ १४

हरिरुवाच

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभो।
मायया ते महेशान मोहितोऽहं विमूढधीः ॥ १५
कृतं युद्धं त्वयेशेन स्वनाथेन मया प्रभो।
कृपां कृत्वा मयि स्वामिन्सोऽपराधो हि सह्यताम् ॥ १६

नन्दीश्वर उवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरेर्दीनतया मुने।
भगवान् शङ्करः प्राह रमेशं भक्तवत्सलः ॥ १७
हे विष्णो हे महाबुद्धे कथं मां ज्ञातवान्न हि।
युद्धं कृतं कुतस्तेऽद्य ज्ञानं सर्वं च विस्मृतम् ॥ १८

आत्मानं किन्न जानासि मदधीनपराक्रमम्।
त्वया नात्र रतिः कार्या निर्वर्तस्व कुचारतः ॥ १९

कामाधीनं कथं ज्ञानं स्त्रीषु सक्तो विहारकृत्।
नोचितं तव देवेश स्मरणं विश्वतारणम् ॥ २०

तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं विज्ञानप्रदमादरात्।
ब्रीड्यन्स्वमनसा विष्णुः प्राह वाचं महेश्वरम् ॥ २१

विष्णुरुवाच

ममात्र विद्यते चक्रं तद् गृहीत्वेतदादरात्।
गमिष्यामि स्वलोकं तं त्वदाज्ञापरिपालकः ॥ २२

नन्दीश्वर उवाच

तदाकर्ण्य महेशानो वचनं वैष्णवं हरः।
प्रत्युवाच वृषात्मा हि वृषरक्षः पुनर्हरिम् ॥ २३

तब मायासे विमोहित हुए विष्णु शिवजीके प्रहारको सहनेमें असमर्थ होकर शीघ्र ही शिथिल मनवाले तथा व्यथित शरीरवाले हो गये ॥ १२ ॥

विष्णुका सारा गर्व चूर हो गया, वे चेतनाशून्य होकर मूर्छित हो गये, तब उन्होंने वृषभरूपधारी शिवजीको जाना ॥ १३ ॥

इसके बाद वृषभरूपसे आये हुए शिवजीको पहचानकर विष्णुजी हाथ जोड़कर सिर झुकाकर गम्भीर वाणीमें कहने लगे— ॥ १४ ॥

विष्णुजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे महेशान! आपकी मायासे मोहित होनेके कारण मेरी बुद्धि विकृत हो गयी थी। हे प्रभो! हे स्वामिन्! मैंने अपने स्वामी आप शिवसे जो युद्ध किया, आप मुझपर कृपा करके उस अपराधको क्षमा कीजिये ॥ १५-१६ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उन विष्णुकी दीनतापूर्ण यह बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकरने विष्णुसे कहा— ॥ १७ ॥

हे विष्णो! हे महाबुद्धे! आपने मुझे क्यों नहीं पहचाना? आपका सारा ज्ञान किस प्रकार विस्मृत हो गया, जिसके कारण आज आपने मेरे साथ युद्ध किया? ॥ १८ ॥

आपने अपनेको मेरे अधीन पराक्रमवाला क्यों नहीं समझा? अब आप पुनः ऐसा न कीजिये और इस कृत्यसे विरत हो जाइये ॥ १९ ॥

आप इन स्त्रियोंमें आसक्त होकर विहार कर रहे हैं; भला कामी पुरुषको ज्ञान किस प्रकार रह सकता है? हे देवेश! यह आपके लिये उचित नहीं है, क्योंकि आपका स्मरण तो विश्वका तारण करनेवाला है ॥ २० ॥

शिवजीके इस विज्ञानप्रद वचनको सुनकर मन-ही-मन लज्जित होते हुए विष्णु आदरपूर्वक शिवजीसे यह वचन कहने लगे— ॥ २१ ॥

विष्णुजी बोले—हे प्रभो! यहाँ मेरा सुदर्शन चक्र है, इसे लेकर आपकी आज्ञाका आदरपूर्वक पालन करनेवाला मैं [अब] अपने लोकको जाऊँगा ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर बोले—तब वृषभरूपधारी धर्मरक्षक महेश्वर शिवने उस वचनको सुनकर विष्णुसे पुनः कहा— ॥ २३ ॥

न विलम्बः प्रकर्तव्यो गन्तव्यमित आशु ते ।
मच्छासनाद्वरे लोके चक्रमत्रैव तिष्ठताम् ॥ २४

सन्तानादित्यसंस्थानाच्छिवत्ववचनादपि ।
अहं घोरतरं तस्माच्यक्रमन्यदामि ते ॥ २५

एतदुक्त्वा हरोऽलेखीद्विं कालानलप्रभम् ।
परं चक्रं प्रदीप्तं हि सर्वदुष्टविनाशनम् ॥ २६

विष्णवे प्रददौ चक्रं घोराकार्ययुतसुप्रभम् ।
सर्वामरमुनीन्द्राणां रक्षकाय महात्मने ॥ २७

लब्ध्वा सुदर्शनं चान्यचक्रं परमदीपिमत् ।
उवाच विबुधांस्तत्र विष्णुर्बुद्धिमतां वरः ॥ २८
सर्वदेववरा यूयं मद्वाक्यं शृणुतादरात् ।
कर्तव्यं तत्तथा शीघ्रं ततः शं वो भविष्यति ॥ २९
दिव्या वरांगनास्सन्ति पाताले यौवनान्विताः ।
ताभिः साद्व महाक्रीडां यः करोतु करोतु सः ॥ ३०
तच्छुत्वा केशवाद्वाक्यं शूरास्त्रिदशयोनयः ।
प्रवेष्टुकामाः पातालं बभूवुर्विष्णुना सह ॥ ३१

विचारमथ विज्ञाय तं तदा भगवान्हरः ।
क्रोधाच्छापं ददौ घोरं देवयोन्यष्टकस्य च ॥ ३२

हर उवाच

वर्जयित्वा मुनिं शान्तं दानवान्वा मदंशजम् ।
इदं यः प्रविशेत्स्थानं तस्य स्यान्विधं क्षणात् ॥ ३३

श्रुत्वा वाक्यमिदं घोरं मनुष्यहितवर्धनम् ।
प्रत्याख्यातास्तु रुद्रेण देवाः स्वगृहमाययुः ॥ ३४

हे हरे! इस समय आप देर न कीजिये और मेरी आज्ञासे शीघ्र ही यहाँसे अपने लोक चले जाइये; चक्रको यहाँ रहने दीजिये ॥ २४ ॥

हे विष्णो! मैं आपके कल्याणकारी वचनोंसे प्रसन्न होकर ज्योतिर्मय सान्तानिक लोकमें स्थित, इससे भिन्न एक दूसरा चक्र प्रदान करता हूँ, जो अत्यन्त भयंकर है ॥ २५ ॥

[नन्दीश्वर बोले—] ऐसा कहकर शिवजीने दिव्य कालाग्निके समान देदीप्यमान, अत्यन्त प्रज्वलित एवं दुष्टोंका नाश करनेवाला चक्र प्रकट किया और दस हजार सूर्योंकी-सी कान्तिवाले उस महाभयानक चक्रको सभी देवताओं एवं मुनियोंके रक्षक महात्मा विष्णुको प्रदान किया ॥ २६-२७ ॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विष्णुने अत्यन्त दीपिमान् उस दूसरे सुदर्शनचक्रको प्राप्तकर वहाँ [स्थित] देवगणोंसे कहा—आप सभी श्रेष्ठ देवतागण आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये और वैसा ही शीघ्र कीजिये; उसीसे आपलोगोंका कल्याण होगा ॥ २८-२९ ॥

पाताललोकमें स्थित उन दिव्य स्त्रियोंका वरण स्वेच्छासे आप लोग करें ॥ ३० ॥

विष्णुके उस वचनको सुनकर सभी शूर देवता उन विष्णुके साथ पातालमें प्रविष्ट होनेकी इच्छा करने लगे ॥ ३१ ॥

तब भगवान् शिवने देवताओंके इस विचारको जानकर क्रोधपूर्वक अष्टविध देवयोनियोंको घोर शाप दे दिया ॥ ३२ ॥

हर बोले—मेरे अंशसे उत्पन्न हुए शान्त मुनि [कपिलजी] एवं दानवोंको छोड़कर जो इस स्थानमें प्रवेश करेगा, उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी ॥ ३३ ॥

मनुष्योंके हितको बढ़ानेवाले शिवजीके इस घोर वाक्यको सुनकर तथा उनके द्वारा निषेध करनेपर देवतागण अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ३४ ॥

हे व्यास! इस प्रकार भगवान् शिवने अपनी मायाके प्रभावसे उनमें आसक्त हुए भगवान् विष्णुको अनुशासित किया और तब विष्णु देवलोकको चले गये तथा संसार सुखी हो गया ॥ ३५ ॥

एवं स्त्रीलः परो विष्णुः शिवेन प्रतिशासितः ।
स्वर्लोकमगमद व्यास स्वास्थ्यं प्राप जगच्च तत् ॥ ३५

वृषेश्वरोऽपि भगवान् शंकरो भक्तवत्सलः ।
इत्थं कृत्वा देवकार्यं जगाम स्वगिरीश्वरम् ॥ ३६

वृषेश्वरावतारस्तु वर्णितः शङ्करस्य च ।
विष्णुमोहहरः शर्वः त्रैलोक्यसुखकारकः ॥ ३७

पवित्रमिदमाख्यानं शत्रुबाधाहरं परम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ३८

य इदं शृणुयाद्वक्त्या श्रावयेद्वै समाहितः ।
तथा पठति यो हीदं पाठयेत् सुधियो नरान् ।
स भुक्त्वा सकलान् कामान् अन्ते मोक्षमवाज्यात् ॥ ३९

इस प्रकार देवताओंका कार्य करके वृषभस्तुपधारी भक्तवत्सल भगवान् शिव अपने स्थान कैलासपर्वतपर चले गये ॥ ३६ ॥

[हे सनत्कुमार !] मैंने शिवजीके वृषेश्वरावतारका वर्णन कर दिया, जो विष्णुके अज्ञानका हरण करनेवाला, कल्याणकारक तथा तीनों लोकोंको सुख प्रदान करनेवाला है। यह आख्यान परम पवित्र, श्रेष्ठ, शत्रुबाधाको दूर करनेवाला और सज्जनोंको स्वर्ग, यश, आयु, भोग तथा मोक्ष देनेवाला है। जो भक्तिके साथ सावधान होकर इसे सुनता है अथवा सुनाता है और जो इसे पढ़ता है तथा बुद्धिमान् मनुष्योंको पढ़ाता है, वह [इस लोकमें] समस्त सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है ॥ ३७—३९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वृषेश्वरसंज्ञक-
शिवावतारवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें वृषेश्वरसंज्ञक
शिवावतारवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके पिप्पलादावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

पिप्पलादाख्यमपरमवतारं महेशितुः ।
शृणु प्राज्ञ महाप्रीत्या भक्तिवर्धनमुत्तमम् ॥ १
यः पुरा गदितो विप्रो दधीचिर्मुनिसत्तमः ।
महाशैवः सुप्रतापी च्यावनिर्भृगुवंशजः ॥ २
क्षुवेण सह संग्रामे येन विष्णुः पराजितः ।
सनिर्जरोऽथ संशप्तो महेश्वरसहायिना ॥ ३
तस्य पत्नी महाभागा सुवर्चा नाम नामतः ।
महापतिव्रता साध्वी यथा शप्ता दिवौकसः ॥ ४
तस्मात्स्यां महादेवो नानालीलाविशारदः ।
प्रादुर्बंधूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः ॥ ५

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य मुनिश्रेष्ठो नन्दीश्वरवचोऽद्वृतम् ।
सनत्कुमारः प्रोवाच नतस्कन्थः कृताञ्जलिः ॥ ६

नन्दीश्वर बोले— हे प्राज्ञ ! अब आप महेश्वरके पिप्पलाद नामक भक्तिवर्धक अन्य अवतारको अत्यन्त प्रसन्नतासे सुनिये ॥ १ ॥

महाप्रतापी, भृगुवंशमें उत्पन्न, महान् शिवभक्त तथा मुनिश्रेष्ठ जिन च्यवनपुत्र विप्र दधीचिके विषयमें मैं पहले कह चुका हूँ और जिन्होंने क्षुवके साथ युद्धमें विष्णुको पराजित किया तथा महेश्वरकी कृपा प्राप्तकर देवताओंसहित विष्णुको शाप दिया था; उनकी सुवर्चा नामक महाभाग्यवती, महापतिव्रता एवं साध्वी पत्नी थीं, जिन्होंने देवताओंको शाप दिया था। उन मुनिसे उन्हीं सुवर्चाके गर्भसे अनेक लीलाएँ करनेमें प्रवीण तेजस्वी महादेव पिप्पलाद—इस नामसे उत्पन्न हुए ॥ २—५ ॥

सूतजी बोले— नन्दीश्वरके इस अद्वृत वचनको सुनकर हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार कहने लगे— ॥ ६ ॥

सनत्कुमार उवाच

नन्दीश्वर महाप्राज्ञ साक्षात् रुद्रस्वरूपधृक् ।
धन्यस्त्वं सदगुरुस्तात् श्रावितेयं कथाद्गुता ॥ ७

क्षुवेण सह संग्रामे श्रुतो विष्णुपराजयः ।
ब्रह्मणा मे पुरा तात तच्छापश्च शिलादज ॥ ८

अथुना श्रोतुमिच्छामि देवशापं सुवर्चया ।
दत्तं पश्चात् पिप्पलादचरितं मङ्गलायनम् ॥ ९

सूत उवाच

इति श्रुत्वाथ शैलादिर्विधिपुत्रवचः शुभम् ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा स्मृत्वा शिवपदाभ्युजम् ॥ १०

नन्दीश्वर उवाच

एकदा निर्जराः सर्वे वासवाद्या मुनीश्वर ।
वृत्रासुरसहायैश्च दैत्यैरासन्पराजिताः ॥ ११

स्वानि स्वानि वरास्त्राणि दधीचस्याश्रमेऽखिलाः ।
निःक्षिप्य सहसा सद्योऽभवन् देवाः पराजिताः ॥ १२

तदा सर्वे सुराः सेन्द्रा वध्यमानास्तर्थर्षयः ।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं प्रोचुः स्वं व्यसनं च तत् ॥ १३

तच्छुत्वा देववचनं ब्रह्मा लोकपितामहः ।
सर्वं शशांस तत्त्वेन त्वष्टुश्चैव चिकीर्षितम् ॥ १४

भवद्वधार्थं जनितस्त्वष्ट्रायं तपसा सुराः ।
वृत्रो नाम महातेजाः सर्वदैत्याधिपो महान् ॥ १५

अथ प्रयत्नः क्रियतां भवेदस्य वधो यथा ।
तत्रोपायं शृणु प्राज्ञ धर्महेतोर्वदामि ते ॥ १६

महामुनिर्दधीचिर्यः स तपस्वी जितेन्द्रियः ।
लेभे शिवं समाराध्य वज्रास्थित्वरं पुरा ॥ १७

सनत्कुमार बोले—हे महाप्राज्ञ ! हे नन्दीश्वर ! हे तात ! आप साक्षात् शिवस्वरूप हैं, आप धन्य हैं तथा आप ही सदगुरु हैं, जो कि आपने यह अद्भुत कथा सुनायी है ॥ ७ ॥

हे शिलादपुत्र ! हे तात ! क्षुवके साथ संग्राममें विष्णुको जिस प्रकार शिवभक्त दधीचिने पराजित किया था तथा उन्हें शाप दिया था, उस कथाको मैंने पहले ब्रह्माजीसे सुना था ॥ ८ ॥

अब मैं [पहले] सुवर्चके द्वारा देवताओंको दिये गये शाप [के वृत्तान्तको] तथा बादमें कल्याणके निवासभूत पिप्पलादचरित्रिको सुनना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

सूतजी बोले—तत्पश्चात् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारका यह शुभ वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलका ध्यानकर शिलादपुत्र प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे— ॥ १० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर ! किसी समय इन्द्रादि सभी देवताओंको वृत्रासुरकी सहायतासे दैत्योंने पराजित कर दिया ॥ ११ ॥

तब उन सभी देवताओंने सहसा दधीचि मुनिके आश्रममें अपने श्रेष्ठ अस्त्रोंको फेंक दिया और तत्काल पराजय स्वीकार कर ली। इसके बाद शीघ्र ही इन्द्र आदि सभी पीड़ित देवता एवं ऋषिगण ब्रह्मलोक गये तथा अपना वह दुःख निवेदित किया ॥ १२-१३ ॥

देवताओंके वचनको सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने उनसे त्वष्टाका सारा मन्त्रव्य यथार्थ रूपसे कह दिया ॥ १४ ॥

[ब्रह्माजी बोले—] हे देवताओ ! त्वष्टाने अपनी तपस्याके प्रभावसे आपलोगोंका वध करनेके लिये इसे उत्पन्न किया है; सम्पूर्ण दैत्योंका स्वामी यह वृत्र महान् तेजस्वी है ॥ १५ ॥

अतः आप लोग वैसा प्रयत्न कीजिये, जिस प्रकार इसका वध हो सके। हे प्राज्ञ ! मैं धर्मकी रक्षाके लिये वह उपाय आपको बता रहा हूँ; आप उसे सुनें ॥ १६ ॥

जो जितेन्द्रिय तथा तपस्वी दधीचि नामक महामुनि हैं, उन्होंने पूर्वकालमें शिवजीकी आराधनाकर वज्रके समान हड्डियोंवाला होनेका वरदान पाया था ॥ १७ ॥

तस्यास्थीन्येव याचध्वं स दास्यति न संशयः ।
निर्माय तैर्दण्डवज्रं वृत्रं जहि न संशयः ॥ १८ ॥

नन्दीश्वर उवाच

तच्छुत्वा ब्रह्मवचनं शक्रो गुरुसमन्वितः ।
आगच्छत्सामरः सद्यो दधीच्याश्रममुत्तमम् ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा तत्र मुनिं शक्रः सुवर्चान्वितमादरात् ।
ननाम साञ्चलिन्मः सगुरुः सामरश्च तम् ॥ २० ॥

तदभिप्रायमाज्ञाय स मुनिर्बुधसत्तमः ।
स्वपलीं प्रेषयामास सुवर्चा स्वाश्रमान्तरम् ॥ २१ ॥

ततस्म देवराजश्च सामरः स्वार्थसाधकः ।
अर्थशास्त्रपरो भूत्वा मुनीशं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥

शक्र उवाच

त्वष्ट्रा विप्रकृताः सर्वे वयं देवास्तथर्षयः ।
शरण्यं त्वां महाशैवं दातारं शरणं गताः ॥ २३ ॥

स्वास्थीनि देहि नो विप्र महावज्रमयानि हि ।
अस्था ते स्वपविं कृत्वा हनिष्यामि सुरद्वुहम् ॥ २४ ॥

इत्युक्तस्तेन स मुनिः परोपकरणे रतः ।
ध्यात्वा शिवं स्वनाथं हि विसर्ज कलेवरम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मलोकं गतः सद्यः स मुनिर्धर्वस्तबन्धनः ।
पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र सर्वे विस्मयमागताः ॥ २६ ॥

अथ गां सुरभिं शक्र आहूयाशु ह्यलेहयत् ।
अस्त्रनिर्मितये त्वाष्ट्रं निर्दिदेश तदस्थिभिः ॥ २७ ॥

विश्वकर्मा तदाज्ञपतञ्चक्लृपेऽस्त्राणि कृत्स्नशः ।
तदस्थिभिर्वज्रमयैः सुदृढैः शिववर्चसा ॥ २८ ॥

आपलोग [उनके पास जाकर] अस्थियोंके लिये याचना कीजिये, वे अवश्य दे देंगे; इसमें संशय नहीं है। इसके बाद उन अस्थियोंसे दण्डवज्रका निर्माणकर निःसन्देह वृत्रासुरका वध कीजिये ॥ १८ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] ब्रह्माका यह वचन सुनकर देवगुरु बृहस्पति तथा देवताओंको साथ लेकर इन्द्र शीघ्र ही दधीचि ऋषिके उत्तम आश्रमपर आये ॥ १९ ॥

वहाँ सुवर्चासहित मुनिको बैठे देखकर गुरु एवं देवताओंसहित इन्द्रने हाथ जोड़कर विनम्र हो आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया ॥ २० ॥

तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उन मुनिने उनका अभिप्राय जानकर पत्ती सुवर्चाको आश्रमके भीतर भेज दिया ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् देवताओंसहित देवराज इन्द्रने, जो स्वार्थसाधनमें बड़े दक्ष थे, अपने प्रयोजनमें तत्पर हो करके मुनीश्वरसे यह वाक्य कहा— ॥ २२ ॥

शक्र बोले—[हे मुने!] हम देवताओं तथा ऋषियोंको यह त्वष्टा बड़ा दुःख दे रहा है। इसलिये हमलोग महाशिवभक्त, शरणागतवत्सल तथा महादानी आपकी शरणमें आये हुए हैं ॥ २३ ॥

विप्र! आप अपनी वज्रमयी अस्थियाँ हमें प्रदान कीजिये; क्योंकि हमलोग आपकी हड्डियोंसे वज्रका निर्माणकर देवद्रोही वृत्रासुरका वध करना चाहते हैं ॥ २४ ॥

इन्द्रके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परोपकारपरायण उन मुनिने अपने स्वामी शिवका ध्यान करके [अपना] शरीर छोड़ दिया ॥ २५ ॥

वे मुनि कर्मबन्धनसे छुटकारा पाकर शीघ्र ही ब्रह्मलोक चले गये। उस समय वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी और सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये ॥ २६ ॥

तदनन्तर इन्द्रने शीघ्र ही सुरभि गौको बुलाकर उसके द्वारा उन्हें चटवाया और उनकी अस्थियोंसे अस्त्रनिर्माण करनेके निमित्त विश्वकर्माको आज्ञा प्रदान की ॥ २७ ॥

उनकी आज्ञा प्राप्त करके विश्वकर्माने शिवजीके तेजसे अत्यन्त दृढ़ वज्रमयी उन अस्थियोंसे सम्पूर्ण अस्त्रोंका निर्माण कर दिया ॥ २८ ॥

तस्य वंशोद्भवैर्वर्जं शरो ब्रह्मशिरस्तथा ।
अन्यास्थिभिर्बहूनि स्वपराण्यस्त्राणि निर्ममे ॥ २९

तमिन्द्रो वज्रमुद्यम्य वर्द्धितः शिववर्चसा ।
वृत्रमध्यद्रवत्कुञ्जो मुने रुद्र इवान्तकम् ॥ ३०

ततः शक्रः सुसन्नद्वस्तेन वज्रेण स द्रुतम् ।
उच्चकर्त शिरो वार्त गिरिशृंगमिवौजसा ॥ ३१

तदा समुत्सवस्तात बभूव त्रिदिवौकसाम् ।
तुष्टुवुर्निर्जराः शक्रं पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३२

इति ते कथितं तात प्रसंगाच्चरितं त्विदम् ।
पिष्पलादावतारं मे शृणु शम्भोर्महादरात् ॥ ३३

सुवर्चा सा मुनेः पली दधीचस्य महात्मनः ।
ययौ स्वमाश्रमाभ्यन्तस्तदाज्ञप्ता पतिव्रता ॥ ३४
आगत्य तत्र सा दृष्ट्वा न पतिं स्वं तपस्त्विनी ।
गृहकार्यं च सा कृत्वाखिलं पतिनिदेशतः ॥ ३५
आजगाम पुनस्तत्र पश्यन्ती ब्रह्मशोभनम् ।
देवांश्च तान्मुनिश्रेष्ठ सुवर्चा विस्मिताभवत् ॥ ३६
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सुराणां
कृत्यं तदानीं च चुकोप साध्वी ।
ददौ तदा शापमतीव रुष्टा
तेषां सुवर्चा ऋषिवर्यभार्या ॥ ३७

सुवर्चोवाच

अहो सुरा दुष्टतराश्च सर्वे
स्वकार्यदक्षा ह्यबुधाश्च लुब्धाः ।
तस्माच्च सर्वे पश्वो भवन्तु
सेन्द्राश्च मेऽद्यप्रभृतीत्युवाच ॥ ३८
एवं शापं ददौ तेषां सुराणां सा तपस्त्विनी ।
सशक्राणां च सर्वेषां सुवर्चा मुनिकामिनी ॥ ३९
अनुगन्तुं पतेलोकमथैच्छत्सा पतिव्रता ।
चितां चक्रे समेधोभिः सुपवित्रैर्मनस्त्विनी ॥ ४०

उन्होंने उनकी रीढ़की हड्डियोंसे वज्र तथा ब्रह्म-
शिर नामक बाणका निर्माण किया और अन्य अस्थियोंसे
अपने तथा दूसरोंके लिये अनेक अस्त्रोंका निर्माण
किया ॥ २९ ॥

हे मुने ! तदनन्तर शिवजीके तेजसे वृद्धिको प्राप्त
इन्द्र उस वज्रको उठाकर बड़े वेगसे वृत्रासुरपर क्रोध
करके इस प्रकार दौड़े, मानो रुद्र यमकी ओर दौड़े
रहे हों ॥ ३० ॥

इसके बाद उन इन्द्रने भलीभाँति सनद्ध होकर
शीघ्रतासे उस वज्रके द्वारा उत्साहपूर्वक पर्वतशिखरके
समान वृत्रासुरका सिर काट दिया ॥ ३१ ॥

हे तात ! उस समय देवताओंको महान् प्रसन्नता
हुई । देवता लोग इन्द्रकी स्तुति करने लगे और उनके
ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ ३२ ॥

हे तात ! मैंने प्रसंगवश आपसे इस चरित्रका
वर्णन किया । अब आप मुझसे शिवजीके पिष्पलाद-
अवतारको आदरपूर्वक सुनिये ॥ ३३ ॥

महात्मा मुनि दधीचिकी पतिव्रता पली सुवर्चा
पतिकी आज्ञासे अपने आश्रमके भीतर चली गयी थीं ।
हे मुनिश्रेष्ठ ! पतिकी आज्ञासे [घरमें] जाकर सम्पूर्ण
गृहकार्य करके जब वे तपस्त्विनी पुनः लौटीं, तो अपने
पतिको वहाँ न देखकर और उन देवताओंको तथा
उनके अत्यन्त अशोभनीय कर्मको देखती हुई वे
सुवर्चा विस्मित हो गयीं ॥ ३४—३६ ॥

देवताओंके उस सम्पूर्ण कृत्यको जानकर उस
साध्वीने उस समय महान् कोप किया । इसके बाद
ऋषिवरकी पली सुवर्चने अत्यधिक रुष्ट होकर उन्हें
शाप दे दिया ॥ ३७ ॥

सुवर्चा बोलीं—हे देवगणो ! तुमलोग अत्यन्त
दुष्ट, अपना कार्य साधनेमें दक्ष, अज्ञानी और लोभी
हो, इसलिये इन्द्रसहित सभी देवता आजसे पशु हो
जायें—ऐसा उन्होंने कहा ॥ ३८ ॥

इस प्रकार उन तपस्त्विनी मुनिपली सुवर्चने
इन्द्रसहित उन सभी देवताओंको शाप दे दिया ॥ ३९ ॥

उसके बाद उन मनस्त्विनी पतिव्रताने अपने
पतिके लोकमें जानेकी इच्छा की और अत्यन्त पवित्र
काष्ठोंकी चिता बनायी ॥ ४० ॥

ततो नभोगिरा प्राह सुवर्चा तां मुनिप्रियाम्।
आश्वासयन्ती गिरिशप्रेरिता सुखदायिनी॥ ४१

आकाशवाण्यवाच

साहसं न कुरु प्राज्ञे शृणु मे परमं वचः।
मुनितेजस्त्वदुदरे तदुत्पादय यलतः॥ ४२
ततः स्वाभीष्टचरणं देवि कर्तुं त्वमर्हसि।
सगर्भा न दहेद् गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम्॥ ४३

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा सा नभोवाणी विराम मुनीश्वर।
तां श्रुत्वा सा मुनेः पत्नी विस्मिताभूत्क्षणं च सा॥ ४४
सुवर्चा सा महासाध्वी पतिलोकमभीप्सती।
उपविश्याशमना भूयः सोदरं विदार ह॥ ४५
निर्गतो जठरात्तस्या गर्भो मुनिवरस्य सः।
महादिव्यतनुर्दीप्तो भासयंश्च दिशो दश॥ ४६
साक्षाद् रुद्रावतारोऽसौ दधीचिवरतेजसः।
प्रादुर्भूतः स्वयं तात स्वलीलाकरणे क्षमः॥ ४७

तं दृष्ट्वा स्वसुतं दिव्यं स्वरूपं मुनिकामिनी।
सुवर्चाज्ञाय मनसा साक्षाद् रुद्रावतारकम्॥ ४८
प्रहृष्टाभूम्नमहासाध्वी प्रणम्याशु नुनाव सा।
स्वहृदि स्थापयामास तत्स्वरूपं मुनीश्वर॥ ४९
सुवर्चा तनयं तं च प्रहस्य विमलेक्षणा।
जननी प्राह सुप्रीत्या पतिलोकमभीप्सती॥ ५०

सुवर्चोवाच

हे तात परमेशान चिरं तिष्ठास्य सन्निधौ।
अश्वत्थस्य महाभाग सर्वेषां सुखदो भवेः॥ ५१
मामाज्ञापय सुप्रीत्या पतिलोकाय चाधुना।
तत्रस्थाहं च पतिना त्वां ध्याये रुद्रस्वरूपिणम्॥ ५२

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं सा बभाषेऽथ सुवर्चा तनयं प्रति।
पतिमन्वगमत्साध्वी परमेण समाधिना॥ ५३

उसी समय उन्हें आश्वस्त करती हुई शिवप्रेरित तथा सुखदायिनी आकाशवाणीने मुनिपत्नी उन सुवर्चासे कहा— ॥ ४१ ॥

आकाशवाणी बोली—हे प्राज्ञ ! तुम दुःसाहस मत करो, मेरे उत्तम वचनको सुनो। तुम्हारे उदरमें [गर्भरूपसे] मुनिका तेज विद्यमान है; तुम उसे प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न करो। हे देवि ! उसके बाद तुम अपना अभीष्ट कार्य कर सकती हो; क्योंकि सगर्भाको सती नहीं होना चाहिये—ऐसी वेदकी आज्ञा है ॥ ४२-४३ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर ! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी। तब उसे सुनकर वे मुनिकी पत्नी क्षणभरके लिये विस्मित हो गयीं ॥ ४४ ॥

तदनन्तर पतिलोक जानेकी इच्छा करती हुई महासाध्वी सुवर्चने बैठकर पत्थरसे अपने पेटको फाड़ दिया ॥ ४५ ॥

उनके उदरसे परम दिव्य शरीरवाला तथा कान्तिमान् वह मुनिपुत्र दशों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ निकला। हे तात ! दधीचिके उत्तम तेजसे प्रादुर्भूत हुआ वह पुत्र अपनी लीला करनेमें समर्थ साक्षात् रुद्रका अवतार था ॥ ४६-४७ ॥

मुनिपत्नी सुवर्चा अपने उस दिव्य रूपवान् पुत्रको देखकर और मनमें उसे साक्षात् रुद्रका अवतार समझकर बहुत प्रसन्न हुई। हे मुनीश्वर ! उन महासाध्वीने शीघ्र ही प्रणामकर उसकी स्तुति की और उसके स्वरूपको अपने हृदयमें स्थापित कर लिया ॥ ४८-४९ ॥

तत्पश्चात् पतिलोक जानेकी इच्छावाली विमलेक्षणा माता सुवर्चा हँसकर अपने उस पुत्रसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगी— ॥ ५० ॥

सुवर्चा बोली—हे तात ! हे परमेशान ! हे महाभाग ! तुम बहुत समयतक इस पीपलवृक्षके समीप रहो और सबको सुखी बनाओ; अब मुझे पतिलोक जानेके लिये अति प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा प्रदान करो, वहाँ रहती हुई मैं [अपने] पतिके साथ तुझ रुद्रस्वरूपका ध्यान करती रहूँगी ॥ ५१-५२ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार साध्वी सुवर्चने अपने पुत्रसे ऐसा कहकर परम समाधिद्वारा पतिका ही अनुगमन किया ॥ ५३ ॥

एवं दधीचपल्नी सा पतिना संगता मुने।
शिवलोकं समासाद्य सिषेवे शङ्करं मुदा॥ ५४

एतस्मिन्नन्तरे देवाः सेन्द्राश्च मुनिभिः सह।
तत्राजग्मुस्त्वरा तात आहूता इव हर्षिताः॥ ५५

हरिर्ब्रह्मा च सुप्रीत्यावतीर्ण शङ्करं भुवि।
सुवर्चायां दधीचाद्वा ययतुः स्वगणैः सह॥ ५६

तत्र दृष्ट्वावतीर्ण तं मुनिपुत्रत्वमागतम्।
रुद्रं सर्वे प्रणेमुश्च तुष्टुवुर्बद्धपाणयः॥ ५७

तदोत्सवो महानासीदेवानां मुनिसत्तम्।
नेदुर्दुन्दुभयस्तत्र नर्तक्यो ननृतुर्मुदा॥ ५८

जगुर्गन्धर्वपुत्राश्च किन्नरा वाद्यवादकाः।
वादयामासुरमराः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे॥ ५९

दधीचेः पिप्पलपितुर्विलसन्तं सुतं च तम्।
संस्कृत्य विधिवत्सर्वे विष्णवाद्यास्तुष्टुवुः पुनः॥ ६०

पिप्पलादेति तत्राम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः।
प्रसन्नो भव देवेश इत्यूचे हरिणा सुरैः॥ ६१

इत्युक्त्वा तमनुज्ञाय ब्रह्मा विष्णुः सुरास्तथा।
स्वं स्वं धाम ययुः सर्वे विधाय च महोत्सवम्॥ ६२

अथ रुद्रः पिप्पलादोऽश्वत्थमूले महाप्रभुः।
तताप सुचिरं कालं लोकानां हितकाम्यया॥ ६३

इथं सुतपतस्तस्य पिप्पलादस्य सम्मुखे।
महाकालो व्यतीयाय लोकचर्यानुसारिणः॥ ६४

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीया शतरुद्रसंहितामें पिप्पलादावतारवर्णनं नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥



हे मुने! इस प्रकार वे दधीचिपल्नी [सुवर्चा] शिवलोकमें जाकर अपने पतिके साथ निवास करने लगीं और आनन्दपूर्वक शिवजीकी सेवा करने लगीं॥ ५४॥

इसी अवसरपर इन्द्रसंहित देवगण मुनियोंके साथ आमन्त्रित हुएके समान प्रसन्न होकर बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आये॥ ५५॥

दधीचिके द्वारा सुवर्चके गर्भसे [पुत्ररूपमें] पृथ्वीपर शिवजीको अवतरित हुआ जानकर हर्षित हो ब्रह्मा तथा विष्णु भी अपने गणोंके साथ अति प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पहुँचे और मुनिपुत्ररूपमें अवतरित हुए उन शिवजीको देखकर सबने प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की॥ ५६-५७॥

हे मुनिसत्तम! उस समय देवताओंने बड़ा उत्सव किया, आकाशमें भेरियाँ बजने लगीं, नर्तकियाँ प्रसन्नतासे नृत्य करने लगीं, गन्धर्वपुत्र गान करने लगे, किन्नर बाजा बजाने लगे और देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे॥ ५८-५९॥

विष्णु आदि सभी देवताओंने पीपलवृक्षके द्वारा संरक्षित दधीचिके उस शोभासम्पन्न पुत्रका विधिवत् [जातकर्मादि] संस्कार करके पुनः उसकी स्तुति की॥ ६०॥

ब्रह्मदेवने प्रसन्नचित्त होकर उसका नाम 'पिप्पलाद' रखा और देवताओंके साथ विष्णुने 'हे देवेश! प्रसन्न होइये'—ऐसा कहा॥ ६१॥

इस प्रकार कहकर तथा उनसे आज्ञा लेकर ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण महोत्सव मनाकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ६२॥

उसके बाद रुद्रावतार महाप्रभु पिप्पलाद पीपल वृक्षके नीचे संसारहितकी इच्छासे बहुत कालतक तप करते रहे॥ ६३॥

इस प्रकार लोकचर्याका अनुसरण करनेवाले उन पिप्पलादका भलीभाँति तपस्या करते हुए बहुत-सा समय व्यतीत हो गया॥ ६४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

राजा अनरण्यकी पुत्री पद्माके साथ पिप्पलादका विवाह एवं उनके वैवाहिक जीवनका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

अथ लोके व्यवस्थाय धर्मस्य स्थापनेच्छया।
महालीलां चकारेशस्तामहो सन्मुने शृणु॥ १
एकदा पुष्पभद्रायां स्नातुं गच्छन्मुनीश्वरः।
ददर्श पद्मां युवर्तीं शिवांशां सुमनोहराम्॥ २

तल्लिप्सुस्तिप्तिः स्थानमनरण्यस्य भूपतेः।
जगाम भुवनाचारी लोकतत्त्वविचक्षणः॥ ३

राजा नराणां तं दृष्ट्वा प्रणम्य च भयाकुलः।
मधुपर्कादिकं दत्त्वा पूजयामास भक्तिः॥ ४

स्नेहात्सर्वं गृहीत्वा स ययाचे कन्यकां मुनिः।
मौनी बभूव नृपतिः किंचिन्निर्वक्तुमक्षमः॥ ५

मुनिः प्रोवाच नृपतिं कन्यां मे देहि भक्तिः।
अन्यथा भस्मसात्सर्वं करिष्येऽहं त्वया सह॥ ६

अथो बभूवुराच्छन्नाः सर्वे राजजनास्तदा।
तेजसा पिप्पलादस्य दाधीचस्य महामुने॥ ७
अथ राजा महाभीतो विलम्ब्य च मुहुर्मुहुः।
कन्यामलंकृतां पद्मां वृद्धाय मुनये ददौ॥ ८

पद्मां विवाह्य स मुनिः शिवांशाभूपतेः सुताम्।
पिप्पलादो गृहीत्वा तां मुदितः स्वाश्रमं ययौ॥ ९

तत्र गत्वा मुनिवरो वयसा जर्जरोऽधिकः।
उवास नार्या स तया तपस्वी नातिलम्पटः॥ १०

अथोऽनरण्यकन्या सा सिषेवे भक्तितो मुनिम्।
कर्मणा मनसा वाचा लक्ष्मीर्नारायणं यथा॥ ११

इत्थं स पिप्पलादो हि शिवांशो मुनिसत्तमः।
रेमे तया युवत्या च युवाभूय स्वलीलया॥ १२

नन्दीश्वरजी बोले—इसके बाद धर्मकी स्थापनाकी इच्छासे लोकमें रहकर उन महेश्वरने महान् लीला की; हे सन्मुने! उसे आप सुनें॥ १॥

एक बार पुष्पभद्रा नदीमें स्नान करनेके लिये जाते हुए उन मुनीश्वर [पिप्पलाद]-ने शिवाके अंशसे उत्पन्न हुई पद्मा नामक अति मनोहर युवतीको देखा॥ २॥

लोकतत्त्वमें प्रवीण एवं समस्त भुवनोंमें संचरण करनेवाले वे उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके पिता राजा अनरण्यके पास गये॥ ३॥

उन्हें देखकर भयभीत हुए राजाने प्रणाम करके मधुपर्क आदि प्रदानकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की॥ ४॥

उन मुनिने स्नेहपूर्वक [मधुपर्क आदि] सबकुछ ग्रहण करके उस कन्याकी याचना की। [यह सुनकर] राजा मौन हो गये और कुछ बोल न सके॥ ५॥

मुनिने राजासे कहा कि मुझे भक्तिपूर्वक अपनी कन्या प्रदान कीजिये, अन्यथा आपसहित सब कुछ भस्म कर दूँगा॥ ६॥

हे महामुने! उस समय समस्त राजपुरुष दधीचिपुत्र पिप्पलादके तेजसे आच्छन्न हो गये॥ ७॥

तब अत्यन्त डरे हुए राजाने बारंबार विलाप करके कन्या पद्माको अलंकृतकर वृद्ध मुनिको समर्पित कर दिया॥ ८॥

पार्वतीके अंशसे समुद्भूत उस राजपुत्री पद्माके साथ विवाहकर वे मुनि पिप्पलाद उसे लेकर प्रसन्न होकर अपने आश्रममें चले गये॥ ९॥

वहाँ जाकर वृद्धावस्थाके कारण अत्यधिक जर्जर हुए तथा लम्पट स्वभाव न रखनेवाले वे तपस्वी मुनिवर उस नारीके साथ निवास करने लगे॥ १०॥

जिस प्रकार लक्ष्मीजी नारायणकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार अनरण्यकी वह कन्या मन, वचन तथा कर्मसे भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी॥ ११॥

तब शिवके अंशरूप मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद अपनी लीलासे युवा होकर उस युवतीके साथ रमण करने लगे॥ १२॥

दश पुत्रा महात्मानो बभूवः सुतपस्विनः।
मुनेः पितुः समाः सर्वे पद्मायाः सुखवर्द्धनाः॥ १३

एवं लीलावतारो हि शङ्करस्य महाप्रभोः।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः॥ १४

येन दत्तो वरः प्रीत्या लोकेभ्यो हि दयालुना।
दृष्ट्वा लोके शनेः पीडां सर्वेषामनिवारणीम्॥ १५

घोडशाब्दावधि नृणां जन्मतो न भवेच्च सा।
तथा च शिवभक्तानां सत्यमेतद्धि मे वचः॥ १६

अथानादृत्य मद्वाक्यं कुर्यात्पीडां शनिः क्वचित्।
तेषां नृणां तदा स स्याद्दस्मसान्न हि संशयः॥ १७

इति तद्वयतस्तात विकृतोऽपि शनैश्चरः।
तेषां न कुरुते पीडां कदाचिद् ग्रहसत्तमः॥ १८

इति लीलामनुष्यस्य पिप्पलादस्य सन्मुने।
कथितं सुचरित्रं ते सर्वकामफलप्रदम्॥ १९

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः॥ २०

पिप्पलादस्य चरितं पद्माचरितसंयुतम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सुभक्त्या भुवि मानवः॥ २१

शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वान्कामानवान्युयात्॥ २२

धन्यो मुनिवरो ज्ञानी महाशैवः सतां प्रियः।
अस्य पुत्रो महेशानः पिप्पलादाख्य आत्मवान्॥ २३

इदमाख्यानमनधं स्वर्गं कुग्रहोषहृत्।
सर्वकामप्रदं तात शिवभक्तिविवर्द्धनम्॥ २४

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां पिप्पलादावतार-चरितवर्णं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें पिप्पलादावतारचरितवर्णन
नामक पञ्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

उन मुनिके परम तपस्वी दस महात्मा पुत्र उत्पन्न हुए। वे सब अपने पिताके समान [महातेजस्वी] तथा पद्माके सुखको बढ़ानेवाले थे॥ १३॥

इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार मुनिवर पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं॥ १४॥

लोकमें सभीके द्वारा अनिवारणीय शनि-पीड़ाको देखकर उन दयालु पिप्पलादने प्राणियोंको प्रीतिपूर्वक वर प्रदान किया था कि जन्मसे लेकर सोलह वर्षतककी आयुवाले मनुष्यों तथा शिवभक्तोंको शनिकी पीड़ा नहीं होगी; यह मेरा वचन सत्य होगा। मेरे इस वचनका निरादरकर यदि शनिने उन मनुष्योंको पीड़ा पहुँचायी तो वह उसी समय भस्म हो जायगा; इसमें सन्देह नहीं॥ १५—१७॥

हे तात! इसीलिये ग्रहोंमें श्रेष्ठ शनैश्चर विकारयुक्त होनेपर भी उनके भयसे उन [वैसे मनुष्यों]-को कभी पीड़ित नहीं करता॥ १८॥

हे सन्मुने! इस प्रकार लीलापूर्वक मनुष्यरूप धारण करनेवाले पिप्पलादका उत्तम चरित मैंने आपसे कहा, जो सभी प्रकारकी कामनाओंको प्रदान करनेवाला है। गाधि, कौशिक एवं महामुनि पिप्पलाद—ये तीनों [महानुभाव] स्मरण किये जानेपर शनैश्चरजनित पीड़ाको नष्ट करते हैं॥ १९-२०॥

भूलोकमें जो मनुष्य पद्माके चरित्रसे युक्त पिप्पलादके चरित्रको भक्तिपूर्वक पढ़ता या सुनता है और जो शनिकी पीड़ाके नाशके लिये इस उत्तम चरितको पढ़ता या सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ २१-२२॥

महाज्ञानी, महाशिवभक्त एवं सज्जनोंके लिये प्रिय वे मुनिवर दधीचि धन्य हैं, जिनके पुत्र आत्मवेत्ता पिप्पलादके रूपमें साक्षात् शिवजी अवतरित हुए॥ २३॥

हे तात! यह आख्यान निष्पाप, स्वर्गको देनेवाला, क्रूर ग्रहोंके दोषको नष्ट करनेवाला, सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तथा शिवभक्तिको बढ़ानेवाला है॥ २४॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

शिवके वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं परानन्दं वैश्यनाथाह्यं मुने ॥ १ ॥

नन्दिग्रामे पुरा काचिन्महानन्देति विश्रुता ।
बभूव वारवनिता शिवभक्ता सुसुन्दरी ॥ २ ॥

महाविभवसम्पन्ना सुधनाढ्या महोच्चला ।
नानारलपरिच्छन्नशृङ्गाररसनिर्भरा ॥ ३ ॥

सर्वसंगीतविद्यासु निपुणातिमनोहरा ।
तस्या गेयेन हृष्यन्ति राज्यो राजान एव च ॥ ४ ॥

समानर्च सदा साम्बं सा वेश्या शंकरं मुदा ।
शिवनामजपासक्ता भस्मरुद्राक्षभूषणा ॥ ५ ॥

शिवं सम्पूज्य सा नित्यं सेवन्ती जगदीश्वरम् ।
ननर्त परया भक्त्या गायन्ती शिवसद्यशः ॥ ६ ॥

रुद्राक्षैर्भूषयित्वैकं मर्कटं चैव कुक्कुटम् ।
करतालैश्च गीतैश्च सदा नर्तयति स्म सा ॥ ७ ॥

नृत्यमानौ च तौ दृष्ट्वा शिवभक्तिरता च सा ।
वेश्या स्म विहसत्युच्च्वैः प्रेम्णा सर्वसखीयुता ॥ ८ ॥

रुद्राक्षैः कृतकेयूरकर्णाभरणमण्डना ।
मर्कटः शिक्षया तस्याः पुरो नृत्यति बालवत् ॥ ९ ॥

शिखासंबद्धरुद्राक्षः कुक्कुटः कपिना सह ।
नित्यं ननर्त नृत्यज्ञः पश्यतां हितमावहन् ॥ १० ॥

एवं सा कुर्वती वेश्या कौतुकं परमादरात् ।
शिवभक्तिरता नित्यं महानन्दभराभवत् ॥ ११ ॥

शिवभक्तिं प्रकुर्वन्त्या वेश्याया मुनिसत्तम् ।
बहुकालो व्यतीयाय तस्याः परमसौख्यतः ॥ १२ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! हे मुने! अब मैं परमात्मा शिवजीके परम आनन्ददायक वैश्यनाथ नामक अवतारका वर्णन कर रहा हूँ; आप सुनिये ॥ १ ॥

पूर्व समयमें नन्दिग्राममें कोई महानन्दा नामसे प्रसिद्ध शिवभक्ता महासुन्दरी वेश्या रहती थी ॥ २ ॥

वह ऐश्वर्यसम्पन्न, धनाढ्य, परम कान्तियुक्त, अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त, शृंगारससे परिपूर्ण, सब प्रकारकी संगीत विद्याओंमें कुशल तथा मनको अत्यन्त मोहित करनेवाली थी। उसके गानसे रानियाँ तथा राजा हर्षित हो जाते थे ॥ ३-४ ॥

वह वेश्या प्रसन्नतापूर्वक पार्वतीसहित शंकरकी सदा पूजा करती थी और शिवनामका जप करती थी तथा भस्म एवं रुद्राक्ष धारण करती थी ॥ ५ ॥

शिवजीका प्रतिदिन पूजनकर वह बड़ी भक्तिके साथ जगदीश्वरकी सेवा करती तथा शिवके उत्तम यशका गान करती हुई नृत्य करती थी ॥ ६ ॥

वह एक बन्दर तथा मुर्गेंको रुद्राक्षोंसे विभूषित करके ताली बजा-बजाकर गायन करती हुई उन्हें नचाती थी ॥ ७ ॥

उन दोनोंको नाचते हुए देखकर शिवजीकी भक्तिमें तत्पर वह वेश्या अपनी सखियोंके सहित प्रेमपूर्वक उच्च स्वरमें हँसती थी ॥ ८ ॥

रुद्राक्षका बाजूबन्द एवं कर्णभूषण पहनी हुई उस महानन्दाके सामने उसके सिखानेसे वानर बालककी तरह नाचता था ॥ ९ ॥

शिखामें रुद्राक्ष धारण किया हुआ नृत्यकलामें विशारद वह मुर्गा देखनेवालोंको आनन्दित करता हुआ, उस वानरके साथ सदा नृत्य किया करता था ॥ १० ॥

इस प्रकार शिवभक्तिपरायणा वह वेश्या अत्यन्त आदरपूर्वक कौतुक करती हुई सदा आनन्दसे रहती थी ॥ ११ ॥

हे मुनिसत्तम! इस प्रकार शिवभक्ति करती हुई उस वेश्याका सुखपूर्वक बहुत समय व्यतीत हो गया ॥ १२ ॥

एकदा च गृहे तस्या वैश्यो भूत्वा शिवः स्वयम्।
परीक्षितुं च तद्वावमाजगाम शुभो कृती॥ १३

त्रिपुण्ड्रविलसद्वालो रुद्राक्षाभरणः कृती।
शिवनामजपासक्तो जटिलः शैववेषभृत्॥ १४

स बिभृद्दस्मनिचयं प्रकोष्ठे वरकंकणम्।
महारलपरिस्तीर्णं राजते परकौतुकी॥ १५

तमागतं सुसंपूज्य सा वैश्या परया मुदा।
स्वस्थाने सादरं वैश्यं सुन्दरी हि न्यवेशयत्॥ १६

तत्प्रकोष्ठे वरं वीक्ष्य कंकणं सुमनोहरम्।
तस्मिञ्ञातस्पृहा सा च तं प्रोवाच सुविस्मिता॥ १७

महानन्दोवाच

महारलमयश्चायं कंकणस्त्वत्करे स्थितः।
मनो हरति मे सद्यो दिव्यस्त्रीभूषणोचितः॥ १८

नन्दीश्वर उवाच

इति तां नवरत्नाङ्गे सपृहां करभूषणे।
वीक्ष्योदारमतिवैश्यः सस्मितं समभाषत॥ १९

वैश्यनाथ उवाच

अस्मिन् रत्नवरे दिव्ये सपृहं यदि ते मनः।
त्वमेवाधत्स्व सुप्रीत्या मौल्यमस्य ददासि किम्॥ २०

वैश्योवाच

वयं हि स्वैरचारिण्यो वैश्यास्तु न पतिव्रताः।
अस्मत्कुलोचितो धर्मो व्यभिचारो न संशयः॥ २१

यद्येतदखिलं चित्तं गृह्णाति करभूषणम्।
दिनत्रयमहोरात्रं पल्ली तव भवाम्यहम्॥ २२

वैश्य उवाच

तथास्तु यदि ते सत्यं वचनं वीरवल्लभे।
ददामि रत्नवलयं त्रिरात्रं भव मे वधूः॥ २३

एतस्मिन्व्यवहारे तु प्रमाणं शशिभास्करौ।
त्रिवारं सत्यमित्युक्त्वा हृदयं मे स्पृश प्रिये॥ २४

एक बार स्वयं ही शुभस्वरूप शिवजी व्रत धारण किये हुए वैश्य बनकर उसके भावकी परीक्षा करनेके लिये उसके घर आये॥ १३॥

वे कृती (वैश्यरूप शिव) त्रिपुण्ड्रसे शोभायमान मस्तकवाले, रुद्राक्षके आभरणवाले, शिवनाम जपनेमें आसक्त, जटायुक्त तथा शैव वेश धारण किये हुए थे॥ १४॥

शरीरमें भस्म लगाये तथा हाथमें उत्तम रत्नोंसे युक्त श्रेष्ठ कंकण पहने वे परम कौतुकीकी तरह शोभित हो रहे थे॥ १५॥

उन आये हुए वैश्यकी भलीभाँति पूजा करके उस सुन्दरी वैश्याने बड़े आनन्दके साथ उनको आदरसहित अपने स्थानमें बैठाया॥ १६॥

उनकी कलाईमें अति मनोहर सुन्दर कंकणको देखकर उसमें उसकी लालसा उत्पन्न हो गयी और वह वैश्या चकित होकर उनसे कहने लगी॥ १७॥

महानन्दा बोली—आपके हाथमें स्थित यह महारत्नजटित कंकण शीघ्र ही मेरे मनको आकर्षित कर रहा है; यह तो दिव्य स्त्रियोंके योग्य आभूषण है॥ १८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार नवीन रत्नोंसे युक्त हाथके भूषणके प्रति उसे लालसायुक्त देखकर उदार बुद्धिवाले वैश्यने मुसकराकर कहा—॥ १९॥

वैश्यनाथ बोले—यदि इस रत्नोपम दिव्य कंकणमें तुम्हारा मन लुभा गया है, तो तुम ही प्रीतिसे इसको धारण करो; किंतु इसका क्या मूल्य दोगी?॥ २०॥

वैश्या बोली—हम व्यभिचारी वैश्याएँ हैं, पतिव्रताएँ नहीं हैं। व्यभिचार ही हमारे कुलका धर्म है; इसमें संशय नहीं॥ २१॥

निश्चय ही इस हस्ताभूषणने मेरे चित्तको आकृष्ट कर लिया है, इसलिये मैं तीन दिनोंतक दिनरात आपकी पल्ली बनकर रहूँगी॥ २२॥

वैश्य बोले—हे वीरवल्लभे! ‘बहुत अच्छा’; यदि तुम्हारा वचन सत्य है, तो मैं [यह] रत्नकंकण देता हूँ और तुम तीन राततकके लिये मेरी पल्ली बन जाओ॥ २३॥

हे प्रिये! इस व्यवहारमें सूर्य तथा चन्द्रमा साक्षी हैं; यह सत्य है—ऐसा तीन बार कहकर तुम मेरे हृदयका स्पर्श करो॥ २४॥

वेश्योवाच

दिनत्रयमहोरात्रं पत्नी भूत्वा तत्र प्रभो।
सहधर्मं चरामीति सत्यं सत्यं न संशयः॥ २५

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा हि महानन्दा त्रिवारं शशिभास्करौ।
प्रमाणीकृत्य सुप्रीत्या सा तद् हृदयमस्पृशत्॥ २६
अथ तस्यै स वैश्यस्तु प्रदत्त्वा रत्नकंकणम्।
लिंगं रत्नमयं तस्या हस्ते दत्त्वेदमब्रवीत्॥ २७

वैश्यनाथ उवाच

इदं रत्नमयं लिंगं शैवं मत्प्राणवल्लभम्।
रक्षणीयं त्वया कान्ते गोपनीयं प्रयत्नतः॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

एवमस्त्विति सा प्रोच्य लिंगमादाय रत्नजम्।
नाट्यमण्डपिकामध्ये निधाय प्राविशद् गृहम्॥ २९
सा तेन संगता रात्रौ वैश्येन विट्ठर्मिणा।
सुखं सुष्वाप पर्यङ्के मृदुतल्पोपशोभिते॥ ३०

ततो निशीथसमये मुने वैश्यपतीच्छया।
अक्समादुत्थिता वाणी नृत्यमण्डपिकान्तरे॥ ३१
महाप्रज्वलितो वह्निः सुसमीरसहायवान्।
नाट्यमण्डपिकां तात तामेव सहसावृणोत्॥ ३२
मण्डपे दह्यमाने तु सहसोत्थाय संभ्रमात्।
मर्कटं मोचयामास सा वैश्या तत्र बन्धनात्॥ ३३
स मर्कटो मुक्तबन्धः कुक्कुटेन सहामुना।
भिया दूरं हि दुद्राव विधूयाग्निकणान्बहून्॥ ३४
स्तम्भेन सह निर्दग्धं तल्लिंगं शकलीकृतम्।
दृष्ट्वा वैश्या स वैश्यश्च दुरन्तं दुःखमापतुः॥ ३५
दृष्ट्वा ह्यात्मसमं लिंगं दग्धं वैश्यपतिस्तदा।
ज्ञातुं तद्वावमन्तःस्थं मरणाय मतिं दधे॥ ३६

निविश्येऽतितरां खेदाद्वैश्यस्तामाह दुःखिताम्।
नानालीलो महेशानः कौतुकान्दरदेहवान्॥ ३७

वैश्या बोली—हे प्रभो! तीन दिनतक दिन-रात आपकी पत्नी होकर मैं सहधर्मका पालन करूँगी, यह सत्य है—सत्य है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २५॥

नन्दीश्वर बोले—उस महानन्दाने तीन बार ऐसा कहकर सूर्य और चन्द्रमाको साक्षी मानकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उनके हृदयका स्पर्श किया। तब वे वैश्य उसे रत्नजटित कंकण देकर [पुनः] उसके हाथमें रत्नमय शिवलिंग देकर यह कहने लगे—॥ २६-२७॥

वैश्यनाथ बोले—हे कान्ते! यह रत्नजटित शिवलिंग मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है; तुम इसकी रक्षा करना और यत्नपूर्वक इसे छिपाकर रखना॥ २८॥

नन्दीश्वर बोले—उस वैश्याने ‘ऐसा ही होगा’— इस प्रकार कहकर रत्नजटित लिंग लेकर और उसे नाट्यशालाके मध्यमें रखकर घरमें प्रवेश किया॥ २९॥

तब वह वैश्या उन विट्ठर्मी (विलासी) वैश्यके साथ रात्रिमें कोमल गद्दोंसे शोभायमान पलंगपर सुखपूर्वक सो गयी॥ ३०॥

हे मुने! तब मध्य रात्रिके समय उन वैश्यपतिकी इच्छासे नृत्यमण्डपके मध्य अक्समात् एक ध्वनि होने लगी। हे तात! उसी समय तेज पवनकी सहायतासे अग्निने अत्यन्त प्रज्वलित होकर उस नाट्यशालाको चारों ओरसे आवृत कर लिया॥ ३१-३२॥

मण्डपके प्रज्वलित होनेपर उस वैश्याने सहसा व्याकुलतासे उठकर बन्दरको बन्धनमुक्त कर दिया॥ ३३॥

बन्धनसे मुक्त हुआ वह बन्दर उस मुर्गेंके साथ बहुत-से अग्निकणोंको हटा करके भयसे दूर भाग गया। खम्भेके साथ जलकर खण्ड-खण्ड हो गये उस लिंगको देखकर वह वैश्य तथा वैश्या दोनों महादुखी हो गये॥ ३४-३५॥

उस समय वैश्यपतिने प्राणोंके समान शिवलिंगको जला हुआ देखकर उस वैश्याके चित्तमें स्थित भावको जाननेके लिये मरनेका विचार किया॥ ३६॥

अनेक लीलाएँ करनेवाले तथा कौतुकवश मनुष्य शरीर धारण किये हुए महेश्वररूप वैश्यपतिने महादुखी होकर उस दुःखित वैश्यासे कहा कि अब मैं अग्निमें प्रविष्ट हो जाऊँगा॥ ३७॥

वैश्यपतिरुच

शिवलिंगे तु निर्भिन्ने दग्धे मत्प्राणवल्लभे।
सत्यं वच्चि न सन्देहो नाहं जीवितुमुत्सहे॥ ३८
चितां कारय मे भद्रे स्वभृत्यैस्त्वं वरैर्लघु।
शिवे मनः समावेश्य प्रवेक्ष्यामि हुताशनम्॥ ३९
यदि ब्रह्मेन्द्रविष्णवाद्या वारयेयुः समेत्य माम्।
तथाप्यस्मिन् क्षणे भद्रे प्रविशामि त्यजाप्यसून्॥ ४०

नन्दीश्वर उवाच

तमेवं दृढनिर्बन्धं सा विज्ञाय सुदुःखिता।
स्वभृत्यैः कारयामास चितां स्वभवनाद् बहिः॥ ४१
ततः स वैश्यः शिव एक एव
प्रदक्षिणीकृत्य समिद्धमग्निम्।
विवेश पश्यत्सु नरेषु धीरः
सुकौतुकी संगतिभावमिच्छुः॥ ४२
दृष्ट्वा सा तद्वतिं वेश्या महानन्दातिविस्मिता।
अनुतापं च युवती प्रपेदे मुनिसत्तम्॥ ४३
अथ सा दुःखिता वेश्या स्मृत्वा धर्मं सुनिर्मलम्।
सर्वान्बन्धुजनान्वीक्ष्य बभाषे करुणं वचः॥ ४४

महानन्दोवाच

रत्नकंकणमादाय मया सत्यमुदाहृतम्।
दिनत्रयमहं पली वैश्यस्यामुच्य संमता॥ ४५
कर्मणा मत्कृतेनायं मृतो वैश्यः शिवव्रती।
तस्मादहं प्रवेक्ष्यामि सहानेन हुताशनम्॥ ४६
स्वधर्मचारिणीत्युक्तमाचार्यैः सत्यवादिभिः।
एवं कृते मम प्रीत्या सत्यं मयि न नश्यतु॥ ४७

सत्याश्रयः परो धर्मः सत्येन परमा गतिः।
सत्येन स्वर्गमोक्षौ च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ ४८

नन्दीश्वर उवाच

इति सा दृढनिर्बन्धा वार्यमाणापि बन्धुभिः।
सत्यलोपभिया नारी प्राणांस्त्यक्तुं मनो दधे॥ ४९

वैश्यपति बोले—मेरे प्राणोंसे भी प्रिय शिवलिंगके जलकर खण्डित हो जानेपर मैं जीनेकी इच्छा नहीं करता—यह सत्य-सत्य कहता हूँ; इसमें संशय नहीं है। हे भद्रे! तुम अपने श्रेष्ठ सेवकोंसे बहुत शीघ्र चिता बनवाओ; मैं शिवमें मन लगाकर अग्निमें प्रवेश करूँगा॥ ३८-३९॥

हे भद्रे! यदि ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु आदि भी आकर मुझे रोकेंगे, तो भी इस समय मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा और प्राणोंको त्याग दूँगा॥ ४०॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] उनका ऐसा दृढ़ संकल्प जानकर वह अत्यन्त दुःखित हुई और उसने अपने सेवकोंसे अपने भवनके बाहर चिता बनवायी॥ ४१॥

तब सुन्दर कौतुक करनेवाले तथा वेश्याके संगतिभावकी परीक्षा करनेवाले वे वैश्यरूपधारी धीर शिव जलती हुई अग्निकी परिक्रमा करके मनुष्योंके देखते-देखते अग्निमें प्रवेश कर गये॥ ४२॥

हे मुनिसत्तम! वह युवती वेश्या महानन्दा उस गतिको देखकर अत्यन्त विस्मित हो उठी और खिन्न हो गयी। इसके बाद वह दुखी वेश्या निर्मल धर्मका स्मरण करके सभी बन्धुजनोंको देखकर करुणासे युक्त वचन कहने लगी—॥ ४३-४४॥

महानन्दा बोली—मैंने इस वैश्यसे रत्नकंकण लेकर सत्य वचन कहा था कि मैं तीन दिनतक इस वैश्यकी धर्मसम्मत पली रहूँगी॥ ४५॥

मेरे द्वारा किये गये कर्मसे यह शिवव्रतधारी वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ है, अतः मैं भी इसके साथ अग्निमें प्रवेश करूँगी॥ ४६॥

सत्य बोलनेवाले आचार्योंने ‘[नारी] स्वधर्मका आचरण करनेवाली हो’—ऐसा कहा है, अतः प्रसन्न होकर मेरे द्वारा ऐसा किये जानेपर मुझमें स्थित सत्य नष्ट नहीं होगा। सत्यका आश्रय ही परम धर्म है, सत्यसे परम गति होती है, सत्यसे ही स्वर्ग और मोक्ष मिलते हैं, अतः सत्यमें ही सब कुछ प्रतिष्ठित है॥ ४७-४८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार दृढ़ संकल्पवाली उस नारीने अपने बन्धुओंद्वारा रोके जानेपर भी सत्यके लोपके भयसे प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय किया

सर्वस्वं द्विजमुख्येभ्यो दत्त्वा ध्यात्वा सदाशिवम्।
तमग्निं त्रिःपरिक्रम्य प्रवेशाभिमुखी ह्यभूत्॥ ५०

तां पतन्तीं समिद्धेऽग्नौ स्वपदार्पितमानसाम्।
वारयामास विश्वात्मा प्रादुर्भूतः स वै शिवः॥ ५१
सा तं विलोक्याखिलदेवदेवं
त्रिलोचनं चन्द्रकलावतंसम्।
शशांकसूर्यानिलकोटिभासं
स्तब्धेव भीतेव तथैव तस्थौ॥ ५२

तां विह्वलां सुवित्रस्तां वेपमानां जडीकृताम्।
समाश्वास्य गलद्वाष्यां करौ धृत्वाब्रवीद्वचः॥ ५३

शिव उवाच

सत्यं धर्मं च धैर्यं च भक्तिं च मयि निश्चलाम्।
परीक्षितुं त्वत्सकाशं वैश्यो भूत्वाहमागतः॥ ५४
माययाग्निं समुद्दीप्य दग्धं ते नाट्यमण्डपम्।
दग्धं कृत्वा रत्नलिंगं प्रविष्टोऽहं हुताशनम्॥ ५५

सा त्वं सत्यमनुस्मृत्य प्रविष्टाग्निं मया सह।
अतस्ते संप्रदास्यामि भोगांस्त्रिदशदुर्लभान्॥ ५६
यद्यदिच्छसि सुश्रोणि तदेव हि ददामि ते।
त्वद्वक्त्याहं प्रसन्नोऽस्मि तवादेयं न विद्यते॥ ५७

नन्दीश्वर उवाच

इति ब्रुवति गौरीशे शंकरे भक्तवत्सले।
महानन्दा च सा वेश्या शंकरं प्रत्यभाषत॥ ५८

वेश्योवाच

न मे वाञ्छास्ति भोगेषु भूमौ स्वर्गे रसातले।
तव पादाम्बुजस्पर्शादन्यत्किंचिन्न कामये॥ ५९
ये मे भृत्याश्च दास्यश्च ये चान्ये मम बान्धवाः।
सर्वे त्वदर्शनपरास्त्वयि संन्यस्तवृत्तयः॥ ६०
सर्वनेतान्मया सार्थं निनीयात्मपरं पदम्।
पुनर्जन्मभयं घोरं विमोचय नमोऽस्तु ते॥ ६१

और ऐष्ठ ब्राह्मणोंको अपनी सम्पत्ति देकर सदाशिवका ध्यानकर उस अग्निकी तीन बार परिक्रमा करके वह उसमें प्रवेश करनेको उद्यत हुई॥ ४९-५०॥

अपने चरणोंमें समर्पित मनवाली उस वेश्याको जलती अग्निमें गिरती देखकर प्रकट हुए उन विश्वात्मा शिवजीने रोक दिया॥ ५१॥

सब देवताओंके भी देव, तीन नेत्रोंवाले, चन्द्रमाकी कलासे शोभित, करोड़ों चन्द्रमा-सूर्य-अग्निके समान प्रकाशवाले उन शिवको देखकर वह स्तब्ध तथा डरी हुईके समान उसी प्रकार खड़ी रह गयी॥ ५२॥

तब व्याकुल, संत्रस्त, काँपती हुई, जड़ीभूत तथा आँसू गिराती हुई उस वेश्याको आश्वस्त करके उसके हाथोंको पकड़कर शिवजी यह बचन कहने लगे—॥ ५३॥

शिवजी बोले—तुम्हारे सत्य, धर्म, धैर्य तथा मुझमें तुम्हारी निश्चल भक्तिकी परीक्षा करनेके निमित्त मैं वैश्य बनकर तुम्हारे पास आया था॥ ५४॥

मैंने अपनी मायासे अग्निको प्रदीप्तकर तुम्हारे नाट्यमण्डपको जलाया है और रत्नलिंगको दग्ध करके मैं अग्निमें प्रविष्ट हुआ हूँ॥ ५५॥

तुम सत्यका अनुस्मरण करके मेरे साथ अग्निमें प्रविष्ट होने लगी, अतः मैं तुम्हें देवताओंके लिये भी दुर्लभ भोगोंको प्रदान करूँगा। हे सुश्रोणि! तुम जो-जो चाहती हो, उसे मैं तुम्हें देता हूँ; मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तुम्हारे लिये [मुझे] कुछ भी अदेय नहीं है॥ ५६-५७॥

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] इस प्रकार भक्तवत्सल गौरीपति शिवजीके कहनेपर वह महानन्दा वेश्या शंकरजीसे कहने लगी—॥ ५८॥

वेश्या बोली—भूमि, स्वर्ग तथा पातालके भोगोंमें मेरी इच्छा नहीं है; मैं आपके चरणकमलोंके स्पर्शके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं चाहती हूँ॥ ५९॥

जो मेरे भृत्य तथा दासियाँ हैं और जो अन्य बान्धव हैं, वे सब आपके दर्शनके लिये लालायित हैं और आपमें ही चित्तकी वृत्तियाँ लगाये हुए हैं। मेरे सहित इन सभीको अपने परम पदकी प्राप्ति कराके पुनर्जन्मके घोर भयसे छुड़ाइये, आपको नमस्कार है॥ ६०-६१॥

नन्दीश्वर उवाच

ततः स तस्या वचनं प्रतिनन्द्य महेश्वरः।
ताः सर्वाश्च तया सार्थं निनाय स्वं परं पदम्॥ ६२
वैश्यनाथावतारस्ते वर्णितः परमो मया।
महानन्दासुखकरो भक्तानन्दप्रदः सदा॥ ६३
इदं चरित्रं परमं पवित्रं

सतां च सर्वप्रदमाशु दिव्यम्।
शिवावतारस्य विशाम्पतेर्महा-

नन्दामहासौख्यकरं विचित्रम्॥ ६४
इदं यः शृणुयाद्वक्त्या श्रावयेद्वा समाहितः।
च्यवते न स्वधर्मात्म परत्र लभते गतिम्॥ ६५

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वैश्यनाथाद्वय-शिवावतारवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें वैश्यनाथ नामवाले शिवावतारका वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः।
द्विजेश्वरावतारं च सशिवं सुखदं सताम्॥ १
यः पूर्वं वर्णितस्तात भद्रायुर्दृपसत्तमः।
यस्मिन्नृष्टभरूपेणानुग्रहं कृतवाञ्छिवः॥ २
तद्वर्षस्य परीक्षार्थं पुनराविर्बभूव सः।
द्विजेश्वरस्वरूपेण तदेव कथयाम्यहम्॥ ३
ऋषभस्य प्रभावेण शत्रूञ्जित्वा रणे प्रभुः।
प्राप्तसिंहासनस्तात भद्रायुः संबभूव ह॥ ४
चन्द्रांगदस्य तनया सीमन्तिन्याः शुभाङ्गजा।
पल्ली तस्याभवद् ब्रह्मन् सुसाध्वी कीर्तिमालिनी॥ ५

स भद्रायुः कदाचित्स्वप्रियया गहनं वनम्।
प्राविशत्संविहारार्थं वसन्तसमये मुने॥ ६
अथ तस्मिन्वने रम्ये विजहार स भूपतिः।
शरणागतपालिन्या तया स्वप्रियया सह॥ ७

नन्दीश्वर बोले—[हे मुने!] इसके उपरान्त शिवजीने उसके वचनका आदरकर उसके सहित उन सबको अपने परम पदकी प्राप्ति करायी ॥ ६२ ॥

मैंने वैश्यनाथके परम अवतारका वर्णन आपसे कर दिया, जो महानन्दाको सुख देनेवाला तथा भक्तोंको सदा आनन्द देनेवाला है ॥ ६३ ॥

शिवके अवताररूप वैश्यनाथका यह दिव्य चरित्र परम पवित्र, सत्पुरुषोंको शीघ्र सब कुछ देनेवाला, महानन्दाको परम सुख देनेवाला तथा अद्वृत है ॥ ६४ ॥

जो भक्तिसहित सावधान होकर इसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह अपने धर्मसे पतित नहीं होता, और परलोकमें [उत्तम] गति प्राप्त करता है ॥ ६५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां वैश्यनाथाद्वय-शिवावतारवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! अब मैं सज्जनोंके लिये कल्याणकारी तथा उन्हें सुख देनेवाले परमात्मा शिवके द्विजेश्वरावतारका वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये ॥ १ ॥

हे तात! मैंने पहले जिन नृपश्रेष्ठ भद्रायुका वर्णन किया था और जिनपर शिवजीने ऋषभरूप धारणकर अनुग्रह किया था, उन्हींके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये वे पुनः द्विजेश्वरस्वरूपसे प्रकट हुए थे, उसी वृत्तान्तको मैं कह रहा हूँ ॥ २-३ ॥

हे तात! उन प्रभविष्णु राजा भद्रायुने ऋषभके प्रभावसे संग्राममें समस्त शत्रुओंको जीतकर राज्यसिंहासन प्राप्त किया। हे ब्रह्मन्! राजा चन्द्रांगदकी सीमन्तिनी नामक पत्नीसे उत्पन्न सुन्दरी पुत्री तथा परम साध्वी कीर्तिमालिनी उनकी पत्नी हुई ॥ ४-५ ॥

हे मुने! किसी समय उन भद्रायुने वसन्तकालमें अपनी पत्नीके साथ वनविहार करनेके लिये घने वनमें प्रवेश किया। इसके बाद वे राजा उस सुरम्य वनमें शरणागतोंका पालन करनेवाली अपनी प्रियाके साथ विहार करने लगे ॥ ६-७ ॥

अथ तद्धर्मदृढतां प्रतीक्षन्परमेश्वरः।
लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शंकरः॥ ८

शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती।
व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥ ९

अथाविदूरे तस्यैव द्रवन्तौ भयविह्वलौ।
अन्वीयमानौ व्याघ्रेण रुदन्तौ तौ बभूवतुः॥ १०

अथ विद्धौ च तौ तात भद्रायुः स महीपतिः।
ददर्श क्रन्दमानौ हि शरण्यः क्षत्रियर्षभः॥ ११

अथ तौ मुनिशार्दूल स्वमायाद्विजदम्पती।
भद्रायुषं महाराजमूचतुर्भयविह्वलौ॥ १२

द्विजदम्पती ऊचतुः

पाहि पाहि महाराज नावुभौ धर्मवित्तम्।
एष आयाति शार्दूलो जग्धुमावां महाप्रभो॥ १३

एष हिंस्तः कालसमः सर्वप्राणिभयङ्करः।
यावन्न खादति प्राप्य तावन्नौ रक्ष धर्मवित्॥ १४

नन्दीश्वर उवाच

इत्थमाक्रन्दितं श्रुत्वा तयोश्च नृपतीश्वरः।
अति शीघ्रं महावीरः स यावद्वनुराददे॥ १५

तावदभ्येत्य शार्दूलः त्वरमाणोऽतिमायिकः।
स तस्य द्विजवर्यस्य मध्ये जग्राह तां वधूम्॥ १६

हे नाथ नाथ हे कान्त हा शम्भो हा जगद्गुरो।
इति रोरुयमानां तां व्याघ्रो जग्रास भीषणः॥ १७

तावत्स राजा निशितैर्भल्लैव्याघ्रमताडयत्।
न स तैर्विव्यथे किंचिद्विरीन्द्र इव वृष्टिभिः॥ १८

स शार्दूलो महासत्त्वो राज्ञः स्वैरकृतव्यथः।
बलादाकृष्य तां नारीमपाक्रमत सत्वरः॥ १९

तब उनके धर्मकी दृढताकी परीक्षाके लिये पार्वतीसहित भगवान् शिवने वहींपर एक लीला की॥ ८॥

शिवजी और पार्वतीजी द्विजदम्पती बनकर तथा अपनी लीलासे एक मायामय व्याघ्रको बनाकर उस बनमें प्रकट हुए॥ ९॥

वे दोनों द्विजदम्पती जहाँ राजा विहार कर रहे, वहींसे थोड़ी दूरपर व्याघ्रद्वारा पीछा किये जानेपर भयसे व्याकुल होकर दौड़ते, रोते-चिल्लाते हुए राजाके समीप पहुँचे। शरणागतवत्सल एवं क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ उन राजा भद्रायुने व्याघ्रसे आक्रान्त होकर 'हे तात!' चिल्लाते हुए उन दोनोंको देखा॥ १०-११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अपनी मायासे द्विजदम्पती बने हुए उन दोनोंने भयसे व्याकुल होकर महाराज भद्रायुसे इस प्रकार कहा—॥ १२॥

द्विजदम्पती बोले—हे महाराज! हे धर्मवित्तम्! हम दोनोंकी रक्षा कीजिये। हे महाप्रभो! हम दोनोंको खानेके लिये यह व्याघ्र आ रहा है। हे धर्मज्ञ! यह हिंसक, कालसदृश तथा सभी प्राणियोंके लिये भयंकर व्याघ्र आकर जबतक हम दोनोंको खा न ले, उसके पहले ही आप इस व्याघ्रसे हमलोगोंको बचा लीजिये॥ १३-१४॥

नन्दीश्वर बोले—उन महावीर राजाने उन दोनोंका करुण क्रन्दन सुनकर ज्यों ही अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक धनुष धारण किया, इतनेमें अति मायावी उस व्याघ्रने बड़ी शीघ्रताके साथ पहुँचकर उस द्विजश्रेष्ठकी स्त्रीको पकड़ लिया, और 'हे नाथ! हा कान्त! हा शम्भो! हे जगद्गुरो!'—इस प्रकार कहकर रोती हुई उस स्त्रीको भयंकर व्याघ्रने ग्रास बना लिया॥ १५—१७॥

तबतक राजाने अपने तीक्ष्ण भालोंसे व्याघ्रपर प्रहार किया, किंतु उसे उन भालोंसे किसी प्रकारकी व्यथा नहीं हुई, जैसे वृष्टिधाराओंसे पर्वतराजपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है॥ १८॥

राजाके द्वारा यथेच्छ आघात किये जानेपर भी व्यथारहित वह महाबलवान् व्याघ्र बलपूर्वक उस स्त्रीको लेकर बड़ी शीघ्रताके साथ वहाँसे भाग गया॥ १९॥

व्याघ्रेणापहतां नारीं वीक्ष्य विप्रोऽतिविस्मितः।
लौकिकीं गतिमाश्रित्य रुरोदाति मुहुर्मुहुः॥ २०

रुदित्वा चिरकालं च स विप्रो माययेश्वरः।
भद्रायुषं महीपालं प्रोवाच मदहारकः॥ २१

द्विजेश्वर उवाच

राजन् क्व ते महास्त्राणि क्व ते त्राणं महद्धनुः।
क्व ते द्वादशसाहस्रमहानागयुतं बलम्॥ २२

किं ते खड्गेन शङ्खेन किं ते मन्त्रास्त्रविद्या।
किं सत्त्वेन महास्त्राणां किं प्रभावेण भूयसा॥ २३

तत्सर्वं विफलं जातं यच्चान्यत्त्वयि तिष्ठति।
यस्त्वं वनौकसां धातं न निवारयितुं क्षमः॥ २४

क्षत्रस्यायं परो धर्मो क्षताच्च परिरक्षणम्।
तस्मिन्कुलोचिते धर्मे नष्टे त्वज्जीवितेन किम्॥ २५

आर्तानां शरणाप्तानां त्राणं कुर्वन्ति पार्थिवाः।
प्राणैरथैश्च धर्मज्ञास्तद्विना च मृतोपमाः॥ २६

आर्तत्राणविहीनानां जीवितान्मरणं वरम्।
धनिनां दानहीनानां गार्हस्थ्याद्विक्षुता वरम्॥ २७

वरं विषाशनं प्राज्ञैर्वरमग्निप्रवेशनम्।
कृपणानामनाथानां दीनानामपरक्षणात्॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

इथं विलपितं तस्य स्ववीर्यस्य च गर्हणम्।
निशम्य नृपतिः शोकादात्मन्येवमचिन्तयत्॥ २९

अहो मे पौरुषं नष्टमद्य दैवविपर्ययात्।
अद्य कीर्तिश्च मे नष्टा पातकं प्राप्तमुत्कटम्॥ ३०

इस प्रकार बाघके द्वारा अपहृत अपनी स्त्रीको देखकर ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित हो गया और लौकिकी गतिका आश्रय लेकर बारंबार रोने लगा ॥ २० ॥

फिर देरतक रोनेके बाद अभिमान नष्ट करनेवाले तथा मायासे विप्ररूप धारण करनेवाले उन परमेश्वरने राजा भद्रायुसे कहा— ॥ २१ ॥

द्विजेश्वर बोले—हे राजन्! [इस समय] तुम्हारे महान् अस्त्र कहाँ हैं, रक्षा करनेवाला तुम्हारा महाधनुष कहाँ है और बारह हजार हाथियोंका तुम्हारा बल कहाँ है? ॥ २२ ॥

तुम्हारे शंख तथा खड्गसे क्या लाभ? तुम्हारी समन्त्रक अस्त्रविद्यासे क्या लाभ? तुम्हारे सत्त्वसे क्या लाभ और तुम्हारे महान् अस्त्रोंके उत्कृष्ट और अतिशय प्रभावसे क्या लाभ? अन्य जो कुछ भी तुममें है, वह सब निष्फल हो गया; क्योंकि तुम वनमें रहनेवाले जन्तुओंके आक्रमणको भी रोकनेमें सक्षम न हो सके ॥ २३-२४ ॥

[प्रजाजनोंको] क्षीण होनेसे बचाना क्षत्रियका परम धर्म है। उस कुलधर्मके नष्ट हो जानेपर तुम्हारे जीवित रहनेसे क्या लाभ है? ॥ २५ ॥

धर्मज्ञ राजा अपने प्राणों तथा धनसे अपने शरणमें आये हुए दीन-दुःखियोंकी रक्षा करते हैं, यदि वे ऐसा नहीं करते तो मृतकके समान हैं ॥ २६ ॥

पीड़ितोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ राजाओंके लिये जीवित रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही श्रेयस्कर है, दानसे हीन धनी लोगोंके लिये गृहस्थ होनेकी अपेक्षा भिखारी होना कहीं अधिक श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

अनाथ, दीन एवं आर्तजनोंकी रक्षा करनेमें जो अक्षम हैं, उनके लिये विष खाना या अग्निमें प्रवेश कर जाना कहीं अच्छा है—ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं ॥ २८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उस ब्राह्मणका विलाप तथा उसके मुखसे अपने पराक्रमकी निन्दा सुनकर राजा भद्रायु शोकसन्तप्त हो अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगे ॥ २९ ॥

अहो! आज भाग्यके उलट-फेरसे मेरा पराक्रम नष्ट हो गया, आज मेरी कीर्ति नष्ट हो गयी और मुझे भयंकर पापका भागी होना पड़ा ॥ ३० ॥

धर्मः कुलोचितो नष्टो मन्दभाग्यस्य दुर्मतेः ।
नूनं मे सम्पदो राज्यमायुष्यं क्षयमेष्यति ॥ ३१

अद्य चैनं द्विजन्मानं हतदारं शुचार्दितम् ।
हतशोकं करिष्यामि दत्त्वा प्राणानतिप्रियान् ॥ ३२

इति निश्चित्य मनसा स भद्रायुर्नृपोत्तमः ।
पतित्वा पादयोस्तस्य बभाषे परिसान्त्वयन् ॥ ३३

भद्रायुरुवाच

कृपां कृत्वा मयि ब्रह्मन् क्षत्रबन्धौ हतौजसि ।
शोकं त्यज महाप्राज्ञ दास्याम्यद्य तु वाज्छितम् ॥ ३४
इदं राज्यमियं राज्ञी ममेदं च कलेवरम् ।
त्वदधीनमिदं सर्वं किं तेऽभिलषितं वरम् ॥ ३५

ब्राह्मण उवाच

किमादर्शेन चान्तस्य किं गृहैर्भैक्ष्यजीविनः ।
किं पुस्तकेन मूढस्य निस्त्रीकस्य धनेन किम् ॥ ३६
अतोऽहं हतपलीको भुक्तभोगो न कर्हिचित् ।
इमां तवाग्रमहिषीं कामये दीयतामिति ॥ ३७

भद्रायुरुवाच

दाता रसान्तवित्तस्य राज्यस्य गजवाजिनाम् ।
आत्मदेहस्य कस्यापि कलत्रस्य न कर्हिचित् ॥ ३८
परदारोपभोगेन यत्पापं समुपर्जितम् ।
न तत्क्षालयितुं शक्यं प्रायश्चित्तशतैरपि ॥ ३९

ब्राह्मण उवाच

आस्तां ब्रह्मवधं घोरमपि मद्यनिषेवणम् ।
तपसा विधमिष्यामि किं पुनः पारदारिकम् ॥ ४०
तस्मात्प्रयच्छ भार्या स्वामिमां कामो न मेऽपरः ।
अरक्षणाद्दयातानां गन्तासि निरयं ध्रुवम् ॥ ४१

मुझ अभागे तथा दुर्बुद्धिका कुलोचित धर्म नष्ट हो गया । निश्चय ही [इस प्रकारके पापके कारण] मेरी सम्पत्तियों, राज्य और आयुका भी नाश हो जायगा ॥ ३१ ॥

अपनी पत्नीके मर जानेसे शोकसन्तप्त इस ब्राह्मणको मैं आज अतिप्रिय प्राणोंको देकर शोकरहित करूँगा ॥ ३२ ॥

इस प्रकार नृपत्रेष्ठ भद्रायुने अपने मनमें निश्चयकर उस ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर उसे सान्त्वना देते हुए कहा— ॥ ३३ ॥

भद्रायु बोले—हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! मुझ नष्ट तेजवाले क्षत्रियाधमपर कृपा करके अपने शोकका त्याग कीजिये, मैं आज आपका अभीष्ट पूरा करूँगा । यह राज्य, यह रानी और मेरा यह शरीर सब कुछ आपके अधीन है, इसके अतिरिक्त आप और क्या चाहते हैं? ॥ ३४-३५ ॥

ब्राह्मण बोले—[हे राजन्!] अन्धेको दर्पणसे क्या लाभ, भिक्षासे जीवन-निर्वाह करनेवालेको घरकी क्या आवश्यकता, मूर्खको पुस्तकसे क्या लाभ और स्त्रीविहीन पुरुषको धनसे क्या प्रयोजन! इस समय मेरी स्त्री मर चुकी है और मैंने कभी कामसुखका उपभोग नहीं किया, अतः मैं आपकी इस पटरानीको चाहता हूँ इसे मुझे दे दीजिये ॥ ३६-३७ ॥

भद्रायु बोले—[हे ब्राह्मण!] पूरी पृथ्वीके धनका और राज्य, हाथी, घोड़े तथा अपने शरीरका भी दाता तो हुआ जा सकता है, किंतु अपनी स्त्रीका दान करनेवाला तो कहीं नहीं होता ॥ ३८ ॥

दूसरेकी स्त्रीके साथ समागम करनेसे जो पाप अर्जित किया जाता है, उसे सैकड़ों प्रायश्चित्तोंसे भी दूर नहीं किया जा सकता है ॥ ३९ ॥

ब्राह्मण बोले—मुझे घोर ब्रह्महत्या तथा मद्य पीनेका महापाप ही क्यों न लगे, मैं उसे तपस्यासे नष्ट कर दूँगा, फिर परस्त्रीगमन कितना बड़ा पाप है ॥ ४० ॥

अतः आप मुझे अपनी यह स्त्री प्रदान कीजिये, मैं दूसरा कुछ नहीं चाहता, अन्यथा भयभीतोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ होनेके कारण आपको निश्चित रूपसे नरककी प्राप्ति होगी ॥ ४१ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इति विप्रगिरा भीतश्चिन्तयामास पार्थिवः।
अरक्षणान्महापापं पल्लीदानं ततो वरम्॥ ४२

अतः पल्ली द्विजाग्रयाय दत्त्वा निर्मुक्तकिल्बिषः।
सद्यो वहिं प्रवेक्ष्यामि कीर्तिंश्च विदिता भवेत्॥ ४३

इति निश्चित्य मनसा समुज्ज्वाल्य हुताशनम्।
तमाहूय द्विजं चक्रे पल्लीदानं सहोदकम्॥ ४४

स्वयं स्नातः शुचिर्भूत्वा प्रणम्य विबुधेश्वरान्।
तमग्निं त्रिःपरिक्रम्य शिवं दध्यौ समाहितः॥ ४५

तमथाग्निं पतिष्ठन्तं स्वपदासक्तचेतसम्।
प्रत्यषेधत विश्वेशः प्रादुर्भूतो द्विजेश्वरः॥ ४६

तमीश्वरं पञ्चमुखं त्रिनेत्रं
पिनाकिनं चन्द्रकलावतंसम्।

प्रलम्बपिंगांशुजटाकलापं
मध्याह्नसद्भास्करकोटितेजसम्॥ ४७

मृणालगौरं गजचर्मवाससं
गंगातरङ्गोक्षितमौलिदेशकम्।

नागोन्ध्रहारावलिकण्ठभूषणं
किरीटकाञ्च्यङ्गदकंकणोज्ज्वलम्॥ ४८

शूलासिखट्वाङ्गकुठारचर्म-
मृगाभयाष्टाङ्गपिनाकहस्तम्।

वृषोपरिस्थं शितिकण्ठभूषणं
प्रोद्धूतमग्रे स नृपो ददर्श॥ ४९

ततोऽम्बराद् द्रुतं पेतुर्दिव्याः कुसुमवृष्टयः।
प्रणेदुर्देवतूव्याणि देव्यश्च ननृतुर्जगुः॥ ५०

तत्राजग्मुः स्तूयमाना हरिर्ब्रह्मा तथा सुराः।
इन्द्रादयो नारदाद्या मुनयश्चापरेऽपि च॥ ५१

तदोत्सवो महानासीत्तत्र भक्तिप्रवर्धनः।
सति पश्यति भूपाले भक्तिनम्रीकृताञ्जलौ॥ ५२

नन्दीश्वर बोले—ब्राह्मणकी इस बातसे भयभीत राजा विचार करने लगे कि भयभीतकी रक्षा न कर सकना महान् पाप है, उसकी अपेक्षा स्त्री दे देना ही श्रेयस्कर है॥ ४२॥

अतः श्रेष्ठ ब्राह्मणको अपनी स्त्री प्रदानकर पापसे मुक्त हो शीघ्र ही अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा, ऐसा करनेसे मेरी कीर्ति भी बढ़ेगी॥ ४३॥

मनमें ऐसा विचारकर राजाने अग्नि प्रज्वलित करके उस ब्राह्मणको बुलाकर जल लेकर [संकल्पके साथ] अपनी पल्लीका दान कर दिया॥ ४४॥

इसके बाद स्वयं स्नान करके पवित्र हो देवेश्वरोंको प्रणामकर उस अग्निकी तीन बार प्रदक्षिणा करके समाहितचित्त हो, उन्होंने शिवजीका ध्यान किया॥ ४५॥

तदनन्तर द्विजेश्वरने साक्षात् शिवरूपमें प्रकट होकर अपने चरणोंमें मन लगाकर [प्रज्वलित] अग्निमें गिरनेको उद्यत हुए उन राजाको रोक दिया॥ ४६॥

पाँच मुखोंवाले, तीन नेत्रोंवाले, पिनाकी, मस्तकपर चन्द्रकला धारण करनेवाले, लम्बी एवं पीली-पीली जटाओंसे युक्त, मध्याह्नकालीन करोड़ों सूर्योंकी भाँति तेजवाले, मृणालके समान शुभ्र वर्णवाले, गजचर्म धारण किये हुए, गंगाकी तरंगोंसे सिंचित शिरःप्रदेशवाले, कण्ठमें नागेन्द्रहाररूप आभूषण धारण करनेवाले, मुकुट-करधनी-बाजूबन्द तथा कंकण धारण करनेसे उज्ज्वल प्रतीत होनेवाले, त्रिशूल-खड्ग-खट्कांग-कुठार-चर्म-मृग-अभय मुद्रा तथा पिनाक नामक धनुषसे युक्त आठ हाथोंवाले, बैलपर बैठे हुए और कण्ठमें विषकी कालिमासे सुशोभित उन शिवजीको राजाने अपने सामने प्रकट हुआ देखा॥ ४७—४९॥

तब आकाशमण्डलसे शीघ्र ही दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और अप्सराएँ नाचने तथा गाने लगीं॥ ५०॥

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवता, नारदादि महर्षि तथा अन्य मुनिगण भी स्तुति करते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ ५१॥

उस समय भक्तिसे विनम्र हो हाथ जोड़े हुए राजाके देखते-देखते ही भक्तिको बढ़ानेवाला महान् उत्सव होने लगा॥ ५२॥

तदर्शनानन्दविजृभिताशयः

प्रवृद्धबाष्पाम्बुविलिसगात्रः ।

प्रहृष्टरोमा स हि गद्गदाक्षर-

स्तुष्टाव गीर्भिर्मुकुलीकृताञ्जलिः ॥ ५३ ॥

ततस्स भगवान् राजा संस्तुतः परमेश्वरः ।

प्रसन्नः सह पार्वत्या तमुवाच दयानिधिः ॥ ५४ ॥

राजस्ते परितुष्टोऽहं भक्त्या त्वद्वर्मतोऽधिकम् ।

वरं ब्रूहि सपलीकं प्रयच्छामि न संशयः ॥ ५५ ॥

तव भावपरीक्षार्थं द्विजो भूत्वाहमागतः ।

व्याघ्रेण या परिग्रस्ता साक्षादेवी शिवा हि सा ॥ ५६ ॥

व्याघ्रो मायामयो यस्ते शरैरक्षतविग्रहः ।

धीरतां द्रष्टुकामस्ते पल्नीं याचितवानहम् ॥ ५७ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं स भद्रायुर्महीपतिः ।

पुनः प्रणम्य संस्तूय स्वामिनं नतकोऽब्रवीत् ॥ ५८ ॥

भद्रायुरुवाच

एक एव वरो नाथ यद्वावान्परमेश्वरः ।

भवतापप्रतप्तस्य मम प्रत्यक्षतां गतः ॥ ५९ ॥

यद्वासि पुनर्नाथं वरं स्वकृपया प्रभो ।

वृणेऽहं परमं त्वत्तो वरं हि वरदर्षभात् ॥ ६० ॥

वत्रबाहुः पिता मे हि सपलीको महेश्वर ।

सपलीकस्त्वहं नाथ सदा त्वत्पादसेवकः ॥ ६१ ॥

वैश्यः पद्माकरो नाम तत्पत्रः सनयाभिधः ।

सर्वनेतान्महेशान सदा त्वं पाश्वर्गान्कुरु ॥ ६२ ॥

नन्दीश्वर उवाच

अथ राज्ञी च तत्पली प्रमत्ता कीर्तिमालिनी ।

भक्त्या प्रसाद्य गिरिशं ययाचे वरमुत्तमम् ॥ ६३ ॥

राज्युवाच

चन्द्रांगदो मम पिता माता सीमन्तिनी च मे ।

तयोर्यचे महादेव त्वत्पाश्वं सन्निधिं मुदा ॥ ६४ ॥

भगवान् सदाशिवके दर्शनमात्रसे राजाका अन्तःकरण प्रसन्नतासे खिल उठा, अश्रुपातसे सारा शरीर आर्द्र हो गया, शरीर रोमांचित हो गया । तब वे हाथ जोड़े गद्गद वाणीसे शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५३ ॥

इसके बाद राजाके द्वारा स्तुति किये जानेपर पार्वतीके साथ प्रसन्न हुए दयानिधि भगवान् महेश्वरने उनसे कहा—हे राजन् ! मैं आपकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ और आपके धर्मपालनसे तो और भी प्रसन्न हुआ हूँ । अब आप अपनी पलीसहित वर माँगिये, मैं उसे दूँगा, इसमें संशय नहीं है । मैं आपके भक्तिभावकी परीक्षाके लिये ही ब्राह्मणवेष धारण करके आया था और व्याघ्रने जिसे पकड़ लिया था, वे साक्षात् देवी पार्वती थीं । तुम्हारे बाणोंसे आहत न होनेवाला जो व्याघ्र था, वह मायासे बनाया गया था और मैंने आपके धैर्यकी परीक्षाके लिये ही आपकी स्त्रीको माँगा था ॥ ५४—५७ ॥

नन्दीश्वर बोले—प्रभुका यह वचन सुनकर उन्हें पुनः प्रणामकर तथा उनकी स्तुति करके विनम्र होकर वे राजा भद्रायु स्वामी [शिव]-से कहने लगे— ॥ ५८ ॥

भद्रायु बोले—हे नाथ ! मेरा एक ही वर है जो कि आप परमेश्वरने सांसारिक तापसे सन्तप्त मुझको प्रत्यक्ष दर्शन दिया है । हे नाथ ! हे प्रभो ! फिर भी यदि आप अपनी कृपासे वर देना ही चाहते हैं, तो मैं वरदाताओंमें श्रेष्ठ आपसे यही परम वर माँगता हूँ कि हे महेश्वर ! हे नाथ ! माताके साथ मेरे पिता वत्रबाहु तथा स्त्रीके सहित मैं आपके चरणोंका सदा सेवक बना रहूँ और हे महेशान ! जो पद्माकर नामक यह वैश्य है तथा सनय नामक उसका पुत्र है—इन सबको सदा अपना पाश्वर्वर्ती बनायें ॥ ५९—६२ ॥

नन्दीश्वर बोले—तदनन्तर उस राजाकी कीर्तिमालिनी नामक पली भी आनन्दित होकर अपनी भक्तिसे शिवजीको प्रसन्नकर उत्तम वरदान माँगने लगी ॥ ६३ ॥

रानी बोली—हे महादेव ! मेरे पिता चन्द्रांगद और मेरी माता सीमन्तिनी—इन दोनोंके लिये प्रसन्नतापूर्वक आपके समीप निवासकी याचना करती हूँ ॥ ६४ ॥

नन्दीश्वर उवाच

एवमस्त्विति गौरीशः प्रसन्नो भक्तवत्सलः ।
तयोः कामवरान्दत्त्वा क्षणादन्तर्हितोऽभवत् ॥ ६५
भद्रायुरपि सुप्रीत्या प्रसादं प्राप्य शूलिनः ।
सहितः कीर्तिमालिन्या बुभुजे विषयान्बहून् ॥ ६६

कृत्वा वर्षायुतं राज्यमव्याहतपराक्रमः ।
राज्यं विक्षिप्य तनये जगाम शिवसन्निधिम् ॥ ६७
चन्द्रांगदोऽपि राजेन्द्रो राज्ञी सीमन्तिनी च सा ।
भक्त्या संपूज्य गिरिशं जगमतुः शाम्भवं पदम् ॥ ६८
द्विजेश्वरावतारस्ते वर्णितः परमो मया ।
महेश्वरस्य भद्रायुपरमानन्दः प्रभो ॥ ६९
इदं चरित्रं परमं पवित्रं
शिवावतारस्य पवित्रकीर्तेः ।
द्विजेशसंज्ञस्य महाद्वृतं हि
शृणुवन्यठन् शम्भुपदं प्रयाति ॥ ७०

य इदं शृणुयान्तिं श्रावयेद्वा समाहितः ।
न श्रोतति स्वधर्मात्मस परत्र लभते गतिम् ॥ ७१

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां द्विजेशाख्य-शिवावतारवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें द्विजेशाख्यशिवावतारवर्णन
नामक सन्नाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

नल एवं दमयन्तीके पूर्वजन्मकी कथा तथा शिवावतार यतीश्वरका हंसरूप धारण करना

नन्दीश्वर उवाच

शृणु प्राज्ञ प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं परानन्दं यतिनाथाद्वयं मुने ॥ १
अर्बुदाचलसंज्ञे तु पर्वते भिल्लवंशजः ।
आहुकश्च तदभ्याशे वसति स्म मुनीश्वर ॥ २

तत्पत्नी ह्याहुका नाम बभूव किल सुव्रता ।
उभावपि महाशैवावास्तां तौ शिवपूजकौ ॥ ३

नन्दीश्वर बोले— भक्तवत्सल पार्वतीपति प्रसन्न होकर उन दोनोंसे ‘ऐसा ही हो’—इस प्रकार कहकर उन्हें इच्छित वर देकर क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये ॥ ६५ ॥

भद्रायुने भी प्रीतिपूर्वक शिवजीकी कृपा प्राप्तकर [अपनी पत्नी] कीर्तिमालिनीके साथ अनेक विषयोंका भोग किया ॥ ६६ ॥

इस प्रकार अव्याहत पराक्रमवाले राजा दस हजार वर्षपर्यन्त राज्य करके पुत्रको राज्यका भार देकर शिवजीकी सन्निधिमें चले गये और राजर्षि चन्द्रांगद तथा उनकी रानी सीमन्तिनी भक्तिसे शिवजीका पूजनकर शिवपदको प्राप्त हुए ॥ ६७-६८ ॥

हे प्रभो [सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने आपसे शिवजीके श्रेष्ठ द्विजेश्वरावतारका वर्णन किया, जिससे राजा भद्रायुको परम सुख प्राप्त हुआ ॥ ६९ ॥

पवित्र कीर्तिवाले द्विजेशसंज्ञक शिवावतारके इस परम पवित्र तथा अत्यन्त अद्भुत चरित्रको पढ़ने तथा सुननेवाला शिवपदको प्राप्त होता है ॥ ७० ॥

जो एकाग्रचित्त होकर इसे प्रतिदिन सुनता अथवा सुनाता है, वह अपने धर्मसे विचलित नहीं होता है और परलोकमें उत्तम गति प्राप्त करता है ॥ ७१ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ! हे मुने! अब मैं परमात्मा शिवके परम आनन्दप्रद यतिनाथ नामक अवतारका वर्णन करूँगा, आप सुनें ॥ १ ॥

हे मुनीश्वर! [पूर्वकालमें] अर्बुदाचल नामक पर्वतके समीप भिल्लवंशमें उत्पन्न आहुक नामक एक भील रहता था ॥ २ ॥

उसकी पत्नीका नाम आहुका था, जो अत्यन्त पतिव्रता थी। वे दोनों प्रतिदिन भक्तिपूर्वक शिवजीकी पूजा करते थे। वे दोनों महाशिवभक्त थे ॥ ३ ॥

कस्मैश्चित्समये भिल्लः शिवभक्तिरतः सदा ।
आहारार्थं स्वपल्याश्च सुदूरं स गतो मुने ॥ ४

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गेहे भिल्लस्य शङ्करः ।
भूत्वा यतिवपुः सायं परीक्षार्थं समाययौ ॥ ५

तस्मिन्नवसरे तत्राजगाम स गृहाधिपः ।
पूजनं च यतीशस्य चकार प्रेमतः सुधीः ॥ ६

तद्वावस्य परीक्षार्थं यतिरूपः स शंकरः ।
महालीलाकरः प्रीत्या भीतः प्रोवाच दीनगीः ॥ ७

यतिनाथ उवाच

अद्य स्थलं निवासार्थं देहि मे प्रातरेव हि ।
यास्यामि सर्वथा भिल्ल स्वस्ति स्यात्तव सर्वदा ॥ ८

भिल्ल उवाच

सत्यं प्रोक्तं त्वया स्वामिन् शृणु मद्वचनं च ते ।
अति स्वल्पं स्थलं मे हि स्यान्विवासः कथं तव ॥ ९

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तः स यतिस्तेन गमनाय मतिं दधे ।
तावद्विल्ल्या वचः प्रोक्तं स्वामिनं संविचार्य वै ॥ १०

भिल्ल्युवाच

स्वामिन्देहि यतेः स्थानं विमुखं कुरु मातिथिम् ।
गृहधर्मं विचार्य त्वमन्यथा धर्मसंक्षयः ॥ ११
स्थीयतां ते गृहाभ्यन्तः सुखेन यतिना सह ।
अहं बहिः स्थितिं कुर्यामायुधानि बृहन्त्यपि ॥ १२

नन्दीश्वर उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भिल्ल्या धर्मान्वितं शिवम् ।
स्वपल्या मनसा तेन भिल्लेन च विचारितम् ॥ १३
स्त्रियं बहिश्च निष्कास्य कथं स्थेयं मया गृहे ।
यतेरन्यत्र गमनमधर्मकरमात्मनः ॥ १४

द्वयमप्युचितं नैव सर्वथा गृहमेधिनः ।
यद्वावि तद्वेदेव मया स्थेयं गृहाद् बहिः ॥ १५

हे मुने ! किसी समय सदा शिवभक्तिमें तत्पर रहनेवाला वह भील अपने तथा स्त्रीके लिये आहारकी व्यवस्थाहेतु बहुत दूर चला गया ॥ ४ ॥

इसी बीच शिवजी संन्यासीका रूप धारणकर उसकी परीक्षा लेनेके लिये सायंकाल उस भीलके घर आये ॥ ५ ॥

उसी समय वह गृहपति [आहुक] भी वहाँ आ गया और उस महाबुद्धिमान् भीलने प्रेमपूर्वक उन यतीश्वरकी पूजा की ॥ ६ ॥

उसके भावकी परीक्षा करनेके लिये महालीला करनेवाले संन्यासीरूपधारी उन शिवजीने डरते हुए प्रेमपूर्वक दीनवचन कहा— ॥ ७ ॥

यतिनाथ बोले—हे भिल्ल ! तुम मुझे आज रहनेके लिये स्थान दो और प्रातःकाल होते ही मैं सर्वथा चला जाऊँगा, तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो ॥ ८ ॥

भिल्ल बोला—हे स्वामिन् ! आपने सत्य कहा, किंतु मेरी बात सुनिये, मेरा स्थान तो बहुत थोड़ा है, फिर यहाँ आपका निवास किस प्रकार सम्भव है ? ॥ ९ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार ! उसके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह संन्यासी जानेका विचार करने लगा, तबतक भीलनीने विचारकर अपने स्वामीसे कहा— ॥ १० ॥

भीलनी बोली—हे स्वामिन् ! गृहस्थधर्मका विचार करके आप संन्यासीको स्थान दे दीजिये, अतिथिको निराश मत कीजिये । अन्यथा आपके धर्मका क्षय होगा ॥ ११ ॥

आप घरके भीतर संन्यासीके साथ निवास करें और मैं सभी बड़े अस्त्र-शस्त्रोंको बाहर रखकर वहीं रहूँगी ॥ १२ ॥

नन्दीश्वर बोले—अपनी पत्नी उस भीलनीके धर्मयुक्त कल्याणकारी वचनको सुनकर वह भील अपने मनमें विचार करने लगा ॥ १३ ॥

स्त्रीको घरके बाहर रखकर मेरा घरमें निवास करना उचित प्रतीत नहीं होता है, फिर इस यतिका दूसरी जगह गमन भी अपने अर्थर्मका कारण होगा ॥ १४ ॥

गृहस्थधर्मका आचरण करनेवालोंके लिये ये दोनों बातें सर्वथा उचित नहीं हैं । अतः जो होनहार है, वह हो, मैं घरके बाहर ही रहूँगा ॥ १५ ॥

इत्याग्रहं तदा कृत्वा गृहान्तः स्थाप्य तौ मुदा।
स्वायुधानि च संस्थाप्य भिल्लोऽतिष्ठद् गृहाद् बहिः ॥ १६

रात्रौ तं पशवः क्रूराः हिंसकाः समपीडयन्।
तेनापि च यथाशक्ति कृतो यत्तो महास्तदा ॥ १७

एवं यत्तं प्रकुर्वाणः स भिल्लो बलवानपि।
प्रारब्धात्प्रेरितैर्हिंसैर्बलादासीच्च भक्षितः ॥ १८

प्रातरुत्थाय स यतिर्दृष्ट्वा हिंसैश्च भक्षितम्।
भिल्लं वनेचरं तं वै दुःखितोऽभूदतीव हि ॥ १९
दुःखितं तं यतिं दृष्ट्वा भिल्ली सा दुःखितापि हि।
धैर्यात्स्वदुःखं संहत्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ २०

भिल्ल्युवाच

किमर्थं क्रियते दुःखं भद्रं जातं यतेऽधुना।
धन्योऽयं कृतकृत्यश्च यजातो मृत्युरिदृशः ॥ २१

अहं चैनं गमिष्यामि भस्म भूत्वानले यते।
चितां कारय सुप्रीत्या स्त्रीणां धर्मः सनातनः ॥ २२

इति तद्वचनं श्रुत्वा हितं मत्वा स्वयं यतिः।
चितां व्यरचयत्सा हि प्रविवेश स्वधर्मतः ॥ २३

एतस्मिन्नत्तरे साक्षात्पुरः प्रादुरभूच्छ्वः।
धन्ये धन्ये इति प्रीत्या प्रशंसंस्तां हरोऽब्रवीत् ॥ २४

हर उवाच

वरं ब्रूहि प्रसन्नोऽस्मि त्वदाचरणतोऽनघे।
तवादेयं न वै किञ्चिद् वश्योऽहं ते विशेषतः ॥ २५

नन्दीश्वर उवाच

तच्छुत्वा शम्भुवचनं परमानन्ददायकम्।
सुखं प्राप्तं विशेषेण न किञ्चित्स्मरणं यद्यौ ॥ २६
तस्यास्तद्विमालक्ष्य सुप्रसन्नो हरोऽभवत्।
उवाच च पुनः शम्भुर्वरं ब्रूहीति तां प्रभुः ॥ २७

इस प्रकार आग्रहकर उन दोनोंको घरके भीतर रखकर अपने अस्त्रोंको लेकर वह भील प्रसन्नतासे घरसे बाहर स्थित हो गया ॥ १६ ॥

रात्रिमें उस भीलको क्रूर एवं हिंसक पशु सताने लगे, उसने भी अपनी रक्षाके लिये उस समय यथाशक्ति महान् प्रयत्न किया ॥ १७ ॥

इस प्रकार [अपनी शक्तिके अनुसार] यत्त करते रहनेपर भी प्रारब्धप्रेरित हिंसक पशुओंने बलपूर्वक उस बलवान् भीलको खा लिया ॥ १८ ॥

प्रातःकाल उठकर संन्यासी हिंस जन्तुओंसे भक्षित उस वनेचर भीलको देखकर बड़ा दुखी हुआ ॥ १९ ॥

संन्यासीको दुखी देखकर वह भीलनी भी बहुत दुःखित हुई, किंतु धैर्यसे अपने दुःखको दबाकर यह वचन कहने लगी— ॥ २० ॥

भीलनी बोली—हे यते! आप शोक क्यों कर रहे हैं? इनका कल्याण हो गया, ये धन्य हो गये, कृतकृत्य हो गये। जो इस प्रकार इनकी मृत्यु हुई ॥ २१ ॥

हे यते! अब मैं भी इन्हींके साथ अग्निमें भस्म होकर सती हो जाऊँगी, आप प्रेमपूर्वक चिता तैयार कराइये; क्योंकि यही स्त्रियोंका सनातनधर्म है ॥ २२ ॥

उसकी यह बात सुनकर और इसीमें उसका कल्याण समझकर उस संन्यासीने तत्क्षण ही चिता तैयार कर दी और वह अपने धर्मके अनुसार उसीमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुई ॥ २३ ॥

इसी अवसरपर साक्षात् शिवजी सामने प्रकट हो गये। धन्य हो, धन्य हो—इस प्रकारसे प्रेमपूर्वक प्रशंसा करते हुए शिवजी उस भीलनी से कहने लगे— ॥ २४ ॥

हर बोले—हे अनघे! मैं तुम्हारे आचरणसे प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो, मुझे तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। मैं इस समय विशेष रूपसे तुम्हारे वशमें हूँ ॥ २५ ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीके उस परमानन्ददायक वचनको सुनकर वह विशेष रूपसे सुखी हुई और उसको कुछ भी स्मरण नहीं रहा ॥ २६ ॥

उसकी इस अवस्थाको देखकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए। प्रभु शिवने उससे पुनः कहा कि वर माँगो ॥ २७ ॥

शिव उवाच

अयं यतिश्श मद्भूपो हंसरूपो भविष्यति।
परजन्मनि वां प्रीत्या संयोगं कारयिष्यति॥ २८
भिल्लश्श वीरसेनस्य नैषधे नगरे वरे।
महान्युत्रो नलो नाम भविष्यति न संशयः॥ २९
त्वं सुता भीमराजस्य वैदर्भं नगरेऽनधे।
दमयन्ती च विष्ण्याता भविष्यसि गुणान्विता॥ ३०
युवां चोभौ मिलित्वा च राजभोगं सुविस्तरम्।
भुक्त्वा मुक्तिं च योगीन्द्रैर्लभ्येथे दुर्लभां ध्रुवम्॥ ३१

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा च स्वयं शम्भुर्लङ्घरूपोऽभवत्तदा।
तस्मान्न चलितो धर्मादचलेश इति स्मृतः॥ ३२
स भिल्ल आहुकश्चापि वीरसेनसुतोऽभवत्।
नैषधे नगरे तात नलनामा महानृपः॥ ३३
आहुका सा महाभिल्ली भीमस्य तनयाभवत्।
वैदर्भं नगरे राज्ञो दमयन्तीति विश्रुता॥ ३४
यतिनाथाह्वयः सोऽपि हंसरूपोऽभवच्छ्वः।
विवाहं कारयामास दमयन्त्या नलेन वै॥ ३५
पूर्वसत्काररूपेण महापुण्येन शंकरः।
हंसरूपं विधायैव ताभ्यां सुखमदात्यभुः॥ ३६

शिवो हंसावतारो हि नानावार्ताविचक्षणः।
दमयन्त्या नलस्यापि परमानन्ददायकः॥ ३७
इदं चरित्रं परमं पवित्रं
शिवावतारस्य पवित्रकीर्तेः।
यतीशसंज्ञस्य महाद्वृतं हि
हंसाह्वयस्यापि विमुक्तिदं हि॥ ३८
यतीशब्रह्महंसाख्यावतारचरितं शुभम्।
शृणुयाच्छ्रावयेद्यो हि स लभेत परां गतिम्॥ ३९
इदमाख्यानमनधं सर्वकामफलप्रदम्।
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं भक्तिवर्धनमुत्तमम्॥ ४०

शिवजी बोले—यह मेरे रूपवाला यति अगले जन्ममें हंस होगा और तुम दोनोंका पुनः संयोग करायेगा॥ २८॥

यह भील निषधनगरके राजा वीरसेनका नल नामक महाप्रतापी पुत्र होगा, इसमें संशय नहीं है और हे अनधे! तुम विदर्भनगरमें भीमराजकी कन्या होकर परम गुणवती दमयन्ती नामसे विष्ण्यात होओगी॥ २९-३०॥

तुम दोनों ही बहुत कालपर्यन्त यथेष्ट राज्यसुखका भोग करके योगीश्वरोंके लिये दुर्लभ मुक्तिको निश्चित रूपसे प्राप्त करोगे॥ ३१॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर शिवजी उसी समय लिंगरूपमें प्रकट हो गये। [उनके द्वारा परीक्षा करनेपर] भील धर्मसे विचलित नहीं हुआ, इसलिये वह लिंग अचलेश—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३२॥

हे तात! वह आहुक भील निषधनगरमें वीरसेनका पुत्र नल नामवाला महान् राजा हुआ। उसकी पली आहुका भीलनी विदर्भनगरके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्ती नामसे प्रसिद्ध हुई। वे शिवावतार यतीश्वर भी हंसरूपमें अवतरित हुए, जिन्होंने दमयन्तीका विवाह नलके साथ करवाया॥ ३३—३५॥

पूर्व समयमें उनके द्वारा किये गये [अतिथिके] सत्काररूप महापुण्यके कारण प्रभु शिवजीने हंसरूप धारणकर [इस जीवनमें] दोनोंको महान् सुख प्रदान किया॥ ३६॥

अनेक प्रकारका वार्तालाप करनेमें निपुण हंसावतार शिवजीने दमयन्ती तथा नलको महान् सुख प्रदान किया॥ ३७॥

पवित्र कीर्तिवाले यतीश्वर नामक तथा हंस नामक शिवावतारका यह चरित्र अत्यन्त पवित्र, परम अद्भुत तथा निश्चय ही मुक्तिदायक है॥ ३८॥

जो यतीश तथा ब्रह्महंस नामक अवतारके शुभ चरित्रको सुनता है अथवा सुनाता है, वह परम गति प्राप्त करता है। यह आख्यान निष्पाप, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाला, यश तथा आयु प्रदान करनेवाला, भक्तिको बढ़ानेवाला एवं उत्तम है॥ ३९-४०॥

श्रुत्वैतच्चरितं शम्भोर्यतिहंसस्वरूपयोः ।

इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवपुरं ब्रजेत् ॥ ४१

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां यतिनाथब्रह्महंसाह्य-
शिवावतारचरितवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यतिनाथब्रह्महंसाह्यशिवावतारचरितवर्णन
नामक अड्डाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके कृष्णदर्शन नामक अवतारकी कथा

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार शम्भोस्त्ववतारं परमं शृणु ।

नभगज्ञानदं कृष्णदर्शनाह्यमुत्तमम् ॥ १

इक्ष्वाकुप्रमुखा आसन् श्राद्धदेवसुताश्च ये ।

नभगस्तत्र नवमो नाभागस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २

अम्बरीषः सुतस्तस्य विष्णुभक्तो बभूव सः ।

यस्योपरि प्रसन्नोऽभूद्वर्वासा ब्रह्मभक्तिः ॥ ३

पितामहोऽम्बरीषस्य नभगो यः प्रकीर्तिः ।

तच्चरित्रं शृणु मुने यस्मै ज्ञानमदाच्छिवः ॥ ४

नभगो मनुपुत्रस्तु पठनार्थं सुबुद्धिमान् ।

चक्रे गुरुकुले वासं बहुकालं जितेन्द्रियः ॥ ५

एतस्मिन्समये ते वै इक्ष्वाकुप्रमुखाः सुताः ।

तस्मै भागमकल्प्यैव भेजुर्भागान्निजान्कमात् ॥ ६

स्वं स्वं भागं गृहीत्वा ते बुभुजू राज्यमुत्तमम् ।

अविषादं महाभागाः पित्रादेशात्सुबुद्धयः ॥ ७

स पश्चादागतस्तत्र ब्रह्मचारी गुरुस्थलात् ।

नभगोऽधीत्य सर्वाश्च सांगोपांगाः श्रुतीः क्रमात् ॥ ८

भ्रातृन्विलोक्य नभगो विभक्तान्सकलान्निजान् ।

दायार्थीं प्राह तान्स्नेहादिक्ष्वाकुप्रमुखान्मुने ॥ ९

यतीश्वर तथा हंसरूप शिवका यह चरित्र सुनकर
मनुष्य इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें
शिवलोकको प्राप्त करता है ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें यतिनाथब्रह्महंसाह्यशिवावतारचरितवर्णन
नामक अड्डाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब आप
नभगको ज्ञान प्रदान करनेवाले कृष्णदर्शन नामक
उत्तम शिवावतारका श्रवण कीजिये ॥ १ ॥

श्राद्धदेवके इक्ष्वाकु आदि जो प्रमुख पुत्र हुए,
उनमें नभग नौवें पुत्र थे, उन्हींके पुत्र नाभाग कहे
गये हैं ॥ २ ॥

उनके पुत्र अम्बरीष थे। वे विष्णुजीके भक्त
हुए, जिनकी ब्राह्मणभक्तिसे दुर्वासाजी उनपर प्रसन्न
हुए थे ॥ ३ ॥

हे मुने! अम्बरीषके पितामह जो नभग कहे गये
हैं, आप उनका चरित्र सुनिये। जिनको सदाशिवजीने
ज्ञान दिया था ॥ ४ ॥

मनुके अति बुद्धिमान् तथा जितेन्द्रिय पुत्र नभग
जब पढ़नेके लिये गुरुकुलमें निवास करने लगे, उसी
समय मनुके इक्ष्वाकु आदि पुत्रोंने उनको भाग दिये
बिना ही अपने-अपने भागोंको क्रमसे विभाजित कर
लिया ॥ ५-६ ॥

वे महाबुद्धिमान् और भाग्यवान् पुत्र अपने
पिताकी आज्ञासे अपने-अपने भागको लेकर सुखपूर्वक
उत्तम राज्यका भोग करने लगे ॥ ७ ॥

उसके बाद ब्रह्मचारी नभग क्रमसे सांगोपांग
सभी वेदोंका अध्ययन करके गुरुकुलसे वहाँ लौटे।
तब हे मुने! इक्ष्वाकु आदि अपने सभी भाइयोंको राज्य
विभक्त किये हुए देखकर अपना भाग प्राप्त करनेकी
इच्छासे नभगने उनसे स्नेहपूर्वक कहा— ॥ ८-९ ॥

नभग उवाच

भ्रातरोऽभक्तकं मह्यं दायं कृत्वा यथातथम्।
सर्वे विभक्ताः सुप्रीत्या स्वदायार्थगताय च ॥ १०

तदा विस्मृतमस्माभिरिदानीं पितरं तव।
विभजामो वयं भागं तं गृहण न संशयः ॥ ११

तच्छुत्वा भ्रातृवचनं नभगः परविस्मृतः।
तदोपकण्ठमागत्य पितरं समभाषत ॥ १२

नभग उवाच

हे तात भ्रातरः सर्वे त्यक्त्वा मां व्यभजंश्च ते।
पठनार्थं गतश्चाहं ब्रह्मचारी गुरोः कुले ॥ १३
तत आगत्य मे पृष्ठा दायदानार्थमादरात्।
ते त्वामूर्चुर्विभागं मे तदर्थमहमागतः ॥ १४

नन्दीश्वर उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य पिता तं प्राह विस्मितः।
आश्वास्य श्राद्धदेवः स सत्यधर्मरतं मुने ॥ १५

मनुरुवाच

तदुक्तं मादृथास्तात् प्रतारणकरं हि तत्।
न ह्यहं परमं दायं सर्वथा भोगसाधनम् ॥ १६

तथापि दायभावेन दत्तोऽहं तैः प्रतारिभिः।
तव वै जीवनोपायं वदामि शृणु तत्त्वतः ॥ १७

सत्रमांगिरसा विप्राः कुर्वत्यद्य सुमेधसः।
तत्र कर्मणि मुह्यन्ति षष्ठं षष्ठमहः प्रति ॥ १८

तत्र त्वं गच्छ नभग तान् सुशंस महाकवे।
सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि सत्रं शुद्धं हि तद्वेत् ॥ १९

तत्कर्मणि समाप्ते हि स्वर्यान्तो ब्राह्मणाश्च ते।
धनं दास्यन्ति ते तुष्टाः स्वसत्रपरिशेषितम् ॥ २०

नभग बोले—हे भाइयो! आपलोगोंने मेरा हिस्सा बिना दिये ही पिताकी सम्पत्ति जैसे-तैसे आपसमें बाँट ली, अब मैं अपने दायभागके लिये आपलोगोंके पास आया हूँ ॥ १० ॥

[उनके भाइयोंने कहा—] दायका विभाग करते समय हमलोग तुम्हें भूल गये, अब हमलोगोंने तुम्हारे हिस्सेमें पिताजीको नियत किया है, अतः तुम उन्हींको ग्रहण करो, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥

भाइयोंकी वह बात सुनकर नभग अत्यन्त विस्मित हो गये और अपने पिताके पास आकर कहने लगे ॥ १२ ॥

नभग बोले—हे तात! जब मैं ब्रह्मचारी होकर गुरुकुलमें पढ़नेके लिये चला गया था, तभी उन सभी भाइयोंने मुझे छोड़कर सारा राज्य बाँट लिया ॥ १३ ॥

वहाँसे लौटकर जब मैं अपने हिस्सेके लिये उनसे आदरपूर्वक पूछने लगा। तो उन्होंने आपको ही मेरे भागके रूपमें दिया, इसलिये मैं [आपके पास] आया हूँ ॥ १४ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उनका वचन सुनकर विस्मित हुए पिता श्राद्धदेवने सत्यधर्ममें निरत अपने पुत्रको धीरज बँधाते हुए कहा— ॥ १५ ॥

मनु बोले—हे तात! तुम भाइयोंकी बातमें विश्वास मत करो। उनका यह वचन तुम्हें धोखा देनेके लिये है। मैं तुम्हारे भोगका साधनभूत परम दाय नहीं हूँ ॥ १६ ॥

किंतु उन धोखेबाजोंने तुम्हारे लिये मुझे दायभागके रूपमें दिया है, अतः मैं तुम्हारे जीवन-निर्वाहिका ठीक-ठीक उपाय बताता हूँ, तुम श्रवण करो ॥ १७ ॥

इस समय अंगिरसगोत्रीय विद्वान् ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, उस यज्ञमें वे अपने छठे दिनके कर्ममें भूल कर जाते हैं ॥ १८ ॥

अतः हे नभग! हे महाकवे! तुम वहाँ जाओ और जाकर विश्वेदेवसम्बन्धी दो सूक्तोंको उन्हें बतलाओ, जिससे वह यज्ञ शुद्ध हो सके ॥ १९ ॥

उस यज्ञकर्मके समाप्त हो जानेपर जब वे ब्राह्मण स्वर्ग जाने लगेंगे तो वे प्रसन्न होकर यज्ञसे बचा हुआ धन तुम्हें दे देंगे ॥ २० ॥

नन्दीश्वर उवाच

तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं नभगः सत्यसारवान्।
जगाम तत्र सुप्रीत्या यत्र तत्सत्रमुत्तमम्॥ २१
तदाहःकर्मणि मुने सत्रे तस्मिन्स मानवः।
सूक्ते द्वे वैश्वदेवे हि प्रोवाच स्पष्टतः सुधीः॥ २२

समाप्ते कर्मणि ततो विप्रा आंगिरसाश्च ते।
तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं स्वं स्वं सत्रावशेषितम्॥ २३

तत्तदा स्वीकरिष्यन्तं सुसत्रपरिशेषितम्।
विज्ञाय गिरिशः सद्य आविर्भूतः सदूतिकृत्॥ २४

सर्वांगसुन्दरः श्रीमान्युरुषः कृष्णदर्शनः।
भावं समीक्षितुं भागं दातुं ज्ञानं परं च तत्॥ २५

अथो स शंकरः शम्भुः परीक्षाकर ईश्वरः।
उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य नभगं तं हि मानवम्॥ २६

ईश्वर उवाच

कस्त्वं गृह्णासि पुरुष ममेदं वास्तुकं वसु।
प्रेषितः केन तत्सर्वं सत्यं वद ममाग्रतः॥ २७

नन्दीश्वर उवाच

तच्छुत्वा तद्वचस्तात मानवो नभगः कविः।
प्रत्युवाच विनीतात्मा पुरुषं कृष्णदर्शनम्॥ २८

नभग उवाच

ममेदमृषिभिर्दत्तं वसु यज्ञगतं खलु।
कथं वारयसे मां त्वं गृह्णन्तं कृष्णदर्शन॥ २९

नन्दीश्वर उवाच

आकर्ण्य नाभगं वाक्यमिदं सत्यमुदीरितम्।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा पुरुषः कृष्णदर्शनः॥ ३०

कृष्णदर्शन उवाच

विवादेऽस्मिन्हि नौ तात प्रमाणं जनकस्तव।
याहि तं पृच्छ स ब्रूयात्तत्प्रमाणं तु सत्यतः॥ ३१

नन्दीश्वर बोले—पिताकी यह बात सुनकर सत्य बोलनेवाले नभग बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ गये, जहाँ वह उत्तम यज्ञ हो रहा था और हे मुने! उस दिनके यज्ञकर्ममें उन परम बुद्धिमान् नभगने विश्वेदेवके दोनों सूक्तोंको स्पष्ट रूपसे कहा ॥ २१-२२ ॥

यज्ञकर्मके समाप्त हो जानेपर वे आंगिरस विप्र यज्ञसे बचा हुआ सारा धन उन्हें देकर स्वर्ग चले गये ॥ २३ ॥

उस श्रेष्ठ यज्ञके शेष धनको ज्यों ही नभगने लेना चाहा, उसी समय यह जानकर उत्तम लीला करनेवाले शिवजी शीघ्र ही प्रकट हो गये। वे कृष्णदर्शन शिवजी सर्वांगसुन्दर तथा श्रीमान् थे। यज्ञशेष धन किसका भाग होता है—इस बातकी परीक्षा करनेके लिये तथा नभगको भाग और उत्तम ज्ञान देनेके लिये वे प्रकट हुए थे ॥ २४-२५ ॥

इसके बाद परीक्षा करनेवाले ऐश्वर्यशाली उन कल्याणकारी शंकरने उन मनुपुत्र नभगके पास उत्तरकी ओरसे जाकर [उनका अभिप्राय जाननेके लिये] उनसे कहा— ॥ २६ ॥

ईश्वर बोले—हे पुरुष! तुम कौन हो? तुम्हें यहाँ किसने भेजा है? यह यज्ञमण्डपसम्बन्धी धन तो मेरा है, तुम इसे क्यों ग्रहण करते हो, मेरे सामने सत्य-सत्य बताओ ॥ २७ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! मनुपुत्र कवि नभगने उनका वचन सुनकर अत्यन्त विनम्र होकर उन कृष्णदर्शन पुरुषसे कहा— ॥ २८ ॥

नभग बोले—यज्ञसे (अवशिष्ट) प्राप्त हुए इस धनको ऋषियोंने मुझे दिया है। हे कृष्णदर्शन! तब आप इसे लेनेसे मुझे क्यों मना करते हैं? ॥ २९ ॥

नन्दीश्वर बोले—नभगद्वारा कहे गये सत्य वचनको सुनकर प्रसन्नचित्त कृष्णदर्शन पुरुषने कहा— ॥ ३० ॥

कृष्णदर्शन बोला—हे तात! हम दोनोंके इस विवादमें तुम्हारे पिता प्रमाण हैं, जाओ और उनसे पूछो, वे जो कुछ भी कहेंगे, वही सत्यरूपमें प्रमाण होगा ॥ ३१ ॥

नन्दीश्वर उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य नभगो मानवः कविः ।
आगच्छत्पितरं प्रीत्या तदुक्तं पृष्टवाम्नुने ॥ ३२

पुत्रोदितं समाकर्ण्य श्राद्धदेवः स वै मनुः ।
स्मृत्वा शिवपदाभ्योजं प्राप्तस्मृतिरुवाच तम् ॥ ३३

मनुरुवाच

हे तात शृणु मद्वाक्यं स देवः पुरुषः शिवः ।
तस्यैव सकलं वस्तु यज्ञप्राप्तं विशेषतः ॥ ३४
अध्वरोर्वर्तिं वस्तु रुद्रभागः प्रकीर्तिः ।
इत्यपि प्राज्ञवादो हि क्वचिज्जातस्तदिच्छया ॥ ३५

स देव ईश्वरः सर्वं वस्त्वर्हति न संशयः ।
यज्ञावशिष्टं किमुतं परे तस्येच्छया विभोः ॥ ३६

अनुग्रहार्थमायातस्तव तद्वृपतः प्रभुः ।
तत्र त्वं गच्छ नभग प्रसन्नं कुरु सत्यतः ॥ ३७
क्षमापय स्वापराधं सुप्रणम्य स्तुतिं कुरु ।
सर्वप्रभुः स एवेशो यज्ञाधीशोऽखिलेश्वरः ॥ ३८
विष्णुब्रह्मादयो देवाः सिद्धाः सर्वर्षयोऽपि हि ।
तदनुग्रहतस्तात् समर्थाः सर्वकर्मणि ॥ ३९
किम्बहूक्त्यात्मजश्रेष्ठ गच्छ तत्राशु माचिरम् ।
प्रसादय महादेवं सर्वथा सकलेश्वरम् ॥ ४०

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स मनुः श्राद्धदेवश्च तनयं द्रुतम् ।
प्रेषयामास निकटं शाभ्योः सोऽपि समेत्य तम् ॥ ४१
नभगश्च प्रणम्याशु सञ्चलिन्तमस्तकः ।
प्रोवाच सुप्रसन्नात्मा विनयेन महामतिः ॥ ४२

नभग उवाच

इदं तवेश सर्वं हि वस्तु त्रिभुवने हि यत् ।
इत्याह मे पिता नूनं किमुताध्वरशेषितम् ॥ ४३
अजानता मया नाथ यदुक्तं तद्वचो भ्रमात् ।
अपराधं त्वं क्षमस्व शिरसा त्वां प्रसादये ॥ ४४

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! उनका यह वचन सुनकर मनुपुत्र कवि नभग अपने पिताके पास आये और प्रसन्नतासे उनके द्वारा कही गयी बातके विषयमें पूछने लगे ॥ ३२ ॥

तब उन श्राद्धदेव मनुने पुत्रकी बात सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण किया और वस्तु-स्थितिको समझकर उससे कहा— ॥ ३३ ॥

मनु बोले—हे तात! मेरी बात सुनो, वे कृष्णदर्शन पुरुष साक्षात् शिव हैं। सब वस्तु उन्हींकी है और विशेषकर यज्ञसे प्राप्त वस्तु उन्हींकी है। यज्ञसे बचा हुआ भाग रुद्रभाग कहा गया है। उनकी प्रेरणासे कहीं-कहीं बुद्धिमान् लोग ऐसा कहा करते हैं ॥ ३४-३५ ॥

वे देव ईश्वर ही यज्ञसे बची हुई सारी वस्तुके अधिकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। उन विभुकी इच्छाके परे है ही क्या! ॥ ३६ ॥

हे नभग! तुम्हारे ऊपर कृपा करनेके लिये ही वे प्रभु उस रूपमें आये हुए हैं, तुम वहाँ जाओ और अपने सत्यसे उन्हें प्रसन्न करो, अपने अपराधके लिये क्षमा माँगो और भलीभाँति प्रणाम करके उनकी स्तुति करो। वे शिव ही सर्वप्रभु, यज्ञके स्वामी एवं अखिलेश्वर हैं। हे तात! ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता, सिद्धगण एवं सभी ऋषि भी उनके अनुग्रहसे सभी कर्मोंको करनेमें समर्थ होते हैं। हे पुत्रश्रेष्ठ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, तुम वहाँ शीघ्र जाओ, विलम्ब मत करो और सर्वेश्वर महादेवको सब प्रकारसे प्रसन्न करो ॥ ३७-४० ॥

नन्दीश्वर बोले—इतना कहकर श्राद्धदेव मनुने पुत्रको शीघ्र ही शिवजीके समीप भेजा। वे महाबुद्धिमान् नभग भी शिवजीके पास शीघ्र जाकर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके अति प्रसन्नचित्त होकर विनयपूर्वक कहने लगे— ॥ ४१-४२ ॥

नभग बोले—हे ईश! इन तीनों लोकोंमें जो भी वस्तु है, सब आपकी ही वस्तु है, फिर यज्ञशेष वस्तुके विषयमें कहना ही क्या—ऐसा मेरे पिताने कहा है ॥ ४३ ॥

हे नाथ! मैंने अज्ञानवश भ्रमसे जो वचन कहा है, मेरे उस अपराधको आप क्षमा करें, मैं सिर झुकाकर आपको प्रसन्न करता हूँ ॥ ४४ ॥

इत्युक्त्वा नभगः सोऽतिदीनधीस्तु कृताञ्जलिः ।
तुष्टाव तं महेशानं कृष्णदर्शनमानतः ॥ ४५

श्राद्धदेवोऽपि शुद्धात्मा नतकः साञ्जलिः सुधीः ।
तुष्टाव तं प्रभुं नत्वा स्वापराधं क्षमापयन् ॥ ४६

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विष्णुब्रह्मादयः सुराः ।
वासवाद्याः समाजगमः सिद्धाश्र मुनयोऽपि हि ॥ ४७
महोत्सवं प्रकुर्वन्तः सुकृताञ्जलयोऽखिलाः ।
तुष्टुवुर्नतका भक्त्या सुप्रणाम्य पृथक्पृथक् ॥ ४८

अथ रुद्रः प्रसन्नात्मा कृपादृष्ट्या विलोक्य तान् ।
उवाच नभगं प्रीत्या सस्मितं कृष्णदर्शनः ॥ ४९

कृष्णदर्शन उवाच

यत्ते पितावदद्वर्ष्य वाक्यं तत्तु तथैव हि ।
त्वयापि सत्यमुक्तं तत् साधुस्त्वं नात्र संशयः ॥ ५०
अतोऽहं सुप्रसन्नोऽस्मि सर्वथा सुब्रतेन ते ।
ददामि कृपया ते हि ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥ ५१

महाज्ञानी भव त्वं हि सविप्रो नभग द्रुतम् ।
गृहाण वस्त्विदं सर्वं मद्दत्तं कृपयाथुना ॥ ५२

इह सर्वसुखं भुड्क्ष्व निर्विकारं महामते ।
सुगतिं प्राप्यसि त्वं हि सविप्रः कृपया मम ॥ ५३

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तात भगवान्स रुद्रः सत्यवत्सलः ।
सर्वेषां पश्यतां तेषां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ ५४
विष्णुब्रह्मापि देवाद्याः सर्वे ते मुनिसत्तम् ।
स्वं स्वं धाम ययुः प्रीत्या तस्यै नत्वा दिशे मुदा ॥ ५५

सपुत्रः श्राद्धदेवोऽपि स्वस्थानमगमन्मुदा ।
भुक्त्वा भोगान्सुविपुलान्सोऽन्ते शिवपुरं ययौ ॥ ५६

ऐसा कहकर वे नभग अत्यन्त दीनबुद्धि होकर हाथ जोड़कर विनम्र हो उन कृष्णदर्शन महेश्वरकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥

शुद्धात्मा महाबुद्धिमान् श्राद्धदेव भी अपने अपराधके लिये क्षमायाचना करते हुए विनम्र हो हाथ जोड़कर उन शिवजीको नमस्कार करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४६ ॥

[हे मुने!] इसी बीच ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता, सिद्ध एवं मुनिगण भी वहाँ आ गये और महोत्सव करते हुए वे सब भक्तिसे हाथ जोड़कर पृथक्-पृथक् भलीभाँति प्रणामकर विनम्र हो उनकी स्तुति करने लगे ॥ ४७-४८ ॥

इसके बाद कृष्णदर्शनरूपधारी सदाशिवने उन [देवताओं तथा मुनियों]-को कृपादृष्टिसे देखकर प्रेमपूर्वक हँसते हुए नभगसे कहा— ॥ ४९ ॥

कृष्णदर्शन बोले—तुम्हारे पिताने जो धर्मयुक्त वचन कहा है, बात भी वैसी ही है और तुमने भी सारी बात सत्य-सत्य कही, इसलिये तुम साधु हो, इसमें संशय नहीं है। अतः मैं तुम्हारे इस सत्य आचरणसे सर्वथा प्रसन्न हूँ और कृपापूर्वक तुम्हें सनातन ब्रह्मका उपदेश करता हूँ ॥ ५०-५१ ॥

हे नभग! तुम [यज्ञकर्ता] ब्राह्मणोंसहित शीघ्र ही महाज्ञानी हो जाओ, अब मेरे द्वारा प्रदत्त इस समस्त [यज्ञशेष] सामग्रीको तुम मेरी कृपासे ग्रहण करो ॥ ५२ ॥

हे महामते! तुम निर्विकार होकर इस संसारमें सभी प्रकारका सुख भोगो, मेरी कृपासे तुम [यज्ञकर्ता] ब्राह्मणोंके सहित सद्गति प्राप्त करोगे ॥ ५३ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात! सत्यसे प्रेम करनेवाले वे भगवान् रुद्र ऐसा कहकर उन सबके देखते-देखते वहींपर अन्तर्धान हो गये ॥ ५४ ॥

हे मुनिसत्तम! ब्रह्मा, विष्णु आदि वे समस्त देवगण आनन्दसे उस दिशाको नमस्कारकर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने धामको चले गये ॥ ५५ ॥

अपने पुत्र नभगको साथ लेकर श्राद्धदेव भी प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये और वहाँ अनेक सुखोंको भोगकर अन्तमें वे शिवलोकको चले गये ॥ ५६ ॥

इत्थं ते कीर्तिं ब्रह्मनवतारः शिवस्य हि।
कृष्णदर्शननामा वै नभगानन्ददायकः ॥ ५७

इदमाख्यानमनधं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम्।
पठतां शृणवतां वापि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५८

य एतच्चरितं प्रातः सायं च स्मरते सुधीः।
कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिमन्ते लभेत्पराम् ॥ ५९

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे
कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें नन्दीश्वर-सनत्कुमार-संवादमें
कृष्णदर्शन शिवावतारवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २९ ॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके अवधूतेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु त्वं ब्रह्मपुत्राद्यावतारं परमेशितुः।
अवधूतेश्वराहं वै शक्रगर्वापहारकम् ॥ १
शक्रः पुरा हि सगुरुः सर्वदेवसमन्वितः।
दर्शनं कर्तुमीशस्य कैलासमगमन्मुने ॥ २

अथ गुर्विन्द्रियोज्जात्वागमनं शंकरस्तयोः।
परीक्षितुं च तद्वावं स्वदर्शनरतात्मनोः ॥ ३

अवधूतस्वरूपोऽभूत्रानालीलाकरः प्रभुः।
दिगंबरो महाभीमो ज्वलदग्निसमप्रभः ॥ ४

सोऽवधूतस्वरूपो हि मार्गमारुद्धय सद्गतिः।
लंबमानपटः शंभुरतिष्ठच्छोभिताकृतिः ॥ ५

अथ तौ गुरुशक्रौ च गच्छन्तौ शिवसन्निधिम्।
अद्राष्टां पुरुषं भीमं मार्गमध्येऽद्धुताकृतिम् ॥ ६

अथ शक्रो मुनेऽपृच्छत्स्वाधिकारेण दुर्मदः।
पुरुषं तं स्वमार्गान्तःस्थितमज्ञाय शंकरम् ॥ ७

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने नभगको आनन्द देनेवाले कृष्णदर्शन नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया ॥ ५७ ॥

यह पवित्र आख्यान सज्जनोंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करता है, पढ़ने और सुननेवालोंको भी यह समस्त कामनाओंका फल प्रदान करता है ॥ ५८ ॥

जो बुद्धिमान् प्रातःकाल तथा सायंकाल इस चरित्रका स्मरण करता है, वह कवि तथा मन्त्रवेत्ता हो जाता है और अन्तमें परमगति प्राप्त करता है ॥ ५९ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे

कृष्णदर्शनशिवावतारवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

नन्दीश्वरजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! अब आप शिवजीके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन सुनिये, जो इन्द्रके घमण्डको नष्ट करनेवाला है ॥ १ ॥

हे मुने! पूर्व समयमें बृहस्पति एवं देवताओंके सहित इन्द्र शिवजीका दर्शन करनेके लिये कैलास पर्वतपर जा रहे थे ॥ २ ॥

अपने दर्शनके लिये निरत चित्तवाले बृहस्पति तथा इन्द्रको आते जानकर उनके भावकी परीक्षा करनेके लिये नाना प्रकारकी लीला करनेवाले प्रभु शिवजी दिगम्बर, महाभीमरूप तथा जलती हुई अग्निके समान प्रभावाले अवधूतके रूपमें स्थित हो गये। सज्जनोंको गति प्रदान करनेवाले तथा सुन्दर आकृतिवाले वे अवधूतस्वरूप शिवजी लटकते हुए वस्त्र धारण किये उनका मार्ग रोककर खड़े हो गये ॥ ३—५ ॥

उसके बाद शिवजीके समीप जाते हुए उन बृहस्पति तथा इन्द्रने [अपने] मार्गके मध्यमें अद्भुत आकारवाले एक भयंकर पुरुषको देखा ॥ ६ ॥

हे मुने! यह देखकर अधिकारमदमें चूर हुए इन्द्रने अपने मार्गके बीचमें खड़े पुरुषको उसे शंकर न जानकर उससे पूछा ॥ ७ ॥

शक्र उवाच

कस्त्वं दिगंबराकारावधूतः कुत आगतः ।
किन्नाम तव विख्यातं तत्त्वतो वद मेऽचिरम् ॥ ८
स्वस्थाने संस्थितः शंभुः किं वान्यत्र गतोऽधुना ।
दर्शनार्थं हि तस्याहं गच्छामि सगुरुः सुरैः ॥ ९

नन्दीश्वर उवाच

शक्रेणेत्थं स पृष्ठश्च किञ्चिन्नोवाच पूरुषः ।
लीलागृहीतदेहः स शङ्करो मदहा प्रभुः ॥ १०
शक्रः पुनरपृच्छत्तं नोवाच स दिगंबरः ।
अविज्ञातगतिः शम्भुर्महाकौतुककारकः ॥ ११

पुनः पुरन्दरोऽपृच्छत् त्रैलोक्याधिपतिः स्वराट् ।
तूष्णीमास महायोगी महालीलाकरः स वै ॥ १२
इत्थं पुनः पुनः पृष्ठः शक्रेण स दिगम्बरः ।
नोवाच किञ्चिद्दग्धवान् शक्रदर्पजिघांसया ॥ १३
अथ चुक्रोध देवेशस्त्रैलोक्यैश्वर्यगर्वितः ।
उवाच वचनं क्रोधात्तं निर्भत्स्य जटाधरम् ॥ १४

इन्द्र उवाच

पृच्छमानोऽपि रे मूढ नोत्तरं दत्तवानसि ।
अतस्त्वां हन्मि वज्रेण कस्ते त्रातास्ति दुर्मते ॥ १५
इत्युदीर्य ततो वज्री संनिरीक्ष्य कुधा हि तम् ।
हन्तुं दिगम्बरं वज्रमुद्यतं स चकार ह ॥ १६
वज्रहस्तं च तं दृष्ट्वा शक्रं शीघ्रं सदाशिवः ।
चकार स्तम्भनं तस्य वज्रपातस्य शंकरः ॥ १७
ततः स पुरुषः क्रुद्धः करालाक्षो भयङ्करः ।
द्रुतमेव प्रजञ्चाल तेजसा प्रदहन्निव ॥ १८

बाहुप्रतिष्ठम्भुवा मन्युनान्तः शचीपतिः ।
समदह्यत भोगीव मन्त्ररुद्धपराक्रमः ॥ १९

शक्र बोले—दिगम्बर अवधूत वेष धारण किये हुए तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा क्या नाम है? तुम मुझे ठीक-ठीक शीघ्र बताओ ॥ ८ ॥

इस समय शिवजी अपने स्थानपर हैं अथवा कहीं गये हुए हैं? मैं देवताओं और गुरु बृहस्पतिको साथ लेकर उनके दर्शनहेतु जा रहा हूँ ॥ ९ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इन्द्रके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर लीलासे [अवधूत] देहधारी तथा अहंकारको चूर्ण करनेवाले उन पुरुषरूप प्रभु शिवने कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥ १० ॥

इन्द्रने उनसे पुनः पूछा, किंतु अलक्षित गतिवाले महाकौतुकी वे दिगम्बर शिव फिर भी कुछ नहीं बोले ॥ ११ ॥

जब त्रैलोक्याधिपति स्वराट् इन्द्रने पुनः पूछा, तो भी महान् लीला करनेवाले वे महायोगी मौन ही रहे। इस प्रकार बारंबार इन्द्रके द्वारा पूछे जानेपर भी दिगम्बर भगवान् शिवजी इन्द्रका गर्व नष्ट करनेकी इच्छासे कुछ नहीं बोले ॥ १२-१३ ॥

तब तीनों लोकोंके ऐश्वर्यसे गर्वित इन्द्रको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने क्रोधसे उन जटाधारीको धमकाते हुए कहा— ॥ १४ ॥

इन्द्र बोले—रे मूढ! रे दुर्मते! तुमने मेरे पूछनेपर भी कुछ भी उत्तर नहीं दिया, इसलिये मैं इस वज्रसे तुम्हारा वथ करता हूँ, देखें, कौन तुम्हारी रक्षा करता है। ऐसा कहकर इन्द्रने क्रोधपूर्वक उनकी ओर देखकर उन दिगम्बरको मारनेके लिये वज्र उठाया ॥ १५-१६ ॥

सदाशिव शंकरने हाथमें वज्र उठाये हुए इन्द्रको देखकर शीघ्र ही उनका स्तम्भन कर दिया ॥ १७ ॥

तदनन्तर भयंकर तथा विकराल नेत्रोंवाले वे पुरुष कुपित होकर अपने तेजसे [मानो इन्द्रको] जलाते हुए शीघ्र ही प्रज्वलित हो उठे ॥ १८ ॥

उस समय अपनी बाहुके स्तम्भित हो जानेके कारण उत्पन्न हुए क्रोधसे इन्द्र भीतर-ही-भीतर इस तरह जल रहे थे, जिस प्रकार मन्त्रके द्वारा अपने पराक्रमके रुक जानेसे सर्प मन-ही-मन जलता है ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा बृहस्पतिस्त्वेन प्रज्वलनं स्वतेजसा ।
पुरुषं तं धियामास प्रणाम हरं द्रुतम् ॥ २०

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ततो गुरुरुदारथीः ।
दण्डवत्कौ पुनर्नत्वा प्रभुं तुष्टाव भक्तिः ॥ २१

गुरुरुवाच

देवदेव महादेव शरणागतवत्सल ।
प्रसन्नो भव गौरीश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥ २२
मायया मोहिताः सर्वे ब्रह्मविष्वादयोऽपि ते ।
त्वां न जानन्ति तत्त्वेन जानन्ति त्वदनुग्रहात् ॥ २३

नन्दीश्वर उवाच

बृहस्पतिरिति स्तुत्वा स तदा शङ्करं प्रभुम् ।
पादयोः पातयामास तस्येशस्य पुरन्दरम् ॥ २४
ततस्तात् सुराचार्यः कृताञ्जलिरुदारथीः ।
बृहस्पतिरुवाचेदं प्रश्रयावनतः सुधीः ॥ २५

बृहस्पतिरुवाच

दीनानाथ महादेव प्रणां तव पादयोः ।
समुद्धर च मां तत्त्वं क्रोधं न प्रणयं कुरु ॥ २६
तुष्टो भव महादेव पाहीन्द्रं शरणागतम् ।
वह्निरेष समायाति भालनेत्रसमुद्धवः ॥ २७

नन्दीश्वर उवाच

इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यमवधूताकृतिः प्रभुः ।
उवाच करुणासिन्धुर्विहसन् स सदूतिकृत् ॥ २८

अवधूत उवाच

क्रोधाच्च निस्मृतं तेजो धारयामि स्वनेत्रतः ।
कथं हि कञ्चुकीं सर्पः संधते चोऽज्ञितां पुनः ॥ २९

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य शङ्करस्य बृहस्पतिः ।
उवाच साञ्जलिर्भूयो भयव्याकुलमानसः ॥ ३०

बृहस्पतिरुवाच

हे देव भगवन्भक्ता अनुकम्प्याः सदैव हि ।
भक्तवत्सलनामेति स्वं सत्यं कुरु शंकर ॥ ३१

बृहस्पतिने तेजसे प्रज्वलित होते हुए उन पुरुषोंको देखकर अपनी बुद्धिसे उन्हें शिव जान लिया और शीघ्रतासे उन्हें प्रणाम किया ॥ २० ॥

इसके बाद उदार बुद्धिवाले वे गुरु बृहस्पति हाथ जोड़कर पुनः पृथ्वीमें [लेटकर] दण्डवत् प्रणाम करके भक्तिपूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

गुरु बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागत-वत्सल! प्रसन्न होइये। हे गौरीश! हे सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता भी आपकी मायासे मोहित होकर आपको यथार्थ रूपमें नहीं जान पाते हैं, केवल आपकी कृपासे ही जान सकते हैं ॥ २२-२३ ॥

नन्दीश्वर बोले—बृहस्पतिने इस प्रकार प्रभु शिवजीकी स्तुति करके इन्द्रको उन ईश्वरके चरणोंमें गिरा दिया। तदनन्तर हे तात! उदार बुद्धिवाले विद्वान् देवगुरु बृहस्पतिने हाथ जोड़कर विनम्रतासे कहा— ॥ २४-२५ ॥

बृहस्पति बोले—हे दीननाथ! हे महादेव! मैं आपके चरणोंमें पड़ा हूँ, आप मेरा और इनका उद्धार कीजिये; क्रोध नहीं, बल्कि प्रेम कीजिये ॥ २६ ॥

हे महादेव! आप प्रसन्न होइये और अपने शरणमें आये हुए इन्द्रकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आपके भालस्थ नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि [इन्द्रको जलानेके लिये] आ रही है ॥ २७ ॥

नन्दीश्वर बोले—देवगुरुका यह वचन सुनकर अवधूत आकृतिवाले, करुणासिन्धु, उत्तम लीला करनेवाले उन प्रभुने हँसते हुए कहा— ॥ २८ ॥

अवधूत बोले—मैं क्रोधके कारण अपने नेत्रसे निकले हुए तेजको किस प्रकार धारण करूँ? क्या सर्प कंचुकीका त्याग करनेके उपरान्त पुनः उसे धारण कर सकता है ॥ २९ ॥

नन्दीश्वर बोले—उन शंकरके इस वचनको सुनकर भयसे व्याकुल मनवाले बृहस्पतिने हाथ जोड़कर पुनः कहा— ॥ ३० ॥

बृहस्पति बोले—हे देव! हे भगवन्! भक्त सर्वदा अनुकम्प्याके योग्य होते हैं। हे शंकर! अपने भक्तवत्सल नामको सार्थक कीजिये ॥ ३१ ॥

क्षेप्तुमन्यत्र देवेश स्वतेजोऽत्युग्रमर्हसि।
उद्धर्ता सर्वभक्तानां समुद्धर पुरन्दरम्॥ ३२

हे देवेश! आप अपने इस अत्यन्त उग्र तेजको किसी अन्य स्थानपर रख सकते हैं; आप सभी भक्तोंका उद्धार करनेवाले हैं, अतः इन्द्रका उद्धार कीजिये ॥ ३२ ॥

नन्दीश्वर उवाच
इत्युक्तो गुरुणा रुद्रो भक्तवत्सलनामभाक्।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा सुरेऽयं प्रणतार्तिहा॥ ३३

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार बृहस्पतिके कहनेपर भक्तवत्सल नामसे पुकारे जानेवाले तथा भक्तोंका कष्ट दूर करनेवाले भगवान् रुद्रने प्रसन्नचित्त होकर देवगुरुसे कहा— ॥ ३३ ॥

रुद्र उवाच
प्रीतस्तेऽहं सुराचार्य ददामि वरमुत्तमम्।
इन्द्रस्य जीवदानेन जीवेति त्वं प्रथां व्रज॥ ३४

समुद्धूतोऽनलो योऽयं भालनेत्रात्सुरासहः।
एनं त्यक्ष्याम्यहं दूरे यथेन्द्रं नैव पीडियेत्॥ ३५

रुद्र बोले—हे सुराचार्य! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये आपको उत्तम वर देता हूँ कि इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण आप लोकमें जीव नामसे विख्यात होंगे। मेरे भालस्थ नेत्रसे जो देवताओंके लिये असह्य अग्नि उत्पन्न हुई है, उसे मैं दूर फेंक देता हूँ, जिससे कि यह इन्द्रको पीड़ित न कर सके ॥ ३४-३५ ॥

नन्दीश्वर उवाच
इत्युक्त्वा स करे धृत्वा स्वतेजोऽनलमद्धुतम्।
भालनेत्रसमुद्धूतं प्राक्षिपल्लवणाभ्यसि॥ ३६

अथो शिवस्य तत्तेजो भालनेत्रसमुद्धवम्।
क्षिप्तं च लवणाम्भोधौ सद्यो बालो बभूव ह ॥ ३७

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर शिवजीने अपने भालस्थ नेत्रसे उत्पन्न हुई उस अद्भुत अग्निको हाथमें लेकर लवणसमुद्रमें फेंक दिया ॥ ३६ ॥

स जलन्धरनामाभूतिसन्धुपुत्रोऽसुरेश्वरः।
तं जघान महेशानो देवप्रार्थनया प्रभुः॥ ३८

तत्पश्चात् शिवके भालनेत्रसे उत्पन्न वह तेज, जो लवणसमुद्रमें फेंका गया था, शीघ्र ही बालकरूपमें परिणत हो गया ॥ ३७ ॥

इत्थं कृत्वा सुचरितं शङ्करो लोकशङ्करः।
अवधूतस्वरूपेण ततश्चान्तर्हितोऽभवत्॥ ३९

बभूवः सकला देवाः सुखिनश्चातिनिर्भयाः।
गुरुशक्रौ भयान्मुक्तौ जग्मतुः सुखमुत्तमम्॥ ४०

यदर्थे गमनोद्युक्तौ दर्शनं प्राप्य तस्य तौ।
कृतार्थौ गुरुशक्रौ हि स्वस्थानं जग्मतुर्मुदा॥ ४१

वही बालक समुद्रका पुत्र तथा समस्त असुरोंका अधिपति होकर जलन्धर नामसे विख्यात हुआ, फिर देवताओंकी प्रार्थनासे प्रभु शिवजीने ही उसका वध किया ॥ ३८ ॥

अवधूतेश्वराहोऽवतारस्ते कथितो मया।
परमेशस्य परमानन्ददः खलदण्डदः॥ ४२

लोककल्याणकारी शिवजी अवधूतरूपसे इस प्रकारका सुन्दर चरित्रकर पुनः अन्तर्धान हो गये और सभी देवता सुखी तथा निर्भय हो गये। बृहस्पति और इन्द्र भी भयमुक्त होकर अत्यन्त सुखी हो गये ॥ ३९-४० ॥

जिनका दर्शन करनेहेतु इन्द्र और बृहस्पति जा रहे थे, उनका दर्शन प्राप्तकर वे कृतार्थ हो गये और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये ॥ ४१ ॥

[हे सनत्कुमार!] मैंने दुष्टोंको दण्ड देनेवाले तथा परमानन्ददायक परमेश्वर शिवजीके अवधूतेश्वर नामक अवतारका वर्णन आपसे कर दिया ॥ ४२ ॥

इदमाख्यानमनधं यशस्यं स्वर्ग्यमेव च।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम्॥ ४३

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः।
इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवगतिं लभेत्॥ ४४

यह आख्यान पवित्र, दिव्य, यशको बढ़ानेवाला, स्वर्ग, भोग और मोक्ष देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। जो स्थिरचित्त हो प्रतिदिन इसे सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें शिवकी गतिको प्राप्त कर लेता है॥ ४३-४४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां नन्दीश्वरसनत्कुमारसंवादे
अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रिवर्णं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके नन्दीश्वर-सनत्कुमार-संवादमें
अवधूतेश्वरशिवावतारचरित्रिवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः शिवजीके भिक्षुवर्यावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

अथ वक्ष्ये मुनिश्रेष्ठ शाम्भोः शृणववतारकम्।
स्वभक्तदयया विप्र नारीसन्देहभंजकम्॥ १

आसीत्सत्यरथो नामा विदर्भविषये नृपः।
धर्मात्मा सत्यशीलश्च महाशैवजनप्रियः॥ २
तस्य राज्ञः सुधर्मेण महीं पालयतो मुने।
महान्कालो व्यतीयाय सुखेन शिवधर्मतः॥ ३

कदाचित्स्य राज्ञस्तु शाल्वैश्च पुरोधिभिः।
महान् रणो बभूवाथ बहुसैन्यैर्बलोद्धतैः॥ ४

स विदर्भनृपः कृत्वा सार्थं तैर्दृणं रणम्।
प्रनष्टोरुबलः शाल्वैर्निहतो दैवयोगतः॥ ५
तस्मिन्नृपे हते युद्धे शाल्वस्तु भयविह्वलाः।
सैनिका हतशेषाश्च मन्त्रिभिः सह दुद्धुवुः॥ ६

अथ तस्य महाराज्ञी रात्रौ स्वपुरतो मुने।
संरुद्धा रिपुभिर्यत्नादन्तर्वली बहिर्ययौ॥ ७

निर्गता शोकसंतप्ता सा राजमहिषी शनैः।
प्राचीं दिशं ययौ दूरं स्मरन्तीशपदाम्बुजम्॥ ८

नन्दीश्वर बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! हे विप्र ! अब मैं शिवजीके उस अवतारका वर्णन करूँगा, जिसे [किसी] नारीके सन्देहका निवारण करनेके लिये उन्होंने अपने भक्तपर दया करके ग्रहण किया था, उसे आप सुनिये॥ १॥

विदर्भनगरमें धर्मात्मा, सत्यशील तथा शिवभक्तोंसे प्रेम करनेवाला सत्यरथ नामक एक राजा था॥ २॥

हे मुने ! धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करते एवं शिवधर्मसे सुखपूर्वक निवास करते हुए उस राजाका बहुत समय बीत गया॥ ३॥

किसी समय उसके नगरको अवरुद्ध करनेवाले, बहुत-सी सेनासे युक्त तथा बलसे उन्मत्त शाल्वसंज्ञक क्षत्रिय वीरोंके साथ उस राजाका घोर युद्ध हुआ॥ ४॥

उन शाल्ववीरोंके साथ भयानक युद्ध करके नष्ट हुए पराक्रमवाला वह विदर्भराज दैवयोगसे उनके द्वारा मार दिया गया। शाल्वोंके द्वारा रणभूमिमें उस राजाके मारे जानेपर उसके बचे हुए सैनिक भयसे व्याकुल होकर मन्त्रियोंके साथ भाग गये॥ ५-६॥

हे मुने ! उसके बाद उस राजाकी गर्भवती रानी शत्रुओंके द्वारा घिरी होनेपर भी रात्रिके समय बड़े यत्नसे नगरसे बाहर चली गयी। शोकसे सन्तप्त वह रानी [राजधानीसे] निकलकर शिवके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई पूर्व दिशाकी ओर बहुत दूर चली गयी॥ ७-८॥

अथ प्रभाते सा राज्ञी दर्दर्श विमलं सरः ।
अतीता दूरमध्वानं दयया शङ्करस्य हि ॥ ९

तत्रागत्य प्रिया राज्ञः संतप्ता सुकुमारिणी ।
निवासार्थं सरस्तीरे छायावृक्षमुपाश्रयत् ॥ १०
तत्र दैववशाद्राज्ञी मुहूर्ते सद्गुणान्विते ।
असूत तनयं दिव्यं सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ ११

अथ तज्जननी दैवात्मिताति नृपाङ्गना ।
सरोऽवतीर्णा पानार्थं ग्रस्ता ग्राहेण पाथसि ॥ १२

स सुतो जातमात्रस्तु क्षुत्पिपासार्दितो भृशम् ।
रुरोद च सरस्तीरे विनष्टपितृमातृकः ॥ १३

तस्मिन्वने क्रन्दमाने जातमात्रे सुते मुने ।
कृपान्वितो महेशोऽभूदन्तर्यामी स रक्षकः ॥ १४

प्रेरिता मनसा काचिदीशेन त्रासहारिणा ।
अकस्मादागता तत्र भ्रमन्ती भैक्ष्यजीविनी ॥ १५
सा त्वेकहायनं बालं वहन्ती विधवा निजम् ।
अनाथमेकं क्रन्दन्तं शिशुं तत्र दर्दर्श ह ॥ १६
सा दृष्ट्वा तत्र तं बालं वने निर्मनुजे मुने ।
विस्मिताति द्विजस्त्री सा चिचिन्त हृदये बहु ॥ १७

अहो सुमहदाश्र्यमिदं दृष्टं मयाथुना ।
असंभाव्यमकथ्यं च सर्वथा मनसा गिरा ॥ १८

अच्छिन्ननाभिनालोऽयं रसायां केवलं शिशुः ।
शेते मातृविहीनश्च क्रन्दस्तेजस्विनां वरः ॥ १९

अस्य पित्रादयः केऽपि न सन्तीह सहायिनः ।
कारणं किं बभूवाथ ह्यहो दैवबलं महत् ॥ २०

न जाने कस्य पुत्रोऽयमस्य ज्ञातात्र कोऽपि न ।
यतः पृच्छाम्यस्य जन्म जाता च करुणा मयि ॥ २१

इस प्रकार शिवजीकी दयासे [सुरक्षित हुई] वह रानी नगरसे बहुत दूर जा पहुँची और उसने प्रातःकालके समय [वहाँपर] एक स्वच्छ सरोवरको देखा ॥ ९ ॥

वहाँ आकर राजाकी उस सुकुमार पत्नीने शोकसे व्याकुल हो विश्रामके लिये उस सरोवरके तटपर एक छायादार वृक्षका आश्रय लिया । वहाँपर रानीने दैववश शुभ ग्रहोंसे युक्त मुहूर्तमें सर्वलक्षणसम्पन्न दिव्य पुत्रको जन्म दिया ॥ १०-११ ॥

उसी समय भाग्यवश प्याससे व्याकुल हुई उस सद्योजात शिशुकी माता वह रानी ज्यों ही जल लेनेके लिये सरोवरमें उतरी कि जलमें स्थित ग्राहने उसे पकड़ लिया । भूख एवं प्याससे अत्यधिक व्याकुल तथा पिता एवं मातासे रहित वह नवजात बालक सरोवरके किनारे रोने लगा ॥ १२-१३ ॥

हे मुने ! [उत्पन्न होते ही भूख-प्याससे व्याकुल हो] रोते हुए उस नवजात शिशुपर सर्वान्तर्यामी तथा सर्वरक्षक वे महेश्वर दयार्द्र हो उठे ॥ १४ ॥

उसी समय कष्ट दूर करनेवाले भगवान्‌के द्वारा मनसे प्रेरित की गयी एक भिखारिन वहाँ अकस्मात् आ पहुँची । अपने एक वर्षके पुत्रको लिये हुए उस विधवाने उस रोते हुए अनाथ बच्चेको वहाँ देखा ॥ १५-१६ ॥

हे मुने ! उस बालकको निर्जन वनमें देखकर वह ब्राह्मणी अत्यन्त आश्चर्यचकित हो अपने हृदयमें बहुत विचार करने लगी ॥ १७ ॥

अहो ! मैंने इस समय बहुत बड़ा आश्चर्य देखा, जो असम्भव एवं मन तथा वाणीसे सर्वथा अकथनीय है । तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ इस बालकका अभीतक नालच्छेदन नहीं हुआ है और यह मातृविहीन हो रोता हुआ अकेला ही पृथिवीपर लेटा हुआ है ॥ १८-१९ ॥

यहाँ तो इसकी सहायता करनेवाले इसके माता-पिता आदि कोई नहीं हैं, इसमें क्या कारण हो सकता है, अहो, दैवबल बड़ा प्रबल है ! ॥ २० ॥

यह न जाने किसका पुत्र है, इसे जाननेवाला भी यहाँ कोई नहीं है, जिससे इसके जन्मके विषयमें मैं पूछूँ । मुझे तो इसपर बहुत ही दया आ रही है ॥ २१ ॥

इच्छायेनं पोषितुं हि बालमौरसपुत्रवत् ।
संस्पष्टुं नोत्सहेऽज्ञात्वा कुलजन्मादि चास्य वै ॥ २२

नन्दीश्वर उवाच

इति संचिन्त्यमानायां तस्यां विप्रवरस्त्रियाम् ।
कृपां चकार महतीं शंकरो भक्तवत्सलः ॥ २३
दधे भिक्षुस्वरूपं हि महालीलो महेश्वरः ।
सर्वथा भक्तसुखदो निरुपाधिः स्वयं सदा ॥ २४

तत्राजगाम सहसा स भिक्षुः परमेश्वरः ।
यत्रास्ति संदेहवती द्विजस्त्री ज्ञातुमिच्छती ॥ २५

भिक्षुवर्यस्वरूपोऽसावविज्ञातगतिः प्रभुः ।
तामाह विप्रवनितां विहस्य करुणानिधिः ॥ २६

भिक्षुवर्य उवाच

सन्देहं कुरु नो चित्ते विप्रभामिनि मा खिद ।
रक्षैनं बालकं प्रीत्या सुपवित्रं स्वपुत्रकम् ॥ २७
अनेन शिशुना श्रेयः प्राप्यसे न चिरात्परम् ।
पुण्डीहि सर्वथा होनं महातेजस्विनं शिशुम् ॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तवन्तं तं भिक्षुस्वरूपं करुणानिधिम् ।
सा विप्रवनिता शम्भुं प्रीत्या पप्रच्छ सादरम् ॥ २९

विप्रवनितोवाच

त्वदाज्ञयैनं बालं हि रक्षिष्यामि स्वपुत्रवत् ।
पोक्ष्यामि नात्र सन्देहो मद्भाग्यात्त्वमिहागतः ॥ ३०
तथापि ज्ञातुमिच्छामि विशेषेण तु तत्त्वतः ।
कोऽयं कस्य सुतश्चायं कस्त्वमत्र समागतः ॥ ३१

मुहुर्मम समायाति ज्ञानं भिक्षुवर प्रभो ।
त्वं शिवः करुणासिन्धुस्त्वद्भक्तोऽयं शिशुः पुरा ॥ ३२

केनचित्कर्मदोषेण सम्प्राप्तोऽयं दशामिमाम् ।
तद्भुक्त्वा परमं श्रेयः प्राप्यते त्वदनुग्रहात् ॥ ३३

मैं अब इस बालकका अपने औरसपुत्रकी भाँति पालन करना चाहती हूँ, परंतु इसके कुल और जन्म आदिका ज्ञान न होनेसे इसे छूनेका साहस नहीं होता ॥ २२ ॥

नन्दीश्वर बोले—जब वह श्रेष्ठ ब्राह्मणी अपने मनमें इस प्रकारका विचार कर रही थी, उसी समय भक्तवत्सल शिवजीने बड़ी दया की ॥ २३ ॥

सदैव महान् लीलाएँ करनेवाले, स्वयं उपाधिरहित तथा भक्तोंको हर प्रकारका सुख देनेवाले उन महेश्वरने [उस समय] भिक्षुकका रूप धारण कर लिया ॥ २४ ॥

भिक्षुकरूपधारी वे परमेश्वर वहाँ सहसा आये, जहाँ उस बालकके विषयमें जाननेकी इच्छावाली सन्देहग्रस्त ब्राह्मणी विद्यमान थी ॥ २५ ॥

तब अविज्ञातगति तथा दयासागर उन भिक्षुक-रूपधारी भगवान् शंकरने हँसकर उस ब्राह्मणपत्नीसे कहा— ॥ २६ ॥

भिक्षुश्रेष्ठ बोले—हे ब्राह्मणी! तुम अपने मनमें शंका मत करो और दुखी मत होओ, तुम अपने पुत्रतुल्य इस पवित्र बालककी प्रसन्नतापूर्वक रक्षा करो थोड़े ही समयके उपरान्त इस बालकसे तुम्हारा परम कल्याण होनेवाला है, अतः सब प्रकारसे इस महातेजस्वी शिशुका पालन-पोषण करो ॥ २७-२८ ॥

नन्दीश्वर बोले—भिक्षुरूप धारण करनेवाले करुणासागर शिवजीने जब इस प्रकार कहा, तब ब्राह्मणीने प्रेमके साथ आदरपूर्वक उनसे पूछा— ॥ २९ ॥

ब्राह्मणी बोली—मैं आपकी आज्ञासे अपने पुत्रके समान इस बालककी रक्षा करूँगी तथा भरण-पोषण करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है, आप मेरे भाग्यसे ही यहाँ पथारे हैं। फिर भी मैं आपसे सत्य-सत्य विशेष रूपसे जानना चाहती हूँ कि यह कौन है, यह किसका पुत्र है और यहाँ आये हुए आप कौन हैं? ॥ ३०-३१ ॥

हे भिक्षुवर! हे प्रभो! मुझे बारंबार ऐसा ज्ञात हो रहा है कि आप दयासागर भगवान् शिव हैं और यह शिशु पूर्वजन्ममें आपका भक्त था ॥ ३२ ॥

किसी कर्मके दोषसे यह इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है, उसे भोगकर आपकी कृपासे यह पुनः परम कल्याणको प्राप्त करेगा ॥ ३३ ॥

त्वन्माययैव साहं वै मार्गभृष्टा विमोहिता ।
आगता प्रेषिता त्वत्तो ह्यस्य रक्षणहेतुः ॥ ३४

नन्दीश्वर उवाच

इति तदर्शनप्राप्तविज्ञानां विप्रकामिनीम् ।
ज्ञातुकामां विशेषेण प्रोचे भिक्षुतनुः शिवः ॥ ३५

भिक्षुवर्य उवाच

शृणु प्रीत्या विप्रपत्ति बालस्यास्य पुरेहितम् ।
सर्वमन्यस्य सुप्रीत्या वक्ष्यते तत्त्वतोऽनधे ॥ ३६

सुतो विदर्भराजस्य शिवभक्तस्य धीमतः ।
अयं सत्यरथस्यैव स्वर्धर्मनिरतस्य हि ॥ ३७

शृणु सत्यरथो राजा हतः शाल्वै रणे परैः ।
तत्पत्नी निशि सुव्यग्रा निर्ययौ स्वगृहाद् द्रुतम् ॥ ३८

असूत तनयं चैनं समायाता प्रगेऽत्र हि ।
सरोऽवतीर्णा तृष्या ग्रस्ता ग्राहेण दैवतः ॥ ३९

नन्दीश्वर उवाच

इति तस्य समुत्पत्तिं तत्पितुः सङ्गरे मृतिम् ।
तन्मातृमरणं ग्राहात्सर्वं तस्यै न्यवेदयत् ॥ ४०

अथ सा ब्राह्मणी चैव विस्मिताति मुनीश्वर ।
पुनः पप्रच्छ तं भिक्षुं ज्ञानिनं सिद्धरूपकम् ॥ ४१

ब्राह्मण्युवाच

स राज्ञोऽस्य पिता भिक्षो वरभोगान्तरैव हि ।
कस्माच्छाल्वैः स्वरिपुभिः स्वल्पेहैश्च विघातितः ॥ ४२

कस्मादस्य शिशोर्मता ग्राहेणाशु सुभक्षिता ।
यस्मादनाथोऽयं जातो विबन्धुश्चैव जन्मतः ॥ ४३

कस्मात्सुतो ममापीह सुदरिद्रो हि भिक्षुकः ।
भवेत्कथं सुखं भिक्षो पुत्रयोरनयोर्वद ॥ ४४

नन्दीश्वर उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा स भिक्षुः परमेश्वरः ।
विप्रपत्न्याः प्रसन्नात्मा प्रोवाच विहस्तंश्च ताम् ॥ ४५

आपकी मायासे मोहित हुई मैं अपना मार्ग भूलकर इधर आ गयी, [जिससे ज्ञात होता है कि] इसके पालन करनेके लिये आपने ही मुझे यहाँ भेजा है ॥ ३४ ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीके दर्शनसे ज्ञानको प्राप्त हुई तथा विशेषरूपसे जाननेकी इच्छावाली उस ब्राह्मणीसे भिक्षुरूपधारी शिवने कहा— ॥ ३५ ॥

भिक्षुवर बोले—हे विप्रपत्ति ! इस सर्वमात्य बालकका पूर्वकालीन इतिहास तुमसे प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ । हे अनधे ! तुम प्रेमपूर्वक इसे सुनो ॥ ३६ ॥

यह [बालक] शिवभक्त, बुद्धिमान् तथा अपने धर्ममें निरत रहनेवाले विदर्भराज सत्यरथका पुत्र है ॥ ३७ ॥

[हे ब्राह्मणी!] सुनो, राजा सत्यरथ शत्रु शाल्वोंद्वारा युद्धमें मार डाले गये, जिससे अत्यन्त भयभीत हुई उनकी पत्नी रात्रिमें शीघ्रतासे अपने घरसे निकल गयी ॥ ३८ ॥

उन्होंने इस वनमें आकर प्रातःकाल होते-होते इस पुत्रको जन्म दिया, किंतु प्यास लगनेसे वह सरोवरमें उतरीं, तब दुर्भाग्यसे ग्राहने उन्हें अपना ग्रास बना लिया ॥ ३९ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन्होंने बालककी उत्पत्ति, उसके पिताका संग्राममें मरण एवं ग्राहद्वारा उसकी माताकी मृत्युके विषयमें उससे कहा ॥ ४० ॥

हे मुनीश्वर ! तब वह ब्राह्मणी अत्यन्त विस्मित हुई और उसने ज्ञानी तथा सिद्धरूप उन भिक्षुकसे पुनः पूछा— ॥ ४१ ॥

ब्राह्मणी बोली—हे भिक्षो ! इस राजपुत्रका श्रेष्ठ पिता उत्तमोत्तम भोग करते हुए भी इन क्षुद्र शाल्वोंके द्वारा किस प्रकार मारा गया और ग्राहने इस शिशुकी माताको शीघ्र क्यों ग्रास बना लिया, जिसके कारण यह जन्मसे अनाथ एवं बन्धुरहित हो गया है ? ॥ ४२-४३ ॥

हे भिक्षो ! मेरा यह पुत्र भी परम दरिद्र तथा भिक्षुक क्यों हुआ ? किस उपायसे मेरे ये दोनों पुत्र सुखी होंगे, यह बताइये ॥ ४४ ॥

नन्दीश्वर बोले—उस ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर भिक्षुरूपधारी उन परमेश्वरने प्रसन्नचित्त होकर हँसते हुए उससे कहा— ॥ ४५ ॥

भिक्षुवर्य उवाच

विप्रपत्ति विशेषेण सर्वप्रश्नान्वदामि ते ।
शृणु त्वं सावधानेन चरित्रमिदमुत्तमम् ॥ ४६
अमुष्य बालस्य पिता स विदर्भमहीपतिः ।
पूर्वजन्मनि पाण्ड्योऽसौ बभूव नृपसत्तमः ॥ ४७
स शैवनृपतिर्धर्मात्पालयन्निखिलां महीम् ।
स्वप्रजां रञ्जयामास सर्वोपद्रवनाशनः ॥ ४८

कदाचित्स हि सर्वेशं प्रदोषे पर्यपूजयत् ।
त्रयोदश्यां निराहारो दिवानक्तव्रती शिवम् ॥ ४९
तस्य पूजयतः शाम्भुं प्रदोषे गिरिशं रते ।
महान् शब्दो बभूवाथ विकटः सर्वथा पुरे ॥ ५०
तमाकर्ण्य रवं सोऽथ राजा त्यक्तशिवार्चनः ।
रिष्वागमनशङ्कातो निर्ययौ भवनाद् बहिः ॥ ५१

एतस्मिन्नेव काले तु तस्यामात्यो महाबली ।
गृहीतशत्रुसामन्तो राजान्तिकमुपाययौ ॥ ५२

तं दृष्ट्वा शत्रुसामन्तं महाक्रोधेन विह्वलः ।
अविचार्य वृषन्तस्य शिरश्छेदमकारयत् ॥ ५३

असमाप्येशपूजां तामशुचिर्नष्टधीर्नृपः ।
रात्रौ चकार सुप्रीत्या भोजनं नष्टमंगलः ॥ ५४

विदर्भे सोऽभवद्राजा जन्मनीह शिवव्रती ।
शिवार्चनान्तरायेण परैर्भोगान्तरे हतः ॥ ५५

तत्पिता यः पूर्वभवे सोऽस्मिञ्जन्मनि तत्सुतः ।
अयमेव हतैश्वर्यः शिवपूजाव्यतिक्रमात् ॥ ५६

अस्य माता पूर्वभवे सपलीं छद्मनाहरत् ।
भक्षिता तेन पापेन ग्राहेणास्मिन् भवे हि सा ॥ ५७

एषा प्रवृत्तिरेतेषां भवत्यै परिकीर्तिता ।
अनर्चितशिवा भक्त्या प्राप्नुवन्ति दरिद्रताम् ॥ ५८

भिक्षुवर्य बोले—हे विप्रपत्ति ! मैं तुम्हारे सभी प्रश्नोंका उत्तर विशेषरूपसे दे रहा हूँ, तुम सावधान होकर इस उत्तम चरित्रका श्रवण करो ॥ ४६ ॥

विदर्भ देशका राजा, जो इस बालकका पिता था, वह पूर्वजन्ममें पाण्ड्य देशका श्रेष्ठ राजा था ॥ ४७ ॥

सम्पूर्ण उपद्रवोंका नाश करनेवाला वह शिवभक्त राजा सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करता हुआ अपनी प्रजाको प्रसन्न रखता था ॥ ४८ ॥

किसी समय उसने दिनमें निराहार रहकर नक्तव्रत करते हुए त्रयोदशीके प्रदोषकालमें शिवकी पूजा की। जब वह प्रदोषकालमें शिवजीका पूजन कर रहा था, तभी नगरमें बड़ा भयानक शब्द हुआ ॥ ४९-५० ॥

उस [भयावह] ध्वनिको सुनकर वह राजा शत्रुके आक्रमणकी आशंकासे शिवार्चनका परित्यागकर घरसे बाहर निकल पड़ा ॥ ५१ ॥

इसी समय उसका महाबली मन्त्री भी शत्रुता करनेवाले सामन्तको साथ लेकर राजाके निकट आ गया ॥ ५२ ॥

अत्यधिक क्रोधसे व्याकुल राजाने उस शत्रु सामन्तको देखकर बिना धर्माधर्मका विचार किये निर्दयताके साथ उसका सिर कटवा दिया ॥ ५३ ॥

उस शिवपूजाको समाप्त किये बिना ही अपवित्र तथा नष्ट बुद्धिवाले राजाने रातमें प्रेमपूर्वक भोजन किया, जिससे वह मंगलहीन हो गया ॥ ५४ ॥

उसके पश्चात् इस जन्ममें वह विदर्भ देशका शिवभक्त राजा हुआ, किंतु [पूर्वजन्ममें] शिवार्चनमें होनेवाले पापके कारण शत्रुओंने राज्यसुखभोगके समय ही उसका वध कर दिया ॥ ५५ ॥

पूर्वजन्ममें जो उसका पुत्र था, वह ही इस जन्ममें भी हुआ है, किंतु शिवपूजाके व्यतिक्रमसे यह सारे ऐश्वर्यसे रहित है ॥ ५६ ॥

इसकी माताने पूर्वजन्ममें अपनी सौतको छलसे मरवा दिया था, उस पापसे इस जन्ममें उसे ग्राहने निगल लिया ॥ ५७ ॥

[हे ब्राह्मणी!] मैंने इन सबका सारा वृत्तान्त तुमसे कह दिया, भक्तिपूर्वक शिवकी अर्चना न करनेवाले मनुष्य दरिद्र हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

एष ते तनयः पूर्वजन्मनि ब्राह्मणोत्तमः।
प्रतिग्रहैर्वयो निन्ये न यज्ञाद्यैः सुकर्मभिः॥ ५९

अतो दारिद्र्यमापन्नः पुत्रस्ते द्विजभामिनि।
तद्वेषपरिहारार्थं शरणं शंकरं व्रज॥ ६०

एताभ्यां खलु बालाभ्यां शिवपूजा विधीयताम्।
उपवीतानन्तरं हि शिवः श्रेयः करिष्यति॥ ६१
नन्दीश्वर उवाच

इति तामुपदिश्याथ भिक्षुवर्यतनुः शिवः।
स्वरूपं दर्शयामास परमं भक्तवत्सलः॥ ६२
अथ सा विप्रवनिता ज्ञात्वा तं शंकरं प्रभुम्।
सुप्रणाम्य हि तुष्टाव प्रेम्णा गद्ददया गिरा॥ ६३

ततः स भगवान् शम्भुर्धृतभिक्षुतनुर्दुत्तम्।
पश्यन्त्या विप्रपत्यास्तु तत्रैवान्तरधीयत॥ ६४
अथ तस्मिन् गते भिक्षौ विश्रब्धा ब्राह्मणी च सा।
तमर्भकं समादाय सस्वपुत्रा गृहं यथौ॥ ६५

एकचक्राह्वये रम्ये ग्राम्ये कृतनिकेतना।
स्वपुत्रं राजपुत्रं च वरान्नैश्च व्यवर्धयत्॥ ६६

ब्राह्मणौ कृतसंस्कारौ कृतोपनयनौ च तौ।
ववृथाते स्वगेहे च शिवपूजनतत्परौ॥ ६७
तौ शाण्डिल्यमुनेस्तात निदेशान्नियमस्थितौ।
प्रदोषे चक्रतुः शम्भोः पूजां कृत्वा व्रतं शुभम्॥ ६८

कदाचिद् द्विजपुत्रेण विनासौ राजनन्दनः।
नद्यां स्नातुं गतः प्राप निधानकलशं वरम्॥ ६९

एवं पूजयतोः शम्भुं राजद्विजकुमारयोः।
सुखेनैव व्यतीयाय तयोर्मासिचतुष्टयम्॥ ७०

एवमर्चयतोः शम्भुं भूयोऽपि परया मुदा।
संवत्सरो व्यतीयाय तस्मिन्नैव तयोर्गृहे॥ ७१

तुम्हारा यह पुत्र पूर्वजन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण था, इसने यज्ञादि सुकर्म किये नहीं; केवल प्रतिग्रहोंको लेनेमें ही अपना जीवन बिता दिया। हे ब्राह्मणी! इसीलिये तुम्हारा पुत्र दरिद्र हुआ है, उन दोषोंको दूर करनेके लिये तुम शंकरकी शरणमें जाओ और इन दोनों बालकोंको लेकर शिवजीकी पूजा करो। इन दोनोंका यज्ञोपवीत हो जानेके पश्चात् शिवजी कल्याण करेंगे॥ ५९—६१॥

नन्दीश्वर बोले—उसे ऐसा उपदेश देकर भिक्षुरूपधारी भक्तवत्सल भगवान् शिवने उसे अपना उत्कृष्ट स्वरूप दिखाया॥ ६२॥

इसके बाद वह ब्राह्मणी उन भिक्षुश्रेष्ठको शिव जानकर उन्हें भलीभाँति प्रणाम करके प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें उन प्रभुकी स्तुति करने लगी॥ ६३॥

उसके बाद विप्रपत्नीके देखते-देखते भिक्षुरूपधारी वे भगवान् शिव शीघ्र ही वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ६४॥

भिक्षुकके चले जानेपर ब्राह्मणीको विश्वास हो गया और उस लड़केको लेकर वह अपने पुत्रसंहित घर चली गयी॥ ६५॥

एकचक्रा नामक रमणीय ग्राममें निवास करती हुई वह ब्राह्मणी उत्तम अन्नोंसे अपने पुत्र तथा राजपुत्रका पालन करने लगी॥ ६६॥

पुनः ब्राह्मणोंने उन दोनोंका यज्ञोपवीत-संस्कार सम्पन्न किया, वे दोनों शिवपूजामें तत्पर हो अपने घरमें बढ़ने लगे॥ ६७॥

हे तात! वे दोनों ही शाण्डिल्य मुनिकी आज्ञासे नियममें तत्पर होकर शुभ व्रत करके प्रदोषकालमें शिवजीका पूजन करने लगे॥ ६८॥

किसी समय ब्राह्मणपुत्रके बिना ही नदीमें स्नान करनेके लिये गये हुए राजपुत्रने धनसे परिपूर्ण एक सुन्दर कलश पाया॥ ६९॥

इस प्रकार शिवजीकी पूजा करते हुए उन राजकुमार और ब्राह्मणकुमारके सुखपूर्वक चार महीने बीत गये॥ ७०॥

इसी रीतिसे अत्यन्त प्रसन्नतासे पुनः शिवजीका पूजन करते हुए उन दोनोंका उस घरमें एक वर्ष व्यतीत हुआ॥ ७१॥

संवत्सरे व्यतिक्रान्ते स राजतनयो मुने।
गत्वा वनान्ते विप्रेण शिवस्यानुग्रहाद्विभोः ॥ ७२

अकस्मादागतां तत्र दत्तां तज्जनकेन ह।
विवाह्य गन्धर्वसुतां चक्रे राज्यमकण्टकम् ॥ ७३
या विप्रवनिता पूर्वं तमपुष्णात्स्वपुत्रवत्।
सैव माताभवत्तस्य स भ्राता द्विजनन्दनः ॥ ७४

इत्थमाराध्य देवेशं धर्मगुप्ताह्वयः स वै।
विदर्भविषये राज्या तया भोगं चकार ह ॥ ७५

भिक्षुवर्यावितारस्ते वर्णितश्च मयाधुना।
शिवस्य धर्मगुप्ताह्वनृपबालसुखप्रदः ॥ ७६

एतदाख्यानमनघं पवित्रं पावनं महत्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं सर्वकामदम् ॥ ७७

य एतच्छृणुयान्नित्यं श्रावयेद्वा समाहितः।
स भुक्त्वेहाखिलान्कामान् सोऽन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ७८

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां भिक्षुवर्याह्वशिवावतारचरित्रवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें भिक्षुवर्याह्वशिवावतारचरित्रवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३१ ॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

उपमन्युपर अनुग्रह करनेके लिये शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि शिवस्य परमात्मनः।
सुरेश्वरावतारस्ते धौम्याग्रजहितावहम् ॥ १
व्याघ्रपादसुतो धीमानुपमन्युः सतां प्रियः।
जन्मान्तरेण संसिद्धः प्राप्तो मुनिकुमारताम् ॥ २

उवास मातुलगृहे स मात्रा शिशुरेव हि।
उपमन्युव्याघ्रपादिः स्याद्विद्रश्च दैवतः ॥ ३

हे मुने ! एक वर्ष बीत जानेपर वह राजपुत्र एक दिन उस ब्राह्मणपुत्रके साथ सर्वव्यापक शिवकी कृपासे वनप्रान्तमें जा पहुँचा और अकस्मात् वहाँपर आयी हुई तथा उसके पिताद्वारा प्रदत्त गन्धर्वकन्यासे विवाह करके अकण्टक राज्य करने लगा ॥ ७२-७३ ॥

जिस ब्राह्मणीने अपने पुत्रके समान उसका पालन-पोषण किया था, वही उसकी माता हुई तथा वह ब्राह्मणपुत्र उसका भाई हुआ ॥ ७४ ॥

इस प्रकार शिवजीकी आराधना करके धर्मगुप्त नामक वह राजपुत्र विदर्भनगरमें उस रानीके साथ सुखोपभोग करने लगा ॥ ७५ ॥

[हे मुने !] इस समय मैंने शिवजीके भिक्षुवर्यावितारका वर्णन आपसे कर दिया, जो धर्मगुप्त नामक राजपुत्रको सुख देनेवाला था ॥ ७६ ॥

यह आख्यान निष्पाप, पवित्र, पवित्र करनेवाला, महान् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षका साधन एवं सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है ॥ ७७ ॥

जो सावधान होकर इसे नित्य सुनता अथवा सुनाता है, वह समस्त इच्छित भोगोंको भोगकर अन्तर्में शिवपुरको जाता है ॥ ७८ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे तात ! परमेश्वर शिवका जो सुरेश्वरावतार हुआ, जिसने धौम्यके ज्येष्ठ भ्राता [उपमन्यु]-का हितसाधन किया था, मैं उसका वर्णन करूँगा, आप श्रवण कीजिये ॥ १ ॥

व्याघ्रपादका उपमन्यु नामवाला एक पुत्र था, जो परम बुद्धिमान् एवं सज्जनोंका प्रिय था, वह जन्मान्तरीय [तपस्यासे] सिद्ध था और मुनिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ था ॥ २ ॥

वह व्याघ्रपादपुत्र उपमन्यु जब बालक था, तभीसे अपनी माताके साथ मामाके घर निवास करने लगा, दैवयोगसे वह दरिद्र था ॥ ३ ॥

कदाचित्कीरमत्यल्पं पीतवान्मातुलाश्रमे ।
ययाचे मातरं प्रीत्या बहुशो दुग्धलालसः ॥ ४

तच्छुत्वा पुत्रवचनं तमाता च तपस्विनी ।
सान्तः प्रविश्याथ तदा शुभोपायमरीरच्चत् ॥ ५

उज्ज्वृत्यर्जितान्वीजान्पिष्ट्वालोऽय जलेन तान् ।
उपलाल्य सुतं तस्मै सा ददौ कृत्रिमं पयः ॥ ६

पीत्वा च कृत्रिमं दुग्धं मात्रा दत्तं स बालकः ।
नैतत्कीरमिति प्राह मातरं चारुदत्पुनः ॥ ७

श्रुत्वा सुतस्य रुदितं प्राह सा दुःखिता सुतम् ।
सम्मार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलाकृतिः ॥ ८

मातोवाच

क्षीरमत्र कुतोऽस्माकं वने निवसतां सदा ।
प्रसादेन विना शम्भोः पयः प्राप्तिर्भवेन्न हि ॥ ९

पूर्वजन्मनि यत्कृत्यं शिवमुद्दिश्य हे सुत ।
तदेव लङ्घयते नूनं नात्र कार्या विचारणा ॥ १०

इति मातृवचः श्रुत्वा व्याघ्रपादिः स बालकः ।
प्रत्युवाच विशोकात्मा मातरं मातृवत्सलः ॥ ११

शोकेनालमिमं मातः शंभुर्द्यस्ति शङ्करः ।
त्यज शोकं महाभागे सर्वं भद्रं भविष्यति ॥ १२

शृणु मातर्वचो मेऽद्य महादेवोऽस्ति चेत्कवचित् ।
चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ॥ १३

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स शिशुः प्रीत्या शिवं मेऽस्त्वित्युदीर्यं च ।
विसृज्य तां सुप्रणाम्य तपः कर्तुं प्रचक्रमे ॥ १४

उसने कभी अपने मामाके घरमें थोड़ा-सा दूध पी लिया था, फिर दूधके प्रति उसकी लालसा बढ़ गयी और मातासे बारंबार दूध माँगने लगा ॥ ४ ॥

तब पुत्रका यह वचन सुनकर उस तपस्विनी माताने घरके भीतर प्रवेश करके एक उत्तम उपाय किया ॥ ५ ॥

उसने उज्ज्वृत्तिसे एकत्रित बीजोंको पीसकर उस [आटे]-को पानीमें घोलकर पुत्रको बहलाफुसलाकर वह कृत्रिम दूध उसे दे दिया ॥ ६ ॥

माताके द्वारा दिये गये कृत्रिम दूधको पीकर वह बालक 'यह दूध नहीं है', इस प्रकार मातासे बोला और पुनः रोने लगा ॥ ७ ॥

पुत्रका रुदन सुनकर कमलाके समान कोमलांगी माताने हाथोंसे पुत्रके नेत्रोंको पोछकर दुखी होकर उससे कहा— ॥ ८ ॥

माता बोली—हे पुत्र! हम तो सदैव वनमें निवास करते हैं, अतः यहाँ दूधकी प्राप्ति कैसे सम्भव है? शिवजीको प्रसन्न किये बिना तुम्हें दूधकी प्राप्ति नहीं हो सकती ॥ ९ ॥

हे पुत्र! पूर्वजन्ममें शिवजीको उद्देश्य करके जो कर्म किया जाता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

माताके इस प्रकारके वचनको सुनकर मातृवत्सल वह व्याघ्रपादपुत्र शोकरहित होकर अपनी मातासे बोला— ॥ ११ ॥

हे मातः! यदि शिवजी कल्याण करनेवाले हैं, तो शोक करना व्यर्थ है, हे महाभागे! शोकका त्याग करो, सब भला ही होगा ॥ १२ ॥

हे मातः! अब मेरी बात सुनो, यदि कहीं भी वे महादेवजी होंगे, तो मैं थोड़े अथवा अधिक कालमें उनसे क्षीरका समुद्र प्राप्त कर लूँगा ॥ १३ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार [अपना निश्चय] बताकर तथा 'मेरा कल्याण हो' ऐसा प्रेमपूर्वक कहकर वह बालक माताको भलीभाँति प्रणामकर उससे विदा ले तप करनेके लिये चल पड़ा ॥ १४ ॥

हिमवत्पर्वतगतः वायुभक्षः समाहितः ।
अष्टेष्टकाभिः प्रासादं कृत्वा लिङ्गं च मृमयम् ॥ १५

तत्रावाहू शिवं साम्बं भक्त्या पञ्चाक्षरेण ह ।
पत्रपुष्पादिभिर्वच्यैः समानर्च शिशुः स वै ॥ १६

ध्यात्वा शिवं च तं साम्बं जपन्यञ्चाक्षरं मनुम् ।
समभ्यर्च्य चिरं कालं चचार परमं तपः ॥ १७

तपसा तस्य बालस्य ह्युपमन्योर्महात्मनः ।
चराचरं च भुवनं प्रदीपितमभूम्युने ॥ १८
एतस्मिन्नतरे शम्भुर्विष्ववाद्यैः प्रार्थितः प्रभुः ।
परीक्षितुं च तद्वक्तिं शक्ररूपोऽभवत्तदा ॥ १९

शिवा शचीस्वरूपाभूद्गणाः सर्वेऽभवन्मुराः ।
ऐरावतगजो नन्दी सर्वमेव च तन्मयम् ॥ २०
ततः साम्बः शिवः शक्रस्वरूपः सगणो द्रुतम् ।
जगामानुग्रहं कर्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् ॥ २१
परीक्षितुं च तद्वक्तिं शक्ररूपधरो हरः ।
प्राह गंभीरया वाचा बालकं तं मुनीश्वर ॥ २२

सुरेश्वर उवाच

तुष्टोऽस्मि ते वरं ब्रूहि तपसानेन सुब्रत ।
ददामि चेच्छितान्कामान् सर्वान्नात्रास्ति संशयः ॥ २३
एवमुक्तः स वै तेन शक्ररूपेण शम्भुना ।
वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताञ्जलिः ॥ २४

तन्निशम्य हरिः प्राह मां न जानासि लेखपम् ।
त्रैलोक्याधिपतिं शक्रं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ २५

मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा ।
ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् ॥ २६

रुद्रेण निर्गुणेनालं किं ते कार्यं भविष्यति ।
देवजातिबहिर्भूतो यः पिशाचत्वमागतः ॥ २७

वह बालक हिमालयपर्वतपर जाकर वायुका पान करते हुए सावधान मनसे आठ ईटोंसे एक मन्दिर बनाकर उसमें मिट्टीका शिवलिंग स्थापित करके उस लिंगमें भक्तिपूर्वक पंचाक्षर मन्त्रके द्वारा पार्वतीसहित शिवका आवाहनकर वनमें उत्पन्न पत्र, पुष्प आदिसे उनका पूजन करने लगा ॥ १५-१६ ॥

इस प्रकार पार्वतीसहित उन शिवजीका ध्यान करके पंचाक्षर मन्त्रका जप तथा उनकी अर्चना करते हुए उसने बहुत कालपर्यन्त घोर तप किया ॥ १७ ॥

हे मुने ! उस महात्मा बालक उपमन्युकी तपस्यासे सारा चराचर लोक प्रज्वलित हो उठा ॥ १८ ॥

इसी समय विष्णु आदि देवताओंके द्वारा प्रार्थित भगवान् शिवने उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये इन्द्रका रूप धारण किया । पार्वती इन्द्राणीके रूपवाली हो गयीं, सभी गण देवता हो गये और नन्दीने ऐरावत गजका रूप धारण किया । इस प्रकार जब इन्द्ररूपकी सारी सामग्री उपस्थित हो गयी, तब गणों एवं पार्वतीसहित इन्द्ररूप शिवजी उपमन्युके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये शीघ्र ही उसके आश्रमपर गये ॥ १९—२१ ॥

हे मुनीश्वर ! इन्द्ररूपधारी शिवजीने उसकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये गम्भीर वाणीमें उस बालकसे कहा— ॥ २२ ॥

सुरेश्वर बोले—हे सुब्रत ! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो । मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट प्रदान करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥

इन्द्ररूपधारी उन शिवजीके इस प्रकार कहनेपर उसने हाथ जोड़कर कहा—मैं शिवमें भक्ति होनेका वरदान चाहता हूँ ॥ २४ ॥

यह सुनकर इन्द्र बोले—क्या तुम त्रिलोकीके स्वामी, देवगणोंके रक्षक और सभी देवगणोंसे नमस्कृत मुझ इन्द्रको नहीं पहचानते हो ॥ २५ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! तुम मेरे भक्त हो जाओ और निरन्तर मेरी ही पूजा करो, मैं तुम्हारा सब प्रकारका कल्याण करूँगा । तुम गुणरहित शिवको छोड़ो ॥ २६ ॥

उन निर्गुण रुद्रसे तुम्हारा क्या कार्य हो सकता है, जो देवजातिसे बाहर होकर पिशाचत्वको प्राप्त हो गये हैं ? ॥ २७ ॥

नन्दीश्वर उवाच

तच्छुत्वा स मुनेः पुत्रो जपन्मञ्चाक्षरं मनुम्।
मन्यमानो धर्मविघ्नं प्राह तं कर्तुमागतम्॥ २८

उपमन्युरुवाच

त्वयैवं कथितं सर्वं भवनिन्दारतेन वै।
प्रसङ्गादेवदेवस्य निर्गुणत्वं पिशाचता॥ २९
त्वं न जानासि वै रुद्रं सर्वदेवेश्वरेश्वरम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां जनकं प्रकृतेः परम्॥ ३०

सदसद् व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः।
नित्यमेकमनेकं च वरं तस्माद् वृणोम्यहम्॥ ३१

हेतुवादविनिर्मुक्तं साङ्ख्ययोगार्थदं परम्।
यमुशन्ति हि तत्त्वज्ञा वरं तस्माद् वृणोम्यहम्॥ ३२

नास्ति शम्भोः परं तत्त्वं सर्वकारणकारणम्।
ब्रह्मविष्णवादिदेवानां श्रेष्ठो गुणपराद्विभोः॥ ३३

नाहं वृणे वरं त्वत्तो न विष्णोर्ब्रह्मणोऽपि वा।
नान्यस्मादमराद्वापि शङ्करो वरदोऽस्तु मे॥ ३४

बहुनात्र किमुक्तेन वच्चिम तत्त्वं मतं स्वकम्।
न प्रार्थये पशुपतेरन्यं देवादिकं स्फुटम्॥ ३५

मद्भावं शृणु गोत्रारे मयाद्यानुमितं त्विदम्।
भवान्तरे कृतं पापं श्रुता निन्दा भवस्य चेत्॥ ३६

श्रुत्वा निन्दां भवस्याथ तत्क्षणादेव संत्यजेत्।
स्वदेहं तन्निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति॥ ३७

आस्तां तावन्ममेच्छेयं क्षीरं प्रति सुराधम्।
निहत्य त्वां शिवास्त्रेण त्यजाम्येतत्कलेवरम्॥ ३८

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वोपमन्युस्तं मर्तुं व्यवसितः स्वयम्।
क्षीरे वाञ्छामपि त्यक्त्वा निहन्तुं शक्रमुद्यतः॥ ३९

नन्दीश्वर बोले—यह सुनकर पंचाक्षर मन्त्रका जप करता हुआ वह बालक अपने धर्ममें विज्ञ उत्पन्न करनेके लिये उनको आया हुआ जानकर बोला—॥ २८॥

उपमन्यु बोले—शिवनिन्दामें रत तुमने इस प्रकार प्रसंगवश उन देवाधिदेवको निर्गुण एवं पिशाच कहा है। तुम अवश्य ही प्रकृतिसे परे, ब्रह्मा-विष्णु तथा महेश्वरको उत्पन्न करनेवाले और सभी देवेश्वरोंके भी ईश्वर उन रुद्रको नहीं जानते॥ २९-३०॥

ब्रह्मवादी लोग जिन्हें सत्, असत्, व्यक्त, अव्यक्त, नित्य, एक तथा अनेक बताते हैं, मैं उन्हींसे वर माँगूँगा॥ ३१॥

तत्त्वज्ञ लोग जिन्हें तर्कसे परे तथा सांख्ययोगके तात्पर्यार्थको देनेवाला मानते हैं, मैं उन्हींसे वर माँगूँगा॥ ३२॥

विभु शम्भुसे परे कोई तत्त्व नहीं है। वे सभी कारणोंके कारण और गुणोंसे सर्वथा परे हैं, अतः ब्रह्मा-विष्णु आदि देवोंसे श्रेष्ठ हैं॥ ३३॥

मैं न तो आपसे, न विष्णुजीसे, न ब्रह्माजीसे और न अन्य किसी देवतासे वर माँगता हूँ, शंकरजी ही मुझे वर प्रदान करेंगे॥ ३४॥

बहुत कहनेसे क्या लाभ? मैं अपना निश्चय बता रहा हूँ कि मैं पशुपति शिवजीको छोड़कर किसी अन्य देवतासे वरदान नहीं माँगूँगा॥ ३५॥

हे इन्द्र! आप मेरा अभिप्राय सुनें। मैंने आज यह अनुमान कर लिया है कि मैंने जन्मान्तरमें अवश्य कोई पाप किया है, जिससे मुझे शिवजीकी निन्दा सुननी पड़ी॥ ३६॥

शिवकी निन्दाका श्रवण करते ही जो शीघ्र उस निन्दा करनेवालेका प्रतिकारकर उसी समय अपना शरीर छोड़ देता है, वह शिवलोकको जाता है॥ ३७॥

हे सुराधम! अब दूधके विषयमें मेरी यह इच्छा नहीं रही, [अब तो मैं] शिवास्त्रसे तुम्हारा वधकर अपना यह शरीर त्याग दूँगा॥ ३८॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर उपमन्यु मरनेके लिये तैयार हो गये और दूधके प्रति भी इच्छाका त्यागकर इन्द्रको मारनेके लिये उद्यत हो गये॥ ३९॥

भस्मादाय तदाधारादघोरास्त्राभिमन्त्रितम्।
विसृज्य शक्रमुद्दिश्य ननाद स मुनिस्तदा॥ ४०

स्मृत्वा स्वेष्टपदद्वन्द्वं स्वदेहं दग्धुमुद्यतः।
आग्रेयीं धारणां बिभ्रदुपमन्युरवस्थितः॥ ४१

एवं व्यवसिते विप्रे भगवान् शक्ररूपवान्।
वारयामास सौम्येन धारणां तस्य योगिनः॥ ४२

तद्विसृष्टमधोरास्त्रं नन्दीश्वरनियोगतः।
जगृहे मध्यतः क्षिप्तं नन्दी शङ्करवल्लभम्॥ ४३
स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वरः।
दर्शयामास विप्राय बालेन्दुकृतशेखरम्॥ ४४

क्षीरार्णवसहस्रं च दध्यादेर्णवं तथा।
भक्ष्यभोज्यार्णवं तस्मै दर्शयामास स प्रभुः॥ ४५
एवं स ददृशे शम्भुर्देव्या सार्थं वृषोपरि।
गणेश्वरैस्त्रिशूलाद्यैर्दिव्यास्त्रैरपि संवृतः॥ ४६

दिवि दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात ह।
विष्णुब्रह्मेन्द्रप्रमुखैर्देवैश्छन्ना दिशो दश॥ ४७

अथोपमन्युरानन्दसमुद्रोर्मिभिरावृतः।
पपात दण्डवद्धमौ भक्तिनप्रेण चेतसा॥ ४८

एतस्मिन्समये तत्र सस्मितो भगवान्भवः।
एहोहीति समाहूय मूर्ध्याद्याय ददौ वरान्॥ ४९

शिव उवाच

वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि त्वदाचरणतो वरात्।
दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितोऽधुना॥ ५०

भक्ष्यभोगान्यथाकामं बान्धवैर्भुद्धक्षव सर्वदा।
सुखी भव सदा दुःखनिर्मुक्तो भक्तिमान्मम॥ ५१

तब अग्निहोत्रसे भस्म लेकर उसे अघोरास्त्रसे अभिमन्त्रित करके इन्द्रके ऊपर उस भस्मको छोड़कर उन मुनिने घोर शब्द किया ॥ ४० ॥

उसके बाद अपने इष्टदेवके चरणयुगलका स्मरणकर अपने शरीरको जलानेहेतु अग्निकी धारण करते हुए उपमन्यु स्थित हो गये ॥ ४१ ॥

ब्राह्मण उपमन्युके इतना कर लेनेपर शक्ररूपधारी शिवजीने सौम्य [तेज]-के द्वारा उस महायोगीकी आग्नेयी धारणाको रोक दिया ॥ ४२ ॥

उनके द्वारा फेंके गये उस शंकरप्रिय अघोरास्त्रको शिवजीके आदेशसे नन्दीने बीचमें ही पकड़ लिया ॥ ४३ ॥

तदनन्तर भगवान् परमेश्वरने उन ब्राह्मणके समक्ष मस्तकपर द्वितीयाका चन्द्र धारण किया हुआ अपना स्वरूप प्रकट किया ॥ ४४ ॥

सर्वसमर्थ उन प्रभुने हजारों दूधके, हजारों दही आदिके तथा हजारों अन्य भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंके समुद्र उन्हें दिखाये। इसी प्रकार उन शम्भुने देवी पार्वतीके साथ बैलपर सवार हो त्रिशूल आदि आयुधोंको हाथमें धारण किये हुए गणोंके सहित अपना रूप भी उनके समक्ष प्रकट किया ॥ ४५-४६ ॥

उस समय स्वर्गलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगणों [की उपस्थिति]-से दसों दिशाएँ ढँक गयीं। इसके बाद उपमन्यु आनन्दसागरसे उठी हुई लहरोंसे मानो घिर-से गये और भक्तिसे विनम्रचित हो शिवजीको दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥ ४७-४८ ॥

इसी समय भगवान् शिवजीने मुसकराकर उपमन्युको 'आओ आओ' इस प्रकार बुलाकर उनका मस्तक सूँघकर उन्हें वर प्रदान किये ॥ ४९ ॥

शिवजी बोले—हे वत्स! हे उपमन्यो! मैं तुम्हारे इस श्रेष्ठ आचरणसे प्रसन्न हूँ। विप्रर्षे! अब मैंने परीक्षा कर ली कि तुम हमारे दृढ़ भक्त हो ॥ ५० ॥

तुम्हारी मुझमें इसी प्रकारकी भक्ति बनी रहेगी। तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायेंगे और तुम सदा सुखी रहेगे। अब तुम सर्वदा अपने भाई-बन्धुओंसहित स्वेच्छापूर्वक भक्ष्यादि भोगोंका भोग करो ॥ ५१ ॥

उपमन्यो महाभाग तवाम्बैषा हि पार्वती।
मया पुत्रीकृतो हृद्य कुमारत्वं सनातनम्॥५२

दुग्धदध्याज्यमधुनामर्णवाश्च सहस्रशः।
भक्ष्यभोज्यादिवस्तूनामर्णवाश्चिलास्तथा ॥५३

तु॒यं दत्ता मया प्रीत्या त्वं गृहीष्व महामुने।
अमरत्वं तथा दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम्॥५४

पिताहं ते महादेवो माता ते जगदम्बिका।
वरान्वरय सुप्रीत्या मनोऽभिलिषितान्परान्॥५५

अजरश्चामरश्चैव भव त्वं दुःखवर्जितः।
यशस्वी वरतेजस्वी दिव्यज्ञानी महाप्रभुः॥५६
अथ शम्भुः प्रसन्नात्मा स्मृत्वा तस्य तपो महत्।
पुनर्दश वरान्दिव्यान्मुनये ह्युपमन्यवे॥५७
ब्रतं पाशुपतं ज्ञानं ब्रतयोगं च तत्त्वतः।
ददौ तस्मै प्रवक्तृत्वं पाटवं च निजं पदम्॥५८

एवं दत्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम्।
मूर्ध्याद्याय सुतस्तेऽयमिति देव्यै न्यवेदयत्॥५९

देवी च शृणवती प्रीत्या मूर्ध्नि देशे कराम्बुजम्।
विन्यस्य प्रददौ तस्मै कुमारपदमक्षयम्॥६०

क्षीराब्धिमपि साकारं क्षीरस्वादुकरोदधिः।
उपास्थाय ददौ तस्मै पिण्डीभूतमनश्वरम्॥६१

योगैश्वर्य सदा तुष्टं ब्रह्मविद्यामनश्वराम्।
समृद्धिं परमां तस्मै ददौ सन्तुष्टमानसः॥६२

सोऽपि लब्ध्वा वरान्दिव्यान्कुमारत्वं च सर्वदा।
तस्माच्छिवाच्च तस्याश्च शिवाया मुदितोऽभवत्॥६३

ततः प्रसन्नचेतस्कः सुप्रणम्य कृताञ्जलिः।
यथाचे स वरं प्रीत्या देवदेवान्महेश्वरात्॥६४

उपमन्युरुवाच

प्रसीद देवदेवेश प्रसीद परमेश्वर।
स्वभक्तिं देहि परमां दिव्यामव्यभिचारिणीम्॥६५

हे महाभाग्यवान् उपमन्यो! ये पार्वती तुम्हारी माता हैं, मैंने आजसे तुम्हें अपना पुत्र मान लिया। तुम सर्वदा कुमार बने रहोगे ॥५२॥

हे महामुने! मैंने प्रसन्न होकर दूध, दही, घी एवं मधुके हजारों समुद्र तथा भोज्य-भक्ष्यादि पदार्थोंसे पूर्ण हजारों समुद्र तुमको प्रदान किये, तुम उन्हें प्रेमपूर्वक ग्रहण करो। मैं तुम्हें अमरत्व तथा शाश्वत गाणपत्य भी प्रदान करता हूँ ॥५३-५४॥

मैं महादेव तुम्हारा पिता हूँ तथा ये जगदम्बा तुम्हारी माता हैं। अब तुम अन्य मनोवांछित वरोंको भी प्रेमपूर्वक माँगो ॥५५॥

तुम अजर, अमर, दुःखसे रहित, यशस्वी, परम तेजस्वी, दिव्यज्ञानी तथा महाप्रभु हो जाओ ॥५६॥

इसके बाद प्रसन्नचित्त शिवजीने उनके घोर तपका स्मरणकर पुनः मुनि उपमन्युको दस दिव्य वरदान, पाशुपतव्रत, पाशुपत ज्ञान, ब्रतयोग, भाषण-अभिक्षमता, दक्षता तथा अपना पद भी प्रदान किया ॥५७-५८॥

इस प्रकार वरदान देकर उन्हें अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर उनका मस्तक सूँघकर 'यह तुम्हारा पुत्र है'—ऐसा कहकर महादेवजीने उन्हें पार्वतीको समर्पित कर दिया। देवीने यह सुनकर उनके सिरपर प्रेमपूर्वक अपना करकमल रखकर उन्हें अक्षय कुमारपद प्रदान किया ॥५९-६०॥

दूधका स्वाद उत्पन्न करनेवाले समुद्रने स्वयं उठकर एकत्र पिण्डीभूत और अनश्वर क्षीरसमुद्र उसे प्रदान किया ॥६१॥

सन्तुष्टचित्त महेश्वरने योगैश्वर्य, सदा सन्तुष्टता, अनश्वर ब्रह्मविद्या तथा परम समृद्धि उन्हें प्रदान की ॥६२॥

इस प्रकार वे उपमन्यु शिव और पार्वतीसे दिव्य वर और नित्यकुमारत्व प्राप्तकर परम प्रसन्न हुए। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके उन्होंने देवाधिदेव महेश्वरसे प्रीतिपूर्वक वर माँगा ॥६३-६४॥

उपमन्यु बोले—हे देवदेवेश! प्रसन्न हों, हे परमेश्वर! प्रसन्न हों और अपनी दिव्य परम तथा चिरस्थायी भक्ति प्रदान कीजिये।

श्रद्धां देहि महादेव स्वसम्बन्धिषु मे सदा ।
स्वदास्यं परमं स्नेहं स्वसान्निध्यं च सर्वदा ॥ ६६

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा प्रसन्नात्मा हर्षगद्गदया गिरा ।
तुष्टाव स महादेवमुपमन्युद्विजोत्तमः ॥ ६७
एवमुक्तः शिवस्तेन सर्वेषां शृणवतां प्रभुः ।
प्रत्युवाच प्रसन्नात्मोपमन्युं सकलेश्वरः ॥ ६८

शिव उवाच

वत्सोपमन्यो धन्यस्त्वं मम भक्तो विशेषतः ।
सर्व दत्तं मया ते हि यद् वृतं भवतानघ ॥ ६९

अजरश्चामरश्च त्वं सर्वदा दुःखवर्जितः ।
सर्वपूज्यो निर्विकारी भक्तानां प्रवरो भव ॥ ७०

अक्षया बान्धवाश्वैव कुलं गोत्रं च ते सदा ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती ॥ ७१

सान्निध्यं चाश्रमे नित्यं करिष्यामि मुने तव ।
तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कण्ठां च करिष्यसि ॥ ७२

नन्दीश्वर उवाच

एवमुक्त्वा स भगवांस्तस्मै दत्त्वा वरान्वरान् ।
साम्बश्च सगणः सद्यस्त्रैवान्तर्दधे प्रभुः ॥ ७३
उपमन्युः प्रसन्नात्मा प्राप्य शम्भोर्वरान्वरान् ।
जगाम जननीस्थानं मात्रे सर्वमवर्णयत् ॥ ७४

तच्छुत्वा तस्य जननी महाहर्षमवाप सा ।
सर्वपूज्योऽभवत्सोऽपि सुखं प्रापाधिकं सदा ॥ ७५

इत्थं ते वर्णितस्तात शिवस्य परमात्मनः ।
सुरेश्वरावतारो हि सर्वदा सुखदः सताम् ॥ ७६

इदमाख्यानमनधं सर्वकामफलप्रदम् ।
स्वर्ग्य यशस्यमायुष्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं सताम् ॥ ७७

हे महादेव ! अपने सम्बन्धियोंके प्रति श्रद्धाभाव अपना दास्य, परम स्नेह तथा अपना नित्य सान्निध्य मुझे प्रदान कीजिये ॥ ६५-६६ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन द्विजोत्तम उपमन्युने प्रसन्नचित्त होकर हर्षसे गदगद वाणीसे महादेवकी स्तुति की ॥ ६७ ॥

इस प्रकार उनके द्वारा स्तुति किये जानेपर सकलेश्वर प्रभु शिवने प्रसन्नचित्त होकर सबके सुनते-सुनते ही उपमन्युसे कहा— ॥ ६८ ॥

शिवजी बोले—हे वत्स ! हे उपमन्यो ! तुम धन्य हो और विशेषरूपसे मेरे भक्त हो । हे अनघ ! तुमने मुझसे जो कुछ माँगा, वह सब मैंने तुम्हें प्रदान किया ॥ ६९ ॥

तुम सर्वदा अजर, अमर, दुःखरहित, सर्वपूज्य, निर्विकार एवं भक्तोंमें श्रेष्ठ हो जाओ । हे द्विजोत्तम ! तुम्हरे बान्धव, तुम्हारा गोत्र एवं कुल अक्षय बना रहेगा और मुझमें तुम्हारी शाश्वत भक्ति बनी रहेगी । हे मुने ! मैं तुम्हरे आश्रममें नित्य निवास करूँगा । हे वत्स ! तुम इच्छानुसार जबतक चाहो, तबतक इस लोकमें निवास करो, [किसी भी वस्तुके लिये] तुम्हें उत्कण्ठा नहीं रहेगी, अर्थात् तुम सर्वदा पूर्णकाम रहोगे ॥ ७०—७२ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन्हें श्रेष्ठ वरदान देकर पार्वती एवं गणोंके सहित वे भगवान् शिव वहींपर अन्तर्हित हो गये ॥ ७३ ॥

इसके बाद प्रसन्नचित्त उपमन्यु शिवजीसे श्रेष्ठ वर प्राप्तकर अपनी माताके समीप गये और उन्होंने मातासे सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ७४ ॥

उसे सुनकर उनकी माता परम हर्षित हुई । वे उपमन्यु भी सभीके पूज्य हुए और सदा अधिकाधिक सुख प्राप्त करने लगे ॥ ७५ ॥

हे तात ! इस प्रकार मैंने परमात्मा शिवके सुरेश्वरावतारका वर्णन कर दिया, जो सज्जनोंको सदा सुख प्रदान करनेवाला है ॥ ७६ ॥

यह आख्यान [सर्वथा] निष्पाप, सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, स्वर्ग देनेवाला, यश बढ़ानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा सज्जनोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है ॥ ७७ ॥

य एतच्छृणुयाद्वक्त्वा श्रावयेद्वा समाहितः ।

इह सर्वसुखं भुक्त्वा सोऽन्ते शिवगतिं लभेत् ॥ ७८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुरेश्वराख्यशिवावतारचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें सुरेश्वराख्य शिवावतारचरितवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

अथ ब्रह्मस्त्रिंशोऽध्यायः

पार्वतीके मनोभावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सुप्रीत्या शिवस्य परमात्मनः ।

अवतारं शृणु विभोर्जटिलाहूं सुपावनम् ॥ १ ॥

पुरा सती दक्षकन्या त्यक्त्वा देहं पितुर्मर्खे ।

स्वपित्रानादृता जज्ञे मेनायां हिमभूधरात् ॥ २ ॥

सा गत्वा गहनेऽरण्ये तेषे सुविमलं तपः ।

शङ्करं पतिमिच्छन्ती सखीभ्यां संयुता शिवा ॥ ३ ॥

तत्पः सुपरीक्षार्थं सप्तर्षीन्द्रेष्यच्छिवः ।

तपःस्थानं तु पार्वत्या नानालीलाविशारदः ॥ ४ ॥

ते गत्वा तत्र मुनयः परीक्षां चक्रुरादरात् ।

तस्याः सुयत्ततो नैव समर्था ह्यभवंश्च ते ॥ ५ ॥

तत्रागत्य शिवं नत्वा वृत्तान्तं च निवेद्य तत् ।

तदाज्ञां समनुप्राप्य स्वलोकं जग्मुरादरात् ॥ ६ ॥

गतेषु तेषु मुनिषु स्वस्थानं शङ्करः स्वयम् ।

परीक्षितुं शिवावृत्तमैच्छत्सूतिकरः प्रभुः ॥ ७ ॥

सुप्रसन्नस्तपस्वीच्छाशमनादयमीश्वरः ।

ब्रह्मचर्यस्वरूपोऽभूतदाद्वृत्तरः प्रभुः ॥ ८ ॥

अतीव स्थविरो विप्रदेहधारी स्वतेजसा ।

प्रज्वलन्मनसा हृष्टो दण्डी छत्री महोज्ज्वलः ॥ ९ ॥

धृत्वैवं जाटिलं रूपं जगाम गिरिजावनम् ।

अतिप्रीतियुतः शम्भुः शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ १० ॥

जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, वह इस लोकमें सब प्रकारका सुख भोगकर अन्तमें शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ७८ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुरेश्वराख्यशिवावतारचरितवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें सुरेश्वराख्य शिवावतारचरितवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! अब विभु परमात्मा शिवजीके परमपवित्र जटिल नामक अवतारको अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ १ ॥

पूर्व समयमें दक्षकी कन्या सती अपने पितासे अनादर प्राप्तकर उनके यज्ञमें अपना शरीर त्यागकर हिमालयद्वारा मेनाके गर्भसे पार्वती नामसे उत्पन्न हुई ॥ २ ॥

वे पार्वती अपनी सखियोंसमेत घोर वनमें जाकर शिवको अपना पति बनानेकी इच्छा करती हुई अत्यन्त निर्दोष तप करने लगीं ॥ ३ ॥

तब नाना प्रकारकी लीलामें प्रवीण शिवजीने उनके तपकी भलीभाँति परीक्षाके लिये पार्वतीके तपःस्थानपर सप्तर्षियोंको भेजा ॥ ४ ॥

उन मुनियोंने वहाँ जाकर यत्पूर्वक आदरके साथ उनके तपकी परीक्षा की, किंतु वे सफल नहीं हुए ॥ ५ ॥

तब वे पुनः लौटकर शिवजीके पास आये और उनको प्रणामकर आदरपूर्वक सारा वृत्तान्त निवेदन किया तथा उनकी आज्ञा लेकर स्वर्गलोक चले गये ॥ ६ ॥

उन मुनियोंके अपने-अपने स्थानको चले जानेपर सुन्दर लीला करनेवाले भगवान् शंकरने पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेका विचार किया ॥ ७ ॥

उस समय शिवजीने अपनी इच्छाओंका दमन करनेके कारण साक्षात् ईश्वर ही प्रतीत होनेवाले, तपोनिष्ठ तथा आश्चर्यसम्पन्न, प्रसन्नतासे परिपूर्ण ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किया ॥ ८ ॥

वे भक्तवत्सल सदाशिव शम्भु छत्र-दण्डसे युक्त तथा जटाधारी, वृद्ध ब्राह्मणके जैसा उज्ज्वल वेष धारण किये हुए, मनसे हृष्ट तथा अपने तेजसे दीप्त होते हुए अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर गिरिजाके वनमें गये ॥ ९-१० ॥

तत्रापश्यत् स्थितां देवीं सखीभिः परिवारिताम्।
वेदिकोपरि शुद्धान्तां शिवामिव विधोः कलाम्॥ ११

शंभुनिरीक्ष्य तां देवीं ब्रह्मचारिस्वरूपवान्।
उपकण्ठं ययौ प्रीत्या चोत्सुकी भक्तवत्सलः॥ १२

आगतं सा तदा दृष्ट्वा ब्राह्मणं तेजसाद्गुतम्।
अंगेषु लोमशं शान्तं दण्डचर्मसमन्वितम्॥ १३
ब्रह्मचर्यधरं वृद्धं जटिलं सकमण्डलम्।
अपूजयत्प्रप्रीत्या सर्वपूजोपहारकैः॥ १४
ततः सा पार्वती देवी पूजितं परया मुदा।
कुशलं पर्यपृच्छत्तं ब्रह्मचारिणमादरात्॥ १५
ब्रह्मचारिस्वरूपेण कस्त्वं हि कुत आगतः।
इदं वनं भासयसि वद वेदविदां वर॥ १६

नन्दीश्वर उवाच

इति पृष्ठस्तु पार्वत्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः।
प्रत्युवाच द्रुतं प्रीत्या शिवाभावपरीक्षया॥ १७

ब्रह्मचार्युवाच

अहमिच्छाभिगामी च ब्रह्मचारी द्विजोऽस्मि वै।
तपस्वी सुखदोऽन्येषामुपकारी न संशयः॥ १८

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा ब्रह्मचारी स शंकरो भक्तवत्सलः।
तस्थिवानुपकण्ठं स गोपायन् रूपमात्मनः॥ १९

ब्रह्मचार्युवाच

किं ब्रवीमि महादेवि कथनीयं न विद्यते।
महानर्थकरं वृत्तं दृश्यते विकृतं महत्॥ २०
नवे वयसि सद्बोगसाधने सुखकारणे।
महोपचारसद्बोगैर्वृथैव त्वं तपस्यसि॥ २१

का त्वं कस्यासि तनया किमर्थं विजने वने।
तपश्चरसि दुर्धर्षं मुनिभिः प्रयतात्मभिः॥ २२

वहाँ उन्होंने सखियोंसे घिरी हुई तथा वेदीके ऊपर विराजमान, चन्द्रकलाके समान शोभित होती हुई और विशुद्ध स्वरूपवाली उन पार्वतीको देखा॥ ११॥

तब ब्रह्मचारीवेषधारी भक्तवत्सल शिवजी उन देवीको देखकर प्रीतिपूर्वक बड़ी उत्सुकतासे उनके समीप पहुँचे॥ १२॥

तब पार्वतीने भी अद्भुत तेजस्वी, रोमबहुल अंगोंवाले, शान्ति प्रकट करते हुए, दण्ड तथा [मृग]-चर्मसे युक्त, कमण्डलु धारण किये हुए उन जटाधारी बूढ़े ब्राह्मणको आया देखकर पूजोपचार सामग्रीसे परम प्रेमपूर्वक उनका पूजन किया और पूजन करनेके पश्चात् आनन्दपूर्वक सादर उन ब्रह्मचारीसे कुशलक्षेम पूछा कि आप ब्रह्मचारीका रूप धारण किये हुए कौन हैं, कहाँसे आये हैं, जो अपने तेजसे इस वनप्रदेशको प्रकाशित कर रहे हैं, हे वेदविदोंमें श्रेष्ठ! बताइये?॥ १३—१६॥

नन्दीश्वर बोले—पार्वतीके इस प्रकार पूछनेपर उन ब्रह्मचारी द्विजने पार्वतीके भावकी परीक्षा करनेकी दृष्टिसे प्रसन्न हो शीघ्रतासे कहा—॥ १७॥

ब्रह्मचारी बोले—मैं अपने इच्छानुसार इधर-उधर भ्रमण करनेवाला ब्रह्मचारी, द्विज तपस्वी तथा सबको सुख पहुँचानेवाला और दूसरोंका उपकार करनेवाला हूँ, इसमें संशय नहीं॥ १८॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर वे भक्तवत्सल ब्रह्मचारीरूप शंकर अपना स्वरूप छिपाते हुए पार्वतीके सन्निकट स्थित हो गये॥ १९॥

ब्रह्मचारी बोले—हे महादेवि! मैं तुमसे क्या बताऊँ, कुछ कहनेयोग्य नहीं है, मुझे जो कि अनर्थकारी और अत्यन्त अशोभनीय कार्य दिखायी पड़ रहा है॥ २०॥

तुम्हें समस्त सुखोंकी साधनभूत भोगसामग्री प्राप्त है, किंतु इन सभी प्रकारके भोगोंके रहते हुए भी तुम इस नवीन युवावस्थामें व्यर्थ कष्ट सहती हुई तप कर रही हो॥ २१॥

तुम कौन हो, किसकी कन्या हो और इस निर्जन वनमें प्रयतात्मा मुनियोंके लिये भी कठिन यह तप क्यों कर रही हो?॥ २२॥

नन्दीश्वर उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य परमेश्वरी।
उवाच वचनं प्रीत्या ब्रह्मचारिणमुत्तमम्॥ २३
पार्वत्युवाच

शृणु विप्र ब्रह्मचारिन् मद्वृत्तमखिलं मुने।
जन्म मे भारते वर्षे साम्प्रतं हिमवद्गृहे॥ २४
पूर्व दक्षगृहे जन्म सती शङ्करकामिनी।
योगेन त्यक्तदेहाहं तातेन पतिनिन्दिना॥ २५

अत्र जन्मनि संप्राप्तः सुपुण्येन शिवो द्विज।
मां त्यक्त्वा भस्मसात्कृत्वा मन्मथं स जगाम ह॥ २६

प्रयाते शङ्करे तापाद् ब्रीडिताहं पितुर्गृहात्।
आगच्छमत्र तपसे गुरुवाक्येन संयता॥ २७

मनसा वचसा साक्षात्कर्मणा पतिभावतः।
सत्यं ब्रवीमि नोऽसत्यं संवृतः शङ्करे मया॥ २८

जानामि दुर्लभं वस्तु कथं प्राप्यं मया भवेत्।
तथापि मनसौत्सुक्यात्प्यते मे तपोऽधुना॥ २९

हित्वेन्द्रप्रमुखान्देवान्विष्टुं ब्रह्माणमप्यहम्।
पतिं पिनाकपाणिं वै प्राप्तुमिच्छामि सत्यतः॥ ३०

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं वचनं श्रुत्वा पार्वत्या हि सुनिश्चितम्।
मुने स जटिलो रुद्रो विहसन्वाक्यमब्रवीत्॥ ३१

जटिल उवाच

हिमाचलसुते देवि का बुद्धिः स्वीकृता त्वया।
रुद्रार्थं विबुधान्हित्वा करोषि विपुलं तपः॥ ३२

जानाम्यहं च तं रुद्रं शृणु त्वं प्रवदामि ते।
वृषध्वजः स रुद्रो हि विकृतात्मा जटाथरः॥ ३३

एकाकी च सदा नित्यं विरागी च विशेषतः।
तस्मात्त्वं तेन रुद्रेण मनो योकुं न चार्हसि॥ ३४

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकारकी उनकी बात सुनकर परमेश्वरी पार्वती हँसकर प्रेमपूर्वक उन श्रेष्ठ ब्रह्मचारीसे कहने लगीं— ॥ २३ ॥

पार्वतीजी बोलीं—हे ब्रह्मचारिन्! हे विप्र! हे मुने! आप मेरा सारा वृत्तान्त सुनिये। इस समय मेरा जन्म भारतवर्षमें हिमालयके घरमें हुआ है॥ २४ ॥

मैं इसके पूर्व प्रजापति दक्षके घरमें जन्म लेकर सती नामसे शंकरजीकी पत्नी थी। पतिकी निन्दा करनेवाले पिता दक्षके द्वारा किये गये अपमानके कारण मैंने योगके द्वारा अपना शरीर त्याग दिया था॥ २५ ॥

हे द्विज! इस जन्ममें मैंने अपने पुण्यसे शिवजीको प्राप्त किया था, किंतु वे कामदेवको भस्मकर मुझे त्याग करके चले गये हैं॥ २६ ॥

शिवजीके चले जानेपर दुःखान्वित तथा लज्जित होकर मैं पिताके घरसे निकलकर गुरुके वचनानुसार संयत होकर तप करनेके लिये यहाँ आयी हूँ॥ २७ ॥

हे ब्रह्मचारिन्! मैंने मन-वाणी तथा कर्मसे साक्षात् शिवको पतिरूपमें भलीभाँति वरण किया है। मैं सत्य कहती हूँ, इसमें किंचिन्मात्र भी असत्य नहीं है॥ २८ ॥

मैं जानती हूँ कि यह मेरे लिये दुर्लभ है और दुर्लभ वस्तुकी प्राप्ति किस प्रकार होगी? फिर भी मैं अपने मनकी उत्सुकतासे इस समय तपमें प्रवृत्त हूँ॥ २९ ॥

मैं इन्द्रादि प्रमुख देवताओं, विष्णु तथा ब्रह्माको भी छोड़कर केवल पिनाकपाणि भगवान् शिवको वस्तुतः पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ॥ ३० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! पार्वतीके इस निश्चय-युक्त वचनको सुनकर उन जटाधारी रुद्रने हँसते हुए यह वचन कहा—॥ ३१ ॥

जटिल बोले—हे हिमाचलपुत्रि! हे देवि! तुमने इस प्रकारका विचार क्यों किया है, जो कि अन्य देवोंको छोड़कर शिवके निमित्त अत्यधिक कठोर तप कर रही हो?॥ ३२ ॥

मैं उन रुद्रको जानता हूँ, सुनो, मैं तुमको बता रहा हूँ। वे रुद्र बैलपर सवारी करनेवाले, विकृत मनवाले तथा जटाजूट धारण करनेवाले, सदा अकेले रहनेवाले और विशेषरूपसे विरागी हैं, इसलिये उन रुद्रमें मन लगाना तुम्हारे लिये उचित नहीं है॥ ३३-३४ ॥

सर्व विरुद्धं रूपादि तव देवि हरस्य च।
महां न रोचते होतद्यदीच्छसि तथा कुरु ॥ ३५

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा च पुना रुद्रो ब्रह्मचारिस्वरूपवान्।
निनिद बहुधात्मानं तदग्रे तां परीक्षितुम् ॥ ३६
तच्छुत्वा पार्वती देवी विग्रवाक्यं दुरासदम्।
प्रत्युवाच महाकुद्धा शिवनिन्दापरं च तम् ॥ ३७

एतावद्धि मया ज्ञातं कश्चिद् धन्यो भविष्यति।
परन्तु सकलं ज्ञातमवध्यो दृश्यतेऽधुना ॥ ३८

ब्रह्मचारिस्वरूपेण कश्चित्त्वं धूर्त आगतः।
शिवनिन्दा कृता मूढ त्वया मन्युरभून्मम ॥ ३९

शिवं त्वं च न जानासि शिवत्त्वं हि बहिर्मुखः।
त्वत्पूजा च कृता यन्मे तस्मात्तापयुताभवम् ॥ ४०

शिवनिन्दां करोतीह तत्त्वमज्ञाय यः पुमान्।
आजन्मसञ्चितं पुण्यं तस्य भस्मीभवत्युत ॥ ४१
शिवविद्वेषिणं स्पृष्ट्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ४२

रे रे दुष्ट त्वया प्रोक्तमहं जानामि शङ्करम्।
निश्चयेन न विज्ञातः शिव एव परः प्रभुः ॥ ४३

यथा तथा भवेद्दुद्रो मायया बहुरूपवान्।
ममाभीष्टप्रदोऽत्यन्तं निर्विकारः सतां प्रियः ॥ ४४

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तं शिवा देवी शिवतत्त्वं जगाद् सा।
यत्र ब्रह्मतया रुद्रः कथ्यते निर्गुणोऽव्ययः ॥ ४५
तदाकर्ण्य वचो देव्या ब्रह्मचारी स वै द्विजः।
पुनर्वचनमादातुं यावदेव प्रचक्रमे ॥ ४६
प्रोवाच गिरिजा तावत्स्वसखीं विजयां द्रुतम्।
शिवासक्तमनोवृत्तिः शिवनिन्दापराङ्मुखी ॥ ४७

हे देवि! तुम्हारा और शिवका रूप आदि परस्पर एक-दूसरेके विरुद्ध है, मुझे तो यह अच्छा नहीं लग रहा है, अब तुम्हारी जैसी इच्छा हो, वैसा करो ॥ ३५ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर ब्रह्मचारी-स्वरूपधारी शिवने उनकी परीक्षा करनेके लिये उनके आगे पुनः अनेक प्रकारसे अपनी निन्दा की ॥ ३६ ॥

विप्रके उस असह्य वचनको सुनकर देवी पार्वतीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया और उन्होंने शिवनिन्दापरायण ब्रह्मचारीसे कहा—अभीतक तो मैंने यही समझा था कि आप कोई महात्मा होंगे, किंतु मैंने इस समय आपको जान लिया, फिर भी अवध्य होनेके कारण आपका वध नहीं कर रही हूँ ॥ ३७-३८ ॥

हे मूढ़! तुम ब्रह्मचारीके स्वरूपमें आये हुए कोई धूर्त हो, तुमने शिवकी निन्दा की है, उससे मुझे महान् क्रोध उत्पन्न हुआ है ॥ ३९ ॥

तुम शिवसे बहिर्मुख हो, इसलिये शिवको नहीं जानते। मैंने तुम्हारी जो पूजा की, उसके कारण मुझे परिताप हो रहा है ॥ ४० ॥

जो मनुष्य तत्त्वको बिना जाने ही शिवकी निन्दा करता है, उसका जन्मभरका संचित पुण्य नष्ट हो जाता है। शिवद्वारीका स्पर्शकर मनुष्यको प्रायश्चित्त करना चाहिये ॥ ४१-४२ ॥

रे दुष्ट! तुमने कहा कि मैं शंकरको जानता हूँ, किंतु निश्चितरूपसे तुम शिवको नहीं जानते। वास्तवमें वे परमात्मा हैं। रुद्र जैसे-तैसे सब कुछ हो सकते हैं; क्योंकि वे मायासे बहुत रूप धारण करनेमें समर्थ हैं। सज्जनोंके प्रिय वे सर्वथा निर्विकार होनेपर भी मेरे मनोरथको पूर्ण करेंगे ॥ ४३-४४ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन देवी पार्वतीने उन ब्रह्मचारीसे [उस] शिवतत्त्वका वर्णन किया, जिसमें शिव ब्रह्मके रूपमें निर्गुण एवं अव्यय कहे जाते हैं ॥ ४५ ॥

देवीके वचनको सुनकर वे ब्राह्मण ब्रह्मचारी ज्यों ही पुनः कुछ कहनेको उद्यत हुए, उसी समय शिवमें संसक्त चित्तवाली तथा शिवनिन्दासे विमुख पार्वतीने अपनी सखी विजयासे शीघ्रतासे कहा— ॥ ४६-४७ ॥

गिरिजोवाच

वारणीयः प्रयत्नेन सख्यं हि द्विजाधमः।
पुनर्वक्तुमनाश्चायं शिवनिन्दां करिष्यति ॥ ४८
न केवलं भवेत्पापं निन्दाकर्तुः शिवस्य हि।
यो वै शृणोति तन्निन्दां पापभाक्सं भवेदिह ॥ ४९

शिवनिन्दाकरो वध्यः सर्वथा शिवकिंकरैः।
ब्राह्मणश्वेत्सं वै त्याज्यो गन्तव्यं तत्स्थलाद्ब्रुतम् ॥ ५०

अयं दुष्टः पुनर्निन्दां करिष्यति शिवस्य हि।
ब्राह्मणत्वादवध्यश्च त्याज्योऽदृश्यश्च सर्वथा ॥ ५१

स्थलमेतद्ब्रुतं हित्वा यास्यामोऽन्यत्र मा चिरम्।
यथा संभाषणं न स्यादनेनाविदुषा पुनः ॥ ५२

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा चोमया यावत्पदमुत्क्षिप्यते मुने।
असौ तावच्छिवः साक्षादाललम्बे पटं स्वयम् ॥ ५३
कृत्वा स्वरूपं दिव्यं च शिवाध्यानं यथा तथा।
दर्शयित्वा शिवायै तामुवाचावाद्मुखीं शिवः ॥ ५४

शिव उवाच

कुत्र त्वं यासि मां हित्वा न त्वं त्याज्या मया शिवे।
मया परीक्षितासि त्वं दृढभक्तासि मेऽनघे ॥ ५५
ब्रह्मचारिस्वरूपेण भावमिच्छुस्त्वदीयकम्।
तवोपकण्ठमागत्य प्रावोचं विविधं वचः ॥ ५६

प्रसन्नोऽस्मि दृढं भक्त्या शिवे तव विशेषतः।
चित्तेष्यितं वरं ब्रूहि नादेयं विद्यते तव ॥ ५७

अद्यप्रभृति ते दासस्तपोभिः प्रेमनिर्भरे।
कृतोऽस्मि तव सौन्दर्यात्क्षण एको युगायते ॥ ५८

त्यज्यतां च त्वया लज्जा मम पली सनातनी।
एहि प्रिये त्वया साकं द्रुतं यामि स्वकं गिरिम् ॥ ५९

गिरिजा बोलीं—हे सखि! बोलनेकी इच्छावाला यह नीच ब्राह्मण अभी भी पुनः शिवकी निन्दा करेगा, अतः प्रयत्नपूर्वक इसे रोको, क्योंकि केवल शिवजीकी निन्दा करनेवालेको ही पाप नहीं लगता, वरन् जो उस निन्दाको सुनता है, इस संसारमें वह भी पापका भागी होता है ॥ ४८-४९ ॥

शिवभक्तोंको चाहिये कि शिवनिन्दकका सर्वथा प्रतिकार कर दे, किंतु यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे त्याग देना चाहिये और उस स्थानसे शीघ्र चले जाना चाहिये ॥ ५० ॥

निश्चय ही यह दुष्ट पुनः शिवकी निन्दा करेगा, किंतु ब्राह्मण होनेके कारण यह अवध्य है, अतः इसे छोड़ देना चाहिये और फिर इसे कभी नहीं देखना चाहिये। अब देर मत करो, शीघ्रतासे इस स्थानको त्यागकर हम अन्यत्र चलेंगे, जिससे इस मूर्ख ब्राह्मणके साथ पुनः सम्भाषण न हो सके ॥ ५१-५२ ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर ज्यों ही पार्वतीने जानेहेतु पैर उठाया, त्यों ही साक्षात् शिवजीने स्वयं उनका वस्त्र पकड़ लिया। पार्वती शिवजीके जिस स्वरूपका ध्यान करती थीं, शिवजीने वैसा ही दिव्य स्वरूप धारणकर शिवाको दिखाया और नीचेकी ओर मुख की हुई उनसे कहा— ॥ ५३-५४ ॥

शिवजी बोले—हे शिवे! तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो, मैं किसी प्रकार तुम्हारा त्याग नहीं करूँगा। हे अनघे! मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली है, तुम मेरी दृढ़ भक्त हो। हे देवि! मैंने तुम्हारे भावको जाननेकी इच्छासे ब्रह्मचारीके स्वरूपमें तुम्हारे पास आकर अनेक प्रकारके वचन कहे— ॥ ५५-५६ ॥

हे शिवे! मैं तुम्हारी इस दृढ़ भक्तिसे विशेष प्रसन्न हूँ, अब तुम अपना मनोवांछित वर माँगो, तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु [मुझे] अदेय नहीं है ॥ ५७ ॥

हे प्रेमनिर्भरे! तुमने अपनी इस तपस्यासे आजसे मुझे अपना दास बना लिया है। तुम्हारे सौन्दर्यको बिना देखे मेरा एक-एक क्षण युगके समान बीत रहा है ॥ ५८ ॥

अब तुम लज्जाको त्यागो; क्योंकि तुम मेरी सनातन पली हो। हे प्रिये! आओ, मैं तुम्हारे साथ शीघ्र ही कैलासपर्वतपर चलता हूँ ॥ ५९ ॥

इत्युक्तवति देवेशो शिवातिमुदमाप सा।
तपोदुःखं तु यत्सर्वं तज्जहौ द्रुतमेव हि॥ ६०

ततः प्रहृष्टा सा दृष्ट्वा दिव्यरूपं शिवस्य तत्।
प्रत्युवाच प्रभुं प्रीत्या लज्जयाधोमुखी शिवा॥ ६१

शिवोवाच

यदि प्रसन्नो देवेश करोषि च कृपां मयि।
पतिर्मे भव देवेश इत्युक्तः शिवया शिवः॥ ६२

नन्दीश्वर उवाच

गृहीत्वा विधिवत्याणिं कैलासं स तया ययौ।
पतिं तं गिरिजा प्राप्य देवकार्यं चकार सा॥ ६३

इति प्रोक्तस्तु ते तात ब्रह्मचारिस्वरूपकः।
शिवावतारो हि मया शिवाभावपरीक्षकः॥ ६४

इदमाख्यानमनघं परमं व्याहृतं मया।
य एतच्छृणुयात्रीत्या स सुखी गतिमान्युयात्॥ ६५

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णन
नामक तीनीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके सुनर्तक नटावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञं शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं शृणु विभोः सुनर्तकनटाहृयम्॥ १
यदा हि कालिका देवी पार्वती हिमवत्सुता।
तेषे तपः सुविमलं वनं गत्वा शिवाप्तये॥ २
तदा शिवः प्रसन्नोऽभूत्तस्याः सुतपसो मुने।
तदवृत्तसुपरीक्षार्थं वरं दातुं मुदा ययौ॥ ३

स्वरूपं दर्शयामास तस्यै सुप्रीतमानसः।
वरं ब्रूहीति चोवाच तां शिवां शंकरो मुने॥ ४

देवेशके इस प्रकार कहनेपर वे पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं और उनके तप करनेका जो क्लेश था, वह सब दूर हो गया॥ ६०॥

उसके बाद शिवके उस दिव्य रूपको देखकर प्रसन्न हुई पार्वतीने लज्जासे नीचेकी ओर मुख कर लिया और वे प्रतिपूर्वक कहने लगीं—॥ ६१॥

शिवा बोलीं—हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरे ऊपर कृपा करना चाहते हैं तो हे देवेश! आप मेरे पति हों—ऐसा पार्वतीने शिवसे कहा॥ ६२॥

नन्दीश्वर बोले—उसके बाद वे शिवजी विधिविधानसे पाणिग्रहणकर उनके साथ कैलासपर चले गये और उन पार्वतीने उन्हें पतिरूपमें प्राप्तकर देवताओंका कार्य सम्पन्न किया॥ ६३॥

हे तात! इस प्रकार मैंने पार्वतीके भावकी परीक्षा लेनेवाले ब्रह्मचारीस्वरूप शिवावतारका वर्णन आपसे किया। मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान पवित्र तथा उत्तम है। जो इसे प्रेमपूर्वक सुनेगा, वह सुखी होकर सद्गति प्राप्त करेगा॥ ६४-६५॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें ब्रह्मचारिशिवावतारवर्णन

नामक तीनीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

नन्दीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ! सनत्कुमार! अब सर्वव्यापी परमात्मा शिवजीके नर्तकनट नामक अवतारका श्रवण कीजिये॥ १॥

जब हिमालयसुता कालिका पार्वती शिवको प्राप्त करनेके लिये वनमें जाकर अत्यन्त निर्मल तप करने लगीं, तब हे मुने! उनके कठिन तपसे शिवजी प्रसन्न हो गये और उनके भावकी परीक्षाके लिये तथा उन्हें वर देनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये॥ २-३॥

हे मुने! अत्यन्त प्रसन्नचित्तवाले शिवने उन्हें अपना रूप दिखाया और उन शिवासे 'वर माँगो'—इस प्रकार कहा॥ ४॥

तच्छ्रुत्वा शम्भुवचनं दृष्ट्वा तद्रूपमुत्तमम्।
सुजहर्ष शिवातीव प्राह तं सुप्रणम्य सा ॥ ५

पार्वत्युवाच

यदि प्रसन्नो देवेश महां देयो वरो यदि।
पतिर्भव ममेशान कृपां कुरु ममोपरि ॥ ६
पितुर्गृहे मया सम्यगगम्यते त्वदनुज्ञया।
गन्तव्यं भवता नाथ मत्पितुः पार्श्वतः प्रभो ॥ ७

याचस्व मां ततो भिक्षुः ख्यापयंश्च यशः शुभम्।
पितुर्मै सफलं सर्वं कुरु प्रीत्या गृहाश्रमम् ॥ ८

ततो यथोक्तविधिना कर्तुमर्हसि भो प्रभो।
विवाहं त्वं महेशान देवानां कार्यसिद्धये ॥ ९

कामं मे पूरय विभो निर्विकारो भवान्सदा।
भक्तवत्सलनामा हि तव भक्तास्म्यहं सदा ॥ १०

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तः स तया शम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः।
तथास्त्विति वचः प्रोच्यान्तर्हितः स्वगिरिं ययौ ॥ ११

पार्वत्यपि ततः प्रीत्या स्वसखीभ्यां समन्विता।
जगाम स्वपितुर्गंहं रूपं कृत्वा तु सार्थकम् ॥ १२

पार्वत्यागमनं श्रुत्वा मेनया स हिमाचलः।
परिवारयुतो द्रष्टुं स्वसुतां तां ययौ मुदा ॥ १३

दृष्ट्वा तां सुप्रसन्नास्यामानयामासतुर्गृहम्।
कारयामासतुः प्रीत्या महानन्दौ महोत्सवम् ॥ १४

धनं ददौ द्विजादिभ्यो मेना गिरिवरस्तथा।
मङ्गलं कारयामास सवेदध्वनिमादरात् ॥ १५

ततः स्वकन्यया सार्थमुवास प्राङ्मणे मुदा।
मेना च हिमवाञ्छैलः स्नातुं गंगां जगाम सः ॥ १६

शिवजीके उस वचनको सुनकर तथा उनके उत्तम रूपको देखकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुई और उन्हें भलीभाँति प्रणामकर वे कहने लगीं— ॥ ५ ॥

पार्वती बोलीं—हे देवेश ! हे ईशान ! यदि आप [मुझपर] प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं, तो मेरे पति बनें और मेरे ऊपर कृपा करें ॥ ६ ॥

हे नाथ ! मैं आपकी समुचित आज्ञासे पिताके घर जा रही हूँ। हे प्रभो ! आपको भी मेरे पिताके पास जाना चाहिये, आप भिक्षुक बनकर अपना उत्तम यश प्रकट करते हुए मुझे माँगें और प्रेमपूर्वक मेरे पिताका गृहस्थान्राम पूरी तरहसे सफल करें ॥ ७-८ ॥

उसके अनन्तर हे प्रभो ! हे महेशान ! आप शास्त्रोक्त विधिसे देवगणोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरा पाणिग्रहण करें ॥ ९ ॥

हे विभो ! आप मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये। आप सर्वथा निर्विकार हैं तथा भक्तवत्सल नामवाले हैं और मैं सर्वदा आपकी भक्त हूँ ॥ १० ॥

नन्दीश्वर बोले—पार्वतीके इस प्रकार कहनेपर भक्तवत्सल भगवान् शिव ‘ऐसा ही हो’—यह वचन कहकर अन्तर्धान होकर अपने स्थान कैलासको चले गये ॥ ११ ॥

इसके बाद पार्वती भी प्रसन्न होकर अपनी दोनों सखियोंके साथ अपने रूपको सार्थक करके पिताके घर चली गयीं ॥ १२ ॥

पार्वतीके आगमनका समाचार सुनकर हिमालय भी मेना तथा परिवारको साथ लेकर अपनी पुत्रीको देखनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक गये ॥ १३ ॥

परम आनन्दित वे दोनों पार्वतीको प्रसन्नमुख देखकर उन्हें घर लिवा लाये और प्रीतिके साथ महोत्सव मनाया ॥ १४ ॥

मेना तथा हिमालयने ब्राह्मणादिकोंको [बहुत-सा] धन दिया और आदरके साथ वेदध्वनिपूर्वक मंगलाचार कराया ॥ १५ ॥

उसके बाद मेना अपनी कन्याके साथ आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं और वे हिमालय गंगास्नान करने चले गये ॥ १६ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शम्भुः सुलीलो भक्तवत्सलः ।
सुनर्तकनटो भूत्वा मेनकासन्निधिं ययौ ॥ १७

शृङ्गं वामे करे धृत्वा दक्षिणे डमरुं तथा ।
पृष्ठे कन्थां रक्तवासा नृत्यगानविशारदः ॥ १८

ततस्तु नटरूपोऽसौ मेनकाप्राङ्गणे मुदा ।
चक्रे स नृत्यं विविधं गानं चाति मनोहरम् ॥ १९

शृङ्गं च डमरुं तत्र वादयामास सुध्वनिम् ।
महोत्तिं विविधां प्रीत्या स चकार मनोहराम् ॥ २०

तं द्रष्टुं नागराः सर्वे पुरुषाश्च स्त्रियस्तथा ।
आजगमुः सहसा तत्र बाला वृद्धा अपि ध्रुवम् ॥ २१

श्रुत्वा सुगीतं तं दृष्ट्वा सुनृत्यं च मनोहरम् ।
सहसा मुमुहुः सर्वे मेनापि च तदा मुने ॥ २२

ततो मेनाशु रत्नानि स्वर्णपात्रस्थितानि च ।
तस्मै दातुं ययौ प्रीत्या तदूतिप्रीतमानसा ॥ २३

तानि न स्वीचकारासौ भिक्षां काङ्क्षे शिवां च ताम् ।
पुनः सुनृत्यं गानं च कौतुकात्कर्तुमुद्यतः ॥ २४

मेना तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपाति सुविस्मिता ।
भिक्षुकं भर्त्सयामास बहिष्कर्तुमियेष सा ॥ २५

एतस्मिन्नन्तरे तत्र गंगातो गिरिराइ ययौ ।
ददर्श पुरतो भिक्षुं प्राङ्गणस्थं नराकृतिम् ॥ २६

श्रुत्वा मेनामुखाद् वृत्तं तत्सर्वं सुचुकोप सः ।
आज्ञां चकारानुचरान्बहिः कर्तुं च भिक्षुकम् ॥ २७

महाग्रिमिव दुःस्पर्शं प्रज्वलन्तं सुतेजसम् ।
न शशाक बहिः कर्तुं कोऽपि तं मुनिसत्तम् ॥ २८

ततः स भिक्षुकस्तात नानालीलाविशारदः ।
दर्शयामास शैलाय स्वप्रभावमनन्तकम् ॥ २९

इसी बीच सुन्दर लीलाओंवाले भक्तवत्सल शिव नाचनेवाले नटका रूप धारणकर मेनाके पास पहुँचे ॥ १७ ॥

रक्तवस्त्रधारी तथा नृत्य-गान-विशारद नटरूपधारी वे शिव अपने बायें हाथमें शृंग, दाहिने हाथमें डमरु और पीठपर कन्था धारण करके मेनाके आँगनमें प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारके नृत्य तथा अत्यन्त मनोहर गान करने लगे ॥ १८-१९ ॥

उन्होंने बड़ी मनोहर ध्वनि करके डमरु तथा शृंग बजाया और प्रीतिपूर्वक विविध प्रकारकी मनोहर लीला प्रारम्भ की । उन्हें देखनेके लिये वहाँ नगरके सभी बालक, वृद्ध, पुरुष एवं स्त्रियाँ सहसा आपहुँचे ॥ २०-२१ ॥

हे मुने ! उत्तम गीतको सुनकर तथा उस मनोहर नृत्यको देखकर सभी लोग उस समय सहसा मोहित हो गये और मेना भी मोहित हो उठीं ॥ २२ ॥

इसके बाद उनकी लीलासे प्रसन्न मनवाली मेना शीघ्र ही स्वर्णपात्रमें रखे हुए रत्नोंको उन्हें प्रीतिपूर्वक देनेके लिये गयीं ॥ २३ ॥

उन्होंने उन रत्नोंको ग्रहण नहीं किया और उन पार्वतीको ही भिक्षाके रूपमें माँगा । वे पुनः कौतुकसे उत्तम नृत्य तथा गान करने लगे ॥ २४ ॥

उनका वचन सुनकर विस्मित हुई मेना बहुत क्रुद्ध हो गयीं । उन्होंने भिक्षुककी भर्त्सना की और उसे बाहर निकालनेकी इच्छा की ॥ २५ ॥

इसी समय पर्वतराज हिमालय गंगा-स्नानकर वहाँ आ पहुँचे । उन्होंने मनुष्यरूप धारण किये हुए उस भिक्षुकको सामने आँगनमें स्थित देखा ॥ २६ ॥

तब मेनाके मुखसे वह सारा वृत्तान्त सुनकर उन्होंने भी बड़ा क्रोध किया और उस भिक्षुकको बाहर निकालनेके लिये अपने सेवकोंको आज्ञा दी ॥ २७ ॥

मुनिसत्तम ! प्रलयाग्निके समान जलते हुए तेजसे अत्यन्त दुस्सह उस भिक्षुकको बाहर निकालनेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ । उसके बाद हे तात ! अनेक प्रकारकी लीला करनेमें निष्ठात उस भिक्षुकने शैलराजको अपना अनन्त प्रभाव दिखलाया ॥ २८-२९ ॥

शैलो ददर्श तं तत्र विष्णुरूपधरं द्रुतम्।
ततो ब्रह्मस्वरूपं च सूर्यरूपं ततः क्षणात्॥ ३०

ततो ददर्श तं तात रुद्ररूपं महाद्वृतम्।
पार्वतीसहितं रम्यं विहसन्तं सुतेजसम्॥ ३१

एवं सुबहुरूपाणि तस्य तत्र ददर्श सः।
सुविस्मितो बभूवाशु परमानन्दसंप्लुतः॥ ३२

अथासौ भिक्षुवर्यो हि तस्मात्स्याश्च सूतिकृत्।
भिक्षां ययाचे दुर्गा तां नान्यज्जग्राह किञ्चन॥ ३३

ततश्चान्तर्दधे भिक्षुस्वरूपः परमेश्वरः।
स्वालयं स जगामाशु दुर्गावाक्यप्रणोदितः॥ ३४

तदा बभूव सुज्ञानं मेनाशैलेशयोरपि।
आवां शिवो वञ्चयित्वा गतवान्स्वालयं विभुः॥ ३५

अस्मै देया स्वकन्येयं पार्वती सुतपस्त्रिनी।
एवं विचार्य च तयोः शिवे भक्तिरभूत्परा॥ ३६

अतो रुद्रो महोतीश्च कृत्वा भक्तमुदावहम्।
विवाहं कृतवान्प्रीत्या पार्वत्या स विधानतः॥ ३७

इति प्रोक्तस्तु ते तात सुनर्तकनटाह्यः।
शिवावतारो हि मया शिवावाक्यप्रपूरकः॥ ३८

इदमाख्यानमनधं परमं व्याहृतं मया।
य एतच्छृणुयात्रीत्या स सुखी गतिमान्यात्॥ ३९

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सुनर्तकनटाह्यशिवावतारवर्णनं
नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें सुनर्तकनटाह्यशिवावतारवर्णन
नामक चाँतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

हिमालयने शीघ्रतासे उसे विष्णुरूपधारी, फिर ब्रह्मरूप और थोड़ी देरमें सूर्यरूप धारण किये हुए देखा। हे तात! इसके थोड़ी ही देर बाद उसको अत्यन्त अद्भुत एवं परम तेजस्वी रुद्ररूप धारणकर पार्वतीके साथ मनोहर हास करते हुए देखा॥ ३०-३१॥

इस प्रकार उन्होंने वहाँ उसके अनेक सुन्दर रूपोंको देखा और वे आनन्दसे विभोर हो विस्मित हो उठे॥ ३२॥

इसके बाद सुन्दर लीला करनेवाले उस भिक्षुने शैल एवं मेनासे केवल पार्वतीको ही भिक्षारूपमें माँगा और अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं किया॥ ३३॥

पार्वतीके वाक्योंसे प्रेरित होकर भिक्षुरूप धारण करनेवाले परमेश्वर इसके बाद अन्तर्धान हो गये और शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये॥ ३४॥

तब मेना एवं हिमालयको उत्तम ज्ञान हुआ कि सर्वव्यापी शिव हम दोनोंको ठगकर अपने स्थानको चले गये॥ ३५॥

हमें अपनी इस तपस्त्रिनी कन्या पार्वतीको उन्हें प्रदान कर देना चाहिये था—ऐसा विचार करके शिवजीमें उन दोनोंकी उत्कट भक्ति हो गयी॥ ३६॥

इस प्रकारकी महालीलाएँ करके शिवजीने पार्वतीसे भक्तोंको आनन्द देनेवाला विवाह प्रेमपूर्वक विधि-विधानके साथ किया॥ ३७॥

हे तात! इस प्रकार मैंने पार्वतीके अनुरोधको पूर्ण करनेवाला शिवका सुनर्तक नट नामक अवतार आपसे कहा—॥ ३८॥

[हे सनत्कुमार!] मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान अत्यन्त श्रेष्ठ तथा पवित्र है, जो भी इसे प्रेमपूर्वक सुनता है, वह सुखी होकर सद्गति प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

परमात्मा शिवके द्विजावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः ।
अवतारं शृणु विभोः साधुवेषद्विजाह्वयम् ॥ १
मेनाहिमालयोर्भक्तिं शिवे ज्ञात्वा महोत्तमाम् ।
चिन्तामापुः सुराः सर्वे मन्त्रयामासुरादरात् ॥ २
एकान्तभक्त्या शैलश्वेतकन्यां दास्यति शम्भवे ।
ध्रुवं निर्वाणितां सद्यः सम्प्राप्यति शिवस्य वै ॥ ३
अनन्तरत्नाधारोऽसौ चेत्प्रयास्यति मोक्षताम् ।
रत्नगर्भाभिधा भूमिर्मिथ्यैव भविता ध्रुवम् ॥ ४

स्थावरत्वं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय सः ।
कन्यां शूलभृते दत्त्वा शिवलोकं गमिष्यति ॥ ५
महादेवस्य सारूप्यं प्राप्य शम्भोरनुग्रहात् ।
तत्र भुक्त्वा महाभोगांस्ततो मोक्षमवाप्यति ॥ ६

इत्यालोच्य सुराः सर्वे जग्मुर्गुरुगृहं मुने ।
चक्रुर्निवेदनं गत्वा गुरवे स्वार्थसाधकाः ॥ ७

देवा ऊचुः

गुरो हिमालयगृहं गच्छास्मत्कार्यसिद्धये ।
कृत्वा निन्दां महेशस्य गिरिभक्तिं निवारय ॥ ८

स्वश्रद्धया सुतां दत्त्वा शिवाय स गिरिगुरो ।
लभेत मुक्तिमत्रैव धरण्यां स हि तिष्ठतु ॥ ९

इति देववचः श्रुत्वा प्रोवाच च विचार्य तान् ॥ १०

गुरुरुवाच

कश्चिन्मध्ये च युष्माकं गच्छेच्छैलान्तिकं सुराः ।
सम्पादयेत्स्वाभिमतमहं तत्कर्तुमक्षमः ॥ ११

अथवा गच्छत सुरा ब्रह्मलोकं सवासवाः ।
तस्मै वृत्तं कथय स्वं स वः कार्यं करिष्यति ॥ १२

नन्दीश्वर बोले—हे सर्वज्ञ ! सनत्कुमार ! अब साधुवेष धारण करनेवाले ब्राह्मणके रूपमें परमात्मा शिवका जिस प्रकार अवतार हुआ, उसे आप सुनें ॥ १ ॥

मेना और हिमालयकी शिवमें उत्कट भक्ति देख देवताओंको बड़ी चिन्ता हुई और उन लोगोंने आदरपूर्वक परस्पर मन्त्रणा की ॥ २ ॥

यदि शिवमें अनन्य भक्ति रखकर हिमालय उन्हें कन्या देंगे, तो निश्चित रूपसे ये शिवका निर्वाणपद प्राप्त कर लेंगे । अनन्त रत्नोंके आधारभूत ये हिमालय यदि मुक्त हो जायेंगे तो निश्चय ही पृथ्वीका रत्नगर्भा—यह नाम व्यर्थ हो जायगा ॥ ३-४ ॥

शिवजीको अपनी कन्याके दानके पुण्यसे वे अपने स्थावररूपको त्यागकर दिव्य शरीर धारण करके शिवलोकको प्राप्त करेंगे, फिर शिवजीके अनुग्रहसे शिवसारूप्य प्राप्त करके वहाँ सभी प्रकारके भोगोंको भोगकर बादमें मोक्ष प्राप्त कर लेंगे ॥ ५-६ ॥

हे मुने ! इस प्रकार विचारकर अपने स्वार्थसाधनमें कुशल उन सभी देवताओंने गुरु बृहस्पतिके घरके लिये प्रस्थान किया । वहाँ जाकर उन लोगोंने गुरुसे निवेदन किया ॥ ७ ॥

देवता बोले—हे गुरो ! आप हमलोगोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये हिमालयके घर जाइये और शिवजीकी निन्दाकर हिमालयके चित्तसे शिवके प्रति आस्था दूर कीजिये । हे गुरो ! वे हिमालय श्रद्धासे अपनी कन्या शिवको देकर मुक्ति प्राप्त कर लेंगे [किंतु हमलोग ऐसा नहीं चाहते, हमारी इच्छा है कि] वे यहीं पृथ्वीपर रहें ॥ ८-९ ॥

देवताओंका यह वचन सुनकर बृहस्पतिने विचार करके उनसे कहा— ॥ १० ॥

बृहस्पतिजी बोले—हे देवताओ ! आपलोगोंके मध्यसे ही कोई एक पर्वतराजके पास जाय और अपना अभीष्ट सिद्ध करे, मैं इसे करनेमें [सर्वथा] असमर्थ हूँ अथवा हे देवताओ ! आपलोग इन्द्रको साथ लेकर ब्रह्मलोकको जाइये और उन ब्रह्मासे अपना सारा वृत्तान्त कहिये, वे आपलोगोंका कार्य करेंगे ॥ ११-१२ ॥

नन्दीश्वर उवाच

तच्छुत्वा ते समालोच्य जग्मुर्विधिसभां सुराः ।
सर्वं निवेदयामासुस्तद्वृत्तं पुरतो विधेः ॥ १३
अवोचत्तान्विधिः श्रुत्वा तद्वचः सुविचिन्त्य वै ।
नाहं करिष्ये तन्निन्दां दुःखदां कहरां सदा ॥ १४

सुरा गच्छत कैलासं संतोषयत शङ्करम् ।
प्रस्थापयत तं देवं हिमालयगृहं प्रति ॥ १५

स गच्छेदथ शैलेशमात्मनिन्दां करोतु वै ।
परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता ॥ १६

नन्दीश्वर उवाच

ततस्ते प्रययुः शीघ्रं कैलासं निखिलाः सुराः ।
सुप्रणाम्य शिवं भक्त्या तद्वृत्तं निखिला जगुः ॥ १७
तच्छुत्वा देववचनं स्वीचकार महेश्वरः ।
देवान्सुयापयामास तानाश्वास्य विहस्य सः ॥ १८

ततः स भगवाञ्छम्भुर्महेशो भक्तवत्सलः ।
गन्तुमैच्छच्छैलमूलं मायेशो न विकारवान् ॥ १९

दण्डी छत्री दिव्यवासा बिभ्रत्तिलकमुज्ज्वलम् ।
करे स्फटिकमालां च शालग्रामं गले दधत् ॥ २०

जपन्नाम हरेभक्त्या साधुवेशधरो द्विजः ।
हिमाचलं जगामाशु बन्धुवर्गैः समन्वितम् ॥ २१

तं च दृष्ट्वा समुत्तस्थौ सगणोऽपि हिमालयः ।
ननाम दण्डवद्धूमौ साष्टाङ्गं विधिपूर्वकम् ॥ २२

ततः पप्रच्छ शैलेशस्तं द्विजं को भवानिति ।
उवाच शीघ्रं विप्रेन्द्रः स योग्यद्रिं महादरात् ॥ २३

साधुद्विज उवाच

साधुद्विजाह्वः शैलाहं वैष्णवः परमार्थदूक् ।
परोपकारी सर्वज्ञः सर्वगामी गुरोर्बलात् ॥ २४

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] यह सुनकर विचार करके वे देवता ब्रह्माकी सभामें गये और उन लोगोंने ब्रह्माके आगे सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १३ ॥

उनका वचन सुनकर ब्रह्मदेवने भलीभाँति विचारकर उनसे कहा—मैं तो दुःख देनेवाली तथा सर्वदा सुखापहारिणी शिवनिन्दा नहीं कर सकता । अतः हे देवताओ! आपलोग कैलासको जाइये, शिवको सन्तुष्ट कीजिये और उन्हीं प्रभुको हिमालयके घर भेजिये । वे [शिव] ही पर्वतराज हिमालयके पास जायँ और अपनी निन्दा करें; क्योंकि दूसरेकी निन्दा विनाशके लिये और अपनी निन्दा यशके लिये मानी गयी है ॥ १४—१६ ॥

नन्दीश्वर बोले—उसके बाद वे सभी देवगण कैलासपर्वतपर गये और शिवजीको भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन लोगोंने सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १७ ॥

देवताओंका वचन सुनकर शिवजीने हँसकर उसे स्वीकार कर लिया तथा उन देवताओंको आश्वस्तकर विदा किया ॥ १८ ॥

उसके बाद भक्तवत्सल मायापति तथा अविकारी महेश्वर भगवान् शम्भुने हिमालयके समीप जानेका विचार किया ॥ १९ ॥

दण्ड, छत्र, दिव्य वस्त्र तथा उज्ज्वल तिलकसे विभूषित हो, कण्ठमें शालग्रामशिला तथा हाथमें स्फटिकमाला धारणकर साधुवेषधारी ब्राह्मणके वेषमें भक्तिभावसे वे श्रीविष्णुके नामका जप करते हुए बन्धु-बान्धवोंसे युक्त हिमालयके यहाँ शीघ्र गये ॥ २०-२१ ॥

उन्हें देखते ही हिमालय सपरिवार उठ खड़े हुए । उन्होंने विधिपूर्वक भूमिमें साष्टांग दण्डवत्कर उन्हें प्रणाम किया ॥ २२ ॥

उसके अनन्तर शैलराजने उन ब्राह्मणसे पूछा कि आप कौन हैं? तब उन योगी विप्रेन्द्रने बड़े आदरके साथ शीघ्र हिमालयसे कहा— ॥ २३ ॥

साधुद्विज बोले—हे शैलराज! मेरा नाम साधु द्विज है । मैं मोक्षकी कामनासे युक्त परोपकारी वैष्णव हूँ और अपने गुरुके प्रसादसे सर्वज्ञ तथा सर्वत्र गमन करनेवाला हूँ ॥ २४ ॥

मया ज्ञातं स्वविज्ञानात्स्वस्थाने शैलसत्तम।
तच्छृणु प्रीतितो वच्चि हित्वा दम्भं तवान्तिकम्॥ २५

शङ्कराय सुतां दातुं त्वमिच्छसि निजोद्भवाम्।
इमां पद्मासमां रम्यामज्ञातकुलशीलिने॥ २६

इयं मतिस्ते शैलेन्द्र न युक्ता मङ्गलप्रदा।
निबोध ज्ञानिनां श्रेष्ठ नारायणकुलोद्भव॥ २७

पश्य शैलाधिपत्वं च न तस्यैकोऽस्ति बान्धवः।
बान्धवान्स्वान्ययत्नेन पृच्छ मेनां च स्वप्रियाम्॥ २८

सर्वान्संपृच्छ यत्नेन मेनादीन्यावर्तीं विना।
रोगिणो नौषधं शैल कुपथ्यं रोचते सदा॥ २९

न ते पात्रानुरूपश्च पार्वतीदानकर्मणि।
महाजनः स्मेरमुखः श्रुतिमात्राद्भविष्यति॥ ३०

निराश्रयः सदासङ्गो विरूपो निर्गुणोऽव्ययः।
श्मशानवासी विकटो व्यालग्राही दिगम्बरः॥ ३१

विभूतिभूषणो व्यालवरावेष्टिमस्तकः।
सर्वाश्रमपरिभ्रष्टस्त्वविज्ञातगतिः सदा॥ ३२

ब्रह्मोवाच

इत्याद्युक्त्वा वचस्तथ्यं शिवनिन्दापरं स हि।
जगाम स्वालयं शीघ्रं नानालीलाकरः शिवः॥ ३३

तच्छुत्वा विप्रवचनमभूतां च तनू तयोः।
विपरीतानर्थपरे किं करिष्यावहे ध्रुवम्॥ ३४

ततो रुद्रो महोतिं च कृत्वा भक्तमुदावहाम्।
विवाहयित्वा गिरिजां देवकार्यं चकार सः॥ ३५

इति प्रोक्तस्तु ते तात साधुवेषो द्विजाह्वयः।
शिवावतारो हि मया देवकार्यकरः प्रभो॥ ३६

हे शैलसत्तम! मैंने विज्ञानके बलसे अपने स्थानपर ही जो ज्ञात किया है, उसे प्रीतिपूर्वक आपसे कह रहा हूँ, आप पाखण्ड त्यागकर उसे सुनें॥ २५॥

आप इस लक्ष्मीके समान परम सुन्दरी अपनी कन्याको अज्ञात कुल तथा शीलवाले शंकरको प्रदान करना चाहते हैं॥ २६॥

हे शैलेन्द्र! आपकी यह बुद्धि कल्याणकारिणी नहीं है। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! हे नारायणकुलोद्भव! इसपर विचार कीजिये॥ २७॥

हे शैलराज! आप ही विचार कीजिये, उनका कोई एक भी बन्धु-बान्धव नहीं है, आप इस विषयमें अपने बान्धवों तथा अपनी पत्नी मेनासे पूछिये। आप पार्वतीको छोड़कर यत्नपूर्वक मेना आदि सबसे पूछिये; क्योंकि हे शैल! रोगीको औषधि अच्छी नहीं लगती, उसे तो सदैव कुपथ्य ही अच्छा लगता है॥ २८-२९॥

मेरे विचारसे पार्वतीको देनेके लिये शंकर योग्य पात्र नहीं है। इसे सुननेमात्रसे बड़े लोग आपका उपहास ही करेंगे॥ ३०॥

वे शिव तो निराश्रय, संगरहित, कुरूप, गुणरहित, अव्यय, श्मशानवासी, भयंकर आकारवाले, साँपोंको धारण करनेवाले, दिगम्बर, भस्म धारण करनेवाले, मस्तकपर सर्पमाला लपेटे हुए, सभी आश्रमोंसे परिप्रष्ट तथा सदा अज्ञात गतिवाले हैं॥ ३१-३२॥

ब्रह्माजी बोले—अनेक लीलाएँ करनेमें कुशल शिवजी इस प्रकार शिवनिन्दायुक्त सत्य-सत्य वचन कहकर शीघ्र ही अपने स्थानको चले गये॥ ३३॥

ब्राह्मणके कहे गये अप्रिय वचनको सुनकर दोनोंका स्वरूप विरुद्ध भावोंवाला एवं अनर्थसे परिपूर्ण हो गया और वे विचार करने लगे कि अब हमें क्या करना चाहिये॥ ३४॥

इस प्रकार उन रुद्रने भक्तोंको प्रसन्न करनेवाली महान् लीलाएँ कीं और पार्वतीके साथ विवाहकर देवकार्य सम्पन्न किया॥ ३५॥

हे तात! हे प्रभो! इस प्रकार मैंने देवगणोंका हित करनेवाले साधुवेषधारी द्विज नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया॥ ३६॥

इदमाख्यानमनधं स्वग्येमायुष्यमुत्तमम्।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि स सुखी गतिमान्युयात्॥ ३७

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां साधुद्विजशिवावतारवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें साधुद्विजशिवावतारवर्णन नामक पैतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

अश्वत्थामाके रूपमें शिवके अवतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

सनत्कुमार सर्वज्ञ शिवस्य परमात्मनः।
अवतारं शृणु विभोरश्वत्थामाह्वयं परम्॥ १
बृहस्पतेर्महाबुद्धेदेवर्षेरंशतो मुने।
भरद्वाजात्समुत्पन्नो द्रोणोऽयोनिज आत्मवान्॥ २
धनुर्भृतां वरः शूरो विप्रर्षिः सर्वशास्त्रवित्।
बृहत्कीर्तिर्महातेजा यः सर्वास्त्रविदुत्तमः॥ ३
धनुर्वेदे च वेदे च निष्णातं यं विदुर्बुधाः।
वरिष्ठं चित्रकर्मणं द्रोणं स्वकुलवर्धनम्॥ ४
कौरवाणां स आचार्य आसीत्स्वबलतो द्विज।
महारथिषु विख्यातः षट्सु कौरवमध्यतः॥ ५
साहाय्यार्थं कौरवाणां स तेषे विपुलं तपः।
शिवमुद्दिश्य पुत्रार्थं द्रोणाचार्यो द्विजोत्तमः॥ ६
ततः प्रसन्नो भगवाञ्छंकरो भक्तवत्सलः।
आविर्बंभूव पुरतो द्रोणस्य मुनिसत्तम॥ ७
तं दृष्ट्वा स द्विजो द्रोणस्तुष्टावाशु प्रणम्य तप्।
महाप्रसन्नहृदयो नतकः सुकृताञ्जलिः॥ ८
तस्य स्तुत्या च तपसा सन्तुष्टः शंकरः प्रभुः।
वरं ब्रूहीति चोवाच द्रोणं तं भक्तवत्सलः॥ ९
तच्छुत्वा शम्भुवचनं द्रोणः प्राहाथ सन्तः।
स्वांशजं तनयं देहि सर्वजेयं महाबलम्॥ १०

यह आख्यान पवित्र, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला तथा उत्कृष्ट है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह सुखी रहकर उत्तम गतिको प्राप्त करता है॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें साधुद्विजशिवावतारवर्णन नामक पैतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

नन्दीश्वर बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ!

अब आप सर्वव्यापी परमात्मा शिवके अश्वत्थामा नामक श्रेष्ठ अवतारको मुनें॥ १॥

हे मुने! महाबुद्धिमान् देवर्षि बृहस्पतिके अंशसे महर्षि भरद्वाजसे अयोनिज पुत्रके रूपमें आत्मवेत्ता द्रोण उत्पन्न हुए, जो धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ, पराक्रमी, विप्रोंमें श्रेष्ठ, सम्पूर्ण शास्त्रोंके जाननेवाले, विशाल कीर्तिवाले, महातेजस्वी एवं सभी अस्त्रोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ थे, जिन द्रोणको विद्वान् लोग धनुर्विद्यामें तथा वेदमें पारंगत, वरिष्ठ, आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला और अपने कुलको बढ़ानेवाला कहते हैं॥ २—४॥

हे द्विज! वे अपने पराक्रमके प्रभावसे कौरवोंके आचार्य थे एवं उन कौरवोंके छः महारथियोंमें प्रसिद्ध थे॥ ५॥

उन द्विजोत्तम द्रोणाचार्यने कौरवोंकी सहायताके लिये पुत्रकी इच्छासे शिवजीको लक्ष्य करके बहुत बड़ा तप किया। उसके बाद हे मुनिसत्तम! [उनके तपसे] प्रसन्न होकर भक्तवत्सल शिवजी द्रोणाचार्यके समक्ष प्रकट हुए॥ ६-७॥

उन्हें देखकर उन ब्राह्मण द्रोणने उन्हें शीघ्रतासे प्रणाम करके हाथ जोड़कर विनम्र हो अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर उनकी स्तुति की॥ ८॥

उनकी स्तुति तथा तपस्यासे सन्तुष्ट हुए भक्तवत्सल प्रभु शंकरने द्रोणाचार्यसे 'वर माँगो'—ऐसा कहा॥ ९॥

शिवजीके इस वचनको सुनकर अति विनम्र द्रोणाचार्यने कहा कि मुझे महाबली, सबसे अजेय तथा अपने अंशसे उत्पन्न एक पुत्र दीजिये॥ १०॥

तच्छुत्वा द्रोणवचनं शम्भुः प्रोचे तथास्त्विति ।
अभूदन्तर्हितस्तात् कौतुकी सुखकृन्मुने ॥ ११

द्रोणोऽपगच्छत्स्वं धाम महाहष्टो गतभ्रमः ।
स्वपत्न्यै कथयामास तदवृत्तं सकलं मुदा ॥ १२

अथावसरमासाद्य रुद्रः सर्वान्तकः प्रभुः ।
स्वांशेन तनयो जन्मे द्रोणस्य स महाबलः ॥ १३
अश्वत्थामेति विख्यातः स बभूव क्षितौ मुने ।
प्रवीरः कञ्जपत्राक्षः शत्रुपक्षक्षयङ्करः ॥ १४

यो भारते रणे ख्यातः पितुराज्ञामवाप्य च ।
सहायकृद् बभूवाथ कौरवाणां महाबलः ॥ १५
यमाश्रित्य महावीरं कौरवाः सुमहाबलाः ।
भीष्मादयो बभूवुस्तेऽजेया अपि दिवौकसाम् ॥ १६

यद्दयात्पाण्डवाः सर्वे कौरवाञ्जेतुमक्षमाः ।
आसन्नष्टा महावीरा अपि सर्वे च कोविदाः ॥ १७
कृष्णोपदेशतः शाम्भोस्तपः कृत्वातिदारुणम् ।
प्राप्य चास्त्रं शम्भुवराज्जिग्ये तानर्जुनस्ततः ॥ १८

अश्वत्थामा महावीरो महादेवांशजो मुने ।
तथापि तद्दक्षिवशः स्वप्रतापमदर्शयत् ॥ १९

विनाश्य पाण्डवसुतान् शिक्षितानपि यत्नतः ।
कृष्णादिभिर्महावीरैरनिवार्यबलः परैः ॥ २०

पुत्रशोकेन विकलमापतन्तं तमर्जुनम् ।
रथेनाच्युतवन्तं हि दृष्ट्वा स च पराद्रवत् ॥ २१

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम तदुपर्यसृजत्स हि ।
ततः प्रादुरभूतेजः प्रचण्डं सर्वतो दिशम् ॥ २२

प्राणापदमभिप्रेक्ष्य सोर्जुनः क्लेशसंयुतः ।
उवाच कृष्णं विकलान्तो नष्टतेजा महाभयः ॥ २३

हे तात ! हे मुने ! द्रोणाचार्यका वचन सुनकर कौतुक करनेवाले परम सुखकारी शिवजीने 'ऐसा ही होगा'—यह कहा और वे अन्तर्धान हो गये ॥ ११ ॥

द्रोणाचार्य भी निःशंक हो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट गये और उन्होंने वह सारा वृत्तान्त अपनी स्त्रीसे प्रेमपूर्वक कहा । इसके बाद अवसर पाकर वे सर्वान्तक प्रभु रुद्र अपने अंशसे द्रोणके महाबलवान् पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए ॥ १२-१३ ॥

हे मुने ! वे पृथ्वीपर अश्वत्थामा नामसे विख्यात हुए वे महान् वीर थे, उनकी आँखें कमलपत्रके समान थीं और वे शत्रुपक्षका विनाश करनेवाले थे ॥ १४ ॥

ये महाबली अश्वत्थामा महाभारतके संग्राममें पिताकी आज्ञासे कौरवोंके सहायकके रूपमें प्रसिद्ध हुए । उन महाबली अश्वत्थामाका आश्रय लेनेके कारण ही महाबलवान् भीष्म आदि कौरवगण देवताओंके लिये भी अजेय हो गये ॥ १५-१६ ॥

उन्होंसे भयभीत होनेके कारण पाण्डवलोग कौरवोंको जीतनेमें अपनेको असमर्थ पा रहे थे और परम बुद्धिमान् तथा महान् वीर होकर भी अश्वत्थामाके भयसे असमर्थ हो गये । तब श्रीकृष्णके उपदेशसे महाबली अर्जुनने शिवकी कठोर तपस्याकर उनसे अस्त्र प्राप्त करके उन कौरवोंपर विजय प्राप्त की ॥ १७-१८ ॥

हे मुने ! उस समय महादेवके अंशसे उत्पन्न हुए उन अश्वत्थामाने कौरवोंकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उनके वशीभूत होकर युद्धमें यत्पूर्वक शिक्षित पाण्डवपुत्रोंका विनाश करके अपना प्रताप दिखाया, श्रीकृष्ण आदि महावीर बलवान् शत्रु भी उनके बलको रोक नहीं सके ॥ १९-२० ॥

पुत्रके शोकसे सन्तप्त अर्जुनको श्रीकृष्णके साथ रथसे अपनी ओर आता हुआ देखकर वे भाग खड़े हुए ॥ २१ ॥

अश्वत्थामाने अर्जुनपर ब्रह्मशिर नामक अस्त्रका प्रहार किया, उससे सभी दिशाओंमें प्रचण्ड तेज उत्पन्न हो गया । अपने प्राणोंपर आयी हुई आपत्तिको देखकर अर्जुन दुखी हुए और उनका तेज नष्ट हो गया, तब उन्होंने क्लेशक्रान्त तथा भयभीत होकर श्रीकृष्णसे कहा— ॥ २२-२३ ॥

अर्जुन उवाच

किमिदं स्वित्कुतो वेति कृष्ण कृष्ण न वेदम्यहम्।
सर्वतोमुखमायाति तेजश्चेदं सुदुस्सहम्॥ २४

नन्दीश्वर उवाच

श्रुत्वार्जुनवचश्चेदं स कृष्णः शैवसत्तमः।
दध्यौ शिवं सदारं च प्रत्याहार्जुनमादरात्॥ २५

श्रीकृष्ण उवाच

वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्मस्त्रं महोल्बणम्।
न ह्यस्यान्यतमं किञ्चिदस्त्रं प्रत्यवकर्षनम्॥ २६

शिवं स्मर द्रुतं शाभ्युं स्वप्रभुं भक्तरक्षकम्।
येन दत्तं हि ते स्वास्त्रं सर्वकार्यकरं परम्॥ २७

जह्यस्त्रतेज उन्नद्धं त्वं तच्छैवास्त्रतेजसा।
इत्युक्त्वा च स्वयं कृष्णः शिवं दध्यौ तदर्थकः॥ २८

तच्छुत्वा कृष्णवचनं पार्थः स्मृत्वा शिवं हृदि।
स्पृष्ट्वापस्तं प्रणम्याशु चिक्षेपास्त्रं ततो मुने॥ २९

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम्।
शैवास्त्रतेजसा सद्यः समशाम्यन्महामुने॥ ३०

मा मंस्था ह्येतदाश्र्यं सर्वचित्रमये शिवे।
यः स्वशक्त्याखिलं विश्वं सृजत्यवति हन्त्यजः॥ ३१

अश्वत्थामा ततो ज्ञात्वा वृत्तमेतच्छिवांशजः।
शैवं न विव्यथे किञ्चिच्छिवेच्छातुष्टधीर्मुने॥ ३२

अथ द्रौणिरिदं विश्वं कृत्स्नं कर्तुमपाण्डवम्।
उत्तरागर्भगं बालं नाशितुं मन आदधे॥ ३३

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! हे कृष्ण! यह क्या है, यह दुःसह तेज चारों ओरसे घेरे हुए कहाँसे आ रहा है, मैं इसे नहीं जान पा रहा हूँ॥ २४॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनका यह वचन सुनकर महाशैव उन श्रीकृष्णने पार्वतीसहित शिवका ध्यान करते हुए आदरपूर्वक अर्जुनसे कहा—॥ २५॥

श्रीकृष्ण बोले—यह द्रोणाचार्यके पुत्रका महातेजस्वी ब्रह्मास्त्र है, इसके समान शत्रुओंका घातक कोई दूसरा अस्त्र नहीं है, ऐसा जानना चाहिये। आप शीघ्र ही भक्तोंकी रक्षा करनेवाले अपने प्रभु शंकरका ध्यान कीजिये, जिन्होंने आपका सारा कार्य सम्पादन करनेवाला अपना सर्वोत्कृष्ट अस्त्र आपको प्रदान किया है। आप इस अस्त्रके परमतेजको अपने शैवास्त्रके तेजसे नष्ट कीजिये, इतना कहकर स्वयं श्रीकृष्ण अर्जुनकी रक्षाके लिये शिवका ध्यान करने लगे॥ २६—२८॥

हे मुने! श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने अपने मनमें शिवजीका ध्यान किया और इसके बाद जलसे आचमनकर शिवको प्रणाम करके उस अस्त्रको शीघ्र ही [अश्वत्थामापर] छोड़ा॥ २९॥

हे महामुने! यद्यपि वह ब्रह्मशिर नामक अस्त्र अमोघ है तथा इसकी प्रतिक्रिया करनेवाला कोई अन्य अस्त्र नहीं है, फिर भी वह शिवजीके अस्त्रके तेजसे उसी क्षण शान्त हो गया॥ ३०॥

अद्भुत चरित्रिवाले उन शिवके सम्बन्धमें इसे आश्चर्य मत समझिये, जो अजन्मा शिव अपनी शक्तिसे सारे संसारको उत्पन्न करते हैं, उसका पालन करते हैं तथा संहार करते हैं॥ ३१॥

हे मुने! इसके बाद शिवके अंशसे उत्पन्न हुए तथा शिवजीकी इच्छासे तुष्ट बुद्धिवाले अश्वत्थामा इस शैववृत्तान्तको जानकर कुछ भी व्यथित नहीं हुए॥ ३२॥

इसके बाद अश्वत्थामाने इस सम्पूर्ण संसारको पाण्डवोंसे रहित करनेके लिये उत्तराके गर्भमें स्थित बालकको विनष्ट करनेका निश्चय किया॥ ३३॥

ब्रह्मास्त्रमनिवार्यं तदन्यैरस्त्रैर्महाप्रभम् ।
उत्तरागर्भमुद्दिश्य चिक्षेप स महाप्रभुः ॥ ३४
ततश्च सोत्तरा जिष्णुवधूर्विकलमानसा ।
कृष्णं तुष्टाव लक्ष्मीशं दह्यमाना तदस्त्रतः ॥ ३५
ततः कृष्णः शिवं ध्यात्वा हृदा नुत्वा प्रणम्य च ।
अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥ ३६
स्वरक्षार्थेन्द्रदत्तेन तदस्त्रेण सुवर्चसा ।
सुदर्शनेन तस्याश्च व्यधाद्रक्षां शिवाज्ञया ॥ ३७
स्वरूपं शंकरादेशात्कृतं शैववरेण ह ।
कृष्णेन चरितं ज्ञात्वा विमनस्कः शनैरभूत् ॥ ३८
ततः स कृष्णः प्रीतात्मा पाण्डवान्सकलानपि ।
अपातयत्तदङ्ग्योस्तु तुष्टये तस्य शैवराट् ॥ ३९
अथ द्रौणिः प्रसन्नात्मा पाण्डवान्कृष्णमेव च ।
नानावरान्ददौ प्रीत्या सोऽश्वत्थामानुगृह्य च ॥ ४०
इत्थं महेश्वरस्तात चक्रे लीलां परां प्रभुः ।
अवतीर्य क्षितौ द्रौणिरूपेण मुनिसत्तम ॥ ४१
शिवावतारोऽश्वत्थामा महाबलपराक्रमः ।
त्रैलोक्यसुखदोऽद्यापि वर्तते जाह्नवीतटे ॥ ४२
अश्वत्थामावतारस्ते वर्णितः शङ्करप्रभोः ।
सर्वसिद्धिकरश्चापि भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥ ४३
य इदं शृणुयाद्दक्त्या कीर्तयेद्वा समाहितः ।
स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टामन्ते शिवपुरं व्रजेत् ॥ ४४

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायामश्वत्थामशिवावतारवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें अश्वत्थामाशिवावतारवर्णन
नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३६ ॥

तब उस महाप्रभावशालीने महातेजस्वी तथा अन्य अस्त्रोंद्वारा रोके न जा सकनेवाले ब्रह्मास्त्रको उत्तराके गर्भपर चलाया । तब उस अस्त्रसे जलती हुई अर्जुनकी पुत्रवधू उत्तरा व्याकुलचित्त होकर लक्ष्मीपति श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगी ॥ ३४-३५ ॥

इसके बाद श्रीकृष्णने हृदयसे सदाशिवका ध्यानकर उनकी स्तुति की तथा उन्हें प्रणामकर जान लिया कि पाण्डवोंके विनाशके लिये यह अश्वत्थामाका अस्त्र है । उन्होंने शिवजीकी आज्ञासे अपनी रक्षाके लिये इन्द्रद्वारा प्रदत्त अपने महातेजस्वी सुदर्शन चक्रसे उसकी रक्षा की ॥ ३६-३७ ॥

शंकरकी आज्ञासे उन महाशैव श्रीकृष्णने गर्भमें अपना स्वरूप भी धारण किया, यह चरित्र जानकर अश्वत्थामा उदास हो गये ॥ ३८ ॥

उसके बाद प्रसन्नचित्त महाशैव श्रीकृष्णने अश्वत्थामाको प्रसन्न करनेके लिये सभी पाण्डवोंको उनके चरणोंमें गिराया ॥ ३९ ॥

तदनन्तर प्रसन्नचित्त द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने श्रीकृष्ण एवं समस्त पाण्डवोंपर अनुग्रह करके प्रेमपूर्वक उन्हें अनेक प्रकारके वर दिये ॥ ४० ॥

हे तात ! हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार अश्वत्थामाके रूपमें पृथ्वीपर अवतार लेकर प्रभु शिवजीने अत्यन्त उत्तम लीला की ॥ ४१ ॥

त्रैलोक्यको सुख देनेवाले महापराक्रमशाली, शिवावतार अश्वत्थामा आज भी गंगातटपर विद्यमान हैं ॥ ४२ ॥

हे मुने ! इस प्रकार मैंने आपसे अश्वत्थामाके रूपमें प्रभु शिवजीके अवतारका वर्णन किया, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला तथा भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है ॥ ४३ ॥

जो [मनुष्य] भक्तिपूर्वक इस चरित्रिको सुनता है अथवा सावधान होकर इसका कीर्तन करता है, वह अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकको जाता है ॥ ४४ ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीका पाण्डवोंको सान्त्वना देकर अर्जुनको इन्द्रकील पर्वतपर तपस्या करने भेजना
नन्दीश्वर उवाच

शृणु प्राज्ञ किराताख्यमवतारं पिनाकिनः ।
मूर्कं च हतवान्प्रीतो योऽर्जुनाय वरं ददौ ॥ १

सुयोधनजितास्ते वै पाण्डवाः प्रवराश्च ते ।
द्रौपद्या च तया साध्व्या द्वैताख्यं वनमाययुः ॥ २
तत्रैव सूर्यदत्तां वै स्थालीं चाश्रित्य ते तदा ।
कालं च वाहयामासुः सुखेन किल पाण्डवाः ॥ ३

छलार्थं प्रेरितस्तेन दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ।
सुयोधनेन विप्रेन्द्रं पाण्डवान्तिकमादरात् ॥ ४
छात्रैः स्वैर्वायुतैः सार्थं ययाचे तत्र तान्मुदा ।
भोज्यं चित्तेप्सितं वै स तेभ्यश्चैव समागतः ॥ ५

स्वीकृत्य पाण्डवैस्तैस्तैः स्नानार्थं प्रेषितास्तदा ।
दुर्वासः प्रमुखाश्चैव मुनयश्च तपस्विनः ॥ ६

अथ ते पाण्डवाः सर्वे अन्नाभावान्मुनीश्वर ।
दुःखिताश्च तदा प्राणांस्त्यकुं चित्ते समादधुः ॥ ७
द्रौपद्या च स्मृतः कृष्ण आगतस्तत्क्षणादपि ।
शाकं च भक्षयित्वा तु तेषां तृप्तिं समादधत् ॥ ८

दुर्वासाश्च तदा शिष्यांस्तृप्तान् ज्ञात्वा ययौ पुनः ।
पाण्डवाः कृच्छ्रनिर्मुक्ताः कृष्णस्य कृपया तदा ॥ ९

अथ ते पाण्डवाः कृष्णं पप्रच्छुः किं भविष्यति ।
बलवान् शत्रुरुत्पन्नः किं कार्यं तद्वद् प्रभो ॥ १०

नन्दीश्वर उवाच

इति पृष्ठस्तदा तैस्तु श्रीकृष्णः पाण्डवैर्मुने ।
स्मृत्वा शिवपदाभोजौ पाण्डवानिदमब्रवीत् ॥ ११

नन्दीश्वर बोले—हे प्राज्ञ ! अब आप शिवजीका किरातावतार सुनिये, [जिसमें] उन्होंने प्रसन्न होकर मूर्क दानवका वध किया एवं अर्जुनको वर प्रदान किया ॥ १ ॥

[द्यूतक्रीड़ामें] जब श्रेष्ठ पाण्डवोंको दुर्योधनने जीत लिया, तब वे परम पतिव्रता द्रौपदीको अपने साथ लेकर द्वैतवन चले गये। उस समय वे पाण्डव वहाँपर सूर्यके द्वारा दी गयी स्थाली (बटलोई)-का आश्रय लेकर सुखपूर्वक अपना समय बिताने लगे ॥ २-३ ॥

हे विप्रेन्द्र ! तब दुर्योधनने महामुनि दुर्वासाको छल करनेके लिये आदरपूर्वक प्रेरित किया, तदनन्तर महामुनि दुर्वासा पाण्डवोंके निकट गये ॥ ४ ॥

वहाँ जाकर अपने दस हजार शिष्योंके साथ दुर्वासाने मनोनुकूल भोजन उन पाण्डवोंसे प्रेमपूर्वक माँगा ॥ ५ ॥

पाण्डवोंने उनकी बात स्वीकार कर ली और उस समय दुर्वासा आदि प्रमुख तपस्वी मुनियोंको स्नान करनेहेतु भेज दिया ॥ ६ ॥

हे मुनीश्वर ! उस समय अन्नके अभावसे दुखी होकर उन सभी पाण्डवोंने प्राण त्यागनेका मनमें निश्चय किया। तब द्रौपदीने शीघ्र ही श्रीकृष्णका स्मरण किया, वे उसी समय पधारे और शाकका भोग लगाकर उन सभीको तृप्त किया ॥ ७-८ ॥

तब शिष्योंको तृप्त जानकर दुर्वासा वहाँसे चले गये। इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी कृपासे पाण्डव उस समय दुःखसे निवृत्त हो गये ॥ ९ ॥

इसके बाद उन पाण्डवोंने श्रीकृष्णसे पूछा— हे प्रभो ! [आगे] क्या होगा ? यह [दुर्योधन] महान् वैरी उत्पन्न हुआ है, अब आप बताइये कि क्या करना चाहिये ? ॥ १० ॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुने ! उन पाण्डवोंके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर श्रीकृष्णजीने शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके पाण्डवोंसे यह कहा— ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

श्रूयतां पाण्डवाः श्रेष्ठाः श्रुत्वा कर्तव्यमेव हि ।
मद्वृत्तान्तं विशेषेण शिवसेवासमन्वितम् ॥ १२

द्वारकां च मया गत्वा शत्रूणां विजिगीषया ।
विचार्य चोपदेशांश्च ह्युपमन्योर्महात्मनः ॥ १३

मया ह्याराधितः शम्भुः प्रसन्नः परमेश्वरः ।
बटुके पर्वतश्रेष्ठे सप्तमासं सुप्रेक्षितः ॥ १४

इष्टान्कामानदान्महां विश्वेशश्च स्वयं स्थितः ।
तत्प्रभावान्मया सर्वसामर्थ्यं लब्धमुत्तमम् ॥ १५

इदानीं सेव्यते देवो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ।
यूयं सेवत तं शम्भुमपि सर्वसुखावहम् ॥ १६

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे कृष्ण आश्वास्याथ च पाण्डवान् ।
द्वारकामगमच्छीघ्रं स्मरन् शिवपदाम्बुजम् ॥ १७

पाण्डवा अथ भिल्लं च प्रेषयामासुरोजसा ।
गुणानां च परीक्षार्थं तस्य दुर्योधनस्य च ॥ १८
सोऽपि सर्वं च तत्रत्यं दुर्योधनगुणोदयम् ।
समीचीनं च तज्ज्ञात्वा पुनः प्राप प्रभून्प्रति ॥ १९

तदुक्तं ते निशम्यैवं दुःखं प्रापुर्मनीश्वर ।
परस्परं समूच्चुस्ते पाण्डवा अतिदुःखिताः ॥ २०

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यमस्माभिरधुना युधि ।
समर्था अपि वै सर्वे सत्यपाशेन यन्त्रिताः ॥ २१

नन्दीश्वर उवाच

एतस्मिन्समये व्यासो भस्मभूषितमस्तकः ।
रुद्राक्षाभरणश्चायाजटाजूटविभूषितः ॥ २२
पञ्चाक्षरं जपन्मन्त्रं शिवप्रेमसमाकुलः ।
तेजसां च स्वयंराशिः साक्षाद्वर्म इवापरः ॥ २३

श्रीकृष्णजी बोले—हे श्रेष्ठ पाण्डवो !
शिवोपासनासे युक्त मेरे वृत्तान्तको सुनिये और सुनकर
विशेषरूपसे [शिवोपासनरूप] कर्तव्यका अनुपालन
कीजिये ॥ १२ ॥

पूर्वमें मैंने अपने शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेकी
इच्छासे द्वारकामें जाकर महात्मा उपमन्युके उपदेशोंका
विचार करके बटुक नामक श्रेष्ठ पर्वतपर सात
मासपर्यन्त शिवजीकी आराधना की, तब भलीभाँति
सेवाके किये जानेसे परमेश्वर शिवजी मुझपर प्रसन्न
हो गये ॥ १३-१४ ॥

विश्वेश्वरने साक्षात् प्रकट होकर मुझे अभीष्ट
वरदान दिया । उन्हींकी कृपासे मैंने सभी प्रकारका
उत्तम सामर्थ्य प्राप्त कर लिया ॥ १५ ॥

[हे पाण्डवो !] मैं इस समय भी भोग एवं मोक्ष
देनेवाले शिवजीकी सेवा करता हूँ, इसलिये आपलोग
भी सब प्रकारका सुख देनेवाले उन शिवजीकी सेवा
कीजिये ॥ १६ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर पाण्डवोंको
आश्वासन देकर श्रीकृष्णजी अन्तर्धान हो गये और
शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए शीघ्र ही
द्वारका चले गये ॥ १७ ॥

इधर, उत्साहयुक्त पाण्डवोंने उस दुर्योधनके
गुणोंकी परीक्षाके लिये एक भीलको भेजा । वह भी
दुर्योधनके सभी गुणों और पराक्रमका भलीभाँति
पता लगाकर अपने प्रभु पाण्डवोंके समीप लौट
आया ॥ १८-१९ ॥

हे मुनीश्वर ! उसकी बात सुनकर पाण्डव
अत्यन्त दुखी हुए और अतीव दुःखित उन पाण्डवोंने
आपसमें कहा—अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये
और कहाँ जाना चाहिये ? यद्यपि हमलोग इस समय
युद्ध करनेमें समर्थ हैं, किंतु सत्यपाशसे बँधे हुए
हैं ॥ २०-२१ ॥

नन्दीश्वर बोले—इसी समय मस्तकमें भस्म
लगाये, रुद्राक्षकी माला धारण किये, सिरपर जटाजूटसे
सुशोभित तथा शिवप्रेममें निमग्न, तेजोराशि, साक्षात्
दूसरे धर्मके समान श्रीव्यासजी पंचाक्षर मन्त्रका जप
करते हुए वहाँ आये ॥ २२-२३ ॥

तं दृष्ट्वा ते तदा प्रीता उत्थाय पुरतः स्थिताः ।
दत्त्वासनं तदा तस्मै कुशाजिनसुशोभितम् ॥ २४
तत्रोपविष्टं तं व्यासं पूजयन्ति स्म हर्षिताः ।
स्तुतिं च विविधां कृत्वा धन्याः स्म इति वादिनः ॥ २५
तपश्चैव सुसन्तप्तं दानानि विविधानि च ।
तत्सर्वं सफलं जातं तृप्तास्ते दर्शनात्प्रभो ॥ २६
दुःखं च दूरतो जातं दर्शनात्ते पितामह ।
दुष्टेश्चैव महादुःखं दत्तं नः क्रूरकर्मभिः ॥ २७
श्रीमतां दर्शने जाते दुःखं चैव गमिष्यति ।
कदाचिन्न गतं तत्र निश्चयोऽयं विचारितः ॥ २८
महतामाश्रमे प्राप्ते समर्थे सर्वकर्मणि ।
यदि दुःखं न गच्छेत्तु दैवमेवात्र कारणम् ॥ २९
निश्चयेनैव गच्छेत्तु दारिद्र्यं दुःखकारणम् ।
महतां च स्वभावोऽयं कल्पवृक्षसमो मतः ॥ ३०
तद्गुणानेव गणयन्महतो वस्तुमात्रतः ।
आश्रयस्य वशादेव पुंसो वै जायते प्रभो ॥ ३१
लघुत्वं च महत्त्वं च नात्र कार्या विचारणा ।
उत्तमानां स्वभावोऽयं यदीनप्रतिपालनम् ॥ ३२
रंकस्य लक्षणं लोके ह्यतिश्रेयस्करं मतम् ।
पुरोऽस्य परयत्नो वै सुजनानां च सेवनम् ॥ ३३
अतः परं च भाग्यं वै दोषश्चैव न दीयताम् ।
एतस्मात्कारणात्स्वामिस्त्वयि दृष्टे शुभं तदा ॥ ३४

त्वदागमनमात्रेण सन्तुष्टानि मनांसि नः ।
दिशोपदेशं येनाशु दुःखं नष्टं भवेच्च नः ॥ ३५

तब उन्हें देखकर वे पाण्डव प्रसन्न हो उठकर उनके आगे खड़े हो गये और कुशासे युक्त मृगचर्मका आसन उन्हें देकर उसपर बैठे हुए व्यासजीका हर्षित होकर पूजन किया, अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति की और कहा कि हम धन्य हो गये ॥ २४-२५ ॥

हमने जो कठिन तप किया, अनेक प्रकारके दान दिये, वह सब सफल हो गया। हे प्रभो! हम सब आपके दर्शनसे तृप्त हो गये ॥ २६ ॥

हे पितामह! आपके दर्शनसे दुःख दूर हो गया, क्रूर कर्मवाले इन दुष्टोंने हमलोगोंको बड़ा दुःख दिया है ॥ २७ ॥

आप-जैसे श्रीमानोंका दर्शन हो जानेपर जो दुःख कभी न गया, वह अब चला ही जायगा—ऐसा हमलोगोंका विचारपूर्ण निश्चय है। सब कुछ करनेमें समर्थ आप-जैसे महात्माओंके आश्रममें पधारनेपर भी यदि दुःख दूर न हुआ तो इसमें दैव ही कारण है ॥ २८-२९ ॥

बड़े लोगोंका स्वभाव कल्पवृक्षके समान माना गया है, उनके आनेपर दुःखका कारणभूत दारिद्र्य निश्चित रूपसे चला जाता है ॥ ३० ॥

हे प्रभो! महापुरुषोंके गुणोंका कथन करनेसे, उनका नामसंकीर्तनमात्र करनेसे अथवा उनका आश्रय लेनेसे व्यक्ति महत्ता या [उपेक्षा करनेसे] लघुताको प्राप्त करता है—इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३१ १/२ ॥

उत्तम पुरुषोंमें स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दीनजनोंका परिपालन करते हैं ॥ ३२ ॥

निर्धनताको लोकमें परम कल्याणकारी माना गया है, क्योंकि इसके सामने अर्थात् लक्ष्यके रूपमें दूसरेका उपकार और सज्जनोंकी सेवा—ये ही रहते हैं ॥ ३३ ॥

उसके बाद जो भाग्य है, उसमें किसीको दोष नहीं देना चाहिये। इसलिये हे स्वामिन्! आपके दर्शनसे हमलोग अपना मंगल ही मानते हैं। आपके आगमन-मात्रसे हमारा मन हर्षित हो उठा है। अब आप हमलोगोंको शीघ्र ही ऐसा उपदेश दें, जिससे हमारा दुःख दूर हो ॥ ३४-३५ ॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा पाण्डवानां महामुनिः ।
प्रसन्नमानसो भूत्वा व्यासश्वैवाब्रवीदिदम् ॥ ३६
हे पाण्डवाश्च यूयं वै न कष्टं कर्तुमर्हथ ।
धन्याः स्थ कृतकृत्याः स्थ सत्यं नैव विलोपितम् ॥ ३७

सुजनानां स्वभावोऽयं प्राणान्तेऽपि सुशोभनः ।
धर्म त्यजन्ति नैवात्र सत्यं सफलभाजनम् ॥ ३८
अस्माकं चैव यूयं च ते चापि समतां गताः ।
तथापि पक्षपातो वै धर्मिष्ठानां मतो बुधैः ॥ ३९

धृतराष्ट्रेन दुष्टेन प्रथमं च ह्यचक्षुषा ।
धर्मस्त्यक्तः स्वयं लोभाद्युष्माकं राज्यमाहृतम् ॥ ४०
तस्य यूयं च ते चापि पुत्रा एव न संशयः ।
पितर्युपरते बाला अनुकम्प्या महात्मनः ॥ ४१

पश्चात्पुत्रश्च तेनैव वारितो न कदाचन ।
अनर्थो नैव जायेत यच्चैवं च कृतं तदा ॥ ४२
अतः परं च यज्ञातं तज्जातं नान्यथा भवेत् ।
अयं दुष्टो भवन्तश्च धर्मिष्ठाः सत्यवादिनः ॥ ४३

तस्मादन्ते च तस्यैवाशुभं हि भविता ध्रुवम् ।
यच्चैवं वापितं बीजं तत्प्रोहो भवेदिह ॥ ४४
तस्मादुःखं न कर्तव्यं भवद्धिः सर्वथा ध्रुवम् ।
भविष्यति शुभं वो हि नात्र कार्या विचारणा ॥ ४५

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा पाण्डवाः सर्वे तेन व्यासेन प्रीणिताः ।
युधिष्ठिरमुखास्ते च पुनरेवाब्रुवन्वचः ॥ ४६

पाण्डवा ऊचुः

सत्यमुक्तं त्वया नाथ दुष्टैर्दुःखं निरन्तरम् ।
दुष्टात्मभिर्विने चापि दीयते हि मुहुर्मुहुः ॥ ४७

नन्दीश्वर बोले—पाण्डवोंका यह वचन सुनकर प्रसन्नचित्त हुए महामुनि व्यासजीने यह कहा— ॥ ३६ ॥

हे पाण्डवो! आपलोग दुःख मत कीजिये, आपलोग धन्य हैं और कृतकृत्य हैं, जो कि आपलोगोंने सत्यका लोप नहीं होने दिया ॥ ३७ ॥

सत्पुरुषोंका ऐसा अत्युत्तम स्वभाव होता है कि वे मृत्युपर्यन्त मनोहर फल देनेवाले सत्य तथा धर्मका त्याग नहीं करते हैं ॥ ३८ ॥

यद्यपि हमारे लिये आपलोग तथा वे [कौरव] दोनों ही बराबर हैं, फिर भी विद्वानोंके द्वारा धर्मात्माओंके प्रति पक्षपात उचित कहा गया है ॥ ३९ ॥

अन्थे तथा दुष्ट धृतराष्ट्रने पहले ही धर्मका त्याग किया और लोभसे स्वयं आपलोगोंका राज्य हड्डप लिया। आपलोग तथा वे [कौरव] दोनों ही उनके पुत्र हैं, इसमें सन्देह नहीं है। पिता (पाण्डु)-के मर जानेपर उन महात्माके बालकोंके ऊपर उन्हें कृपा करनी चाहिये ॥ ४०-४१ ॥

उन्होंने कभी भी अपने पुत्र [दुर्योधन]-को मना नहीं किया, यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो यह अनर्थ न होता। जो होना था, वह हो चुका; होनहार कभी मिथ्या नहीं होता। यह [दुर्योधन] दुष्ट है, आपलोग धर्मात्मा एवं सत्यवादी हैं ॥ ४२-४३ ॥

इसलिये अन्तमें निश्चित रूपसे उसका ही अशुभ होगा, जो बीज यहाँ उसने बोया है, वह अवश्य उत्पन्न होगा ॥ ४४ ॥

इसलिये निश्चय ही आपलोगोंको दुखी नहीं होना चाहिये। हर प्रकारसे आपलोगोंका अवश्य ही शुभ होगा, इसमें सन्देहकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४५ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर महात्मा व्यासजीने उन पाण्डवोंको प्रसन्न कर लिया, तब युधिष्ठिर आदि पाण्डवोंने पुनः उनसे यह वचन कहा— ॥ ४६ ॥

पाण्डव बोले—हे नाथ! आपने सत्य कहा, किंतु मलिन चित्तवाले ये दुष्ट हमें इस वनमें भी बार-बार निरन्तर दुःख ही दे रहे हैं ॥ ४७ ॥

तनाशयाशुभं मेऽद्य किञ्चिदेयं शुभं विभो ।
कृष्णोन कथितं पूर्वमाराध्यः शङ्करः सदा ॥ ४८

प्रमादश्च कृतोऽस्माभिस्तद्वचः शिथिलीकृतम् ।
स देवमार्गस्तु पुनरिदानीमुपदिश्यताम् ॥ ४९

नन्दीश्वर उवाच

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो हर्षसमन्वितः ।
उवाच पाण्डवान्नीत्या स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ॥ ५०

व्यास उवाच

श्रूयतां वचनं मेऽद्य पाण्डवा धर्मबुद्धयः ।
सत्यमुक्तं तु कृष्णोन मया संसेव्यते शिवः ॥ ५१
भवद्धिः सेव्यतां प्रीत्या सुखं स्यादतुलं सदा ।
सर्वदुःखं भवत्येव शिवासेवात एव हि ॥ ५२

नन्दीश्वर उवाच

अथ पञ्चसु तेष्वेव विचार्य शिवपूजने ।
अर्जुनं योग्यमुच्चार्य व्यासो मुनिवरस्तथा ॥ ५३
तपःस्थानं विचार्यैवं ततः स मुनिसत्तमः ।
पाण्डवान्धर्मसन्निष्ठान्युनरेवाब्रवीदिदम् ॥ ५४

व्यास उवाच

श्रूयतां पाण्डवाः सर्वे कथयामि हितं सदा ।
शिवं सर्वं परं दृष्ट्वा परं ब्रह्म सतां गतिम् ॥ ५५
ब्रह्मादित्रिपराद्धान्तं यत्किंचिद् दृश्यते जगत् ।
तत्सर्वं शिवरूपं च पूज्यं ध्येयं च तत्पुनः ॥ ५६

सर्वेषां चैव सेव्योऽसौ शङ्करः सर्वदुःखहा ।
शिवः स्वल्पेन कालेन संप्रसीदति भक्तिः ॥ ५७

सुप्रसन्नो महेशो हि भक्तेभ्यः सकलप्रदः ।
भुक्तिं मुक्तिमिहामुत्र यच्छतीति सुनिश्चितम् ॥ ५८

तस्मात्सेव्यः सदा शम्भुर्भुक्तिमुक्तिफलेषुभिः ।
पुरुषः शङ्करः साक्षाद् दुष्टहन्ता सतां गतिः ॥ ५९

परन्तु प्रथमं शक्रविद्यां दृढमना जपेत् ।
क्षत्रियस्य पराख्यस्य चेदमेव समाहितम् ॥ ६०

इसलिये हे विभो ! हमारे अशुभका नाश कीजिये और हमें मंगल प्रदान कीजिये । इसके पूर्व श्रीकृष्णने [हमलोगोंसे] कहा था कि तुमलोगोंको सर्वदा शिवजीकी आराधना करनी चाहिये, किंतु हमलोगोंने प्रमाद किया और उनकी आज्ञाके पालनमें शिथिलता की । अब आप पुनः उस देवमार्गका उपदेश कीजिये ॥ ४८-४९ ॥

नन्दीश्वर बोले—यह वचन सुनकर व्यासजी बहुत ही प्रसन्न हुए और शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके पाण्डवोंसे प्रेमपूर्वक कहने लगे— ॥ ५० ॥

व्यासजी बोले—हे धर्मबुद्धिवाले पाण्डवो ! मेरी बात सुनो । श्रीकृष्णने सत्य ही कहा था, क्योंकि मैं भी सदाशिवकी उपासना करता हूँ ॥ ५१ ॥

आपलोग भी प्रेमपूर्वक उनका सेवन कीजिये, जिससे सदा अपार सुखकी प्राप्ति होती रहे । शिवकी सेवा न करनेके कारण ही सारा दुःख होता है ॥ ५२ ॥

नन्दीश्वर बोले—उसके अनन्तर विचार करके मुनिवर व्यासजीने पाँचों पाण्डवोंमें अर्जुनको शिवपूजाके योग्य समझा और इसके बाद उन मुनिश्रेष्ठने [उनके लिये] तपस्याका स्थान निश्चितकर धर्मनिष्ठ पाण्डवोंसे पुनः यह कहा— ॥ ५३-५४ ॥

व्यासजी बोले—हे पाण्डवो ! मैं तुमलोगोंके हितकी जो बात कह रहा हूँ, उसे सुनो । तुमलोग सज्जनोंके रक्षक सर्वोक्तुष्ट परब्रह्म शिवका दर्शन प्राप्त करो ॥ ५५ ॥

ब्रह्मासे लेकर त्रिपरार्थपर्यन्त जो भी जगत् दिखायी पड़ता है, वह सब शिवस्वरूप है, इसलिये वह पूजा तथा ध्यान करनेयोग्य है ॥ ५६ ॥

शंकरजी सभी प्रकारके दुःखोंको विनष्ट करनेवाले हैं । अतः सभी लोगोंको उनकी सेवा करनी चाहिये । थोड़े समयमें ही भक्तिसे शिव प्रसन्न हो जाते हैं, अति प्रसन्न होनेपर महेश्वर भक्तोंको सब कुछ दे देते हैं । वे इस लोकमें भोग तथा परलोकमें मुक्ति प्रदान करते हैं—यह बात सुनिश्चित है ॥ ५७-५८ ॥

अतः भोग एवं मोक्षका फल चाहनेवाले पुरुषोंको सर्वदा शिवजीकी सेवा करनी चाहिये । शंकरजी साक्षात् पुरुषोत्तम हैं, दुष्टोंके विनाशक और सज्जनोंके रक्षक हैं । परंतु सबसे पहले स्वस्थ मनसे शक्रविद्याका जप करना चाहिये, श्रेष्ठ कहलानेवाले क्षत्रियके लिये यही विधि है ॥ ५९-६० ॥

अतोऽर्जुनश्च प्रथमं शक्रविद्यां जपेद् दृढः ।
करिष्यति परीक्षां प्राक् सन्तुष्टस्तद्विष्यति ॥ ६१

सुप्रसन्नश्च विज्ञानि संहरिष्यति सर्वदा ।
पुनश्चैव शिवस्यैव वरं मन्त्रं प्रदास्यति ॥ ६२

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा अर्जुनमाहूयोपेन्द्रविद्यामुपादिशत् ।
स्नात्वा च प्राइमुखो भूत्वा जग्राहार्जुन उग्रधीः ॥ ६३

पार्थिवस्य विधानं च तस्मै मुनिवरो ददौ ।
प्रत्युवाच च तं व्यासो धनञ्जयमुदारधीः ॥ ६४

व्यास उवाच

इतो गच्छाधुना पार्थ इन्द्रकीले सुशोभने ।
जाह्नव्याश्च समीपे वै स्थित्वा सम्यक् तपः कुरु ॥ ६५

अदृश्या चैव विद्या स्यात्सदा ते हितकारिणी ।
इत्याशिषं ददौ तस्मै ततः प्रोवाच तान्मुनिः ॥ ६६

धर्ममास्थाय सर्वे वै तिष्ठन्तु नृपसत्तमाः ।
सिद्धिः स्यात्सर्वथा श्रेष्ठा नात्र कार्या विचारणा ॥ ६७

नन्दीश्वर उवाच

इति दत्त्वाशिषं तेभ्यः पाण्डवेभ्यो मुनीश्वरः ।
स्मृत्वा शिवपदाभोजं व्यासश्चान्तर्दधे क्षणात् ॥ ६८

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनाय
व्यासोपदेशवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातावतारवर्णनप्रसंगमें
अर्जुनको व्यासका उपदेशवर्णन नामक सेतीसबाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३७ ॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रका अर्जुनको वरदान देकर शिवपूजनका उपदेश देना

नन्दीश्वर उवाच

अर्जुनोऽपि तदा तत्र दीप्यमानो व्यदृश्यत ।

मन्त्रेण शिवस्त्रपेण तेजश्चातुलमावहन् ॥ १

अतः दृढ़चित्त होकर अर्जुनको सर्वप्रथम शक्रविद्याका जप करना चाहिये । इन्द्र पहले परीक्षा करेंगे, उसके बाद सन्तुष्ट होंगे । सन्तुष्ट हो जानेपर इन्द्र सर्वदा विज्ञोंका विनाश करेंगे और शिवजीका उत्तम मन्त्र प्रदान करेंगे ॥ ६१-६२ ॥

नन्दीश्वर बोले—व्यासजीने इस प्रकार कहकर अर्जुनको अपने पास बुलाकर उन्हें इन्द्रविद्याका उपदेश किया और तीक्ष्ण बुद्धिवाले अर्जुनने भी स्नानकर पूर्वाभिमुख हो उसे ग्रहण कर लिया ॥ ६३ ॥

उस समय उदार बुद्धिवाले मुनिवर व्यासजीने अर्जुनको पार्थिव-पूजनके विधानका भी उपदेश किया और उनसे कहा— ॥ ६४ ॥

व्यासजी बोले—हे पार्थ ! आप इसी समय शीघ्र ही यहाँसे अत्यन्त शोभासम्पन्न इन्द्रकील पर्वतपर जाइये और वहाँ गंगाके तटपर स्थित होकर भलीभाँति तपस्या कीजिये । यह अदृश्य विद्या सर्वदा आपका हित करती रहेगी—मुनिने उन्हें यह आशीर्वाद दिया । उसके बाद पाण्डवोंसे कहा—हे श्रेष्ठ राजाओ ! आपलोग धर्मका आश्रय लेकर यहाँ निवास करें, आपलोगोंको श्रेष्ठ सिद्धि अवश्य प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये ॥ ६५—६७ ॥

नन्दीश्वर बोले—उन पाण्डवोंको यह आशीर्वाद देकर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके मुनीश्वर व्यास क्षणभरमें अन्तर्धान हो गये ॥ ६८ ॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनकुमार !] उस

समय शिवस्वरूप मन्त्रके कारण अतुल तेज धारण किये हुए अर्जुन भी अत्यन्त दीप्तिमान् दिखायी पड़ने लगे ॥ १ ॥

ते सर्वे चार्जुनं दृष्ट्वा पाण्डवा निश्चयं गताः।
जयोऽस्माकं ध्रुवं जातं तेजश्च विपुलं यतः॥ २

इदं कार्यं त्वया साध्यं नान्येन च कदाचन।
व्यासस्य वचनाद्वाति सफलं कुरु जीवितम्॥ ३

इति प्रोच्यार्जुनं ते वै विरहौत्सुक्यकातराः।
अनिच्छन्तोऽपि तत्रैव प्रेषयामासुरादरात्॥ ४

द्रौपदी दुःखसंयुक्ता नेत्राश्रूणि निरुद्ध्य च।
प्रेषयन्ती शुभं वाक्यं तदोवाच पतिव्रता॥ ५

द्रौपद्युवाच

व्यासोपदिष्टं यद्राजंस्त्वया कार्यं प्रयत्नतः।
शुभप्रदोऽस्तु ते पन्थाः शङ्करः शं करोतु वै॥ ६

ते सर्वे चावसंस्तत्र विसृज्यार्जुनमादरात्।
अत्यन्तदुःखमापन्ना मिलित्वा पञ्च एव च॥ ७

स्थितास्तत्र वदन्ति स्म श्रूयतामृषिसत्तम।
दुःखेऽपि प्रियसंगो वै न दुःखाय प्रजायते॥ ८

वियोगे द्विगुणं तस्य दुःखं भवति नित्यशः।
तत्र धैर्यधरस्यापि कथं धैर्यं भवेदिह॥ ९

नन्दीश्वर उवाच

कुर्वत्स्वेव तदा दुःखं पाण्डवेषु मुनीश्वर।
कृपासिन्धुश्च स व्यास ऋषिवर्यः समागतः॥ १०
तं तदा पाण्डवास्ते वै नत्वा सम्पूज्य चादरात्।
दत्त्वासनं हि दुःखाद्याः करौ बध्वा वचोऽब्रुवन्॥ ११

पाण्डवा ऊचुः

श्रूयतामृषभश्रेष्ठ दुःखदग्धा वर्यं प्रभो।
दर्शनं तेऽद्य सम्प्राप्य ह्यानन्दं प्राप्नुमो मुने॥ १२

कियत्कालं वसात्रैव दुःखनाशाय नः प्रभो।
दर्शनात्तव विप्रर्षे सर्वं दुःखं विलीयते॥ १३

उस समय उन सभी पाण्डवोंने अर्जुनको देखकर यह निश्चय कर लिया कि हमलोग अवश्य विजयी होंगे; क्योंकि अर्जुनका तेज बढ़ा हुआ है॥ २॥

[उन लोगोंने अर्जुनसे कहा—हे अर्जुन!] व्यासजीके कथनसे प्रतीत होता है कि इस कार्यको तुम्हीं सिद्ध कर सकते हो, कोई दूसरा कभी नहीं; अतः जीवनको सफल करो॥ ३॥

अर्जुनसे इस प्रकार कहकर उनके विरहसे व्याकुल हुए समस्त पाण्डवोंने न चाहते हुए भी उन्हें आदरपूर्वक वहाँ भेज दिया॥ ४॥

अर्जुनको भेजते समय दुःखसे भरी हुई पतिव्रता द्रौपदीने नेत्रोंके आँसुओंको रोककर यह शुभ वचन कहा—॥ ५॥

द्रौपदी बोली—हे राजन्! व्यासजीने आपको जैसा उपदेश किया है, वैसा आपको प्रयत्नपूर्वक [कार्य] करना चाहिये। आपका मार्ग मंगलप्रद हो और भगवान् शंकरजी आपका कल्याण करें॥ ६॥

उसके अनन्तर पाँचों (द्रौपदीसहित) पाण्डव अर्जुनको आदरपूर्वक विदा करके अत्यन्त दुखी होते हुए परस्पर मिलकर वहाँ निवास करने लगे॥ ७॥

हे ऋषिसत्तम सनत्कुमार! सुनिये, पाण्डवोंने वहाँ रहते हुए आपसमें कहा कि दुःख उपस्थित होनेपर भी प्रियजनका संयोग बना रहे तो दुःख नहीं जान पड़ता है। किंतु प्रियजनके वियोग रहनेपर दुःख आ पड़े तो वह निस्तर द्विगुणित होता जाता है, उस समय धैर्यवान्को भी धीरज कैसे रह सकता है॥ ८-९॥

नन्दीश्वर बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार पाण्डवोंके दुःख प्रकट करनेपर करुणासागर ऋषिवर्य व्यासजी वहाँ आये। तब दुःखसे व्याकुल हुए वे पाण्डव व्यासजीको नमस्कार करके आसन देकर आदरपूर्वक उनकी पूजा करके हाथ जोड़कर यह वचन कहने लगे—॥ १०-११॥

पाण्डव बोले—हे श्रेष्ठोत्तम! हे प्रभो! सुनिये, हम दुःखसे जल रहे थे, किंतु हे मुने! आज आपका दर्शन प्राप्तकर हमलोग आनन्दित रहे हैं॥ १२॥

हे प्रभो! आप हमलोगोंका दुःख दूर करनेके लिये कुछ कालपर्यन्त यहीं निवास कीजिये; क्योंकि हे विप्रर्षे! आपके दर्शनमात्रसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है॥ १३॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तः स ऋषिश्रेष्ठो न्यवसत्तत्सुखाय वै।
कथाभिर्विविधाभिश्च तदुःखं नोदयस्तदा ॥ १४
वार्तायां क्रियमाणायां तेन व्यासेन सन्मुने।
सुप्रणाम्य विनीतात्मा धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥ १५

धर्मराज उवाच

शृणु त्वं हि ऋषिश्रेष्ठ दुःखशान्तिर्मता मम।
पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ कथनीयं त्वया प्रभो ॥ १६
ईदृशं चैव दुःखं च पुरा प्राप्तश्च कश्चन।
वयमेव परं दुःखं प्राप्ता वै नैव कश्चन ॥ १७

व्यास उवाच

राजस्तु नलनाम्नो वै निषधाधिपतेः पुरा।
भवदुःखाधिकं दुःखं जातं तस्य महात्मनः ॥ १८
हरिश्चन्द्रस्य नृपतेर्जातं दुःखं महत्तरम्।
अकथ्यं तद्विशेषेण परशोकावहं तथा ॥ १९

दुःखं तथैव विज्ञेयं रामस्याप्यथ पाण्डव।
यच्छुत्वा स्त्रीनराणां च भवेन्मोहो महत्तरः ॥ २०
तस्माद्वर्णयितुं नैव शक्यते हि मया पुनः।
शरीरं दुःखराशिं च मत्वा त्याज्यं त्वयाधुना ॥ २१

येनेदं च धृतं तेन व्याप्तमेव न संशयः।
प्रथमं मातृगर्भं वै जन्म दुःखस्य कारणम् ॥ २२

कौमारेऽपि महादुःखं बाललीलानुसारि यत्।
ततोऽपि योवने कामान्भुज्जानो दुःखस्त्रियः ॥ २३

गतागतैर्दिनानां हि कार्यभारैरनेकशः।
आयुश्च क्षीयते नित्यं न जानाति ह तत्पुनः ॥ २४

अन्ते च मरणं चैव महादुःखमतः परम्।
नानानरकपीडाश्च भुज्यन्तेऽज्ञैररैस्तदा ॥ २५

नन्दीश्वर बोले—उन लोगोंके इस प्रकार कहनेपर उन ऋषिवरने उनके सुखके लिये वहाँ निवास किया और वे अनेक प्रकारकी कथाओंसे उस समय उनका कष्ट दूर करने लगे। हे सन्मुने! व्यासजीके द्वारा की जाती हुई वातके समय उन्हें प्रणाम करके विनीतात्मा धर्मराजने उनसे यह पूछा— ॥ १४-१५ ॥

युधिष्ठिर बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! हे महाप्राज्ञ! [आपके वचनोंसे] मेरे दुःखकी शान्ति हो गयी, किंतु हे प्रभो! मैं आपसे जो पूछता हूँ, उसे बताइये ॥ १६ ॥

क्या इस प्रकारका दुःख पहले और किसीको प्राप्त हुआ है अथवा यह महान् दुःख हमें ही मिला है, अन्य किसीको नहीं? ॥ १७ ॥

व्यासजी बोले—[हे युधिष्ठिर!] पूर्व समयमें निषधेशके अधिपति महात्मा नलको आपसे भी अधिक दुःख प्राप्त हुआ था ॥ १८ ॥

राजा हरिश्चन्द्रको भी अत्यधिक दुःख प्राप्त हुआ था, जो अनिर्वचनीय और सुननेमात्रसे दूसरोंको भी दुखित करनेवाला है ॥ १९ ॥

हे पाण्डव! वैसा ही दुःख श्रीरामचन्द्रका भी जानना चाहिये, जिसे सुनकर स्त्री-पुरुषोंको अत्यधिक कष्ट होता है। मैं पुनः इसका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ, अतः शरीरको दुःखोंका समूह समझकर इस समय तुम्हें शोकका त्याग करना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

जिस किसीने यह शरीर धारण किया है, वह दुःखोंसे व्याप्त हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। सर्वप्रथम माताके गर्भसे जन्म लेना ही दुःखका कारण होता है। फिर कुमारावस्थामें भी बालकोंकी लीलाके अनुसार महान् दुःख होता है। इसके अनन्तर मनुष्य युवावस्थामें दुःखरूपी कामनाओंका भोग करता है ॥ २२-२३ ॥

[हे युधिष्ठिर!] अनेक प्रकारके कार्यभारोंसे तथा दिनोंके गमनागमनसे पुरुषकी सारी आयु इसी प्रकार नष्ट हो जाती है और मनुष्यको उसका ज्ञान नहीं रहता ॥ २४ ॥

अन्त समयमें जब पुरुषकी मृत्यु होती है, उस समय उसे इससे भी अधिक कष्ट उठाना पड़ता है। इसके बाद भी अज्ञानी मनुष्य अनेक प्रकारके नरकोंकी पीड़ा प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥

तस्मादिदमसत्यं च त्वं तु सत्यं समाचर।
येनैव तुष्टते शम्भुस्तथा कार्यं नरेण च॥ २६

नन्दीश्वर उवाच

एवं विविधवार्ताभिः कालनिर्यापणं तदा।
चक्रुस्ते भ्रातरः सर्वे मनोरथपथैः पुनः॥ २७
अर्जुनोऽपि स्वयं गच्छन्दुगांद्रिषु दृढव्रतः।
यद्यां लब्ध्वा च तेनैव दस्यून्निघन्ननेकशः॥ २८
मनसा हर्षसंयुक्तो जगामाचलमुत्तमम्।
तत्र गत्वा च गंगायाः समीपं सुन्दरं स्थलम्॥ २९
अशोककाननं यत्र तिष्ठति स्वर्गं उत्तमः।
तत्र तस्थौ स्वयं स्नात्वा नत्वा च गुरुमुत्तमम्॥ ३०
यथोपदिष्टं वेषादि तथा चैवाकरोत्स्वयम्।
इन्द्रियाण्यपकृष्यादौ मनसा संस्थितोऽभवत्॥ ३१
पुनश्च पार्थिवं कृत्वा सुन्दरं समसूत्रकम्।
तदग्रे प्रणिदध्यौ स तेजोराशिमनुत्तमम्॥ ३२
त्रिकालं चैव सुस्नातः पूजनं विविधं तदा।
चकारोपासनं तत्र हरस्य च पुनः पुनः॥ ३३
तस्यैव शिरसस्तेजो निस्सृतं तच्चरास्तदा।
दृष्ट्वा भयं समापन्नाः प्रविष्टश्च कदा ह्ययम्॥ ३४

पुनस्ते च विचार्यैवं कथनीयं विडौजसे।
इत्युक्त्वा तु गतास्ते वै शक्रस्यान्तिकमञ्जसा॥ ३५

चरा ऊचुः

देवो वाथ ऋषिश्चैव सूर्यो वाथ विभावसुः।
तपश्चरति देवेश न जानीमो वने च तम्॥ ३६
तस्यैव तेजसा दग्धा आगतास्तव सन्निधौ।
निवेदितं चरित्रं तत्क्रियतामुचितं तु यत्॥ ३७

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्तैश्चरैः सर्वं ज्ञात्वा पुत्रचिकीर्षितम्।
स गोत्रपान्विसृज्यैव तत्र गन्तुं मनो दधे॥ ३८

इसलिये यह सब असत्य है, आप सत्यका आचरण कीजिये। जिस प्रकार भी शिवजी सन्तुष्ट हों, उसी प्रकारका कार्य मनुष्यको करना चाहिये ॥ २६ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार उन सभी भाइयोंने अनेक प्रकारकी वार्ताओं तथा मनोरथोंसे समय बिताना प्रारम्भ किया ॥ २७ ॥

कठिन पहाड़ी मार्गोंसे जाते हुए दृढ़ व्रतवाले अर्जुन भी एक यक्षको प्राप्तकर उसीके साथ अनेक डाकुओंका संहार करते हुए मनमें हर्षित हो उत्तम [इन्द्रकील] पर्वतपर चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने गंगाके समीप एक सुन्दर स्थानको प्राप्त किया, जो स्वर्गसे भी उत्तम तथा अशोकवनसे युक्त था, वहींपर वे बैठ गये। इसके बाद स्वयं स्नान करके श्रेष्ठ गुरुको नमस्कारकर उन्होंने यथोपदिष्ट वेश धारण किया और इन्द्रियोंको वशमें करके एकाग्रचित हो [तपस्याके लिये] स्थित हो गये। उस समय वे अत्यन्त सुन्दर समसूत्रयुक्त पार्थिव शिवलिंगका निर्माण करके उसके आगे [आसनस्थ होकर] उत्तम तेजोराशि [शिवजीका] ध्यान करने लगे ॥ २८—३२ ॥

इस प्रकार अर्जुन तीनों समय स्नान करके बारंबार अनेक प्रकारसे शिवजीकी पूजा करते हुए उपासनामें तत्पर हो गये ॥ ३३ ॥

इसके बाद उस समय उनके शिरोभागसे निकले हुए तेजको देखकर इन्द्रके अनुचर भयभीत हो गये और सोचने लगे कि यह इस स्थानपर कब आ गया? ॥ ३४ ॥

उन्होंने पुनः अपने मनमें विचार किया कि यह समाचार इन्द्रसे निवेदन करना चाहिये। परस्पर ऐसा कहकर वे शीघ्र ही इन्द्रके समीप गये ॥ ३५ ॥

चर बोले—हे देवेश! कोई देवता, ऋषि, सूर्य अथवा अग्निदेव इस वनमें घोर तप कर रहे हैं, हमलोग उन्हें नहीं जानते। उनके तेजसे सन्तप्त होकर हमलोग आपके पास आये हैं। हमने उस चरित्रको आपसे कह दिया, अब जैसा उचित हो, आप वैसा कीजिये ॥ ३६-३७ ॥

नन्दीश्वर बोले—दूतोंके ऐसा कहनेपर इन्द्रने अपने पुत्र [अर्जुन]-का अभिप्राय जानकर पर्वतरक्षकोंको विदाकर स्वयं वहाँ जानेका विचार किया ॥ ३८ ॥

स वृद्धब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मचारी शचीपतिः ।
जगाम तत्र विप्रेन्द्र परीक्षार्थं हि तस्य वै ॥ ३९

तमागतं तदा दृष्ट्वाकार्षीत्पूजां च पाण्डवः ।
स्थितोऽग्रे च स्तुतिं कृत्वा क्वायातोऽसि वदाधुना ॥ ४०

इत्युक्तस्तेन देवेशो धैर्यार्थं तस्य प्रीतिः ।
परीक्षागर्भिं वाक्यं पाण्डवं तं ततोऽब्रवीत् ॥ ४१

ब्राह्मण उवाच

नवे वयसि वै तात किं तपस्यसि साम्प्रतम् ।
मुक्त्यर्थं वा जयार्थं किं सर्वथैतत्पस्तव ॥ ४२

नन्दीश्वर उवाच

इति पृष्ठस्तदा तेन सर्वं संवेदितं पुनः ।
तच्छ्रुत्वा स पुनर्वाक्यमुवाच ब्राह्मणस्तदा ॥ ४३

ब्राह्मण उवाच

युक्तं न क्रियते वीरं सुखं प्राप्नुं च यत्तपः ।
क्षात्रधर्मेण क्रियते मुक्त्यर्थं कुरुसत्तम् ॥ ४४

इन्द्रस्तु सुखदाता वै मुक्तिदाता भवेन्न हि ।
तस्मात्त्वं सर्वथा श्रेष्ठं कर्तुमर्हसि सत्तपः ॥ ४५

नन्दीश्वर उवाच

इदं तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधं चक्रेऽर्जुनस्तदा ।
प्रत्युवाच विनीतात्मा तदनादृत्य सुव्रतः ॥ ४६

अर्जुन उवाच

राज्यार्थं न च मुक्त्यर्थं किमर्थं भाषसे त्विदम् ।
व्यासस्य वचनेनैव क्रियते तप इदृशम् ॥ ४७
इतो गच्छ ब्रह्मचारिन्मां पातयितुमिच्छसि ।
प्रयोजनं किमत्रास्ति तव वै ब्रह्मचारिणः ॥ ४८

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तः स प्रसन्नोऽभूत्सुन्दरं रूपमद्भुतम् ।
स्वोपस्करणसंयुक्तं दर्शयामास वै निजम् ॥ ४९

शक्ररूपं तदा दृष्ट्वा लज्जितश्चार्जुनस्तदा ।
स इन्द्रस्तं समाश्वास्य पुनरेव वचोऽब्रवीत् ॥ ५०

हे विप्रेन्द्र ! वे शचीपति इन्द्र ब्रह्मचारी वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारणकर उनकी परीक्षाके लिये वहाँ पहुँचे । तब उन्हें आया हुआ देखकर अर्जुनने उनकी पूजा की और आगे खड़े होकर स्तुति करके उनसे पूछा कि इस समय आप कहाँसे आये हैं, [कृपया] यह बताइये ? तब उनके द्वारा प्रीतिपूर्वक इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुनके धैर्यके परीक्षणार्थ देवराज इन्द्र प्रतिप्रश्न करने लगे ॥ ३९—४१ ॥

ब्राह्मण बोले—हे तात ! तुम इस समय युवावस्थामें तप क्यों कर रहे हो ? क्या तुम्हारी यह तपस्या सर्वथा मुक्तिके लिये है अथवा विजयके लिये है ? ॥ ४२ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार पूछे जानेपर अर्जुनने अपना सारा समाचार कह सुनाया । तब उन ब्राह्मणने पुनः यह वचन कहा— ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण बोले—हे वीर ! तुम क्षात्रधर्ममें स्थित होकर सुख पानेकी इच्छासे जो तप कर रहे हो, वह उचित नहीं है । हे कुरुश्रेष्ठ ! क्षत्रिय तो मुक्तिहेतु तप करता है । हे श्रेष्ठ ! इन्द्र सुख देनेवाले [देवता] हैं, वे मुक्ति नहीं दे सकते; इसलिये तुम्हें [इस सकाम तपको छोड़कर] सर्वथा श्रेष्ठ तप करना चाहिये ॥ ४४-४५ ॥

नन्दीश्वर बोले—उनके इस वचनको सुनकर दृढ़व्रत एवं विनयी अर्जुनने क्रोध किया और उनका निरादर करते हुए कहा— ॥ ४६ ॥

अर्जुन बोले—मैं न तो राज्यके लिये और न तो मुक्तिके लिये तप कर रहा हूँ । तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो ? मैं व्यासजीकी आज्ञासे इस प्रकारका तप कर रहा हूँ । हे ब्रह्मचारिन् ! अब यहाँसे [शीघ्र] चले जाओ, मुझे अपने संकल्पसे मत गिराओ । तुझ ब्रह्मचारीका यहाँ क्या प्रयोजन है ? ॥ ४७-४८ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहे जानेपर वे [इन्द्रदेव] प्रसन्न हो उठे और [वज्र आदि] अपने उपस्करणोंसे युक्त अद्भुत तथा मनोहर अपना रूप उन्होंने दिखाया ॥ ४९ ॥

तब इन्द्रके रूपको देखकर अर्जुन लज्जित हो उठे । इसके बाद उन्हें आश्वस्त करके इन्द्रने पुनः यह वचन कहा— ॥ ५० ॥

इन्द्र उवाच

वरं वृणीष्व हे तात धनंजय महामते।
यदिच्छसि मनोऽभीष्टं नादेयं विद्यते तव ॥ ५१
तच्छुत्वा शक्रवचनं प्रत्युवाचार्जुनस्तदा।
विजयं देहि मे तात शत्रुक्लिष्टस्य सर्वथा ॥ ५२

शक्र उवाच

बलिष्ठाः शत्रवस्ते च दुर्योधनपुरःसराः।
द्रोणो भीष्मश्च कर्णश्च सर्वे ते दुर्जया ध्ववम् ॥ ५३
अश्वत्थामा द्रोणपुत्रो रौद्रोऽशो दुर्जयोऽति सः।
मयासाध्या भवेयुस्ते सर्वथा स्वहितं शृणु ॥ ५४

एतद्वीरं जयं कर्तुं न शक्तः कश्चनाधुना।
वर्तते हि शिवो वर्यस्तस्माच्छम्भोर्जपोऽधुना ॥ ५५

शंकरः सर्वलोकेशश्वराचरपतिः स्वराट्।
सर्वं कर्तुं समर्थोऽस्ति भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥ ५६

अहमन्ये च ब्रह्माद्या विष्णुः सर्ववरप्रदः।
अन्ये जिगीषवो ये च ते सर्वे शिवपूजकाः ॥ ५७

अद्यप्रभृति तन्मन्त्रं हित्वा भक्त्या शिवं भज।
पार्थिवेन विधानेन ध्यानेनैव शिवस्य च ॥ ५८

उपचारैरनेकैश्च सर्वभावेन भारत।
सिद्धिः स्यादचला तेऽद्य नात्र कार्या विचारणा ॥ ५९

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा च चरान्सर्वान्समाहूयाब्रवीदिदम्।
सावधानेन वै स्थेयमेतत्संरक्षणे सदा ॥ ६०
प्रबोध्य स्वचरानिन्द्रोऽर्जुनसंरक्षणादिकम्।
वात्सल्यपूर्णहृदयः पुनरुचे कपिध्वजम् ॥ ६१

इन्द्र उवाच

राज्यं त्वया प्रमादाद्वै न कर्तव्यं कदाचन।
श्रेयसे भद्रं विद्येयं भवेत्तव परन्तप ॥ ६२
धैर्यं धार्यं साधकेन सर्वथा रक्षकः शिवः।
संपत्तीश्च फलं तुभ्यं दास्यते नात्र संशयः ॥ ६३

इन्द्र बोले—हे तात! हे धनंजय! हे महामते!
तुम्हारा जो भी अभिलिष्ट हो, वह वर मुझसे माँगो।
तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। तब इन्द्रके उस
वचनको सुनकर अर्जुन बोले—हे तात! हर प्रकारसे
शत्रुओंसे पीड़ित मुझे विजय प्रदान करें ॥ ५१-५२ ॥

शक्र बोले—[हे तात!] दुर्योधन आदि तुम्हारे
शत्रु बड़े बलवान् हैं और द्रोण, भीष्म एवं कर्ण—
ये सब निश्चय ही [युद्धमें] दुर्जय हैं ॥ ५३ ॥

साक्षात् रुद्रका अंश द्रोणपुत्र अश्वत्थामा तो अत्यन्त
दुर्जय है। वे सभी (भीष्म, द्रोण आदि) मुझसे भी
असाध्य हैं; तो भी अपने हितकी बात सुनो ॥ ५४ ॥

हे वीर! इस (अश्वत्थामा)-पर विजय प्राप्त
करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है; केवल शिव ही समर्थ
है, इसलिये अब तुम शिव-मन्त्रका जप करो ॥ ५५ ॥

सभी लोकोंके स्वामी, चराचरपति, स्वराट् और
भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले शंकर सब कुछ
करनेमें समर्थ हैं। ब्रह्मा आदि [देवश्रेष्ठ], सबको वर
देनेवाले विष्णु, मैं [स्वयं इन्द्र], अन्य [देवगण]
तथा विजयकी अभिलाषावाले दूसरे लोग—ये सभी
भगवान् शिवकी उपासना करते हैं ॥ ५६-५७ ॥

हे भारत! आजसे इस मन्त्रका जप छोड़कर
पार्थिव-विधानसे नानाविध उपचारोंके द्वारा तन्मय
होकर भक्तिभावसे शिवजीकी आराधना करो। इस
प्रकार [पार्थिवार्चन तथा] ध्यानके द्वारा तुमको
अचल सिद्धि इसी समय प्राप्त होगी, इसमें सन्देह न
करो ॥ ५८-५९ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर इन्द्रने अपने सभी
सेवकोंको बुलाकर कहा कि तुमलोग सावधान होकर
इनकी रक्षा करनेके लिये सदा यहाँ रहो। इसके बाद
इन्द्रने अपने अनुचरोंको अर्जुनकी रक्षा आदिका आदेश
देकर वात्सल्यपूर्वक अर्जुनसे पुनः कहा— ॥ ६०-६१ ॥

इन्द्र बोले—हे परन्तप! हे भद्र! तुम कभी भी
प्रमादपूर्वक राज्य मत करना; यह विद्या तुम्हारे
कल्याणके लिये होगी। साधकको सदा धैर्य धारण
करना चाहिये। रक्षक तो शिवजी हैं ही। वे तुमको
सम्पत्तियोंके साथ फल (मोक्ष) भी प्रदान करेंगे;
इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६२-६३ ॥

नन्दीश्वर उवाच
इति दत्त्वा वरं तस्य भारतस्य सुरेश्वरः ।
स्मरज्जिवपदाभोजं जगाम भवनं स्वकम् ॥ ६४

अर्जुनोऽपि महावीरः सुप्रणम्य सुरेश्वरम् ।
तपस्तेषे संयतात्मा शिवमुद्दिश्य तद्विधम् ॥ ६५

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनतपेवर्णनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातावतारवर्णन-प्रसंगमें
अर्जुनका तपवर्णन नामक अङ्गतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३८ ॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

मूक नामक दैत्यके वधका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

स्नानं स विधिवत्कृत्वा न्यासादि विधिवत्तथा ।
ध्यानं शिवस्य सद्भक्त्या व्यासोक्तं यज्ञथाकरोत् ॥ १
एकपादतलेनैव तिष्ठन्मुनिवरो यथा ।
सूर्ये दृष्टिं निबध्यैकां मन्त्रमावर्तयन् स्थितः ॥ २

तपस्तेषेति सम्प्रीत्या संस्मरन्मनसा शिवम् ।
पञ्चाक्षरं मनुं शाभोर्जपन्सर्वोत्तमोत्तमम् ॥ ३

तपस्तेज एवासीद्यथा देवा विसिम्युः ।
पुनश्चैव शिवं याताः प्रत्यूचुस्ते समाहिताः ॥ ४

देवा ऊचुः

नरेणैकेन सर्वेश त्वदर्थे तप आहितम् ।
यदिच्छति नरः सोऽयं किन्न यच्छति तत्प्रभो ॥ ५

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तु स्तुतिं चकुर्विविधां ते तदा सुराः ।
तत्पादयोर्दृशः कृत्वा तत्र तस्थुः स्थिराध्यः ॥ ६

शिवस्तु तद्वचः श्रुत्वा महाप्रभुरुदारधीः ।
सुविहस्य प्रसन्नात्मा सुरान्वचनमब्रवीत् ॥ ७

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार अर्जुनको वरदान देकर इन्द्र शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए अपने भवनको चले गये ॥ ६४ ॥

पराक्रमी अर्जुन भी सुरेश्वरको प्रणामकर संयतचित्त होकर शिवजीको उद्देश्य करके उसी प्रकारका तप करने लगे ॥ ६५ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णनप्रसंगेऽर्जुनतपेवर्णनं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥
॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातावतारवर्णन-प्रसंगमें
अर्जुनका तपवर्णन नामक अङ्गतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३८ ॥

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार व्यासजीने जैसा कहा था, उसी प्रकार अर्जुन विधिवत् स्नान, न्यासादि करके उत्तम भक्तिसे शिवका ध्यान करने लगे ॥ १ ॥

वे एक श्रेष्ठ मुनिके समान एक पैरके तलवेपर स्थित होकर अपनी एकाग्र दृष्टि सूर्यमें लगाकर विधिपूर्वक शिवके मन्त्रका जप खड़े-खड़े करने लगे ॥ २ ॥

वे मनसे शिवका स्मरण करते हुए तथा शिवजीके सर्वोत्तम पंचाक्षरमन्त्रका जप करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने लगे ॥ ३ ॥

उनके तपका तेज ऐसा था कि देवता भी आश्चर्यचकित हो गये, फिर वे शिवजीके समीप गये और सावधान होकर कहने लगे— ॥ ४ ॥

देवता बोले—हे सर्वेश ! एक मनुष्य आपको प्रसन्न करनेके लिये तप कर रहा है । अतः हे प्रभो ! यह मनुष्य जो कुछ चाहता है, उसे आप क्यों नहीं दे देते हैं ? ॥ ५ ॥

नन्दीश्वर बोले—तब ऐसा कहकर चिन्ताग्रस्त वे देवगण शिवजीकी अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे । वे उनके चरणोंपर दृष्टि लगाकर वहीं स्थित हो गये ॥ ६ ॥

तब उदारबुद्धिवाले महाप्रभु शिव उनका वचन सुनकर हँस करके प्रसन्नचित्त होकर देवताओंसे यह वचन कहने लगे— ॥ ७ ॥

शिव उवाच

स्वस्थानं गच्छत सुराः सर्वे सत्यं न संशयः ।
सर्वथाहं करिष्यामि कार्यं वो नात्र संशयः ॥ ८

नन्दीश्वर उवाच

तच्छुत्वा शम्भुवचनं निश्चयं परमं गताः ।
परावृत्य गताः सर्वे स्वस्थानं ते हि निर्जराः ॥ ९
एतस्मिन्नतरे दैत्यो मूकनामागतस्तदा ।
सौकरं रूपमास्थाय प्रेषितश्च दुरात्मना ॥ १०
दुर्योधनेन विप्रेन्द्र मायिना चार्जुनं तदा ।
यत्रार्जुनः स्थितश्चासीत्तेन मार्गेण वै तदा ॥ ११
शृङ्गाणि पर्वतस्यैव छिन्दन्वृक्षाननेकशः ।
शब्दं च विविधं कुर्वन्नतिवेगेन संयुतः ॥ १२
अर्जुनोऽपि च तं दृष्ट्वा मूकनामासुरं तदा ।
स्मृत्वा शिवपदाभ्योजं विचारे तत्परोऽभवत् ॥ १३

अर्जुन उवाच

कोऽयं वा कुत आयाति क्रूरकर्मा च दृश्यते ।
ममानिष्टं ध्रुवं कर्तुं समागच्छत्यसंशयम् ॥ १४
ममैवं मन आयाति शत्रुरेव न संशयः ।
मया विनिहताः पूर्वमनेके दैत्यदानवाः ॥ १५
तदीयः कश्चिदायाति वैरं साधयितुं पुनः ।
अथवा च सखा कश्चिद् दुर्योधनहितावहः ॥ १६
यस्मिन्दृष्टे प्रसीदेत्स्वं मनः स हितकृद ध्रुवम् ।
यस्मिन्दृष्टे तदेव स्यादाकुलं शत्रुरेव सः ॥ १७

आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ।
वचनं श्रुतमाख्याति स्नेहमाख्याति लोचनम् ॥ १८

आकारेण तथा गत्या चेष्ट्या भाषितैरपि ।
नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां ज्ञायतेऽन्तर्हितं मनः ॥ १९
उज्ज्वलं सरसं चैव वक्रमारक्तकं तथा ।
नेत्रं चतुर्विधं प्रोक्तं तस्य भावं पृथग्बुधाः ॥ २०

शिवजी बोले—हे देवताओ! आप लोगोंकी बात निःसन्देह सत्य है। अब आपलोग अपने-अपने स्थानको जाइये; मैं आपलोगोंका कार्य सर्वथा करूँगा; इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर देवताओंको पूर्ण विश्वास हो गया और वहाँसे लौटकर वे अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ९ ॥

हे विप्रेन्द्र! इसी बीच दुरात्मा तथा मायावी दुर्योधनके द्वारा अर्जुनके प्रति भेजा गया मूक नामक दैत्य शूकरका रूप धारणकर वहाँ आया, जहाँ अर्जुन स्थित थे। वह पर्वतोंके शिखरोंको तोड़ता हुआ, अनेक वृक्षोंको उखाड़ता हुआ तथा विविध प्रकारके शब्द करता हुआ बड़े वेगसे उसी मार्गसे जा रहा था ॥ १०—१२ ॥

उस समय अर्जुन भी मूक नामक दैत्यको देखकर शिवके चरणकमलोंका स्मरणकर [अपने मनमें] विचार करने लगे ॥ १३ ॥

अर्जुन बोले—यह कौन है? कहाँसे आ रहा है? यह तो बड़ा क्रूर कर्म करनेवाला दिखायी दे रहा है! निश्चय ही यह मेरा अनिष्ट करनेके लिये मेरी ओर आ रहा है ॥ १४ ॥

मेरे मनमें तो यह आ रहा है कि यह शत्रु ही है; इसमें सन्देह नहीं है। मैंने इससे पूर्व अनेक दैत्य-दानवोंका संहार किया है। उन्हींका कोई सम्बन्धी अपना वैर साधनेके लिये [मेरी ओर] आ रहा है अथवा यह दुर्योधनका कोई हितकारी मित्र है ॥ १५-१६ ॥

जिसके देखनेसे अपना मन प्रसन्न हो, वह निश्चय ही हितैषी होता है और जिसके देखनेसे मनमें व्याकुलता उत्पन्न हो, वह अवश्य ही शत्रु होता है। सदाचारसे कुलका, शरीरसे भोजनका, वचनके द्वारा शास्त्रज्ञानका तथा नेत्रके द्वारा स्नेहका पता लग जाता है ॥ १७-१८ ॥

आकार, गति, चेष्टा, सम्भाषण एवं नेत्र तथा मुखके विकारसे मनुष्यके अन्तःकरणकी बात ज्ञात हो जाती है। उज्ज्वल, सरस, टेढ़ा और लाल—ये चार प्रकारके नेत्र कहे गये हैं; विद्वानोंने उनका पृथक्-पृथक् भाव बताया है ॥ १९-२० ॥

उज्ज्वलं मित्रसंयोगे सरसं पुत्रदर्शने ।
वक्रं च कामिनीयोगे आरक्तं शत्रुदर्शने ॥ २१

अस्मिन्मम तु सर्वाणि कलुषानीन्द्रियाणि च ।
अयं शत्रुर्भवेदेव मारणीयो न संशयः ॥ २२

गुरोश्च वचनं मेऽद्य वर्तते दुःखदस्त्वया ।
हन्तव्यः सर्वथा राजन्नात्र कार्या विचारणा ॥ २३

एतदर्थं त्वायुधानि मम चैव न संशयः ।
विचार्येति च तत्रैव बाणं संस्थाय संस्थितः ॥ २४

एतस्मिन्नन्तरे तत्र रक्षार्थं ह्यर्जुनस्य वै ।
तद्वक्तेश्च परीक्षार्थं शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ २५

विदग्धभिल्लरूपं हि गणैः सार्धं महाद्वृतम् ।
तस्य दैत्यस्य नाशार्थं द्रुतं कृत्वा समागतः ॥ २६

बद्धकच्छश्च वल्लीभिर्बद्धवा केशान् हरस्तदा ।
शरीरे श्वेतरेखाश्च धनुर्बाणयुतः स्वयम् ॥ २७

बाणानां तूणकं पृष्ठे धृत्वा वै स जगाम ह ।

गणश्वैव तथा जातो भिल्लराजोऽभवच्छिवः ॥ २८

शब्दांश्च विविधान्कृत्वा निर्ययौ वाहिनीपतिः ।
सूकरस्य ससाराथं शब्दश्च प्रदिशो दशः ॥ २९

वनेचरेण शब्देन व्याकुलश्चार्जुनस्तदा ।
पर्वताद्याश्च तैः शब्दस्ते सर्वे व्याकुलास्तदा ॥ ३०

अहो किञ्चु भवेदेष शिवः शुभकरस्त्वह ।
मया चैव श्रुतं पूर्वं कृष्णोन कथितं पुनः ॥ ३१

व्यासेन कथितं चैव स्मृत्वा देवैस्तथा पुनः ।
शिवः शुभकरः प्रोक्तः शिवः सुखकरस्तथा ॥ ३२

मुक्तिदश्च स्वयं प्रोक्तो मुक्तिदानान्नं संशयः ।
तत्रामस्मरणात्पुंसां कल्याणं जायते ध्रुवम् ॥ ३३

भजतां सर्वभावेन दुःखं स्वप्नेऽपि नो भवेत् ।
यदा कदाचिज्जायेत तदा कर्मसमुद्भवम् ॥ ३४

मित्रके मिलनेपर उज्ज्वल, पुत्रको देखनेपर सरस, स्त्रीके मिलनेपर वक्र तथा शत्रुके देखनेपर नेत्र लाल हो जाते हैं। किंतु इसे देखनेपर तो मेरी सारी इन्द्रियाँ कलुषित हो गयी हैं। अतः यह अवश्य ही मेरा शत्रु है, इसका वध कर देना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१-२२ ॥

मेरे गुरुका यह कथन भी है—हे राजन्! तुम दुःख देनेवालेका सर्वथा वध कर देना, इसमें विचार नहीं करना चाहिये। निस्सन्देह इसीलिये तो ये आयुध भी हैं। इस प्रकार विचारकर अर्जुन [धनुषपर] बाण चढ़ाकर खड़े हो गये ॥ २३-२४ ॥

इसी बीच अर्जुनकी रक्षाके लिये एवं उनकी भक्तिकी परीक्षा करनेके लिये भक्तवत्सल भगवान् शंकर अपने गणोंके सहित अत्यन्त अद्भुत सुशिक्षित भीलका रूप धारणकर उस दैत्यका विनाश करनेके लिये शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे। कच्छ (लांग-काछ) लगाये हुए, लताओंसे अपने केशोंको बाँधे हुए, शरीरपर श्वेत वर्णकी रेखा अंकित किये हुए, धनुष-बाण धारण किये हुए तथा पीठपर बाणोंका तरकस धारण किये हुए वे गणोंसहित वहाँ गये। वे शिवजी भीलराज बने हुए थे ॥ २५—२८ ॥

वे शिवजी भील सेनाके अधिपति होकर कोलाहल करते हुए निकले, उसी समय शूकरके गरजनेकी ध्वनि दसों दिशाओंमें सुनायी पड़ी ॥ २९ ॥

तब उस वनचारी शूकरके [घोर घर्घर] शब्दसे अर्जुन व्याकुल हो गये, साथ ही जो पर्वत आदि थे, वे सभी उन शब्दोंसे व्याकुल हो उठे ॥ ३० ॥

अहो! यह क्या है? कहीं ये कल्याणकारी शिवजी ही तो नहीं हैं, जो यहाँ पधारे हैं; क्योंकि मैंने ऐसा पूर्वमें सुना था, श्रीकृष्णने भी मुझसे कहा था, व्यासजीने भी ऐसा ही कहा था और देवगणोंने भी स्मरणकर यही बात कही थी कि शिवजी ही सभी प्रकारका मंगल करनेवाले तथा सुख देनेवाले कहे गये हैं ॥ ३१-३२ ॥

वे मुक्ति देनेके कारण मुक्तिदाता कहे गये हैं; इसमें सन्देह नहीं है। उनके नामस्मरणमात्रसे निश्चितरूपसे मनुष्योंका कल्याण होता है। सब प्रकारसे इनका भजन करनेवालोंको स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता है। यदि कभी होता है, तो उसे कर्मजन्य समझना चाहिये ॥ ३३-३४ ॥

भावितद्वृहपि ज्ञेयं नूनमल्पं न संशयः ।
प्रारब्धस्याथ वा दोषो नूनं ज्ञेयो विशेषतः ॥ ३५

अथवा बहु चाल्पं हि भोग्यं निस्तीर्य शङ्करः ।
कदाचिदिच्छ्या तस्य दूरीकुर्यान्न संशयः ॥ ३६

विषं चैवामृतं कुर्यादमृतं विषमेव वा ।
यदिच्छति करोत्येव समर्थः किञ्चिष्ठियते ॥ ३७

इत्थं विचार्यमाणेऽपि भक्तैरन्यैः पुरातनैः ।
भाविभिश्च सदा भक्तैरिहानीय मनः स्थिरम् ॥ ३८

लक्ष्मीर्गच्छेच्चावतिष्ठेन्मरणं निकटे पुरः ।
निन्दां वाथ प्रकुर्वन्तु स्तुतिं वा दुःखसंक्षयम् ॥ ३९

जायते पुण्यपापाभ्यां शङ्करः सुखदः सदा ।
कदाचिच्च परीक्षार्थं दुःखं यच्छति वै शिवः ॥ ४०

अन्ते च सुखदः प्रोक्तो दयालुत्वान्न संशयः ।
यथा चैव सुवर्णं च शोधितं शुद्धतां व्रजेत् ॥ ४१

एवं चैव मया पूर्वं श्रुतं मुनिमुखात्तथा ।
अतस्तद्वजनेनैव लप्येऽहं सुखमुत्तमम् ॥ ४२

इत्येवं तु विचारं स करोति यावदेव हि ।
तावच्च सूकरः प्राप्तो बाणसंमोचनावधिः ॥ ४३

शिवोऽपि पृष्ठतो लग्नो ह्यायातः शूकरस्य हि ।
तयोर्मध्ये तदा सोऽयं दृश्यते शृङ्गमद्वृतम् ॥ ४४

तस्य प्रोक्तं च माहात्म्यं शिवः शीघ्रतरं गतः ।
अर्जुनस्य च रक्षार्थं शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ ४५

[शिवजीके अनुग्रहसे तो] प्रबल होनहार भी अवश्य कम हो जाता है—ऐसा जानना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है अथवा विशेषरूपसे प्रारब्धका दोष समझना चाहिये और शिवजी स्वयं अपनी इच्छासे कभी बहुत अथवा कम उस भोगको भुगताकर उस दुर्भोग्यका निवारण करते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३५-३६ ॥

वे विषको अमृत एवं अमृतको विष बना देते हैं। वे समर्थ हैं, जैसा चाहते हैं, वैसा करते हैं, भला! उन सर्वसमर्थको कौन मना कर सकता है? अन्य पुरातन भक्तोंके द्वारा इस प्रकार विचार किये जानेके कारण भावी भक्तोंको भी सदा शिवजीमें अपना मन स्थिर रखना चाहिये ॥ ३७-३८ ॥

लक्ष्मी रहे या चली जाय, मृत्यु भले ही सन्निकट और समक्ष खड़ी हो, लोग निन्दा करें अथवा स्तुति करें, [दुःख बना रहे या] दुःखनाश हो जाय [यह इष्ट-अनिष्टात्मक दुर्द्वं तो] पुण्य तथा पापके कारण उत्पन्न होता है, [इसमें शिव निमित्त नहीं हैं] वे तो सर्वदा अपने भक्तोंको सुख ही देते हैं। कभी-कभी वे अपने भक्तोंकी परीक्षा करनेके लिये उनको दुःख भी देते हैं; किंतु दयालु होनेके कारण वे अन्तमें सुख देनेवाले ही होते हैं। जैसे सुवर्ण अर्जिनमें तपानेपर शुद्ध होता है, उसी प्रकार भक्त भी तपानेसे निखरते हैं ॥ ३९-४१ ॥

पूर्वकालमें मैंने मुनियोंके मुखसे ऐसा ही सुना है, इसलिये मैं उनके भजनसे ही उत्तम सुख प्राप्त करूँगा, जबतक अर्जुन इस प्रकारका विचार कर ही रहे थे, तबतक शरसन्धानका लक्ष्य वह शूकर वहाँ आ पहुँचा। उधर, [भीलवेषधारी] शिवजी भी शूकरका पीछा करते हुए आ पहुँचे। उस समय उन दोनोंके बीचमें वह शूकर अद्वृत शिखरके समान दिखायी पड़ रहा था ॥ ४२-४४ ॥

अर्जुनने शिवका माहात्म्य कहा था, इसलिये भक्तवत्सल शिव उनकी रक्षा करनेके लिये वहाँ पहुँच गये ॥ ४५ ॥

एतस्मिन्समये ताभ्यां कृतं बाणविमोचनम्।
शिवबाणस्तु पुच्छे वै हर्जुनस्य मुखे तथा ॥ ४६
शिवस्य पुच्छतो गत्वा मुखान्त्रिस्त्वं शीघ्रतः।
भूमौ विलीनः संयातस्तस्य वै पुच्छतो गतः ॥ ४७
पपात पार्श्वतश्चैव बाणश्चैवार्जुनस्य च।
सूकरस्तक्षणं दैत्यो मृतो भूमौ पपात ह ॥ ४८

देवा हर्षं परं प्रापुः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे।
जयपूर्वं स्तुतिकराः प्रणाम्य च पुनः पुनः ॥ ४९

शिवस्तुष्टमना आसीदर्जुनः सुखमागतः।
दैत्यस्य च तदा दृष्ट्वा कूरं रूपं च तौ तदा ॥ ५०
अर्जुनस्तु विशेषेण सुखिना प्राह चेतसा।
अहो दैत्यवरश्चायं रूपं तु परमाद्भुतम् ॥ ५१
कृत्वागतो मद्वधार्थं शिवेनाहं सुरक्षितः।
ईश्वरेण ममाद्यैव बुद्धिर्दत्ता न संशयः ॥ ५२

विचार्येत्यर्जुनस्तत्र जगौ शिवं शिवेति च।
प्रणनामं शिवं भूयस्तुष्टाव च पुनः पुनः ॥ ५३

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातावतारवर्णने

मूकदैत्यवधो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके किरातावतारवर्णनमें
मूकदैत्यवध नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

भीलस्वरूप गणेश्वर एवं तपस्वी अर्जुनका संवाद

नन्दीक्षर उवाच

सनत्कुमारं सर्वज्ञं शृणु लीलां परात्मनः।
भक्तवात्सल्यसंयुक्तां तद् दृढत्वविदर्भिताम् ॥ १
शिवोऽप्यथ स्वभूत्यं वै प्रेषयामास स द्रुतम्।
बाणार्थं च तदा तत्रार्जुनोऽपि समगात्ततः ॥ २

एकस्मिन् समये प्राप्तौ बाणार्थं तद्वार्जुनौ।
अर्जुनस्तं पराभृत्यं स्वबाणं चाग्रहीत्तदा ॥ ३

इसी समय उन दोनोंने बाण चलाया; शिवजीका बाण शूकरकी पूँछमें तथा अर्जुनका बाण मुखमें लगा। शिवजीका बाण पूँछमें घुसकर मुखसे निकलकर शीघ्र ही पृथ्वीमें विलीन गया और अर्जुनका बाण [मुखमें प्रविष्ट होकर] पूँछसे निकलकर पार्श्वभागमें गिर पड़ा। वह शूकररूप दैत्य उसी क्षण मरकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ४६—४८ ॥

देवता परम हर्षित हो गये और पुष्पवृष्टि करने लगे। उन्होंने बार-बार प्रणामकर जय-जयकार करते हुए शिवजीकी स्तुति की ॥ ४९ ॥

उस दैत्यके क्रूर रूपको देखकर शिवजी प्रसन्नचित्त हो गये और अर्जुनको भी सुख प्राप्त हुआ। तब अर्जुनने विशेषरूपसे प्रसन्न मनसे कहा— अरे, यह महादैत्य अत्यन्त अद्भुत रूप धारणकर मेरे वधके लिये आया था, किंतु शिवजीने मेरी रक्षा की। शिवजीने ही आज मुझे बुद्धि प्रदान की; इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५०—५२ ॥

ऐसा विचारकर अर्जुनने 'शिव-शिव' कहकर उनका यशोगान किया और उन्हें प्रणाम किया तथा बार-बार उनकी स्तुति की ॥ ५३ ॥

नन्दिकेश्वर बोले— हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ!

अब परमात्मा शिवकी भक्तवत्सलतासे युक्त तथा उनकी दृढ़ भक्तिसे भरी हुई लीला सुनिये ॥ १ ॥

उसके बाद उन शिवजीने अपना बाण लानेके लिये शीघ्र ही अपने सेवकको वहाँ भेजा और उसी समय अर्जुन भी अपना बाण लेनेके लिये वहाँ पहुँचे। एक ही समय शिवका गण तथा अर्जुन बाण लेने हेतु वहाँ उपस्थित हुए, तब अर्जुनने उसे धमकाकर अपना बाण ले लिया ॥ २-३ ॥

गणः प्रोवाच तं तत्र किमर्थं गृह्णते शरः ।
बाणश्वैवास्मदीयो वै मुच्यतां ऋषिसत्तम् ॥ ४
इत्युक्तस्तेन भिल्लस्य गणेन मुनिसत्तम् ।
सोऽर्जुनः शङ्करं स्मृत्वा वचनं च तमब्रवीत् ॥ ५

अर्जुन उवाच

अज्ञात्वा किं च वदसि मूर्खोऽसि त्वं वनेचर ।
बाणश्व मोचितो मेऽद्य त्वदीयश्च कथं पुनः ॥ ६

रेखारूपं च पिच्छानि मन्नामाङ्कित एव च ।
त्वदीयश्च कथं जातः स्वभावो दुस्त्यजस्तव ॥ ७

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं तद्वचः श्रुत्वा विहस्य स गणेश्वरः ।
अर्जुनं ऋषिरूपं तं भिल्लो वाक्यमुपाददे ॥ ८
तापस श्रूयतां रे त्वं न तपः क्रियते त्वया ।
वेषतश्च तपस्वी त्वं न यथार्थं छलायते ॥ ९
तपस्वी च कथं मिथ्या भाषणं कुरुते नरः ।
नैकाकिनं च मां त्वं च जानीहि वाहिनीपतिम् ॥ १०
बहुभिर्वनभिल्लौश्च युक्तः स्वामी स आसते ।
समर्थः सर्वथा कर्तुं विग्रहानुग्रहौ पुनः ॥ ११

वर्तते तस्य बाणोऽयं यो नीतश्च त्वयाधुना ।
अयं बाणश्व ते पाश्वे न स्थास्यति कदाचन ॥ १२

तपःफलं कथं त्वं च हातुमिच्छसि तापस ।
चौर्याच्छ्लादर्द्यमानाद् विस्मयात्सत्यभञ्जनात् ॥ १३

तपसा क्षीयते सत्यमेतदेव मया श्रुतम् ।
तस्माच्च तपसस्तेऽद्य भविष्यति फलं कुतः ॥ १४

तस्मादमुक्तबाणो हि कृतघ्नस्त्वं भविष्यसि ।
ममैव स्वामिना बाणस्तवार्थं मोचितो ध्रुवम् ॥ १५

शत्रुश्च मारितस्तेन पुनर्बाणश्व रक्षितः ।
अत्यन्तं च कृतघ्नोऽसि तपोऽशुभकरस्तथा ॥ १६

तब शिवजीका गण उनसे कहने लगा—हे मुनिसत्तम ! यह बाण मेरा है, आप इसे क्यों ले रहे हैं, आप इसे छोड़ दीजिये । हे मुनिश्रेष्ठ ! भीलराजके उस गणद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन अर्जुनने शिवजीका स्मरण करके उनसे कहा— ॥ ४-५ ॥

अर्जुन बोले—हे वनेचर ! बिना जाने तुम ऐसा क्यों बोल रहे हो ? तुम मूर्ख हो; यह बाण अभी मैंने चलाया था, फिर यह तुम्हारा किस प्रकार हो सकता है ? इस बाणके पिछे रेखाओंसे चित्रित हैं तथा इसमें मेरा नाम अंकित है। यह तुम्हारा कैसे हो गया ? निश्चय ही तुम्हारा [यह हठी] स्वभाव कठिनाईसे छूटनेवाला है ॥ ६-७ ॥

नन्दीश्वर बोले—उनकी यह बात सुनकर गणेश्वर उस भीलने महर्षिरूपधारी उन अर्जुनसे यह वचन कहा—अरे तपस्वी ! सुनो, तुम तप नहीं कर रहे हो, तुम केवल वेषसे तपस्वी हो, यथार्थरूपमें [तपोनिरत व्यक्ति] छल नहीं करते ॥ ८-९ ॥

तपस्वी व्यक्ति असत्य भाषण कैसे कर सकता है ? तुम मुझ सेनापतिको यहाँ अकेला मत समझो ॥ १० ॥

मेरे स्वामी भी वनके बहुत-से भीलोंके साथ यहाँ विद्यमान हैं। वे विग्रह तथा अनुग्रह करनेमें सब प्रकारसे समर्थ भी हैं। इस समय जिस बाणको तुमने लिया है, वह उनका ही है, तुम इस बातको अच्छी तरह जान लो कि यह बाण तुम्हारे पास कभी नहीं रहेगा ॥ ११-१२ ॥

हे तापस ! [तुम असत्य बोलकर] अपनी तपस्याका फल क्यों नष्ट कर रहे हो, क्योंकि चोरीसे, छलसे, किसीको व्यथित करनेसे, अहंकारसे तथा सत्यको छोड़नेसे व्यक्ति अपनी तपस्यासे रहित हो जाता है। यह बात मैंने यथार्थ रूपसे सुनी है; तब तुम्हें इस तपस्याका फल कैसे मिलेगा ? ॥ १३-१४ ॥

इसलिये यदि तुम बाणका त्याग नहीं करोगे, तो कृतघ्न कहे जाओगे; क्योंकि मेरे स्वामीने निश्चितरूपसे तुम्हारी ही रक्षाके लिये यह बाण [शूकरपर] चलाया था। उन्होंने तुम्हारे ही शत्रुको मारा है और तुमने उनके बाणको रख लिया; अतः तुम अति कृतघ्न हो, तुम्हारी यह तपस्या अशुभ करनेवाली है ॥ १५-१६ ॥

सत्यं न भाषसे त्वं च किमतः सिद्धिमिच्छसि ।
प्रयोजनं चेद् बाणेन स्वामी च याच्यतां मम ॥ १७

ईदृशांश्च बहून्बाणांस्तदा दातुं क्षमः स्वयम् ।
राजा च वर्तते मेऽद्य किं त्वेवं याच्यते त्वया ॥ १८

उपकारं परित्यज्य ह्यपकारं समीहसे ।
नैतद्युक्तं त्वयाद्यैव क्रियते त्यज चापलम् ॥ १९

नन्दीश्वर उवाच

इत्येवं वचनं तस्य श्रुत्वा पार्थोऽर्जुनस्तदा ।
क्रोधं कृत्वा शिवं स्मृत्वा मितं वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २०

अर्जुन उवाच

शृणु भिल्ल प्रवक्ष्यामि न सत्यं तव भाषणम् ।
यथा जातिस्तथा त्वां च जानामि हि वनेचर ॥ २१
अहं राजा भवान् चौरः कथं युद्धप्रयुक्तता ।
युद्धं मे सबलैः कार्यं नाथमैर्हि कदाचन ॥ २२
तस्मात्ते च तथा स्वामी भविष्यति भवादूशः ।
दातारश्च वयं प्रोक्ताश्शौरा यूयं वनेचराः ॥ २३
कथं याच्यो मया भिल्लराज एवं च साम्प्रतम् ।
त्वमेव याचसे नैव बाणं मां किं वनेचर ॥ २४
ददामि ते तथा बाणान् सन्ति मे बहवो ध्रुवम् ।
राजा च ग्रहणं चैव न दास्यति तथा भवेत् ॥ २५

किं पुनश्च तथा बाणान्प्रयच्छामि वनेचर ।
यदि मे या चिकीषा स्यात्कथं नागम्यतेऽधुना ॥ २६

यथागच्छेत् ते भर्ता किमर्थं भाषतेऽधुना ।
आगत्य च मया सार्थं जित्वा युद्धे च मां पुनः ॥ २७
नीत्वा बाणमिमं भिल्लस्वामी ते वाहिनीपतिः ।
निजालयं सुखं यातु विलम्बः क्रियते कथम् ॥ २८

नन्दीश्वर उवाच

महेश्वरकृपाप्राप्तसद्बलस्यार्जुनस्य हि ।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा भिल्लो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ २९

जब तुम [तपस्यामें निरत हो] सत्यभाषण नहीं कर रहे हो, तब तुम इस तपसे सिद्धिकी अपेक्षा कैसे रखते हो ? यदि तुम्हें बाणकी आवश्यकता हो, तो मेरे स्वामीसे माँग लो ॥ १७ ॥

वे ऐसे बहुत-से बाण देनेमें समर्थ हैं । वे हमारे राजा हैं, फिर तुम उनसे क्यों नहीं माँग लेते हो ? तुम्हें तो उनका उपकार मानना चाहिये, उलटे अपकार कर रहे हो, इस समय तुम्हारा ऐसा व्यवहार उचित प्रतीत नहीं होता, तुम इस चपलताका त्याग करो ॥ १८-१९ ॥

नन्दीश्वर बोले—तब उसकी यह बात सुनकर पृथापुत्र अर्जुन क्रोध करके पुनः शिवजीका स्मरण करते हुए मर्यादित वाक्य कहने लगे— ॥ २० ॥

अर्जुन बोले—हे भील ! मैं जो कहता हूँ, तुम उसे सुनो । हे वनेचर ! जैसी तुम्हारी जाति है और जैसे तुम हो, मैं उसे [अच्छी तरह] जानता हूँ ॥ २१ ॥

मैं राजा हूँ और तुम चोर हो । दोनोंका युद्ध किस प्रकार उचित होगा ? मैं बलवानोंसे युद्ध करता हूँ, अधमोंसे कभी नहीं । इसलिये तुम्हारा स्वामी भी तुम्हारे समान ही होगा । देनेवाले तो हम कहे गये हैं, तुम वनेचर तो चोर हो । मैं भीलराजसे किस प्रकार अयुक्त याचना कर सकता हूँ; हे वनेचर ! तुम्हीं मुझसे बाण क्यों नहीं माँग लेते हो ? ॥ २२-२४ ॥

मैं वैसे बहुत-से बाण तुम्हें दे सकता हूँ, मेरे पास बहुत-से बाण हैं । राजा होकर किससे याचना करे अथवा माँगनेपर न दे, तो कैसा राजा ? ॥ २५ ॥

हे वनेचर ! मैं क्या कहूँ ? मैं बहुत-से ऐसे बाण दे सकता हूँ; यदि तुम्हारे स्वामीको मेरे बाणोंकी अपेक्षा है तो वह आकर मुझसे क्यों नहीं माँगता ? ॥ २६ ॥

तुम्हारा स्वामी यहाँ आये, वहाँसे क्यों बकवास कर रहा है ? यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करे और मुझे युद्धमें पराजित करके तुम्हारा सेनापति भीलराज इस बाणको लेकर सुखसे अपने घर चला जाय, वह देर क्यों कर रहा है ? ॥ २७-२८ ॥

नन्दीश्वर बोले—महेश्वरकी कृपासे उत्तम बल प्राप्त किये हुए अर्जुनकी इस प्रकारकी बात सुनकर उस भीलने कहा— ॥ २९ ॥

भिल्ल उवाच

अज्ञोऽसि त्वं ऋषिनांसि मरणं त्वीहसे कथम्।
देहि बाणं सुखं तिष्ठ त्वन्यथा क्लेशभागभवेः ॥ ३०

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्तेन भिल्लेन शिवसच्छक्तिशोभिना।
गणेन पाण्डवस्तं च प्राह स्मृत्वा च शङ्करम् ॥ ३१

अर्जुन उवाच

मद्वाक्यं तत्त्वतो भिल्ल शृणु त्वं च वनेचर।
आगमिष्यति ते स्वामी दर्शयिष्ये फलं तदा ॥ ३२
न शोभते त्वया युद्धं करिष्ये स्वामिना तव।
उपहासकरं ज्ञेयं युद्धं सिंहशृगालयोः ॥ ३३

श्रुतं च मद्वचस्तेऽद्य द्रक्ष्यसि त्वं महाबलम्।
गच्छस्व स्वामिनं भिल्ल यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ३४

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्तु गतस्तत्र भिल्लः पार्थेन वै मुने।
शिवावतारो यत्रास्ते किरातो वाहिनीपतिः ॥ ३५
अथार्जुनस्य वचनं भिल्लनाथाय विस्तरात्।
सर्वं निवेदयामास तस्मै भिल्लपरात्मने ॥ ३६
स किरातेश्वरः श्रुत्वा तद्वचो हर्षमागतः।
आजगाम स्वसैन्येन शङ्करो भिल्लरूपधृक् ॥ ३७

अर्जुनश्च तदा सेनां किरातस्य च पाण्डवः।
दृष्ट्वा गृहीत्वा सशरं धनुः सम्मुख आययौ ॥ ३८
अथो किरातश्च पुनः प्रेषयामास तं चरम्।
तम्भुखेन जगौ वाक्यं भारताय महात्मने ॥ ३९

किरात उवाच

पश्य सैन्यं तपस्विंस्त्वं मुञ्च बाणं व्रजाधुना।
मरणं स्वल्पकार्यार्थं कथमिच्छसि साम्प्रतम् ॥ ४०

भ्रातरस्तव दुःखार्ताः कलत्रं च ततः परम्।
पृथिवी हस्ततस्तेऽद्य यास्यतीति मतिर्मम ॥ ४१

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तं परमेशेन पार्थदार्ढ्यपरीक्षया।
सर्वथार्जुनरक्षार्थं धृतरूपेण शम्भुना ॥ ४२

भील बोला—तुम ऋषि नहीं हो, मूर्ख हो, तुम अपनी मृत्यु क्यों चाह रहे हो, बाणको दे दो और सुखपूर्वक रहो, अन्यथा कष्ट प्राप्त करोगे ॥ ३० ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवकी श्रेष्ठ शक्तिसे शोभित होनेवाले भीलकी बात सुनकर पाण्डुपुत्र अर्जुनने शिवजीका स्मरण करते हुए उस भीलसे कहा— ॥ ३१ ॥

अर्जुन बोले—हे वनेचर! हे भील! मेरी बातको भलीभाँति सुनो; जब तुम्हारा स्वामी यहाँ आयेगा, तब मैं उसको इसका फल दिखाऊँगा ॥ ३२ ॥

तुम्हारे साथ युद्ध करना मुझे शोभा नहीं देता, अतः तुम्हारे स्वामीके साथ युद्ध करूँगा; क्योंकि सिंह और गीड़का युद्ध उपहासास्पद होता है ॥ ३३ ॥

हे भील! तुमने मेरी बात सुन ली, अब [आगे] मेरा महाबल भी देखोगे। अब तुम अपने स्वामीके पास जाओ और जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो ॥ ३४ ॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह भील वहाँ गया, जहाँ शिवावतार भीलराज स्थित थे। तदुपरान्त उसने अर्जुनका सारा वचन भीलस्वरूपी परमात्मासे विस्तारपूर्वक निवेदन किया ॥ ३५-३६ ॥

किरातेश्वर शिव उसका वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए, फिर भीलरूपधारी सदाशिव अपनी सेनाके साथ [जहाँ अर्जुन थे,] वहाँ आये ॥ ३७ ॥

उस समय पाण्डुपुत्र अर्जुन भी किरात सेनाको देखकर धनुष-बाण लेकर सामने आ गये ॥ ३८ ॥

इसके बाद किरातेश्वरने पुनः भरतवंशीय महात्मा अर्जुनके पास दूत भेजा और उसके मुखसे अपना सन्देश उन्हें कहलवाया ॥ ३९ ॥

किरात बोला—हे दूत! तुम जाकर अर्जुनसे कहो, हे तपस्विन्! तुम मेरी इस विशाल सेनाको देखो, मेरा बाण मुझे लौटा दो और अब चले जाओ। स्वल्प कार्यके लिये इस समय क्यों मरना चाहते हो? ॥ ४० ॥

तुम्हारे भाई दुखी होंगे, इससे भी अधिक तुम्हारी स्त्री दुखी होगी। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारे हाथसे आज पृथ्वी भी चली जायगी ॥ ४१ ॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनकी रक्षाके लिये और उनकी दृढ़ताकी परीक्षाके लिये किरातरूपधारी परमेश्वर शिवने इस प्रकार कहा। उसके ऐसा कहनेपर शंकरके

इत्युक्तस्तु तदागत्य स गणः शाङ्करश्च तत्।
विस्तराद् वृत्तमखिलमर्जुनाय न्यवेदयत्॥ ४३
तच्छुत्वा तु पुनः प्राह पार्थस्तं दूतमागतम्।
वाहिनीपतये वाच्यं विपरीतं भविष्यति॥ ४४
यद्यहं चैव ते बाणं यच्छामि च मदीयकम्।
कुलस्य दूषणं चाहं भविष्यामि न संशयः॥ ४५
भातरश्चैव दुःखार्ताः भवन्तु च तथा ध्रुवम्।
विद्याश्च निष्फला मे स्युस्तस्मादागच्छ वै ध्रुवम्॥ ४६
सिंहश्चैव शृगालाद्वा भीतो नैव मया श्रुतः।
तथा वनेचराद्राजा न बिभेति कदाचन॥ ४७

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्तं पुनर्गत्वा स्वामिनं पाण्डवेन सः।
सर्वं निवेदयामास तदुक्तं हि विशेषतः॥ ४८
अथ सोऽपि किराताह्वो महादेवः ससैन्यकः।
तच्छुत्वा सैन्यसंयुक्तो ह्यर्जुनं चागमत्तदा॥ ४९

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातवतारवर्णने भिल्लार्जुनसंवादो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके किरातवतारवर्णनमें भील-अर्जुन-संवाद नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

उस दूतने अर्जुनके पास जाकर सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक निवेदन किया॥ ४२-४३॥

उसकी बात सुनकर अर्जुनने पुनः आये हुए उस दूतसे कहा—हे दूत! तुम अपने स्वामीसे जाकर कहो कि इसका परिणाम विपरीत होगा। यदि मैं तुम्हें अपना बाण दे दूँगा, तो मैं कुलकलंकी हो जाऊँगा; इसमें सन्देह नहीं है। भले ही हमारे भाई दुखी हों, भले ही हमारी विद्या नष्ट हो जाय, किंतु भीलराज मुझसे युद्ध करनेके लिये अवश्य यहाँ आयें। सिंह गोदड़से डर जाय, यह बात मैंने कभी नहीं सुनी, इसी प्रकार किसी वनेचरसे राजा डरे, ऐसा नहीं हो सकता॥ ४४—४७॥

नन्दीश्वर बोले—पाण्डुपुत्र अर्जुनके इस प्रकार कहनेपर भीलने अपने स्वामीके पास जाकर अर्जुनद्वारा कहे गये सारे वृत्तान्तको विशेष रूपसे वर्णित किया। तब इस वृत्तान्तको सुनकर किरातवेषधारी महादेव सेनासहित अर्जुनके पास आये॥ ४८-४९॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके किरातेश्वरावतारका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

तमागतं ततो दृष्ट्वा ध्यानं कृत्वा शिवस्य सः।
गत्वा तत्रार्जुनस्तेन युद्धं चक्रे सुदारुणम्॥ १

गणैश्च विविधैस्तीक्ष्णौरायुधैस्तं न्यपीडयत्।
तैस्तदा पीडितः पार्थः सस्मार स्वामिनं शिवम्॥ २

अर्जुनश्च तदा तेषां बाणावलिमथाच्छिनत्।
यदा युद्धं च तैः क्षिप्तं ततः शर्वं परामृशत्॥ ३

पीडितास्ते गणास्तेन ययुश्चैव दिशो दश।
गणेशा वारितास्ते च नाजगमः स्वामिनं प्रति॥ ४

नन्दीश्वर बोले—सेनाके साथ किरातेश्वरको युद्धके लिये आया देखकर शिवजीका ध्यान करते हुए अर्जुनने वहाँ जाकर उसके साथ भयंकर युद्ध किया॥ १॥

उस भीलराजने अपने अनेक गणों तथा तीक्ष्ण शस्त्रोंके द्वारा अर्जुनको अत्यधिक पीड़ित किया। तब उनसे पीड़ित हुए अर्जुन अपने इष्टदेव शिवका स्मरण करने लगे। अर्जुनने शत्रुओंके सारे बाण काट डाले। जब गणोंने युद्ध करना छोड़ दिया, तो अर्जुनने [किरातवेषधारी] शिवजीको ललकारा॥ २-३॥

अर्जुनसे पीड़ित गण दसों दिशाओंमें भागने लगे। यद्यपि किरातपतिने उन गणस्वामियोंको ऐसा करनेसे रोका, किंतु वे अपने स्वामीके बुलानेपर भी

शिवश्वैवार्जुनश्वैव युयुधाते परस्परम्।
नानाविधैश्वायुधैर्हि महाबलपराक्रमौ॥ ५

शिवोऽपि मनसा नूनं दयां कृत्वार्जुनं ह्यगात्।
अर्जुनश्च दृढं तत्र प्रहारं कृतवांस्तदा॥ ६

आयुधानि शिवः सो वै ह्यर्जुनस्याच्छन्तदा।
कवचानि च सर्वाणि शरीरं केवलं स्थितम्॥ ७

तदार्जुनः शिवं स्मृत्वा मल्लयुद्धं चकार सः।
वाहिनीपतिना तेन भयात्क्लिलष्टोऽपि धैर्यवान्॥ ८

तद्युद्धेन मही सर्वा चकम्ये ससमुद्रका।
देवा दुःखं समापन्नाः किं भविष्यति वा पुनः॥ ९

एतस्मिन्नतरे देवः शिवो गगनमास्थितः।
युद्धं चकार तत्रस्थः सोऽर्जुनश्च तथाकरोत्॥ १०

उड्डीयोड्डीय तौ युद्धं चक्रतुर्देवपार्थिवौ।
देवाश्च विस्मयं प्रापू रणं दृष्ट्वा तदाद्धुतम्॥ ११

अथार्जुनोत्तरं ज्ञात्वा स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम्।
दधारं पादयोस्तं वै तद्व्यानादाप्तसद्वलः॥ १२

धृत्वा पादौ तदा तस्य भ्रामयामास सोऽर्जुनः।
विजहास महादेवो भक्तवत्सल ऊतिकृत्॥ १३

दातुं स्वदासतां तस्मै भक्तवश्यतया मुने।
शिवेनैव कृतं ह्येतच्चरितं नान्यथा भवेत्॥ १४

पश्चाद्विहस्य तत्रैव शङ्करो रूपमद्भुतम्।
दर्शयामास सहसा भक्तवश्यतया शुभम्॥ १५

नहीं लौटे। तब महाबली एवं पराक्रमी अर्जुन और शिवजीने नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे परस्पर युद्ध किया ॥ ४-५ ॥

यद्यपि शिवजी दया करते हुए अर्जुनके पास गये, किंतु अर्जुनने निर्दयतापूर्वक शिवपर प्रहार किया ॥ ६ ॥

तदनन्तर शिवजीने अर्जुनके समस्त शस्त्र-अस्त्रोंको काट डाला और कवचोंको भी छिन-भिन्न कर दिया; केवल उनका शरीर शेष रह गया ॥ ७ ॥

तब धैर्यशाली उन अर्जुनने भयसे व्यथित होते हुए भी शिवजीका स्मरणकर वाहिनीपतिके साथ मल्लयुद्ध करना प्रारम्भ किया। उन दोनोंके संग्रामको देखकर सागरसहित पृथ्वी काँप रही थी और देवता दुखी हो रहे थे कि अब और क्या होनेवाला है? ॥ ८-९ ॥

इसी बीचमें शिवजी ऊपर जाकर आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे और अर्जुन भी उसी प्रकार आकाशमें स्थित हो युद्ध करने लगे। इस प्रकार शिव एवं अर्जुन दोनों ही उड़-उड़कर आकाशमें जब युद्ध कर रहे थे, तब उस अद्भुत युद्धको देखकर देवगण विस्मित हो रहे थे ॥ १०-११ ॥

उसके पश्चात् अर्जुनने उन्हें अपनेसे अधिक बलवान् जानकर शिवजीके चरणोंका स्मरणकर तथा उनके ध्यानसे विशेष बल प्राप्तकर भीलके दोनों चरणोंको पकड़ लिया। ज्यों ही चरण पकड़कर अर्जुन उन्हें आकाशमें घुमाने लगे, तभी लीला करनेवाले भक्तवत्सल भगवान् शिव हँस पड़े ॥ १२-१३ ॥

हे मुने! भक्तके अधीन रहनेवाले शिवजीने अर्जुनको अपना दास्य प्रदान करनेके लिये जो यह चरित्र किया, वह अन्यथा कैसे हो सकता है। इसके बाद भक्तवश्यताके कारण शिवजीने हँसकर अपना अद्भुत सुन्दर रूप अर्जुनके सामने प्रकट किया ॥ १४-१५ ॥

यथोक्तं वेदशास्त्रेषु पुराणे पुरुषोत्तम।
व्यासोपदिष्टं ध्यानाय तस्य यत्सर्वसिद्धिदम्॥ १६

तद दृष्ट्वा सुन्दरं रूपं ध्यानप्राप्तं शिवस्य तु।
बभूव विस्मितोऽतीव ह्यर्जुनो लज्जितः स्वयम्॥ १७

अहो शिवशिशवः सोऽयं यो मे प्रभुतया वृतः।
त्रिलोकेशः स्वयं साक्षाद् हा कृतं किं मयाधुना॥ १८

प्रभोर्बलवती माया मायिनामपि मोहिनी।
किं कृतं रूपमाच्छाद्य प्रभुणा छलितो ह्यहम्॥ १९

थियेति संविचार्यैवं सञ्चलिन्तमस्तकः।
प्रणनाम प्रभुं प्रीत्या तदोवाच स खिन्नधीः॥ २०

अर्जुन उवाच
देवदेव महादेव करुणाकर शङ्कर।
ममापराधं सर्वेश क्षन्तव्यश्च त्वया पुनः॥ २१
किं कृतं रूपमाच्छाद्य छलितोऽस्मि त्वयाधुना।
धिङ् मां समरकर्तारं स्वामिना भवता प्रभो॥ २२

नन्दीश्वर उवाच
इत्येवं पाण्डवः सोऽथ पश्चात्तापमवाप सः।
पादयोर्निपपाताशु शङ्करस्य महाप्रभोः॥ २३
अथेश्वरः प्रसन्नात्मा प्रत्युवाचार्जुनं च तम्।
समाश्वास्येति बहुशो महेशो भक्तवत्सलः॥ २४

शङ्कर उवाच
न खिद्य पार्थं भक्तोऽसि मम त्वं हि विशेषतः।
परीक्षार्थं मया तेऽद्य कृतमेवं शुचं जहि॥ २५

हे पुरुषोत्तम! वेद-शास्त्रोंमें तथा पुराणोंमें उनके जिस रूपका वर्णन है और व्यासजीने अर्जुनको ध्यानके लिये जिस रूपका उपदेश दिया था, जिसके दर्शनमात्रसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। [उसी प्रकारका रूप धारणकर शिवजी प्रकट हुए] अर्जुन जिस रूपका ध्यान करते थे, उसी सुन्दर रूपको अपने सामने प्रत्यक्ष प्रकट देखकर वे अत्यन्त विस्मित तथा लज्जित हो उठे और मनमें कहने लगे—अहो! यह तो परम कल्याणकारी वे शिवजी ही हैं, जिन्हें मैंने अपना स्वामी स्वीकार किया है। ये तो स्वयं त्रिलोकीके साक्षात् ईश्वर हैं; यह मैंने आज क्या कर डाला!॥ १६—१८॥

निश्चय ही भगवान् शिवकी माया बड़ी बलवती है, जो बड़े-बड़े मायाविदोंको मोह लेती है। इन्होंने अपना रूप छिपाकर मेरे साथ इस प्रकारका छल क्यों किया; निश्चय ही मैं इनके द्वारा छला गया हूँ॥ १९॥

इस प्रकार अपने मनमें विचारकर अर्जुनने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर और खिन्न मनसे भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनसे कहा—॥ २०॥

अर्जुन बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे सर्वेश! मैं आपका अपराधी हूँ, मुझे क्षमा कीजिये। हे प्रभो! इस समय आपने यह क्या किया, जो अपना रूप छिपाकर मुझसे छल किया। हे प्रभो! आप-जैसे स्वामीसे युद्ध करते हुए मुझे लज्जा नहीं आयी; मुझको धिक्कार है!॥ २१-२२॥

नन्दीश्वर बोले—[हे सनत्कुमार!] इस प्रकार पाण्डुपुत्र अर्जुन पश्चात्ताप करने लगे और तत्काल महाप्रभु शिवजीके चरणोंमें शीघ्र गिर पड़े। तदनन्तर भक्तवत्सल महेश्वरने प्रसन्न होकर अर्जुनको अनेक प्रकारसे आश्वासन दिया और उनसे कहा—॥ २३-२४॥

शिवजी बोले—हे पार्थ! तुम खेद मत करो, तुम मेरे प्रिय भक्त हो; मैंने यह सारी लीला तुम्हारी परीक्षाके लिये की थी, तुम शोकका परित्याग कर दो॥ २५॥

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तं स्वहस्ताभ्यामुत्थाप्य प्रभुर्जुनम्।
विलज्जं कारयामास गणैश्च स्वामिनो गुणैः ॥ २६

पुनः शिवोऽर्जुनं प्राह पाण्डवं वीरसम्मतम्।
हर्षयन् सर्वथा प्रीत्या शङ्करो भक्तवत्सलः ॥ २७

शिव उवाच

हे पार्थ पाण्डवश्रेष्ठ प्रसन्नोऽस्मि वरं वृणु।
प्रहारैस्ताडनैस्तेऽद्य पूजनं मानितं मया ॥ २८

इच्छया च कृतं मेऽद्य नापराधस्तवाधुना।
नादेयं विद्यते तुभ्यं यदिच्छसि वृणीष्व तत् ॥ २९

ते शत्रुषु यशोराज्यस्थापनाय शुभं कृतम्।
एतद्दुःखं न कर्तव्यं वैकलव्यं च त्यजाखिलम् ॥ ३०

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तस्त्वर्जुनस्तेन प्रभुणा शङ्करेण सः।
उवाच शङ्करं भक्त्या सावधानतया स्थितः ॥ ३१

अर्जुन उवाच

भक्तप्रियस्य शम्भोस्ते सुप्रभो किं समीहितम्।
वर्णनीयं मया देव कृपालुस्त्वं सदाशिव ॥ ३२

इत्युक्त्वा संस्तुतिं तस्य शङ्करस्य महाप्रभोः।
चकार पाण्डवः सोऽथ सद्भक्तिं वेदसम्मताम् ॥ ३३

अर्जुन उवाच

नमस्ते देवदेवाय नमः कैलासवासिने।
सदाशिव नमस्तुभ्यं पञ्चवक्त्राय ते नमः ॥ ३४

कर्पर्दिने नमस्तुभ्यं त्रिनेत्राय नमोऽस्तु ते।
नमः प्रसन्नरूपाय सहस्रवदनाय च ॥ ३५

नन्दीश्वर बोले—इस प्रकार कहकर प्रभु सदाशिवने स्वयं अपने हाथोंसे अर्जुनको उठाया और स्वामी [शिवजी]-के जैसे गुणोंवाले गणोंद्वारा उन [अर्जुन]-की लज्जा दूर करायी। उसके अनन्तर भक्तवत्सल भगवान् शिव वीरोंमें माननीय पाण्डुपुत्र अर्जुनको प्रीतिसे पूर्णतः हर्षित करते हुए कहने लगे— ॥ २६-२७ ॥

शिवजी बोले—हे पाण्डवश्रेष्ठ ! हे पृथापुत्र अर्जुन ! मैं प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। मैंने तुम्हारे द्वारा आज किये गये प्रहारों एवं सन्ताड़नोंको अपनी पूजा मान ली है। आज यह सब मैंने अपनी इच्छासे किया है, इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, मुझे तुम्हारे लिये इस समय कुछ भी अदेय नहीं है, तुम जो चाहते हो, उसे माँग लो। मैंने शत्रुओंमें तुम्हारा यश तथा राज्य प्रतिष्ठित करनेके लिये [ही यह] कल्याणकर [कृत्य] किया है। तुम इस घटनाके लिये दुःख न मानो और अपनी सारी विकलताका त्याग करो ॥ २८—३० ॥

नन्दीश्वर बोले—प्रभु शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर अर्जुन सावधान होकर भक्तिपूर्वक शिवजीसे कहने लगे— ॥ ३१ ॥

अर्जुन बोले—हे प्रभो ! आप भक्तप्रिय हैं, आपकी इच्छाका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ। हे सदाशिव ! आप कृपालु हैं [हर प्रकारसे भक्तोंपर दया करते हैं] ॥ ३२ ॥

[**नन्दीश्वर बोले—**] इस प्रकार कहकर वे पाण्डुपुत्र अर्जुन महाप्रभु सदाशिवकी वेदसम्मत तथा सद्भक्तियुक्त स्तुति करने लगे ॥ ३३ ॥

अर्जुन बोले—हे देवाधिदेव ! आपको नमस्कार है। कैलासवासी आपको नमस्कार है, सदाशिव ! आपको नमस्कार है, पाँच मुखवाले आपको नमस्कार है ॥ ३४ ॥

जटा-जूटधारी आपको नमस्कार है, त्रिनेत्र आपको नमस्कार है, प्रसन्न स्वरूपवाले आपको नमस्कार है। सहस्रमुख आपको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

नीलकण्ठं नमस्तेऽस्तु सद्योजाताय वै नमः ।
वृषभध्वजं नमस्तेऽस्तु वामाङ्गगिरिजाय च ॥ ३६

दशदोषं नमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मने ।
डमरूकपालहस्ताय नमस्ते मुण्डमालिने ॥ ३७

शुद्धस्फटिकसंकाशशुद्धकपूरवर्षणे ।
पिनाकपाणये तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे ॥ ३८

व्याघ्रचर्मोत्तरीयाय गजाम्बरविधारिणे ।
नागाङ्गाय नमस्तुभ्यं गंगाधरं नमोऽस्तु ते ॥ ३९

सुपादाय नमस्तेऽस्तु आरक्तचरणाय च ।
नन्दादिगणसेव्याय गणेशाय च ते नमः ॥ ४०

नमो गणेशरूपाय कार्तिकेयानुगाय च ।
भक्तिदाय च भक्तानां मुक्तिदाय नमो नमः ॥ ४१

अगुणाय नमस्तेऽस्तु सगुणाय नमो नमः ।
अरूपाय सरूपाय सकलायाकलाय च ॥ ४२

नमः किरातरूपाय मदनुग्रहकारिणे ।
युद्धप्रियाय वीराणां नानालीलानुकारिणे ॥ ४३

यत्किञ्चित् दृश्यते रूपं तत्त्वेजस्तावकं स्मृतम् ।
चिद्रूपस्त्वं त्रिलोकेषु रमसेऽन्वयभेदतः ॥ ४४

गुणानां ते न सद्गव्यास्ति यथा भूरजसामिह ।
आकाशे तारकाणां हि कणानां वृष्ट्यपामपि ॥ ४५

न ते गुणांस्तु सद्गव्यातुं वेदा वै सम्भवन्ति हि ।
मन्दबुद्धिरहं नाथ वर्णयामि कथं पुनः ॥ ४६

हे नीलकण्ठ ! आपको नमस्कार है । सद्योजातरूप आपके लिये नमस्कार है । हे वृषभध्वज ! आपको नमस्कार है, वामभागमें पार्वतीको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है । दस भुजावाले आपको नमस्कार है, परमात्मन् ! आपको नमस्कार है, हाथमें डमरू तथा कपाल लेनेवाले आपको नमस्कार है, मुण्डमालाधारी आपको नमस्कार है ॥ ३६-३७ ॥

शुद्ध स्फटिक तथा शुद्ध कर्पूरके समान उज्ज्वल गौर-वर्णवाले आपको नमस्कार है । पिनाक नामक धनुष एवं श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है । व्याघ्र-चर्मका उत्तरीय तथा गजचर्मका वस्त्र धारण करनेवाले आपको नमस्कार है । सर्पसे आवेष्टित अंगोंवाले तथा सिरपर गंगाको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ३८-३९ ॥

सुन्दर पैरवाले आपको नमस्कार है । अरुणाभ चरणोंवाले आपको नमस्कार है । नन्दी आदि प्रमुख गणोंसे सेवित आपको नमस्कार है । गणेशरूप आपको नमस्कार है । कार्तिकेयके अनुगामी आपको नमस्कार है, भक्तोंको भक्ति देनेवाले तथा [मुमुक्षुओंको] मुक्ति देनेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४०-४१ ॥

गुणरहित आपको नमस्कार है, सगुणरूपधारी आपको नमस्कार है । अरूप, सरूप, सकल एवं अकल आपको नमस्कार है । किरातरूप धारणकर मुझपर अनुग्रह करनेवाले, वीरोंसे प्रीतिपूर्वक युद्ध करनेवाले एवं [नटकी भाँति] अनेक प्रकारकी लीला दिखानेवाले आपको नमस्कार है ॥ ४२-४३ ॥

इस त्रिलोकीमें जो भी रूप दिखायी देता है, वह आपका ही तेज कहा गया है । आप ज्ञानस्वरूप हैं और शरीरभेदसे रमण करते हैं । हे प्रभो ! जिस प्रकार संसारमें पृथ्वीके रजकण, आकाशके तारे तथा वृष्टिकी बूँदें असंख्य हैं, उसी प्रकार आपके गुण भी असंख्य हैं ॥ ४४-४५ ॥

हे नाथ ! आपके गुणोंकी गणना करनेमें तो वेद भी असमर्थ हैं, मैं तो मन्दबुद्धि ही हूँ । आपके गुणोंका वर्णन कैसे करूँ ? हे महेश्वर ! आप जो हैं,

सोऽसि योऽसि नमस्तेऽस्तु कृपां कर्तुमिहार्हसि ।
दासोऽहं ते महेशान् स्वामी त्वं मे महेश्वर ॥ ४७

नन्दीश्वर उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य पुनः प्रोवाच शङ्करः ।
सुप्रसन्नतरो भूत्वा विहसन्प्रभुर्जुनम् ॥ ४८

शङ्कर उवाच

वचसा किञ्च्छूक्तेन शृणुष्व वचनं मम ।
शीघ्रं वृणु वरं पुत्र सर्वं तच्च ददामि ते ॥ ४९

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्तश्चार्जुनस्तेन प्रणिपत्य सदाशिवम् ।
साञ्चलिन्तकः प्रेम्णा प्रोवाच गद्दाक्षरम् ॥ ५०

अर्जुन उवाच

किं ब्रूयां त्वं च सर्वेषामन्तर्यामितया स्थितः ।
तथापि वर्णितं मेऽद्य श्रूयतां च त्वया विभो ॥ ५१

शत्रूणां सङ्कटं यच्च तद्रूपं दर्शनात्तव ।
ऐहिकीं च परां सिद्धिं प्राज्ञयां वै तथा कुरु ॥ ५२

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य शङ्करं भक्तवत्सलम् ।
नतस्कन्थोऽर्जुनस्तत्र बद्धाञ्चलिरुपस्थितः ॥ ५३

शिवोऽपि च तथाभूतं ज्ञात्वा पाण्डवमर्जुनम् ।
निजभक्तवरं स्वामी महातुष्टो बभूव ह ॥ ५४

अस्त्रं पाशुपतं स्वीयं दुर्जयं सर्वदाखिलैः ।
ददौ तस्मै महेशानो वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ५५

शिव उवाच

स्वं महास्त्रं मया दत्तं दुर्जयस्त्वं भविष्यसि ।
अनेन सर्वशत्रूणां जयकृत्यमवाजुहि ॥ ५६

सो हैं, आपको नमस्कार है। हे महेशान! मैं आपका सेवक हूँ, आप मेरे स्वामी हैं, अतः मुझपर कृपा कीजिये ॥ ४६-४७ ॥

नन्दीश्वर बोले—अर्जुनके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर परम प्रसन्न हुए भगवान् सदाशिवने हँसकर अर्जुनसे फिर कहा— ॥ ४८ ॥

शिवजी बोले—हे पुत्र! बारंबार कहनेसे क्या प्रयोजन, मेरी बात सुनो। तुम शीघ्र ही मुझसे वर माँगो, मैं तुम्हें वह सब कुछ दूँगा ॥ ४९ ॥

नन्दीश्वर बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर अर्जुनने सदाशिवको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सिर झुका करके प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीसे कहा— ॥ ५० ॥

अर्जुन बोले—हे प्रभो! आप तो सबके अन्तःकरणमें अन्तर्यामीरूपसे स्थित हैं, अतः आपसे क्या कहूँ। आप सब कुछ जानते हैं, फिर भी मैं आपसे जो प्रार्थना करता हूँ, उसे सुनिये। आपके दर्शनसे शत्रुओंसे उत्पन्न होनेवाला जो मेरा संकट था, वह दूर हो गया। अब मैं जिस प्रकार इस लोकमें सर्वश्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करूँ, वैसा उपाय कीजिये ॥ ५१-५२ ॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर विनम्र हो हाथ जोड़कर अर्जुन नमस्कार करके भक्तवत्सल भगवान् शिवके सन्निकट स्थित हो गये ॥ ५३ ॥

स्वामी शिवजी भी पाण्डुपुत्र अर्जुनको इस प्रकार अपना परमभक्त जानकर बहुत सन्तुष्ट हो गये ॥ ५४ ॥

उन्होंने प्रसन्न होकर सभीके लिये सर्वदा दुर्जय अपना पाशुपत अस्त्र अर्जुनको प्रदान किया और यह वचन कहा— ॥ ५५ ॥

शिवजी बोले—मैंने अपना यह महान् पाशुपत-अस्त्र तुम्हें प्रदान किया। [हे अर्जुन!] तुम इससे दुर्जय हो जाओगे, तुम इस अस्त्रकी सहायतासे शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो। मैं स्वयं श्रीकृष्णसे कहूँगा कि वे तुम्हारी सहायता करें। वे मेरे भक्त तथा मेरी आत्मा हैं और कार्य करनेमें सर्वथा समर्थ हैं ॥ ५६-५७ ॥

कृष्णं च कथयिष्यामि साहाय्यं ते करिष्यति ।
स वै ममात्मभूतश्च मद्भक्तः कार्यकारकः ॥ ५७

१९२

मत्प्रभावाभारत त्वं राज्यं निष्कण्टकं कुरु।
धर्मान्निनाविधाभ्यात्रा कारय त्वं च सर्वदा॥ ५८

नन्दीश्वर उवाच

इत्युक्त्वा निजहस्तं च धृत्वा शिरसि तस्य सः।
पूजितो हर्जुनेनाशु शङ्करोऽन्तरधीयत॥ ५९
अथार्जुनः प्रसन्नात्मा प्राप्यास्त्रं च वरं प्रभोः।
जगाम स्वाश्रमं मुख्यं स्मरभक्त्या गुरुं शिवम्॥ ६०

सर्वे ते भ्रातरः प्रीतास्तन्वः प्राणमिवागतम्।
मिलित्वा तं सुखं प्रापुद्रौपदी चातिसुव्रता॥ ६१

शिवं परं च सन्तुष्टं पाण्डवाः सर्व एव हि।
नातृप्यन्सर्ववृत्तान्तं श्रुत्वा हर्षमुपागताः॥ ६२

आश्रमे पुष्पवृष्टिश्च चन्दनेन समन्विता।
पपात सुकरार्थं च तेषां चैव महात्मनाम्॥ ६३

धन्यं च शङ्करं चैव नमस्कृत्य शिवं मुदा।
अवधिं चागतं ज्ञात्वा जयश्वैव भविष्यति॥ ६४

एतस्मिन्नरे कृष्णः श्रुत्वार्जुनमथागतम्।
मेलनाय समायातः श्रुत्वा सुखमुपागतः॥ ६५

अतश्वैव मयाख्यातः शङ्करः सर्वदुःखहा।
स सेव्यते मया नित्यं भवद्विरपि सेव्यताम्॥ ६६

इत्युक्तस्ते किराताहोऽवतारः शङ्करस्य वै।
तं श्रुत्वा श्रावयन्वापि सर्वान्कामानवाज्यात्॥ ६७

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां किरातेश्वरावतारवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहितामें किरातेश्वरावतारवर्णन
नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

हे भारत! अब तुम मेरे प्रभावसे निष्कण्टक राज्य करो और अपने भ्राता [युधिष्ठिर]-से सर्वदा नाना प्रकारका धर्मचरण कराते रहो॥ ५८॥

नन्दीश्वर बोले—ऐसा कहकर उन शिवने अर्जुनके सिरपर अपना हाथ रखा और उनसे पूजित होकर वे तत्काल अन्तर्धान हो गये और प्रसन्न मनवाले अर्जुन भी प्रभुसे श्रेष्ठ पाशुपतास्त्र प्राप्तकर भक्तिपूर्वक गुरुवर शिवजीका स्मरण करते हुए अपने आश्रमको छले गये॥ ५९-६०॥

जिस प्रकार शरीरमें पुनः प्राण आ जाता है, उसी प्रकार अर्जुनको आया देख [युधिष्ठिर आदि] सभी भाई प्रसन्न हो गये और पतिव्रता द्रौपदीको भी अर्जुनके दर्शनसे सुखकी प्राप्ति हुई॥ ६१॥

सभी पाण्डव परमात्मा शिवजीको प्रसन्न जानकर आनन्दित हो गये तथा अर्जुनसे सारा समाचार सुनकर [भी उस वृत्तान्त-श्रवणसे] तृप्त नहीं हुए॥ ६२॥

उस समय उन महात्मा पाण्डवोंके आश्रममें उनका मंगल प्रदर्शित करनेके लिये चन्दनयुक्त फूलोंकी वर्षा होने लगी॥ ६३॥

उन लोगोंने भगवान् शंकरको धन्य-धन्य कहते हुए आनन्दके साथ नमस्कार किया और अपने वनवासकी अवधिको समाप्त जानकर यह समझ लिया कि अब अवश्य ही हमलोगोंकी विजय होगी॥ ६४॥

इसी समय अर्जुनको आश्रमपर आया हुआ जानकर श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये आये और सारा वृत्तान्त जानकर हर्षित हुए [और कहने लगे—]॥ ६५॥

इसीलिये तो मैंने कहा था कि शंकर सभी दुःखोंको नष्ट करनेवाले हैं। मैं उनकी सेवा नित्य करता हूँ, आपलोग भी नित्य उनकी सेवा करें। [हे सनत्कुमार!] इस प्रकार मैंने किरातेश्वर नामक शिवावतारका वर्णन आपसे किया, उसको सुनकर अथवा सुनाकर भी मनुष्य अपने समस्त मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ ६६-६७॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् शिवके द्वादश ज्योतिर्लिंगरूप अवतारोंका वर्णन

नन्दीश्वर उवाच

अवतारान् शृणु विभोद्वद्विशप्रमितान्परान् ।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपान्वै नानोतिकारकान्मुने ॥ १ ॥

सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः ।
उज्जयिन्यां महाकाल ओङ्करे चामरेश्वरः ॥ २ ॥
केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्याभीमशङ्करः ।
वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे ॥ ३ ॥
वैद्यनाथश्चिताभूमौ नागेशो दारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये ॥ ४ ॥

अवतारद्वादशकमेतच्छम्भोः परात्मनः ।
सर्वानन्दकरं पुंसां दर्शनात्पर्शनान्मुने ॥ ५ ॥

तत्राद्यः सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयंकरः ।
क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनान्मुने ॥ ६ ॥

शिवावतारः सोमेशो लिङ्गरूपेण संस्थितः ।
सौराष्ट्रे शुभदेशो च शशिना पूजितः पुरा ॥ ७ ॥

चन्द्रकुण्डं च तत्रैव सर्वपापविनाशकम् ।
तत्र स्नात्वा नरो धीमान्सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥ ८ ॥

सोमेश्वरं महालिङ्गं शिवस्य परमात्मकम् ।
दृष्ट्वा प्रमुच्यते पापाद्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ ९ ॥

मल्लिकार्जुनसंज्ञश्वतारः शङ्करस्य वै ।
द्वितीयः श्रीगिरौ तात भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥ १० ॥

संस्तुतो लिङ्गरूपेण सुतदर्शनहेतुतः ।
गतस्तत्र महाप्रीत्या स शिवः स्वगिरेमुने ॥ ११ ॥

ज्योतिर्लिङ्गं द्वितीयं तदर्शनात्पूजनान्मुने ।
महासुखकरं चान्ते मुक्तिदं नात्र संशयः ॥ १२ ॥

नन्दीश्वरजी बोले—[हे सनत्कुमार!] हे मुने! अब अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले परमात्मा शिवजीके ज्योतिर्लिंगरूप द्वादशसंख्यक अवतारोंको सुनिये ॥ १ ॥

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ॐकारमें अमरेश्वर, हिमालयपर केदारेश्वर, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वनाथ, गौतमीतटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश्वर, सेतुबन्धमें रामेश्वर एवं शिवालयमें घुश्मेश्वर—[ये बारह शिवजीके ज्योतिर्लिंगस्वरूप अवतार हैं] ॥ २—४ ॥

हे मुने! ये परमात्मा शिवके बारह ज्योतिर्लिंगावतार दर्शन तथा स्पर्शसे पुरुषोंका कल्याण करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

इन द्वादश ज्योतिर्लिंगोंमें प्रथम सोमनाथ नामक ज्योतिर्लिंग चन्द्रमाके दुःखका नाश करनेवाला है, उसके पूजनसे क्षय और कुष्ठ आदि रोगोंका विनाश होता है। यह सोमेश नामक शिवावतार सुन्दर सौराष्ट्रदेशमें लिंगरूपसे स्थित है, पूर्वकालमें चन्द्रमाने इसकी पूजा की थी ॥ ६-७ ॥

वहींपर चन्द्रकुण्ड है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। बुद्धिमान् पुरुष वहाँ स्नान करनेमात्रसे सभी प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पा जाता है ॥ ८ ॥

शिवजीके परमात्मस्वरूप महालिंग सोमेश्वरका दर्शन करनेसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त करता है ॥ ९ ॥

हे तात! शिवका मल्लिकार्जुन नामक दूसरा अवतार श्रीशैलपर हुआ था, जो भक्तोंको मनोवांछित फल प्रदान करता है। हे मुने! वे भगवान् शिव कैलासपर्वतसे पुत्र [कार्तिकेय]-को देखनेके लिये अत्यन्त प्रीतिपूर्वक श्रीशैलपर गये और वहाँ लिंगरूपसे [भक्तोंके द्वारा] संस्तुत हुए ॥ १०-११ ॥

हे मुने! उस द्वितीय ज्योतिर्लिंगकी पूजा करनेसे महान् सुखकी प्राप्ति होती है और अन्त समयमें वह निःसन्देह मुक्ति प्रदान करता है ॥ १२ ॥

महाकालाभिधस्तातावतारः शङ्खरस्य वै।
उज्जयिन्यां नगर्या च बभूव स्वजनावनः ॥ १३

दूषणाख्यासुरं यस्तु वेदधर्मप्रमर्दकम्।
उज्जयिन्यां गतं विप्रद्वेषिणं सर्वनाशनम् ॥ १४

वेदविप्रसुतध्यातो हुङ्कारेणैव स हुतम्।
भस्मसात्कृतवांस्तं च रत्नमालनिवासिनम् ॥ १५
तं हत्वा स महाकालो ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः।
देवैः स प्रार्थितोऽतिष्ठतस्वभक्तपरिपालकः ॥ १६

महाकालाहृयं लिङ्गं दृष्ट्वाभ्यर्थ्य प्रयत्नतः।
सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परतो गतिम् ॥ १७

ओङ्कारः परमेशानो धृतः शम्भोः परात्मनः।
अवतारश्तुर्थो हि भक्ताभीष्टफलप्रदः ॥ १८

विधिना स्थापितो भक्त्या स्वलिङ्गात्पार्थिवान्मुने।
प्रादुर्भूतो महादेवो विन्ध्यकामप्रपूरकः ॥ १९
देवैः संप्रार्थितस्तत्र द्विधारूपेण संस्थितः।
भुक्तिमुक्तिप्रदो लिङ्गरूपो वै भक्तवत्सलः ॥ २०

प्रणवे चैव चोङ्कारनामासीलिङ्गमुत्तमम्।
परमेश्वरनामासीत्पार्थिवश मुनीश्वर ॥ २१

भक्ताभीष्टप्रदो ज्ञेयो योऽपि दृष्टोऽर्चितो मुने।
ज्योतिर्लिङ्गे महादिव्ये वर्णिते ते महामुने ॥ २२
केदारेशोऽवतारस्तु पञ्चमः परमशिवः।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण केदारे संस्थितः स च ॥ २३

नरनारायणाख्यौ याववतारौ हरेमुने।
तत्पार्थितः शिवस्तत्स्थैः केदारे हिमभूधरे ॥ २४

हे तात! शिवजीका तीसरा महाकाल नामक अवतार उज्जयिनीमें अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये हुआ था। पूर्वकालमें रत्नमाला [नामक स्थान]-पर निवास करनेवाला, वेदोक्त धर्मका विध्वंसक, सर्वनाशक, ब्राह्मण-द्वेषी दूषण नामक असुर उज्जयिनी गया। तब वेद नामक ब्राह्मणके पुत्रने शिवजीका ध्यान किया। तब [प्रकट हुए] उन शिवजीने उस असुरको हुंकारमात्रसे उसी समय भस्म कर दिया था ॥ १३—१५॥

इस प्रकार उस दैत्यको मारकर देवगणोंसे प्रार्थित होकर अपने भक्तजनोंकी रक्षाके लिये वे महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे वहीं उज्जयिनीमें प्रतिष्ठित हुए। इस महाकाल नामक ज्योतिर्लिङ्गके दर्शन तथा यत्नपूर्वक पूजनसे सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है ॥ १६-१७॥

परमात्मा शिवजीके द्वारा धारण किया गया परमेश्वर्यसम्पन्न चौथा अवतार ॐकारेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, जो भक्तोंको इच्छित फल देनेवाला है ॥ १८॥

विन्ध्यके द्वारा भक्तिभावसे विधिपूर्वक पार्थिव लिंग स्थापित किया गया, जिससे विन्ध्यकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वे महादेव आविर्भूत हुए ॥ १९॥

देवगणोंके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर शिवजी वहाँ दो रूपोंमें स्थित हो गये। [हे मुनीश्वर!] लिंगरूपसे स्थित हुए वे भक्तोंपर कृपा करनेवाले और भोग तथा मोक्ष देनेवाले हैं ॥ २०॥

हे मुनीश्वर! प्रणवमें ओंकार नामसे स्थित शिव ओंकारेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं और पार्थिव लिंग परमेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, हे महामुने! इनके दर्शन तथा पूजन करनेसे भक्तोंको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार मैंने आपसे चतुर्थ स्थानीय ॐकारेश्वर तथा परमेश्वर ज्योतिर्लिङ्गोंका वर्णन किया ॥ २१-२२॥

परमशिवका पाँचवाँ अवतार केदारेश नामवाला है, यह ज्योतिर्लिङ्गरूपसे केदारक्षेत्रमें स्थित है। हे मुने! विष्णुके जो नर-नारायण नामक अवतार हैं, उनके द्वारा तथा वहाँके निवासियोंद्वारा प्रार्थना किये जानेपर वे शिव हिमालयके केदार नामक स्थानपर स्थित हुए ॥ २३-२४॥

ताभ्यां च पूजितो नित्यं केदारेश्वरसंज्ञकः ।
भक्ताभीष्टप्रदः शम्भुर्दर्शनादर्चनादपि ॥ २५

अस्य खण्डस्य स स्वामी सर्वेशोऽपि विशेषतः ।
सर्वकामप्रदस्तात् सोऽवतारः शिवस्य वै ॥ २६

भीमशङ्करसंज्ञस्तु षष्ठः शम्भोर्महाप्रभोः ।
अवतारे महालीलो भीमासुरविनाशनः ॥ २७

सुदक्षिणाभिधं भक्तं कामरूपेश्वरं नृपम् ।
यो रक्षाद्घुतं हत्वासुरं तं भक्तदुःखदम् ॥ २८

भीमशङ्करनामा स डाकिन्यां संस्थितः स्वयम् ।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण प्रार्थितस्तेन शङ्करः ॥ २९

विश्वेश्वरावतारस्तु काश्यां जातो हि सप्तमः ।
सर्वब्रह्माण्डरूपश्च भुक्तिमुक्तिप्रदो मुने ॥ ३०

पूजितः सर्वदेवैश्च भक्त्या विष्णवादिभिः सदा ।
कैलासपतिना चापि भैरवेणापि नित्यशः ॥ ३१

ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण संस्थितस्तत्र मुक्तिदः ।
स्वयंसिद्धस्वरूपो हि तथा स्वपुरि स प्रभुः ॥ ३२

काशीविश्वेश्योर्भक्त्या तत्त्वामजपकारकाः ।
निर्लिप्ताः कर्मभिर्नित्यं कैवल्यपदभागिनः ॥ ३३

अंबकाख्योऽवतारो यः सोऽष्टमो गौतमीतटे ।
प्रार्थितो गौतमेनाविर्बभूव शशिमौलिनः ॥ ३४

गौतमस्य प्रार्थनया ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः ।
स्थितस्तत्राचलः प्रीत्या तन्मुनेः प्रीतिकाम्यया ॥ ३५

तस्य सन्दर्शनात्पर्शादर्चनाच्च महेशितुः ।
सर्वे कामाः प्रसिद्ध्यन्ति ततो मुक्तिर्भवेदहो ॥ ३६

उन दोनोंने ही इन केदारेश्वर नामक ज्योतिर्लिंगकी पूजा की थी। ये केदारेश्वर नामक शिव दर्शन तथा अर्चनसे भक्तोंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं ॥ २५ ॥

हे तात! शिवजीका यह केदारसंज्ञक अवतार सर्वेश्वर होनेपर भी इस केदारखण्डका विशेषरूपसे स्वामी है, जो भक्तोंकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करनेवाला है। शिवजीका छठा ज्योतिर्लिंगावतार भीमशंकर नामसे प्रसिद्ध है। यह अवतार महान् लीला करनेवाला है और भीम नामक असुरका विनाशक है ॥ २६-२७ ॥

इन्हीं भीमशंकरने भक्तोंको दुःख देनेवाले [भीम नामक] अद्भुत दैत्यको मारकर कामरूप देशके सुदक्षिण नामक भक्त राजाकी रक्षा की थी ॥ २८ ॥

इसलिये वे राजाद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भीमशंकर नामक ज्योतिर्लिंगके रूपसे उस डाकिनी नामक स्थानमें स्वयं प्रतिष्ठित हुए ॥ २९ ॥

हे मुने! शिवजीका सातवाँ विश्वेश्वर नामक अवतार काशीमें हुआ। जो समस्त ब्रह्माण्डका स्वरूप है एवं भोग तथा मोक्षको देनेवाला है ॥ ३० ॥

विष्णु आदि समस्त देवोंने इस विश्वेश्वर ज्योतिर्लिंगका पूजन किया और कैलासपति भैरव तो इनकी नित्य ही पूजा करते हैं ॥ ३१ ॥

स्वयं सिद्धस्वरूप ये प्रभु अपनी [काशी] पुरीमें ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे विराजमान हैं तथा [मुमुक्षुओंको] वहाँपर मुक्ति प्रदान कर रहे हैं ॥ ३२ ॥

जो लोग भक्तिपूर्वक काशी तथा विश्वेश्वरके नामका निरन्तर जप करते हैं, वे कर्मोंसे सर्वदा निर्लिप्त रहकर कैवल्यपदके भागी होते हैं ॥ ३३ ॥

शिवजीका त्र्यम्बक नामक आठवाँ अवतार महर्षि गौतमके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर गौतमीके तटपर हुआ और महर्षि गौतमद्वारा प्रार्थना किये जानेपर वहाँपर उनकी प्रसन्नताके लिये शिवजी ज्योतिर्लिंगस्वरूपसे अचल होकर प्रेमपूर्वक प्रतिष्ठित हो गये ॥ ३४-३५ ॥

उन महेश्वरके दर्शन, स्पर्श एवं अर्चनसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और अन्तमें मुक्ति हो जाती है, यह आश्चर्यकारी है ॥ ३६ ॥

शिवानुग्रहतस्त्र गङ्गा नामा तु गौतमी।
संस्थिता गौतमप्रीत्या पावनी शङ्करप्रिया॥ ३७

वैद्यनाथावतारो हि नवमस्त्र कीर्तिः।
आविर्भूतो रावणार्थं बहुलीलाकरः प्रभुः॥ ३८
तदानयनरूपं हि व्याजं कृत्वा महेश्वरः।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण चिताभूमौ प्रतिष्ठितः॥ ३९
वैद्यनाथेश्वरो नामा प्रसिद्धोऽभूज्जगत्ये।
दर्शनात्पूजनाद्वक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदः स हि॥ ४०

वैद्यनाथेश्वरशिवमाहात्म्यमनुशासनम् ।
पठतां शृण्वतां चापि भुक्तिमुक्तिप्रदं मुने॥ ४१

नागेश्वरावतारस्तु दशमः परिकीर्तिः।
आविर्भूतः स्वभक्तार्थं दुष्टानां दण्डदः सदा॥ ४२

हत्वा दारुकनामानं राक्षसं धर्मघातकम्।
स्वभक्तं वैश्यनाथं च प्रारक्षत्सुप्रियाभिधम्॥ ४३

लोकानामुपकारार्थं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपधृक्।
सन्तस्थौ साम्बिकः शम्भुर्बहुलीलाकरः परः॥ ४४

तद् दृष्ट्वा शिवलिङ्गं तु मुने नागेश्वराभिधम्।
विनश्यन्ति द्रुतं चार्च्य महापातकराशयः॥ ४५

रामेश्वरावतारस्तु शिवस्यैकादशः स्मृतः।
रामचन्द्रप्रियकरो रामसंस्थापितो मुने॥ ४६

ददौ जयवरं प्रीत्या यो रामाय सुतोषितः।
आविर्भूतः स लिङ्गस्तु शङ्करो भक्तवत्सलः॥ ४७

रामेण प्रार्थितोऽत्यर्थं ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपतः।
सन्तस्थौ सेतुबन्धे च रामसंसेवितो मुने॥ ४८

रामेश्वरस्य महिमाद्वुतोऽभूद्विचातुलः।
भुक्तिमुक्तिप्रदश्वैव सर्वदा भक्तकामदः॥ ४९

शिवके अनुग्रहसे वहाँपर गौतमके प्रीतिवश पवित्र करनेवाली शिवप्रिया गंगा गौतमी नामसे स्थित हैं॥ ३७॥

शिवजीका नौवाँ ज्योतिर्लिङ्गावतार वैद्यनाथेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। नानाविध लीलाएँ करनेवाले वे प्रभु रावणके निमित्त प्रकट हुए थे। भगवान् महेश्वर रावणके द्वारा लाये जानेके बहाने चिताभूमिमें ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे प्रतिष्ठित हो गये॥ ३८-३९॥

यह ज्योतिर्लिङ्ग वैद्यनाथेश्वर नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ। भक्तिपूर्वक दर्शन और पूजन करनेसे निश्चय ही यह भोग तथा मोक्ष देनेवाला है॥ ४०॥

हे मुने! वैद्यनाथेश्वर शिवके माहात्म्यरूप शास्त्रको पढ़ने तथा सुननेवालोंको भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त होता है। शिवजीका दसवाँ अवतार नागेश्वर नामवाला कहा गया है, जो भक्तोंकी रक्षाके लिये आविर्भूत हुआ और सर्वदा दुष्टोंका दमन करता रहता है॥ ४१-४२॥

धर्मनाशक दारुक नामक राक्षसको मारकर शिवजीने वैश्योंके स्वामी सुप्रिय नामक अपने भक्तकी रक्षा की थी। नाना प्रकारकी लीला करनेवाले वे परमात्मा साम्बसदाशिव लोकोंका कल्याण करनेके लिये ज्योतिर्लिङ्गस्वरूप धारण-कर नागेश्वर नामसे वहाँपर स्थित हो गये॥ ४३-४४॥

हे मुने! उस नागेश्वर नामक शिवलिंगका दर्शन-पूजन करनेसे महापातकोंके समूह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। हे मुने! शिवजीका ग्यारहवाँ अवतार रामेश्वर नामसे प्रसिद्ध है, जो रामचन्द्रका प्रिय करनेवाला है, यह रामचन्द्रके द्वारा स्थापित किया गया है॥ ४५-४६॥

ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे आविर्भूत हुए उन भक्तवत्सल भगवान् रामेश्वरने ही रामचन्द्रके द्वारा सनुष्ट किये जानेपर उनको विजयका वरदान दिया था॥ ४७॥

हे मुने! रामचन्द्रजीद्वारा बहुत प्रार्थना करनेपर उनके द्वारा सेवित हुए शिवजी ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपसे सेतुबन्धमें स्थित हो गये॥ ४८॥

रामेश्वरकी महिमा इस पृथ्वीतलमें अद्भुत तथा अतुलनीय हुई, ये भोग तथा मोक्षको देनेवाले तथा भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाले हैं॥ ४९॥

तं च गङ्गाजलेनैव स्नापयिष्यति यो नरः ।
 रामेश्वरं च सद्बक्त्या स जीवन्मुक्त एव हि ॥ ५०
 इह भुक्त्वाखिलान्धोगान्देवतादुल्लभानपि ।
 अतः प्राप्य परं ज्ञानं कैवल्यं मोक्षमाज्यात् ॥ ५१

घुश्मेश्वरावतारस्तु द्वादशः शङ्करस्य हि।
नानालीलाकरो घुश्मानन्ददो भक्तवत्सलः ॥५२

दक्षिणस्यां दिशि मुने देवशैलसमीपतः ।
आविर्बंधूव सरसि घुश्माप्रियकरः प्रभुः ॥ ५३

सुदेहामारितं घुश्मापुत्रं साकल्यतो मुने।
तष्टस्तद्वक्तिः शम्भुर्योऽरक्षद्वक्तवत्सलः ॥ ५४

तत्प्रार्थितः स वै शम्भुस्तडागे तत्र कामदः ।
ज्योतिर्लिङ्गस्वरूपेण तस्थौ घुश्मेश्वराभिधः ॥ ५५
तं दृष्ट्वा शिवलिङ्गं तु समभ्यर्च्य च भक्तिः ।

इति ते हि समाख्याता ज्योतिर्लिङ्गावली मया ।
द्वादशप्रभिता दिव्या भक्तिमक्तिप्रदायिनी ॥ ५७

एतां ज्योतिर्लिङ्कथां यः पठेच्छृणुयादपि ।
मच्यते सर्वपापेभ्यो भक्तिं मक्तिं च विन्दति ॥ ५८

शतरुद्राभिधा चेयं वर्णिता संहिता मया ।
शतावतारमस्त्कीर्तिः सर्वकामफलप्रदा ॥ ५९

इमां यः पठते नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः ।
सर्वाञ्जपान्तवान्तेऽनि त्वतो मक्किं लभेद ध्वम ॥ ६०

इति श्रीशिवमहापुराणे तृतीयायां शतरुद्रसंहितायां सनत्कुमारनन्दीश्वरसंवादे

द्वादशज्ज्योतिर्लिङ्गावतारवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापराणके अन्तर्गत तृतीय शतरुद्रसंहिताके सनकुमार-नन्दीश्वर-संवादमें

द्वादशार्ज्योतिर्लिंगावतारवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४२ ॥

॥ सप्ताप्नेयं ततीया शतरुद्रसंहिता ॥ ३ ॥



श्रीरामेश्वरपूजन

॥ ॐ श्रीसाम्बशिवाय नमः ॥ ॥ ॐ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

चतुर्थी कोटि रुद्रसंहिता

अथ प्रथमोऽध्यायः

द्वादश ज्योतिर्लिंगों एवं उनके उपलिंगोंके माहात्म्यका वर्णन

यो धत्ते निजमायैव भुवनाकारं विकारोज्ज्ञतो
यस्याहुः करुणाकटाक्षविभवौ स्वर्गापवर्गाभिधौ ।
प्रत्यगबोधसुखाद्वयं हृदि सदा पश्यन्ति यं योगिन-
स्तस्मै शैलसुताञ्चितार्धवपुषे शश्वन्नमस्तेजसे ॥ १
कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्जवकत्राम्बुजं
शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितधोरतापत्रयम् ।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपु-
र्धराधरसुताभुजोद्भूलयितं महो मङ्गलम् ॥ २

ऋषय ऊचुः
सम्यगुक्तं त्वया सूत लोकानां हितकाम्यया ।
शिवावतारमाहात्म्यं नानाख्यानसमन्वितम् ॥ ३
पुनश्च कथ्यतां तात शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।
लिङ्गसम्बन्धि सुप्रीत्या धन्यस्त्वं शैवसत्तम् ॥ ४
शृण्वन्तस्त्वन्मुखाभोजान तृप्ताः स्मो वयं प्रभो ।
शैवं यशोऽमृतं रम्यं तदेव पुनरुच्यताम् ॥ ५

पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तीर्थं तीर्थं शुभानि हि ।
अन्यत्र वा स्थले यानि प्रसिद्धानि स्थितानि वै ॥ ६
तानि तानि च दिव्यानि लिङ्गानि परमेशितुः ।
व्यासशिष्य समाचक्ष्व लोकानां हितकाम्यया ॥ ७

जो निर्विकार होते हुए भी अपनी मायासे विराट् विश्वका आकार धारण कर लेते हैं, स्वर्ग तथा अपर्ग जिनके कृपाकटाक्षके वैभव बताये जाते हैं तथा योगीजन जिन्हें सदा अपने हृदयके भीतर आत्मज्ञानानन्दस्वरूपमें देखते हैं, उन तेजोमय भगवान् शंकरको, जिनका आधा शरीर शैलराजकुमारी पार्वतीसे सुशोभित है, निरन्तर मेरा नमस्कार है ॥ १ ॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुसकानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो तीनों भीषण तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह [शिव नामक] कोई [अनिर्वचनीय] तेजःपुंज सबका मंगल करे ॥ २ ॥

ऋषिगण बोले—हे सूत! आपने लोकका कल्याण करनेके निमित्त अनेक प्रकारके आख्यानोंसे युक्त शिवजीके अवतारोंका माहात्म्य भलीभाँति कहा। अब हे तात! आप शिवजीके लिंगसम्बन्धी माहात्म्यका प्रेमपूर्वक वर्णन कीजिये। हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! आप धन्य हैं ॥ ३-४ ॥

हे प्रभो! आपके मुखकमलसे शिवके अमृतरूप मनोहर यशको सुनते हुए हम लोग तृप्त नहीं हुए, अतः उसीको फिरसे कहिये ॥ ५ ॥

इस पृथ्वीके सभी तीर्थोंमें जितने शुभ लिंग हैं, अथवा इस भूतलपर अन्यत्र भी जो प्रसिद्ध लिंग स्थित हैं, हे व्यासशिष्य! लोकहितकी कामनासे परमेश्वर शिवके उन सभी दिव्य लिंगोंका वर्णन कीजिये ॥ ६-७ ॥

सूत उवाच

साधु पृष्ठमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया ।
कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः ॥ ८
सर्वेषां शिवलिङ्गानां मुने संख्या न विद्यते ।
सर्वा लिंगमयी भूमिः सर्व लिंगमयं जगत् ॥ ९
लिंगयुक्तानि तीर्थानि सर्व लिंगे प्रतिष्ठितम् ।
संख्या न विद्यते तेषां तानि किंचिद्वीम्यहम् ॥ १०

यत्किंचिद्दृश्यते दृश्यं वण्यते स्मर्यते च यत् ।
तत्सर्व शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किंचन ॥ ११

तथापि श्रूयतां प्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम् ।
लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह ॥ १२

पाताले चापि वर्तन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि ।
सर्वत्र पूज्यते शम्भुः स देवासुरमानुषैः ॥ १३

त्रिजगच्छभुना व्याप्तं सदेवासुरमानुषम् ।
अनुग्रहाय लोकानां लिंगरूपेण सत्तमाः ॥ १४
अनुग्रहाय लोकानां लिंगानि च महेश्वरः ।
दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा ॥ १५
यत्र यत्र यदा शंभुर्भक्त्या भक्तैश्च संस्मृतः ।
तत्र तत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा ॥ १६

लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चाप्यकल्पयत् ।
तत्लिंगं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति ॥ १७

पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषां संख्या न विद्यते ।
तथापि च प्रधानानि कथ्यन्ते च मया द्विजाः ॥ १८
प्रधानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम् ।
यच्छुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ॥ १९

ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम ।
तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पापं व्यपोहति ॥ २०

सूतजी बोले — हे ऋषिवरो ! आपलोगोंने लोक-हितकी कामनासे अच्छी बात पूछी है, अतः हे द्विजो ! आपलोगोंके स्नेहसे मैं उन लिंगोंका वर्णन करता हूँ ॥ ८ ॥
हे मुने ! शिवजीके सम्पूर्ण लिंगोंकी [कोई निश्चित] संख्या नहीं है; क्योंकि यह समस्त पृथ्वी लिंगमय है और सारा जगत् लिंगमय है। सभी तीर्थ लिंगमय हैं; सारा प्रपञ्च लिंगमें ही प्रतिष्ठित है। यद्यपि उनकी कोई संख्या नहीं है, फिर [भी] मैं कुछ लिंगोंका वर्णन कर रहा हूँ ॥ ९-१० ॥

इस जगत्में जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है, कहा जाता है और [मनसे] स्मरण किया जाता है, वह सब शिवस्वरूप ही है। शिवके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। फिर भी हे श्रेष्ठ ऋषिगण ! इस पृथ्वीपर जितने भी दिव्य लिंग हैं, जैसा कि मुझे जात है। उनको मैं बता रहा हूँ, आपलोग प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ ११-१२ ॥

पातालमें, स्वर्गमें एवं पृथ्वीपर सभी जगह शिवलिंग हैं; क्योंकि देवता, असुर एवं मनुष्य—ये सभी शिवजीका पूजन करते हैं ॥ १३ ॥

हे महर्षियो ! शिवजीने लोकोंके कल्याणार्थ ही लिंगरूपसे देव, मनुष्य तथा दैत्योंके सहित इस समस्त त्रिलोकीको व्याप्त कर रखा है। वे महेश्वर लोकोंके हितके लिये तीर्थ-तीर्थमें तथा अन्य स्थलोंमें भी विविध लिंगोंको धारण करते हैं ॥ १४-१५ ॥

जिस-जिस स्थानमें जब-जब शिवजीके भक्तोंने भक्तिपूर्वक उनका स्मरण किया है, उस समय उन-उन स्थानोंमें प्रकट होकर [भक्तजनोंका] कार्य करके वे वहाँ स्थित हो गये। उन्होंने लोकोपकारार्थ अपने लिंगको प्रकट किया, उस लिंगका पूजन करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १६-१७ ॥

हे द्विजो ! पृथिवीपर जितने लिंग हैं, उनकी कोई गणना नहीं है, फिर भी मैं प्रधान लिंगोंको कहता हूँ। प्रधान लिंगोंमें जो [विशेषरूपसे] मुख्य लिंग हैं, उनको मैं कहता हूँ, जिनके सुननेसे मनुष्य उसी समय पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १८-१९ ॥

हे मुनिसत्तम ! इस लोकमें मुख्योंमें भी मुख्य जितने ज्योतिर्लिंग हैं, उन्हें मैं इस समय कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्राणी पापोंसे छूट जाता है ॥ २० ॥

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
 उज्जयिन्यां महाकालमोक्षे परमेश्वरम् ॥ २१
 केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम् ।
 वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ॥ २२
 वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने ।
 सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये ॥ २३
 द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत् ॥ २४

यं यं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः ।
 प्राप्यन्ति कामं तं तं हि परत्रेह मुनीश्वराः ॥ २५

ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः ।
 तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति ॥ २६

एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःखनाशनम् ।
 इहलोके परत्रापि मुक्तिर्भवति निश्चितम् ॥ २७

ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः ।
 तत्कर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात् ॥ २८

ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः ।
 विशेषतः फलं वक्तुं शक्यते न परैस्तथा ॥ २९
 एकं च पूजितं येन षण्मासं तन्निरन्तरम् ।
 तस्य दुःखं न जायेत मातृकुक्षिसमुद्धवम् ॥ ३०
 हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंगं च पश्यति ।
 तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः ॥ ३१

सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाद्यो वेदपारगः ।
 शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्तिं यात्यनपायिनीम् ॥ ३२

म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ठो वापि मुनीश्वराः ।
 द्विजो भूत्वा भवेन्मुक्तस्तस्मात्तद्वर्णं चरेत् ॥ ३३

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ॐकार क्षेत्रमें परमेश्वर, हिमालयपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वेश्वर, गौतमी नदीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर तथा शिवालयमें घुश्मेश्वर [नामक ज्योतिर्लिंग] हैं। जो [प्रतिदिन] प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसके सभी प्रकारके पाप छूट जाते हैं और उसको सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त हो जाता है ॥ २१—२४ ॥

हे मुनीश्वरो! उत्तम पुरुष जिस-जिस मनोरथकी अपेक्षा करके इनका पाठ करेंगे, वे उस-उस मनोकामनाको इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त करेंगे और जो शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष निष्कामभावसे इनका पाठ करेंगे, वे [पुनः] माताके गर्भमें निवास नहीं करेंगे ॥ २५-२६ ॥

इस लोकमें इन लिंगोंका पूजन करनेसे [ब्राह्मण आदि] सभी वर्णोंका दुःख नष्ट हो जाता है और परलोकमें निश्चित रूपसे उनकी मुक्ति भी हो जाती है। इन लिंगोंपर चढ़ाया गया प्रसाद सर्वथा ग्रहण करनेयोग्य होता है; उसे [श्रद्धासे] विशेष यत्से ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करनेवालेके समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं ॥ २७-२८ ॥

हे द्विजो! इन ज्योतिर्लिंगोंका विशेष फल कहनेमें ब्रह्मा आदि भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरोंकी बात ही क्या? जिसने किसी एक लिंगका भी छः मासतक यदि निरन्तर पूजन कर लिया, उसे पुनर्जन्मका दुःख नहीं उठाना पड़ता है ॥ २९-३० ॥

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष भी यदि किसी ज्योतिर्लिंगका दर्शन करता है, तो उसका जन्म पुनः निर्मल एवं उत्तम कुलमें होता है। वह उत्तम कुलमें जन्म प्राप्तकर धनसे सम्पन्न एवं वेदका पारगामी विद्वान् होता है। उसके बाद [वेदोच्चित] शुभ कर्म करके वह स्थिर रहनेवाली मुक्ति प्राप्त करता है ॥ ३१-३२ ॥

हे मुनीश्वरो! म्लेच्छ, अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई भी हो—वह [ज्योतिर्लिंगके दर्शनके प्रभावसे] द्विजकुलमें जन्म लेकर मुक्त हो जाता है, इसलिये ज्योतिर्लिंगका दर्शन [अवश्य] करना चाहिये ॥ ३३ ॥

सूत उवाच

साधु पृष्ठमृषिश्रेष्ठा लोकानां हितकाम्यया ।
कथयामि भवत्स्नेहात्तानि संक्षेपतो द्विजाः ॥ ८ ॥
सर्वेषां शिवलिङ्गानां मुने संख्या न विद्यते ।
सर्वा लिंगमयी भूमिः सर्व लिंगमयं जगत् ॥ ९ ॥

लिंगयुक्तानि तीर्थानि सर्व लिंगे प्रतिष्ठितम् ।
संख्या न विद्यते तेषां तानि किंचिद्वीम्यहम् ॥ १० ॥

यत्किंचिद्दृश्यते दृश्यं वर्णयते स्मर्यते च यत् ।
तत्सर्व शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किंचन ॥ ११ ॥

तथापि श्रूयतां प्रीत्या कथयामि यथाश्रुतम् ।
लिंगानि च ऋषिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि तानि ह ॥ १२ ॥

पाताले चापि वर्तन्ते स्वर्गे चापि तथा भुवि ।
सर्वत्र पूज्यते शम्भुः स देवासुरमानुषेः ॥ १३ ॥

त्रिजगच्छभुना व्याप्तं सदेवासुरमानुषम् ।
अनुग्रहाय लोकानां लिंगरूपेण सत्तमाः ॥ १४ ॥
अनुग्रहाय लोकानां लिंगानि च महेश्वरः ।
दधाति विविधान्यत्र तीर्थे चान्यस्थले तथा ॥ १५ ॥
यत्र यत्र यदा शंभुर्भक्त्या भक्तैश्च संसृतः ।
तत्र तत्रावतीर्याथ कार्यं कृत्वा स्थितस्तदा ॥ १६ ॥

लोकानामुपकारार्थं स्वलिंगं चाप्यकल्पयत् ।
तत्त्विं पूजयित्वा तु सिद्धिं समधिगच्छति ॥ १७ ॥

पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषां संख्या न विद्यते ।
तथापि च प्रथानानि कथ्यन्ते च मया द्विजाः ॥ १८ ॥

प्रथानेषु च यानीह मुख्यानि प्रवदाम्यहम् ।
यच्छुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवः क्षणात् ॥ १९ ॥

ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्यमुख्यानि सत्तम ।
तान्यहं कथयाम्यद्य श्रुत्वा पापं व्यपोहति ॥ २० ॥

सूतजी बोले— हे ऋषिवरो ! आपलोगोंने लोक-हितकी कामनासे अच्छी बात पूछी है, अतः हे द्विजो ! आपलोगोंके स्नेहसे मैं उन लिंगोंका वर्णन करता हूँ ॥ ८ ॥

हे मुने ! शिवजीके सम्पूर्ण लिंगोंकी [कोई निश्चित] संख्या नहीं है; क्योंकि यह समस्त पृथ्वी लिंगमय है और सारा जगत् लिंगमय है। सभी तीर्थ लिंगमय हैं; सारा प्रपञ्च लिंगमें ही प्रतिष्ठित है। यद्यपि उनकी कोई संख्या नहीं है, फिर [भी] मैं कुछ लिंगोंका वर्णन कर रहा हूँ ॥ ९-१० ॥

इस जगत्में जो कुछ भी दृश्य देखा जाता है, कहा जाता है और [मनसे] स्मरण किया जाता है, वह सब शिवस्वरूप ही है। शिवके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। फिर भी हे श्रेष्ठ ऋषिगण ! इस पृथ्वीपर जितने भी दिव्य लिंग हैं, जैसा कि मुझे ज्ञात है। उनको मैं बता रहा हूँ, आपलोग प्रेमपूर्वक सुनिये ॥ ११-१२ ॥

पातालमें, स्वर्गमें एवं पृथ्वीपर सभी जगह शिवलिंग हैं; क्योंकि देवता, असुर एवं मनुष्य—ये सभी शिवजीका पूजन करते हैं ॥ १३ ॥

हे महर्षियो ! शिवजीने लोकोंके कल्याणार्थ ही लिंगरूपसे देव, मनुष्य तथा दैत्योंके सहित इस समस्त त्रिलोकीको व्याप्त कर रखा है। वे महेश्वर लोकोंके हितके लिये तीर्थ-तीर्थमें तथा अन्य स्थलोंमें भी विविध लिंगोंको धारण करते हैं ॥ १४-१५ ॥

जिस-जिस स्थानमें जब-जब शिवजीके भक्तोंने भक्तिपूर्वक उनका स्मरण किया है, उस समय उन-उन स्थानोंमें प्रकट होकर [भक्तजनोंका] कार्य करके वे वहाँ स्थित हो गये। उन्होंने लोकोपकारार्थ अपने लिंगको प्रकट किया, उस लिंगका पूजन करके मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १६-१७ ॥

हे द्विजो ! पृथिवीपर जितने लिंग हैं, उनकी कोई गणना नहीं है, फिर भी मैं प्रथान लिंगोंको कहता हूँ। प्रथान लिंगोंमें जो [विशेषरूपसे] मुख्य लिंग हैं, उनको मैं कहता हूँ, जिनके सुननेसे मनुष्य उसी समय पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ १८-१९ ॥

हे मुनिसत्तम ! इस लोकमें मुख्योंमें भी मुख्य जितने ज्योतिर्लिंग हैं, उन्हें मैं इस समय कहता हूँ, जिन्हें सत्त्वक मापी तरफ से व्याप्ति आज्ञा है ॥

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
 उज्जित्यन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥ २१
 केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
 वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥ २२
 वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
 सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥ २३
 द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥ २४
 यं यं कामपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः।
 प्राप्स्यन्ति कामं तं तं हि परत्रेह मुनीश्वराः॥ २५
 ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः।
 तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति॥ २६
 एतेषां पूजनेनैव वर्णानां दुःखनाशनम्।
 इहलोके परत्रापि मुक्तिर्भवति निश्चितम्॥ २७
 ग्राह्यमेषां च नैवेद्यं भोजनीयं प्रयत्नतः।
 तत्कर्तुः सर्वपापानि भस्मसाद्यान्ति वै क्षणात्॥ २८
 ज्योतिषां चैव लिंगानां ब्रह्मादिभिरलं द्विजाः।
 विशेषतः फलं वक्तुं शक्यते न परैस्तथा॥ २९
 एकं च पूजितं येन षण्मासं तन्निरन्तरम्।
 तस्य दुःखं न जायेत मातृकुक्षिसमुद्भवम्॥ ३०
 हीनयोनौ यदा जातो ज्योतिर्लिंगं च पश्यति।
 तस्य जन्म भवेत्तत्र विमले सत्कुले पुनः॥ ३१
 सत्कुले जन्म संप्राप्य धनाद्यो वेदपारगः।
 शुभकर्म तदा कृत्वा मुक्तिं यात्यनपायिनीम्॥ ३२

म्लेच्छो वाप्यन्त्यजो वापि षण्ठो वापि मुनीश्वरः।
 द्विजो भूत्वा भवेत्मुक्तस्तस्मात्तद्वर्णं चरेत्॥ ३३

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जित्यनीमें महाकाल, ॐकार क्षेत्रमें परमेश्वर, हिमालयपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वेश्वर, गौतमी नदीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर तथा शिवालयमें घुश्मेश्वर [नामक ज्योतिर्लिंग] हैं। जो [प्रतिदिन] प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसके सभी प्रकारके पाप छूट जाते हैं और उसको सम्पूर्ण सिद्धियोंका फल प्राप्त हो जाता है॥ २१—२४॥

हे मुनीश्वरो! उत्तम पुरुष जिस-जिस मनोरथकी अपेक्षा करके इनका पाठ करेंगे, वे उस-उस मनोकामनाको इस लोकमें तथा परलोकमें प्राप्त करेंगे और जो शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष निष्कामभावसे इनका पाठ करेंगे, वे [पुनः] माताके गर्भमें निवास नहीं करेंगे॥ २५-२६॥

इस लोकमें इन लिंगोंका पूजन करनेसे [ब्राह्मण आदि] सभी वर्णोंका दुःख नष्ट हो जाता है और परलोकमें निश्चित रूपसे उनकी मुक्ति भी हो जाती है। इन लिंगोंपर चढ़ाया गया प्रसाद सर्वथा ग्रहण करनेयोग्य होता है; उसे [श्रद्धासे] विशेष यत्से ग्रहण करना चाहिये। ऐसा करनेवालेके समस्त पाप उसी क्षण विनष्ट हो जाते हैं॥ २७-२८॥

हे द्विजो! इन ज्योतिर्लिंगोंका विशेष फल कहनेमें ब्रह्मा आदि भी समर्थ नहीं हैं, फिर दूसरोंकी बात ही क्या? जिसने किसी एक लिंगका भी छः मासतक यदि निरन्तर पूजन कर लिया, उसे पुनर्जन्मका दुःख नहीं उठाना पड़ता है॥ २९-३०॥

नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष भी यदि किसी ज्योतिर्लिंगका दर्शन करता है, तो उसका जन्म पुनः निर्मल एवं उत्तम कुलमें होता है। वह उत्तम कुलमें जन्म प्राप्तकर धनसे सम्पन्न एवं वेदका पारगामी विद्वान् होता है। उसके बाद [वेदोचित] शुभ कर्म करके वह स्थिर रहनेवाली मुक्ति प्राप्त करता है॥ ३१-३२॥

हे मुनीश्वरो! म्लेच्छ, अन्त्यज अथवा नपुंसक कोई भी हो—वह [ज्योतिर्लिंगके दर्शनके प्रभावसे] द्विजकुलमें जन्म लेकर मुक्त हो जाता है, इसलिये ज्योतिर्लिंगका दर्शन [अवश्य] करना चाहिये॥ ३३॥

ज्योतिषां चैव लिंगानां किंचित्प्रोक्तं फलं मया ।
ज्योतिषां चोपलिंगानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ॥ ३४

सोमेश्वरस्य यल्लिंगमन्तकेशमुदाहृतम् ।
महाः सागरसंयोगे तल्लिंगमुपलिङ्गकम् ॥ ३५
मल्लिकार्जुनसंभूतमुपलिंगमुदाहृतम् ।
रुद्रेश्वरमिति ख्यातं भृगुकक्षे सुखावहम् ॥ ३६

महाकालभवं लिंगं दुर्घेशमिति विश्रुतम् ।
नर्मदायां प्रसिद्धं तत्सर्वपापहरं स्मृतम् ॥ ३७

अँकारजं च यल्लिंगं कर्दमेशमिति श्रुतम् ।
प्रसिद्धं बिन्दुसरसि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३८
केदारेश्वरसंजातं भूतेशं यमुनातटे ।
महापापहरं प्रोक्तं पश्यतामर्चतां तथा ॥ ३९

भीमशंकरसंभूतं भीमेश्वरमिति स्मृतम् ।
सह्याचले प्रसिद्धं तन्महाबलविवर्द्धनम् ॥ ४०

विश्वेश्वराच्च यज्जातं शरण्येश्वर विश्रुतम् ।
ऋम्बकस्य च यत्प्रोक्तं सिद्धेश्वर इति श्रुतम् ॥ ४१

वैद्यनाथाच्च यज्जातं वैजनाथ इति स्मृतम् ।
नागेश्वरसमुद्भूतं भूतेश्वरमुदाहृतम् ॥ ४२
मल्लिकासरस्वतीतीरे दर्शनात्पापहारकम् ।
रामेश्वराच्च यज्जातं गुमेश्वरमिति स्मृतम् ॥ ४३

घुश्मेशाच्चैव यज्जातं व्याघ्रेश्वरमिति स्मृतम् ।
ज्योतिर्लिंगोपलिंगानि प्रोक्तानीह मया द्विजाः ॥ ४४
दर्शनात्पापहारीणि सर्वकामप्रदानि च ।
एतानि सुप्रधानानि मुख्यतां हि गतानि च ।
अन्यानि चापि मुख्यानि श्रूयन्तामृषिसत्तमाः ॥ ४५

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्या कोटिरुद्रसंहितायां ज्योतिर्लिंगतदुपलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें ज्योतिर्लिंग और उनके उपलिंगोंका माहात्म्यवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

हे मुनिसत्तमो ! मैंने संक्षेपमें इन ज्योतिर्लिंगोंके फलका वर्णन किया; अब इनके उपलिंगोंको सुनिये ॥ ३४ ॥

महीनदी तथा सागरके संगमपर जो अन्तकेश नामक लिंग स्थित है, वह सोमेश्वरका उपलिंग कहा जाता है। भृगुकच्छमें स्थित परम सुखदायक रुद्रेश्वर नामक लिंग ही मल्लिकार्जुनसे प्रकट हुआ उपलिंग कहा गया है ॥ ३५-३६ ॥

नर्मदाके तटपर महाकालसे प्रकट हुआ दुर्घेश्वर नामसे प्रसिद्ध उपलिंग है; जो सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला है। ओंकारेश्वरसम्बन्धी उपलिंग कर्दमेश्वर नामसे प्रसिद्ध तथा बिन्दुसरोवरके तटपर स्थित है और यह सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाला है ॥ ३७-३८ ॥

यमुनाके तटपर केदारेश्वरसे उत्पन्न भूतेश्वर नामक उपलिंग स्थित है, जो दर्शन एवं पूजन करनेवालोंके लिये महापापनाशक कहा गया है। सह्यापर्वतपर स्थित भीमेश्वर नामक लिंग भीमशंकरका उपलिंग कहा गया है; वह प्रसिद्ध लिंग महान् बलको बढ़ानेवाला है। विश्वेश्वरसे उत्पन्न लिंग शरण्येश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ, ऋम्बकेश्वरसे सिद्धेश्वर लिंग प्रकट हुआ तथा वैद्यनाथसे वैजनाथ नामक लिंगका प्राकर्ण्य हुआ ॥ ३९-४१ ॥

मल्लिका-सरस्वतीके तटपर स्थित एक अन्य भूतेश्वर नामका ही शिवलिंग नागेश्वरसे उत्पन्न उपलिंग कहा गया है, जो दर्शनमात्रसे पापहारी है। रामेश्वरसे जो प्रकट हुआ, वह गुप्तेश्वर और घुश्मेश्वरसे जो प्रकट हुआ, वह व्याघ्रेश्वर कहा गया है ॥ ४२-४३ ॥

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने ज्योतिर्लिंगों तथा उनके उपलिंगोंका वर्णन किया; ये दर्शनमात्रसे पापोंको दूर करनेवाले तथा सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं। हे ऋषिश्रेष्ठो ! ये प्रधान लिंग तथा उनके उपलिंग मुख्य रूपसे प्रसिद्ध हैं; अब अन्य प्रसिद्ध लिंगोंको भी सुनिये ॥ ४४-४५ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

काशीस्थित तथा पूर्व दिशामें प्रकटित विशेष एवं सामान्य लिंगोंका वर्णन

सूत उवाच

गंगातीरे सुप्रसिद्धा काशी खलु विमुक्तिदा।
सा हि लिंगमयी ज्ञेया शिववासस्थली स्मृता ॥ १

लिंगं तत्रैव मुख्यं च सम्प्रोक्तमविमुक्तकम्।
कृत्तिवासेश्वरः साक्षात्तत्त्वल्यो वृद्धकालकः ॥ २

तिलभाण्डेश्वरश्चैव दशाश्वमेध एव च।
गंगासागरसंयोगे संगमेश इति स्मृतः ॥ ३

भूतेश्वरो यः संप्रोक्तो भक्तसर्वार्थदः सदा।
नारीश्वर इति ख्यातः कौशिक्याः स समीपगः ॥ ४

वर्तते गण्डकीतीरे बटुकेश्वर एव सः।
पूरेश्वर इति ख्यातः फल्लुतीरे सुखप्रदः ॥ ५

सिद्धनाथेश्वरश्चैव दर्शनात्सिद्धिदो नृणाम्।
दूरेश्वर इति ख्यातः पत्तने चोत्तरे तथा ॥ ६

शृंगेश्वरश्च नामा वै वैद्यनाथस्तथैव च।
जप्येश्वरस्तथा ख्यातो यो दधीचिरणस्थले ॥ ७

गोपेश्वरः समाख्यातो रंगेश्वर इति स्मृतः।
वामेश्वरश्च नागेशः कामेशो विमलेश्वरः ॥ ८

व्यासेश्वरश्च विख्यातः सुकेशश्च तथैव हि।
भाण्डेश्वरश्च विख्यातो हुंकारेशस्तथैव च ॥ ९

सुरोचनश्च विख्यातो भूतेश्वर इति स्वयम्।
संगमेशस्तथा प्रोक्तो महापातकनाशनः ॥ १०

ततश्च तस्कातीरे कुमारेश्वर एव च।
सिद्धेश्वरश्च विख्यातः सेनेशश्च तथा स्मृतः ॥ ११

रामेश्वर इति प्रोक्तो कुंभेशश्च परो मतः।
नन्दीश्वरश्च पुंजेशः पूर्णायां पूर्णकस्तथा ॥ १२

ब्रह्मेश्वरः प्रयागे च ब्रह्मणा स्थापितः पुरा।
दशाश्वमेधतीर्थे हि चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ १३

सूतजी बोले—गंगाके तटपर परम प्रसिद्ध काशी नगरी है, जो सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली है। उसे लिंगमयी ही जानना चाहिये, वह सदाशिवकी निवास-स्थली मानी गयी है ॥ १ ॥

वहाँपर अविमुक्त नामका मुख्य लिंग कहा गया है। उसीके समान कृत्तिवासेश्वरलिंग एवं वृद्धकाल लिंग काशीमें है। काशीमें तिलभाण्डेश्वर तथा दशाश्वमेध लिंग है। गंगासागरके संगमपर संगमेश्वर नामक लिंग कहा गया है ॥ २-३ ॥

जिन्हें भूतेश्वर कहा गया है और जो नारीश्वर नामसे विख्यात हैं—ये कौशिकी नदीके तटपर विराजमान हैं और भक्तोंको सभी फल प्रदान करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

गण्डकी नदीके तटपर बटुकेश्वर नामक लिंग है। फल्लु नदीके तटपर सुखदायी पूरेश्वर नामक लिंग है। उत्तर नामक नगरमें सिद्धनाथेश्वर तथा दूरेश्वर नामक लिंग हैं, जो दर्शनमात्रसे मनुष्योंको सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं ॥ ५-६ ॥

शृंगेश्वर तथा वैद्यनाथेश्वर नामक लिंग भी वैसे ही हैं। दधीचिकी संग्रामभूमिमें जप्येश्वर नामक प्रसिद्ध लिंग है। इसी प्रकार गोपेश्वर, रंगेश्वर, वामेश्वर, नागेश्वर, कामेश्वर तथा विमलेश्वर नामक लिंग कहे गये हैं ॥ ७-८ ॥

व्यासेश्वर, शुकेश्वर, भाण्डेश्वर, हुंकारेश्वर, सुरोचनेश्वर, भूतेश्वर, संगमेश्वर नामक लिंग कहे गये हैं, जो महापातकका नाश करनेवाले हैं ॥ ९-१० ॥

तप्तका नदीके तटपर कुमारेश्वर, सिद्धेश्वर तथा सेनेश्वर नामक प्रसिद्ध लिंग कहे गये हैं ॥ ११ ॥

पूर्णा नदीके तटपर रामेश्वर, कुम्भेश्वर, नन्दीश्वर, पुंजेश्वर तथा पूर्णकेश्वर लिंग कहे गये हैं ॥ १२ ॥

पूर्व समयमें ब्रह्माके द्वारा प्रयागके दशाश्वमेध तीर्थमें स्थापित किया गया ब्रह्मेश्वर नामक लिंग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको देनेवाला है ॥ १३ ॥

तथा सोमेश्वरस्त्र सर्वपद्मिनिवारकः।
भारद्वाजेश्वरश्चैव ब्रह्मवर्चःप्रवर्द्धकः॥ १४

शूलटंकेश्वरः साक्षात्कामनाप्रद ईरितः।
माधवेशश्च तत्रैव भक्तरक्षाविधायकः॥ १५

नागेशाख्यः प्रसिद्धो हि साकेतनगरे द्विजाः।
सूर्यवंशोद्भवानां च विशेषेण सुखप्रदः॥ १६

पुरुषोत्तमपुर्या तु भुवनेशः सुसिद्धिदः।
लोकेशश्च महालिंगः सर्वानन्दप्रदायकः॥ १७

कामेश्वरः शंभुलिंगो गंगेशः परशुद्धिकृत्।
शुक्रेश्वरः शुक्रसिद्धो लोकानां हितकाम्यया॥ १८

तथा वटेश्वरः ख्यातः सर्वकामफलप्रदः।
सिन्धुतीरे कपालेशो वक्त्रेशः सर्वपापहा॥ १९

धौतपापेश्वरः साक्षादंशेन परमेश्वरः।
भीमेश्वर इति प्रोक्तः सूर्येश्वर इति स्मृतः॥ २०

नन्दीश्वरश्च विज्ञेयो ज्ञानदो लोकपूजितः।
नाकेश्वरो महापुण्यस्तथा रामेश्वरः स्मृतः॥ २१

विमलेश्वरनामा वै कंटकेश्वर एव च।
पूर्वसागरसंयोगे धर्तुकेशस्तथैव च॥ २२

चन्द्रेश्वरश्च विज्ञेयश्चन्द्रकान्तिफलप्रदः।
सर्वकामप्रदश्चैव सिद्धेश्वर इति स्मृतः॥ २३

बिल्वेश्वरश्च विख्यातश्चान्थकेशस्तथैव च।
यत्र वा हन्थको दैत्यः शंकरेण हतः पुरा॥ २४

अयं स्वरूपमंशेन धृत्वा शंभुः पुनः स्थितः।
शरणेश्वरविख्यातो लोकानां सुखदः सदा॥ २५

वहींपर सभी विपत्तियोंको दूर करनेवाला सोमेश्वर नामक लिंग तथा ब्रह्मतेजकी वृद्धि करनेवाला भारद्वाजेश्वर नामक लिंग है। वहींपर कामनाओंको देनेवाला साक्षात् शूलटंकेश्वर लिंग तथा भक्तोंकी रक्षा करनेवाला माधवेश्वर लिंग बताया गया है॥ १४-१५॥

हे द्विजो! साकेत (अयोध्यापुरी)-में नागेश नामका प्रसिद्ध लिंग है, जो विशेष रूपसे सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए लोगोंको सुख देनेवाला है॥ १६॥

पुरुषोत्तम (जगन्नाथ)-पुरीमें उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाला भुवनेश्वर लिंग है। लोकेश्वर नामक महालिंग सभी प्रकारके आनन्दको देनेवाला है॥ १७॥

कामेश्वर तथा गंगेश शिवलिंग परम शुद्धि प्रदान करनेवाले हैं। इसी प्रकार लोकहित करनेवाला तथा शुक्रको सिद्धि प्रदान करनेवाला शुक्रेश्वर लिंग है। वटेश्वर नामक लिंग सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला कहा गया है। सिन्धुतटपर स्थित कपालेश्वर एवं वक्त्रेश्वर सभी पापोंको दूर करनेवाले हैं॥ १८-१९॥

धौतपापेश्वर, भीमेश्वर तथा सूर्येश्वर नामक लिंग साक्षात् शिवके अंश कहे गये हैं। लोक-पूजित नन्दीश्वर लिंगको ज्ञानप्रद जानना चाहिये। नाकेश्वर तथा रामेश्वर महापुण्यके प्रदाता कहे गये हैं॥ २०-२१॥

विमलेश्वर, कण्टकेश्वर तथा धर्तुकेश नामक लिंग पूर्व सागरके संगमपर स्थित हैं। चन्द्रेश्वरको चन्द्रमाके समान कान्तिरूप फलको देनेवाला जानना चाहिये। सिद्धेश्वर नामक लिंग सम्पूर्ण कामनाओंको सिद्ध करनेवाला कहा गया है॥ २२-२३॥

जहाँपर शिवजीने पूर्वकालमें अन्धक दैत्यका वध किया था, वहींपर बिल्वेश्वर तथा अन्धकेश्वर लिंग भी प्रसिद्ध हैं। [अन्धकका वध करनेके उपरान्त] ये शिवजी अपने अंशसे स्वरूप धारणकर पुनः वहीं स्थित हो गये। सर्वदा लोकको सुख देनेवाला शरणेश्वर लिंग तो प्रसिद्ध ही है॥ २४॥

कर्दमेशः परः प्रोक्तः कोटीशश्चार्बुदाचले ।
अचलेशश्च विख्यातो लोकानां सुखदः सदा ॥ २६

नागेश्वरस्तु कौशिक्यास्तीरे तिष्ठति नित्यशः ।
अनन्तेश्वरसंज्ञश्च कल्याणशुभभाजनः ॥ २७

योगेश्वरश्च विख्यातो वैद्यनाथेश्वरस्तथा ।
कोटीश्वरश्च विज्ञेयः सप्तेश्वर इति स्मृतः ॥ २८
भद्रेश्वरश्च विख्यातो भद्रनामा हरः स्वयम् ।
चण्डीश्वरस्तथा प्रोक्तः संगमेश्वर एव च ॥ २९
पूर्वस्यां दिशि जातानि शिवलिंगानि यानि च ।
सामान्यान्यपि चान्यानि तानीह कथितानि ते ॥ ३०
दक्षिणस्यां दिशि तथा शिवलिंगानि यानि च ।
संजातानि मुनिश्रेष्ठ तानि ते कथयाम्यहम् ॥ ३१

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्या कोटिरुद्रसंहितायां शिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवलिंगमाहात्म्यवर्णन
नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

अत्रीश्वरलिंगके प्राकृत्यके प्रसंगमें अनसूया तथा अत्रिकी तपस्याका वर्णन

सूत उवाच

ब्रह्मपुर्या चित्रकूटे लिंगं मत्तगजेन्द्रकम् ।
ब्रह्मणा स्थापितं पूर्वं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥ १
तत्पूर्वदिशि कोटीशं लिंगं सर्ववरप्रदम् ।
गोदावर्याः पश्चिमे तल्लिंगं पशुपतिनामकम् ॥ २
दक्षिणस्यां दिशि कश्चिदत्रीश्वर इति स्वयम् ।
लोकानामुपकारार्थमनसूयासुखाय च ॥ ३
प्रादुर्भूतः स्वयं देवो ह्यनावृष्ट्यामजीवयत् ।
स एव शंकरः साक्षादंशेन स्वयमेव हि ॥ ४

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग कथमत्रीश्वरो हरः ।
उत्पन्नः परमो दिव्यस्तत्त्वं कथय सुव्रत ॥ ५

कर्दमेश्वरको श्रेष्ठ लिंग कहा गया है। कोटीश अर्बुदाचलपर स्थित हैं। प्रसिद्ध अचलेश नामक लिंग लोगोंको सदा सुख देनेवाला है। कौशिकी नदीके तटपर नागेश्वर लिंग नित्य विराजमान है। अनन्तेश्वर नामक लिंग कल्याण तथा मंगल करनेवाला है ॥ २६-२७ ॥

योगेश्वर, वैद्यनाथेश्वर, कोटीश्वर तथा सप्तेश्वर लिंग विख्यात कहे गये हैं। भद्र नामक शिव भद्रेश्वर लिंगके रूपमें विख्यात हैं। इसी प्रकार चण्डीश्वर तथा संगमेश्वर भी कहे जाते हैं ॥ २८-२९ ॥

पूर्व दिशामें जितने विशेष एवं सामान्य लिंग प्रकट हुए हैं, इस प्रसंगमें उन सभीका वर्णन मैंने आपसे किया। हे मुनिश्रेष्ठ! अब दक्षिण दिशामें जो शिवलिंग प्रकट हुए हैं, उनका वर्णन मैं आपसे करता हूँ ॥ ३०-३१ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे चतुर्थ्या कोटिरुद्रसंहितायां शिवलिंगमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत चतुर्थ कोटिरुद्रसंहितामें शिवलिंगमाहात्म्यवर्णन

नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

सूतजी बोले—ब्रह्मपुरीके समीपमें चित्रकूट-पर्वतपर मत्तगजेन्द्र नामक लिंग है, जिसे ब्रह्माजीने पूर्वकालमें स्थापित किया था; वह सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। उसके पूर्वमें सभी प्रकारके वरोंको देनेवाला कोटीश्वर नामक लिंग है। गोदावरी नदीके पश्चिमकी ओर पशुपति नामक लिंग है ॥ १-२ ॥

दक्षिण दिशामें कोई अत्रीश्वर नामक लिंग है, जिसके रूपमें लोककल्याणके लिये एवं अनसूयाको सुख देनेहेतु साक्षात् शिवजीने अपने अंशसे स्वयं प्रकट होकर अनावृष्टि होनेपर [मरणासन] समस्त प्राणियोंको जीवनदान दिया था ॥ ३-४ ॥

ऋषिगण बोले—हे महाभाग्यवान् सूत! हे सुव्रत! वहाँपर परम दिव्य अत्रीश्वर नामक लिंगका प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ है, उसे आप [यथार्थ रूपसे] बताइये? ॥ ५ ॥

सूत उवाच

साधु पृष्ठमृषिश्रेष्ठः कथयामि कथां शुभाम्।
यां कथां सततं श्रुत्वा पातकैर्मुच्यते ध्रुवम्॥ ६
दक्षिणस्यां दिशि महत् कामदं नाम यद्वन्म्।
चित्रकूटसमीपेऽस्ति तपसां हितदं सताम्॥ ७
तत्र च ब्रह्मणः पुत्रो ह्यत्रिनामा ऋषिः स्वयम्।
तपस्तेषेऽतिकठिनमनसूयासमन्वितः ॥ ८

पूर्वं कदाचित्तत्रैव ह्यनावृष्टिरभूम्नुने।
दुःखदा प्राणिनां दैवाद्विकटा शतवार्षिकी॥ ९
वृक्षाः शुष्कास्तदा सर्वे पल्लवानि फलानि च।
नित्यार्थं न जलं क्वापि दृष्टमासीन्मुनीश्वराः॥ १०

आर्द्रीभावो न लभ्येत खरा वाता दिशो दश।
हाहाकारो महानासीत्पृथिव्यां दुःखदोऽति हि॥ ११

संवर्तं चैव भूतानां दृष्ट्वात्रिगृहिणी प्रिया।
साध्वी चैवाब्रवीदत्रिं मया दुःखं न सह्यते॥ १२
समाधौ च विलीनोऽभूदासने संस्थितः स्वयम्।
प्राणायामं त्रिरावृत्या कृत्वा मुनिवरस्तदा॥ १३
ध्यायति स्म परं ज्योतिरात्मस्थमात्मना च सः।
अत्रिर्मुनिवरो ज्ञानी शंकरं निर्विकारकम्॥ १४
स्वामिनि ध्यानलीने च शिष्यास्ते दूरतो गताः।
अनं विना तदा ते तु मुक्त्वा तं स्वगुरुं मुनिम्॥ १५
एकाकिनी तदा जाता सानसूया पतिव्रता।
सिष्वेवे सा च सततं तं मुदा मुनिसत्तमम्॥ १६
पार्थिवं सुन्दरं कृत्वा मंत्रेण विधिपूर्वकम्।
मानसैरुपचारैश्च पूजयामास शंकरम्॥ १७
तुष्टाव शंकरं भक्त्या संसेवित्वा मुहुर्मुहुः।
बद्धाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रकम्य स्वामिनं शिवम्॥ १८
दण्डवत्प्रणिपातेन प्रतिप्रकमणं तदा।
चकार सुचरित्रा सानसूया मुनिकामिनी॥ १९
दैत्याश्च दानवाः सर्वे दृष्ट्वा तु सुन्दरीं तदा।
विह्लाइचाभवस्तत्र तेजसा दूरतः स्थिताः॥ २०
अग्निं दृष्ट्वा यथा दूरे वर्तन्ते तद्वदेव हि।
तथैनां च तदा दृष्ट्वा नायान्तीह समीपगाः॥ २१

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! आपलोगोंने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है; अब मैं उस शुभ कथाको कहता हूँ जिसे निरन्तर सुनकर मनुष्य निश्चितरूपसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ६॥

चित्रकूटके समीप दक्षिण दिशामें कामद नामक एक विशाल वन है, जो सज्जनों एवं तपस्वियोंका कल्याण करनेवाला है। वहाँ ब्रह्माके पुत्र महर्षि अत्रि [अपनी पत्नी] अनसूयाके साथ अति कठिन तप करते थे॥ ७-८॥

हे मुने! पहले किसी समय दुर्भाग्यसे जीवोंको दुःख देनेवाली सौ वर्षकी भयानक अनावृष्टि हुई॥ ९॥

हे मुनीश्वरो! उस समय सभी वृक्ष, पत्ते तथा फल सूख गये। नित्यकर्मके लिये भी कहीं [नाममात्रका] जल नहीं दिखायी पड़ता था॥ १०॥

आर्द्रता कहीं भी नहीं थी और दसों दिशाओंमें शुष्क पवन बहने लगा, जिससे पृथ्वीपर चारों ओर अतिशय दुःखदायक महान् हाहाकार मच गया। तब अत्रिकी पतिव्रता पत्नीने प्राणियोंका विनाश देखकर अत्रिसे कहा कि यह दुःख मुझसे सहन नहीं हो रहा है॥ ११-१२॥

तब वे मुनिवर [अत्रि] स्वयं आसनपर स्थित हो तीन बार प्राणायामकर समाधिमें लीन हो गये। इस प्रकार वे ज्ञानी मुनिश्रेष्ठ अत्रि आत्मामें स्थित निर्विकार शिवस्वरूप परमज्योतिका ध्यान करने लगे॥ १३-१४॥

तब गुरुके समाधिमें लीन हो जानेपर उनके शिष्य अन्नके अभावमें अपने गुरुको छोड़कर दूर चले गये। तब वे पतिव्रता अनसूया अकेली हो गयीं और वे प्रसन्नताके साथ निरन्तर उन मुनिश्रेष्ठकी सेवा करने लगीं। वे सुन्दर पार्थिव शिवलिंग बनाकर मन्त्रके द्वारा विधिवत् मानस उपचारोंसे पूजन करती थीं और बारंबार शंकरजीकी सेवाकर भक्तिसे उनकी स्तुति करती थीं। हाथ जोड़कर स्वामी सदाशिवकी प्रदक्षिणाकर सुन्दर चरित्रवाली वे मुनिपत्नी अनसूया प्रत्येक परिक्रमामें दण्डवत् प्रणाम करती थीं॥ १५-१९॥

उस समय उन शोभाशालिनी [अनसूया]-को देखकर सम्पूर्ण दैत्य एवं दानव वहाँ घबड़ा गये और उनके तेजके कारण दूर खड़े हो गये। जिस प्रकार अग्निको देखकर लोग दूर रहते हैं, उसी प्रकार उनको देखकर लोग समीपमें नहीं आते थे॥ २०-२१॥



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with

By
Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

अत्रेशच तपसश्चैवानसूयाशिवसेवनम्।
 विशिष्टते स्म विप्रेन्द्रा मनोवाककायसंस्कृतम्॥ २२
 तावत्कालं तु सा देवी परिचर्या चकार ह।
 यावत्कालं मुनिवरः प्राणायामपरायणः॥ २३
 तौ दम्पती तदा तत्र स्वस्वकार्यपरायणौ।
 संस्थितौ मुनिशार्दूल नान्यः कश्चित्परः स्थितः॥ २४
 एवं जाते तदा काले ह्यत्रिश्च ऋषिसत्तमः।
 ध्याने च परमे लीनो न व्यबुध्यत किंचन॥ २५
 अनसूयापि सा साध्वी स्वामिनं वै शिवं तथा।
 भेजे नान्यत्परं किंचिज्जानीते स्म च सा सती॥ २६
 तस्यैव तपसा सर्वे तस्याश्च भजनेन च।
 देवाश्च ऋषयश्चैव गंगाद्याः सरितस्तथा॥ २७
 दर्शनार्थं तयोः सर्वाः परप्रीत्या समाययुः।
 दृष्ट्वा च तत्पः सेवां विस्मयं परमं ययुः॥ २८
 तयोस्तदद्धुतं दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम्।
 उभयोः किं विशिष्टं च तपसो भजनस्य च॥ २९
 अत्रेशचैव तपःप्रोक्तमनसूयानुसेवनम्।
 तत्सर्वमुभयोर्दृष्ट्वा समूचुर्भजनं वरम्॥ ३०
 पूर्वेण्य ऋषिभिःश्चैव दुष्करं तु तपः कृतम्।
 एतादृशं तु केनापि क्व कृतं नैतदब्रुवन्॥ ३१
 धन्योऽयं च मुनिर्धन्या तथेयमनसूयिका।
 यदैताभ्यां परं प्रीत्या क्रियते सुतपः पुनः॥ ३२
 एतादृशं शुभं चैतत्पो दुष्करमुत्तमम्।
 त्रिलोक्यां क्रियते केन साम्प्रतं ज्ञायते न हि॥ ३३
 तयोरेव प्रशंसां च कृत्वा ते तु यथागतम्।
 गतास्ते च तदा तत्र गंगाज्च गिरिशं विना॥ ३४
 गंगा मद्भजनप्रीता साध्वी धर्मविमोहिता।
 कृत्वोपकारमेतस्यागमिष्यामीत्युवाच सा॥ ३५

शिवोऽपि ध्यानसम्बद्धो मुनेरत्रेमुनीश्वराः।
 पूर्णशेन स्थितस्तत्र कैलासं न जगाम ह॥ ३६

हे विप्रेन्द्रो! अत्रिकी तपस्याकी अपेक्षा अनसूयाद्वारा मन, वाणी एवं कर्मसे किया गया शिवसेवन विशिष्ट था। इस प्रकार जबतक मुनिवर अत्रि प्राणायामपरायण होकर समाधिमें लीन रहे, तबतक वे देवी उनकी सेवा करती रहीं। हे मुनिवर! इस प्रकार वे दोनों पति-पत्नी अपने-अपने कार्यमें परायण होकर स्थित रहे, वहाँ कोई अन्य स्थित न रहा, चिरकाल व्यतीत हो जानेपर भी इस प्रकार ध्यानमें मग्न ऋषिश्रेष्ठ अत्रिको किसी वस्तुका भान न रहा॥ २२—२५॥

पतिव्रता अनसूया भी अपने पति अत्रि तथा अपने इष्टदेव सदाशिवकी सेवा करने लगीं और उन सतीको भी किसी अन्य वस्तुका ज्ञान न रहा। तब उन अत्रिकी तपस्या तथा अनसूयाके शिवाराधनसे प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवता, ऋषिगण तथा गंगा आदि सभी नदियाँ—ये सभी उन दोनोंका दर्शन करनेके लिये प्रेमपूर्वक वहाँ आये। अत्रिकी तपश्चर्या एवं अनसूयाकी सेवा देखकर वे बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ २६—२८॥

उन दोनोंके अद्भुत तप तथा उत्तम सेवाभावको देखकर वे कहने लगे कि अत्रिका तप तथा अनसूयाकी आराधना—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है? इसके बाद उन दोनोंको देखकर उन्होंने कहा कि भजन श्रेष्ठ है। पूर्वकालीन ऋषियोंने भी दुष्कर तप किया था, किंतु ऐसा कठिन तप किसीने कभी भी नहीं किया—ऐसा उन्होंने कहा। ये अत्रि धन्य हैं एवं ये अनसूया भी धन्य हैं, जो कि ये दोनों प्रेमपूर्वक घोर तपस्या कर रहे हैं। त्रिलोकीमें इस प्रकारका शुभ, उत्तम तथा कठिन तप किसीने किया हो, यह बात इस समयतक जानी नहीं जा सकी है॥ २९—३३॥

इस प्रकार उनकी प्रशंसाकर वे जैसे आये थे, वैसे ही [अपने-अपने स्थानको] चले गये। परंतु गंगाजी और शिवजी वहीं स्थित रहे। गंगा तो साध्वी अनसूयाके पातिव्रत्य धर्म तथा उनकी सेवासे मुग्ध होकर वहीं रह गयीं। गंगाने कहा कि मैं इन अनसूयाका उपकार करके ही जाऊँगी॥ ३४-३५॥

हे मुनीश्वरो! शिवजी भी महर्षि अत्रिके ध्यानसे बँधे रहनेके कारण पूर्णशसे वहीं स्थित हो गये और कैलास नहीं गये। हे ऋषिश्रेष्ठो! चौवन वर्ष बीत